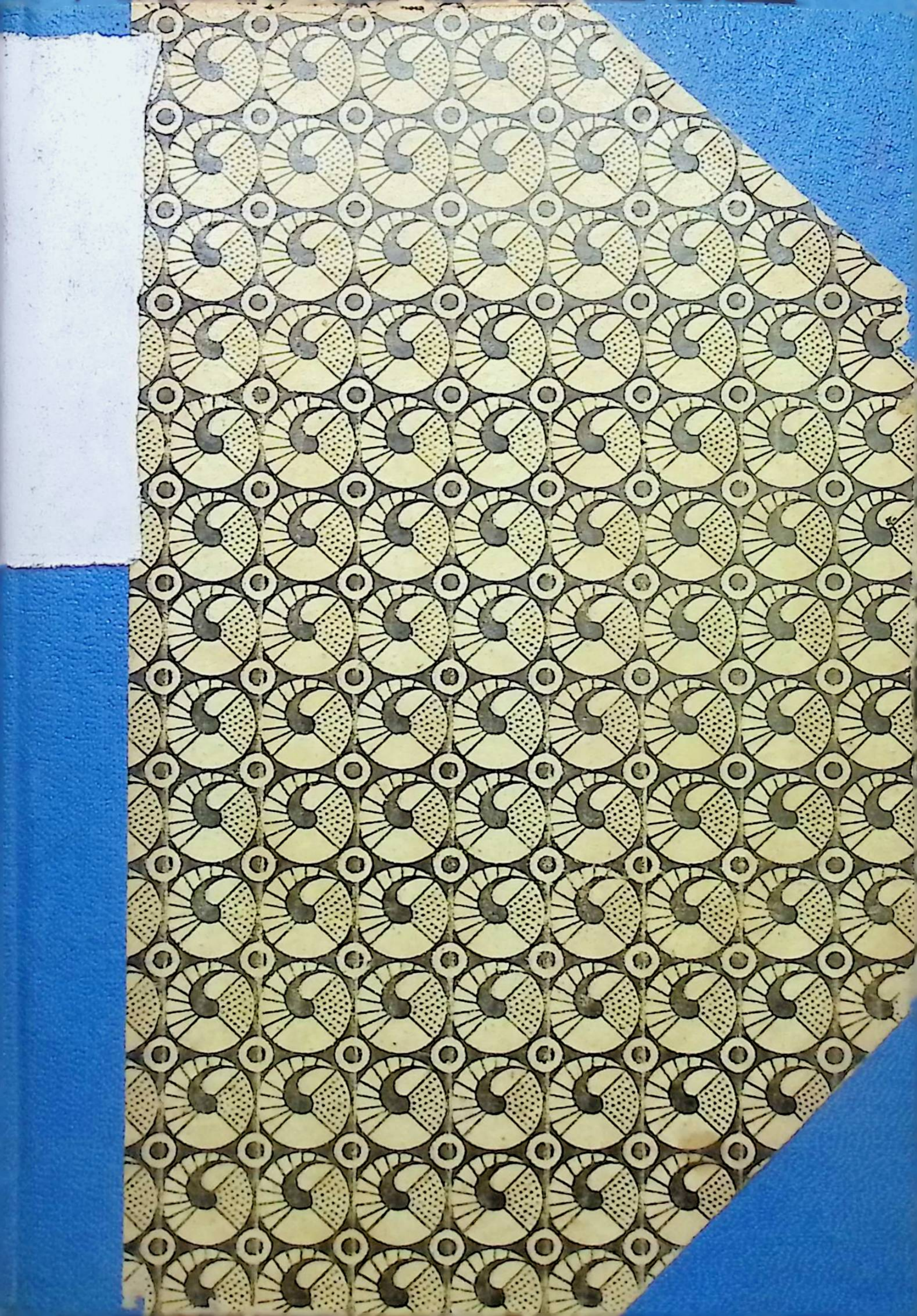

ओ३म्

सत्य-सागर

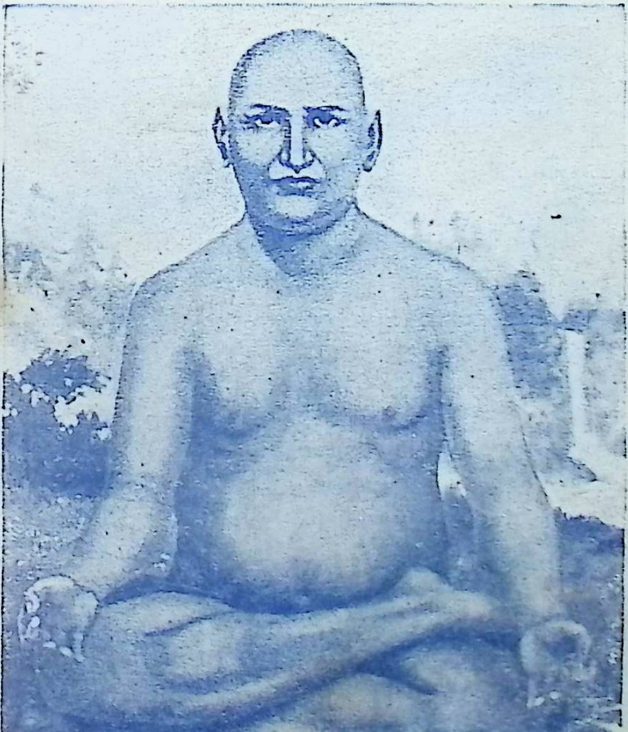

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

आर्य, आदर्श ग्रन्थ माला सं० ७

❀ ओ३म् ❀

सत्य-सागर

सत्यार्थ प्रकाश का पद्यानुवाद

…

लेखक

वैद्यवर पंडित गदाधरप्रसाद (इष्ट) वानप्रस्थी
अवैतनिक उपदेशक आर्यप्रतिनिधि-सभा
उत्तर प्रदेश वर्तमानस्वामी इष्टानन्द
सरस्वती

…

सम्वत् २००९ विक्रम

…

थम वार } १००० }
सर्वाधिकार स्वरक्षित
सन् १९५२ ई०
{ मूल्य ३॥)

प्रकाशक
आर्य आदर्श ग्रन्थमाला
मकबूलगंज, लखनऊ

ग्रन्थमाला की प्रकाशित पुस्तकें

१. सत्यसागर सत्यार्थ प्रकाश का पद्यानुवाद	मूल्य ३॥)
२. संस्कार संगीत संस्कारों पर गाने योग्य	मूल्य ॥।)
३. स्त्री शिक्षा की पुस्तक गृहदीपक अर्थ सहित	मूल्य ।–)
४. कन्याओं के निमित्त गृह-सुधार	मूल्य ≡)
५. प्रातःगान भजन (ईश्वर प्रार्थना)	मूल्य =)
६. प्रार्थना मंत्रों सहित संध्या का पद्यानुवाद	मूल्य =)

पुस्तक मिलने के पते

१. आर्य आदर्श ग्रन्थमाला मकबूलगंज लखनऊ
२. धार्मिक पुस्तकालय झंडावाला पार्क लखनऊ
३. आर्य प्रतिनिधि सभा मीराबाई मार्ग लखनऊ

मुद्रक
पंडित बिहारीलाल शुक्ल
शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ

भूमिका

परम पिता परमात्मा की दया से लगातार उद्योग करने पर यह पाँचवाँ संस्करण प्रकाशित करा सके हैं। इसके लिखने की आवश्यक्ता क्यों हुई मैं जिस समय आर्य्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश में वैतनिक उपदेशक था, उस समय कतिपय प्रान्तों के विभिन्न नगरों में प्रचारार्थ जाया करता था। इसी भ्रमण में मुझे एक बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि भारतीय जन समाज आर्य सिद्धान्तों कों मानने के लिये पूर्णतया तैयार हैं। किन्तु पारस्परिक प्रचार के रोचक साधनों के अभाव से अन्य सम्प्रदायों के समान आर्यसिद्धान्तों का प्रचार नहीं होने पाता। मुझसे कई ग्रामीण भाइयों ने प्रश्न भी किया 'तुलसीकृत रामायण' हिन्दी—महाभारत, आल्हकांड के समान कोई कथात्मक-ग्रन्थ समाज के पास नही है जिस से हम अवोध देहाती भी पूरा लाभ उठा सकें। हम लोग जिस समय छुट्टी पाते हैं तो ऐसी ही सरल पुस्तक पढ़ते हैं और दूसरों को भी सुनाते हैं। यदि आर्य सिद्धान्त की कोई सरल पुस्तक दोहा चौपाई के रूप में प्रकाशित हो जावे, तो हम लोग उसकी कथा कहकर जीवन सुधार सकते हैं। अतः मैंने इस ओर दृष्टि डाली और यह प्रतीक्षा की कि कोई योग्य व्यक्ति इस कार्य का सम्पादन करें परंतु कुछ काल के पश्चात् मुझी को यह बड़ा भार अपने ऊपर लेना पड़ा। तब मैंने मनुष्य जीवन को सुधारने वाले आर्य्य सिद्धान्त के मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को ही तुलसीदास की रामायण की शैली पर सत्यसागर के नाम से पद्यानुवाद करना प्रारम्भ किया। मुझे यह भय था कि पूज्य गोसाईंजी के पश्चात् इस शैली पर जो कथात्मक ग्रन्थ लिखे गये उनमें सरलता नहीं आई। प्रभू की कृपा से इस (सत्य-सगर) के पढ़ने से ठीक रामायण का स्वाद आता है इस में उतनी ही सरलता और

लालित्य है। हाँ हम अलंकार नही ला सके कारण कि हम अनुवादक की परमित परिस्थिति में थे यह भी ध्यान रखना आवश्यक था कि सत्यार्थप्रकाश का कोई स्थल सामर्थ भर छूटने न पावे एवं सर्व साधारण इसका पाठ करते-करते उकता न जावें लड़का लड़की स्त्री पुरुष समान भाव से लाभ उठा सकें।

वस्तव में इसके पढ़ने से सत्यार्थ प्रकाश बड़ी शीघ्रता से समझ में आ जाता है प्रस्तुत ग्रन्थ किस प्रकार का है इसके सम्बन्ध में महानुभावों के विचार प्रथम और द्वितीय संस्करण में उधृत हो चुके हैं जिन्हों ने लिखित पुस्तक देखकर सम्मतियाँ प्रकट की थीं। यदि आये हुए प्रशंसा पत्र प्रकाशित करूँ तो एक बड़ी पुस्तक हो जावेगी।

अस्तु यह सत्यार्थ प्रकाश मनुष्य जीवन को अवश्य उपयोगी बनाने वाली पुस्तक है। सब भाषाओं में अनुवादित है सरल कविता में अभाव था वह भी सत्यसागर लिखकर पूरा कर दिया मैंने जब से संन्यास लिया पुस्तकों का कार्य बन्द किया और यह चाहा कि कोई प्रकाशन अधिकार लेकर प्रकाशित करावें आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश तथा सब सभाओं को लिखा पुस्तक विक्रेताओं से भी कहा कोई राजी न हुआ पुस्तक की माँग बढ़ती गई तब मुझको ही पांचवा संस्करण प्रकाशित कराना पड़ा धना भाव से केवल १ सहस्र प्रकाशित कराया है पाठक क्षमा करें और अपनावें। प्रार्थना—ज्ञात हो कि मैंने सत्यार्थ प्रकाश का कथात्मक पद्यानुवाद सत्यसागर लिखने में कथा की शैली बनाने में जो प्रत्येक तरंग के प्रारम्भ में गुरु शिष्य के सम्वाद रूप भाव मय भूमिकाएँ बांधी हैं वह मूल सत्यार्थ प्रकाश में नहीं हैं केवल हमारी भावना मात्र हैं।

निवेदक

स्वामी इष्टानन्द सरस्वती

भूतपूर्व गदाधर प्रसाद वैद्य

लेखक का परिचय

आपका जन्म सम्वत् १९३९ माघ कृष्ण अष्टमी को इसी उत्तर प्रदेश में जिला हरदोई के पश्चिम वावन में हुआ यह स्थान बहुत पुराना है। किम्वदन्ती है कि यह स्थान राजावलि का बसाया हुआ है यहाँ पर एक बड़ा यज्ञ महाराजाबलि ने किया था। आपके पिता का नाम पं० बाँकेलाल था पिता तीन भाई थे उपमन्यु गोत्र उपाधी पाठक रही। लेखक महोदय कई भाइयों के होने पर भी दैव की कृपा से, अकेले रह गये प्रारम्भ से ही आपको विद्या का बड़ा प्रेम था और वृद्धों के पास ही बैठा करते थे। ११ वर्ष की अवस्था में जनेऊ हुआ १३ वर्ष में पं० गदाधर प्रसाद ब्रह्म भट्ट (नवीन) ने गायत्री अनुष्ठान की शिक्षा दी और हिन्दी तथा कविता का प्रेमी बनाने का प्रयत्न किया। पश्चात् १५ वर्ष की अवस्था में ही पिता की आग्रह से गृहस्थी बनना पड़ा। गृहस्थी में दाम्पत्यप्रेम सराहनीय रहा आपने संस्कृत और वैद्यक की शिक्षा पूज्य पं० रघुनन्दन शर्मा साड़ी (हरदोई) से प्राप्त की आपकी पढ़ने पढ़ाने में बड़ी रुचि थी यहाँ तक कि आपने अपनी बहिन को प्राइमरी प्राइवेट पास कराकर लखनऊ गरल नार्मल से मिडल तथा ट्रेनिंग करवाया अपनी धर्मपत्नी को भी यथा सम्भव पढ़ाया अभाग्यवश लेखक के पिता को अपने भाइयों से पृथक होना पड़ा जिससे लेखक महोदय की पढ़ाई का कार्य अधूरा ही रहा। तथापि आपने अपने परिश्रम से कुछ किया और आर्यसमाज की शिक्षा में पड़ सत्य वादिता की धुन समाई पिता कपड़े का व्यापार करते थे लेखक जी का मन उसमें नहीं लगा होते होते आपने ऐसी योग्यता प्राप्त की कि आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक हो गये कई वर्ष सभा की सेवा की इस अवसर में आपके कई पुत्र और पुत्रियाँ हुईं जब आप परिवार सहित लखनऊ आये उस समय होनहार दो

पुत्र दो पुत्रियाँ थीं एक की योग्यता संस्कृत में मध्यमा अंग्रेजी में इन्टेन्स आयु २२ वर्ष थी असहयोग आन्दोलन में स्कूल छोड़ दिया था दूसरा ६ वर्ष की अवस्था में वेदपाठ तथा अग्निहोत्रादि करता था। अस्तु बड़े ही होनहार बच्चे थे। दैव की इच्छा पूर्व कर्मानुसार लखनऊ में ही पुत्रों का देहान्त हो गया पं० जी ने कर्मों का भोग समझकर किञ्चित भी शोक नहीं किया। कुछ काल के पश्चात् पत्नी का भी स्वर्गवास हो गया तब आपने संसार के जीवन सुधार तथा अपनी शान्ति और नाम, को जीवित रखने के निमित्त सत्यार्थ प्रकाश का रामायण की भाँति पद्यानुवाद कर सत्यसागर लिख कीर्ति और यश के भागी बने आपने पुत्रियों का विवाह कर के बान प्रस्थ लिया लखनऊ में आप अपने औषधालय में धर्मार्थ औषधियाँ दिया करते थे पश्चात आपने अपनी जन्म भूमि में सम्वत २००४ में एक यजुर्वेद का यज्ञ पं० महादेव शास्त्री के आचार्यत्व में कराया और सन्यास ले लिया अब भी आप कुछ न कुछ लिखा ही करते हैं प्रकाशकों की सहायता न मिलने से लिखना वा छपाना बेचना सभी कार्य नही बनता अब आप का नाम स्वामी इष्टानन्द सरस्वती है बड़े संतोषी और अच्छे उपदेशक हैं।

ग्रन्थ गरिमा

जीवन का ध्येय है कि जग में भलाई होवे—
शान्ति की हो वृद्धि और भ्रान्ति भाव भागैं सब।
गुरुजन सेवा पुनि निज जन सेवा सदा—
देश जन सेवा का भाव उदय होवे अब।
अभी है अवसर बल देह में बना है शेष—
अब भी न किया कुछ तो करौगे कब।
आओ अपनाओ सत्य सागर की सत्यता को—
जीवन बनेगा शुद्ध ध्यान से पढ़ोगे जब॥ १॥

जैसे मृग झुन्ड देखि केसरी को भाग जाता—
    जैसे अंधकार रबि रश्मि देख जाता है।
जैसे शुभ कर्म से न पाप कर्म रहे शेष—
    सज्जनो का संग फल उत्तम दिखाता है।
पारस के स्पर्श से लोहा भी स्वर्ण बनता—
    स्वातिबुन्द सीपी में मोती कर दिखाता है।
उसी भाँति स्वामी दयानन्द का सदुपदेश—
    मानव मनों से भ्रमजाल को भगाता॥ २॥
कथा रूप से वही आज है प्रस्तुत बानी।
    जिसकी महिमा कहे थकत हैं पंडित ज्ञानी॥
जिसका कर आचरण बहुत से सुधरे प्रानी।
    जिससे जगमें मिली कीर्ति सम्पति मनमानी॥
उस सत्यसागर के पाठ से बिमल बुद्धि वाणी करो।
शुभ यश शुभ ज्ञान विवेक से नित निज मन मानस भरो॥३॥
इसकी तरल तरंग सदा सुखदा मन भावनि।
    मन की कठिन कराल कालिमा सकल नशावनि॥
समुल्लास उल्लास पूर्ण चौदह करती है।
    मानो सुख सम्पदा जगत भर में भरती है॥
शंका लंका भस्म करि तुम को सुभग बनायगी।
विमल ज्ञान सिद्धान्त की जग मग ज्योति जगायगी॥४॥
पढ़ो सुनो औ बन्धु गणों को सदा सुनाओ।
    भक्ति भाव युत मोद सहित नितप्रति मिलि गाओ॥
ईश्वर का आधार निरन्तर मन में राखो।
    नित्य कर्म करि पूर्ण मधुर जीवन फल चाखो॥
आवाल वृद्ध वनिता युवा इसे पढ़ैं सुधरैं सकल।
है यही विनय जगदीश से होवें सबके मन विमल॥५॥

"रामलाल अग्निहोत्री" अध्यापक कान्यकुब्ज कालिज लखनऊ

विषय-सूची

प्रथमतरंग (स० १ स०)

[ईश्वर के नाम और व्याख्या

प्रार्थना १
ईश्वर के शत नामों का वर्णन ३
ईश्वर के नामों की व्याख्या.... .... ४

द्वितीय तरंग (स० २ स० शिक्षा)

मातृ-शिक्षा ८
बालक के जन्म से ५ वर्ष तक की शिक्षा और काम ९
गंडा, तावीज, नाउत और ज्योतिषियों का काम १०
माता, पिता और विद्वान् की सेवा ११
पिता की शिक्षा १२

तृतीय तरंग (स० ३ स० ब्रह्मचर्य)

आचार्य-शिक्षा १३
पुत्र के समान पुत्री को पढ़ाना १३
अष्ट प्रकार का मैथुन १३
गायत्री मंत्र का अर्थ १४
शुद्धि की सामान्य विधि १४
प्राणायाम की श्रेष्ठता और चार प्राणायाम १५
पंचयज्ञ और यज्ञ-विषय पर कुछ प्रश्नोत्तर १६
यज्ञोपवीत में सुश्रुत का मत १७
ब्रह्मचर्य-काल और देह की चार अवस्थाएँ १८
यम की व्याख्या १९
नियम की व्याख्या १९

इन्द्रियों के वश करने का उपाय १९
विद्वानों का कर्तव्य २०
ब्राह्मण शूद्र के सदृश कब हो जाता है २०
ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी का नियम और व्रत २०
पढ़ने की रीति २२
प्रत्यक्षादि प्रमाण २३
चौबीस तत्त्वों के नाम व गुण और द्रव्यस्वरूप २५
१२ वर्ष में वेद समाप्त करने की विधि २८
पाठ्य और अपाठ्य ग्रन्थ २९
षट् दर्शन का मूल तत्त्व ३०
अध्ययनकाल त्यागने योग्य विघ्न ३०
शूद्र और स्त्रियों के वेद पढ़ाने में प्रश्नोत्तर ३१
विद्या ही पूर्ण दान है ३३

चतुर्थ तरंग (स० ४ स० गृहस्थाश्रम)

गृहस्थाश्रम-प्रवेश-काल ३४
विवाह में मुख्य विचारणीय बातें ३५
काशीनाथ की विधि पर प्रश्नोत्तर ३६
विरुद्ध गुण-कर्म विवाह ३६
विवाह की योग्यता ३७
वर्ण-व्यवस्था ३९
ब्राह्मणों का कर्म ४२
क्षत्रियों का कर्म ४३
वैश्यों का कर्म ४३
शूद्रों का कर्म ४४
आठ प्रकार के विवाह ४४
गर्भाधान-विधि ४५

गर्भ की अवस्था में स्त्री-पुरुष का कर्तव्य ४६
स्त्री-सत्कार ४७
सत्य और प्रिय ४८
पंचयज्ञ ४८
पितृतर्पण, श्राद्ध ४९
अतिथि का स्वरूप ५१
मूर्खों के लक्षण ५२
गुरु और अध्यापक ५४
मूढ़ता का लक्षण ५४
विद्यार्थियों के सात दोष ५५
स्त्री-पुरुष-वियोग ५६
अक्षत योनि बाल विधवा विवाह समर्थन ५६
क्षत-योनि बिधवा-विवाह से नियोग की श्रेष्ठता ५७
नियोग कब होना चाहिये ५८
नियोग कीविधि ५९
आपत्काल विधवा-विवाह-समर्थन ६२

पञ्चम तरंग (स० ५ स० वानप्रस्थ संन्यास)

वानप्रस्थ का कर्तव्य और समय ६४
संन्यास की विधि ६५
संन्यासियों का कर्म ६६
धर्म के दश अंगों की व्याख्या ६७
संन्यास का अधिकार ६८

षष्ठ तरंग (स० ६ स० राज-धर्म)

राजपद्धति और तीन सभाएँ ७०
सभापति का स्वरूप ७१
सभापति का कर्तव्य ७१

राज-दण्ड-विधान ७२
प्रजा कैसे वश में होती है ७३
काम के दश अवगुण ७३
क्रोध के आठ अवगुण ७४
राज-मन्त्री तथा राज-दूत का वर्णन ७४
राज्य के लिये कोट की आवश्यकता ७५
राज-कर राज्य-प्रबन्ध, क्षात्रधर्म ७५
राज.दण्ड की १८ धारा ८१
राज-सभा की व्यवस्था और धर्म की महिमा ८२

सप्तम तरंग (स० ७ स० ईश्वर और वेद)

ईश्वर और वेद ८५
३३ कोटि देवताओं के नाम ८६
ईश्वर की स्तुति ८८
ईश्वर अवतार निशेध ८८
योग के यम आदि आठ अंग ९०
ईश्वर-अवतार-पर प्रश्नोत्तर ९२
जीव-और ईश्वर का सम्बन्ध ९३
जीव-ब्रह्म की एकता पर प्रश्नोत्तर ९५
सगुण-निर्गुण-विचार १००
वेद के प्रकट होने पर प्रश्नोत्तर १०२

अष्टम तरंग (स० ८ स० सृष्टि-उत्पत्ति)

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय १०४
ईश्वर, जीव और प्रकृति का अनादित्व १०६
कारण-कार्य का वर्णन १०७
दस नास्तिकों का प्रबल खण्डन १११
षट् दर्शनों का समन्वे ११६

प्रकृति का स्वरूप ११८
सृष्टि का क्रम ११९
आर्य्य दस्यु की विवेचना १२०
सृष्टि का अनादित्व १२२
सृष्टि के सम्बन्ध में ६ मत १२२
जगत् का आधार शेष १२४

नवम तरंग (स० ९ स० विद्या-अविद्या, बन्ध-मोक्ष)

विद्या और अविद्या का काल १२६
अविद्या का स्वरूप १२६
बन्ध और मुक्तिविषय पर प्रश्नोत्तर १२७
ब्रह्म-निरूपण मुक्ति का समय १३२
अन्नमय आदि पंच-कोष १३४
षट्साधन १३५
चार अनुबन्ध १३६
अन्य मतों का मुक्ति पर विचार १३७
कर्मों की व्यवस्था १३८
ईश्वर और जीव का सम्बन्ध १४०
जीव की गुण-कर्मानुसार गति १४१

दशम तरंग (स. १० स. भक्ष्याभक्ष्य अचार-अनाचार)

आचार-अनाचार १४५
विदेश-यात्रा में आचार का विचार १४९
भारत का चौका-चूल्हा १५०
मादक वस्तु तथा मांसादि-निषेध और गोरक्षा १५३
उच्छिष्ट-निषेध १५५
भङ्गी, चमार आदि के हाथों का खाने में विचार १५६
आर्य भोजन तथा विद्याध्ययन-काल १५७

एकादश तरंग (स० ११ स०)

[वेद-विरुद्ध मतमतान्तर विषय]

पूर्ववक्तव्य विषयों का संक्षिप्त वर्णन १५८
भारतवर्ष की श्रेष्ठता १६०
पोपों के लक्षण और कर्तव्य १६४
वाममार्ग १६७
चारवाक १७१
शंकर-मत (नवीन वेदान्त) १७३
जीव-ब्रह्म की एकता पर प्रश्नोत्तर १७५
विक्रम और भर्तृहरि का समय १८४
शैवमत का प्रचार १८४
भोज का समय १८५
वैष्णवों की उत्पत्ति १८६
देवीभागवतानुकूल सृष्ट्युत्पत्ति १८७
एक वैष्णव गुरु-चेला की कहानी १८९
चक्रांकित-पन्थ १९०
मूर्तिपूजा पर प्रश्नोत्तर १९२
मूर्तिपूजा से पन्द्रह दोष १९७
पंचदेवपूजा १९९
कामाक्षा और जगन्नाथ २०२
रामेश्वर स्थापना-विचार २०४
कालियाकान्त, सोमनाथ २०५
हरिद्वारमाहात्म्य पर विचार २०७
सच्चे तीर्थों की विधि २०९
गुरुमाहात्म्य पर विचार २१०
मतों का पारस्परिक विरोध २११
भागवत तथा पुराण का निर्माणकाल २११

मनुष्यमात्र तथा स्त्रियों का वेदाधिकार २२०
नवग्रहमंत्रों पर विचार २२०
जाट और पुरोहित २२३
दान की अवस्था २२६
सब तिथियों में व्रत २२९
एकादशी व्रत और एक वेश्या की कथा २३०
वेदों की शाखाओं का वर्णन २३१
वेदविरुद्ध मंत्र-रचना पर विचार २३२
चोलीमार्ग, वीजमार्ग २३३
शैवमत २३४
वैष्णवपन्थ परिकाल की कथा २३५
खाखियों का अड्डा २३७
नानकपन्थ तथा गुरुगोविन्द सिंह २३८
रामसनेहीपन्थ २४०
गोकुलिये गोसाईं २४३
नारायणपन्थ २४६
माध्वमत २५०
लिङ्गाङ्कितमत चंक्राकित २५०
ब्रह्म समाज और प्रार्थनासमाज २५१
जाति-भेद भोजन २५२
एक जिज्ञासु की सब धर्मवालों से वार्ता २६०
युधिष्ठिर से यवन समय तक आर्यराजाओं का वर्णन २७०

द्वादश तरंग (स० १२ स०)

[चार्वाक बौद्ध, जैनमत-समीक्षा]

जैन-बौद्धमत का प्रारम्भिक काल २८२
चार्वाक का सिद्धान्त और स्वामीजी की समीक्षा २८४

बौद्धमत की शिक्षा और सिद्धान्त २९१
ईश्वर सिद्धीपर प्रश्नोत्तर ३०४
आस्तिक-नास्तिक-संवाद ३०८
जैनियों का काल-वर्णन ३१४
देहमान और आयुमान ३१६
भूमि-परिमाण जैनियों के लोक ३१७
जगत्कर्ता पर विचार ३१८
जैनियों की मुक्ति का वर्णन ३२५
जीवों का कर्म विचार ३२९
तीर्थंकरों की नाप और अयु ३३०

त्रयोदश तरंग (स० १३ स० ईसाई मत-विषय)

तौरेत के सिद्धान्त और उत्पत्ति की पुस्तक ३३५
,, यात्रा की ,, ... ३६०
,, लयव्यवस्था की ,, ... ३६४
,, गिनती की ,, ... ३६७
,, समूएलकी दूसरी ,, ... ३६८
,, राजाओं की ,, ... ३६९
जबूर दूसरा भाग ३७०
इंजील मत्तीरचित ३७१
,, लूकरचित योहनरचित सुसमाचार ३८५
योहन के प्रकाशित वाक्य ३८७

चतुर्दश तरंग (स० १४ स० यवनमत-विषय स०)

यवनों के सिद्धांत और उनकी समीक्षा ३९७ से ४७२
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ४७३ से ४८५
आर्यसमाज के नियम ४८६ से ४८८

शुद्धा शुद्ध पत्र

पृ०	पंक्ती	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
२६	११	पाढ़ि	पढ़ि
३२	१५	मार्गी	गार्गी
३७	१८	कण	गुँण
४७	१३	वसैं	वसैसब
६३	२२	विवाद	विवाह
८०	४	दजै	दीजै
९७	८	लखाई	प्रमानहु
१०१	३	जुगत	जगत
११४	३	पदादि	पटादि
११६	८	पुनि	पुनिहै
१२७	११	सतात	सतरात
१५०	६	भवव	भवन
१७४	१७	जद्यत	जगत
१९२	६	कहन	कहत
२०६	१४	व्रज	व्रत
२३४	३	फ़िहि	फिरहिं
२८६	२१	हथ	हम
३०२	५	जातिये	जानिये
३३६	६	जिन	निज
३५२	५	श्ईवर	ईश्वर
४००	११	किव	किय
४३२	६	गलहि	गलेमांहि
४८८	१०	उन्नति	उन्नती

नोट :—पृष्ठ ६५ पंक्ति २४ में कुछ फारमों में (अबुध अविद्या) तथा पृष्ठ ७ पंक्ति ६ में (कहहु) छूट गया है पाठक सुधार लें ।

✿ ओ३म् ✿

अथ सत्य-सागर

सत्यार्थ प्रकाश का पद्यानुवाद

प्रथम तरंग (सत्यार्थ प्रकाश १ समुल्लास)

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ।
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं
वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु मामवतु
वक्तारम ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

—यजुर्वेदीय तैतरीय उपनिषद् प्रथम अनुवाक

अर्थ—मित्र की शक्ती से हमको नाथ अब सुख दीजिये ।
दीन होकर हम रहें नहिं बुद्धि प्रेरित कीजिये ॥
और हों बलवान् हम सब शक्ति दे यश लीजिये ।
हममें वरुण की शक्ति से वैभव सुधन भर दीजिये ॥
प्राण उन्नत हों हमारे वायु सुखदा हो सदा ।
आप हों प्रत्यक्ष जग में ब्रह्म पूरण सर्व्वदा ॥
आप को प्रत्यक्ष लखकर सत सदा बोला करूँ ।
झूठ को बोलूं न कबहूँ सत्य हियके बिच धरूँ ॥

सो०—हे प्रभु दीनदयाल, हरहु विघ्न मेरे सकल ।
हम हो जांय निहाल, भक्ति तुम्हारी नित करहिं ॥१॥
निराकार अविकार, सोइ अनन्त अज ब्रह्मवर ।
सकल जगत करतार, सर्वशक्तिमन न्याय कर ॥२॥
महा पाप जग भूरि, जेपि अविद्या आदि दै ।
करहु महा भ्रम दूरि, तिनते रक्षा कीजिये ॥३॥
अन्त न पावत कोइ, विद्या बुधि प्रभु आपकी ।
वेद प्रकट किय सोइ, चलहिं जासु पथ सकलजन ॥४॥
विघ्नक कर्म सुकार्य, वेद विरोधी यज्ञ के ।
दुष्ट स्वभाव अनार्य, करहु समूल विनाश सो ॥५॥
करत याचना ध्यान, तुमहि त्यागि जो अन्य की ।
होत विनष्ट महान, तासु शुभोत्तम काम सब ॥६॥
वैर भाव का मूल, है पाखण्ड असत्य मत ।
करहु सकल निर्मूल, ताहि कृपा करि शीघ्र प्रभु ॥७॥
करिये कबहूँ नाहिं, अपने से हम को पृथक ।
भक्त तुम्हार कहाहिं, कोइ न आवहि दोष ढिग ॥८॥
काहू की नही कोय, तुम से भिन्न उपासना ।
अस सुबुद्धि मम होय, करहिं न किञ्चित कबहु हम ॥९॥
स्व-प्रकाश सुखदेत, तुम पूरन विद्या निपुण ।
ज्ञान राज्य मम हेत, देहु सुपथ करिके कृपा ॥१०॥
हरहु कुटिल मम दोष, सम्पूरन सर्वज्ञ तुम ।
नाथ करहु जनि रोष, शिशु सेवक मोहि जानिकै॥११॥

तव आज्ञा अनुकूल, चलि न सर्वदा सकत मैं ।
क्षमहु "इष्ट" की भूल, अधमोद्धारक नाथ तुम ॥१२॥
शिष्य—हे गुरु मोहिं सुनाइये, कछुक पूर्व इतिहास ।
जाहि सुने नर भव तरहिं, "इष्ट" सुबिना प्रयास ॥१॥

गुरु

ऋषि की कथा सुनहु मनलाई। पावै सुख जो करै उपाई॥
पुष्कर-तीर्थ महा विख्याता। आवहिं मुनिगन कहहिं सुबाता॥
तहां एक दिन ऋषिवर गयऊ। दै उपदेश सबन चित लयऊ॥
पुनि एकान्त बैठि सब काहू। कथा सुनावत सहित उछाहू॥
सत्य कथा जस बेदन गाई। सोइ कहत सब कहँ समुझाई॥
बहु भूपति तेहि अवसर आये। ऋषि के वचन सबहिं मनभाये॥
राज-पुरुष यक बोलहु भाई। हमहिं सुनावहु ईश बड़ाई॥
नाम कवन जग तारन हेता। कवन नाम जपि होत सचेता॥

दो०—स्वामि कह्यो तव ध्यान धरि, सुनहु सकल महिपाल।
नाम सुनावहुँ ईश के, हैं जो परम कृपाल ॥२॥

छंद—ब्रह्मा, सु विष्णू, इंद्र, मित्र, विराट, अग्नी, जानिये।
खं, ब्रह्म, अक्षर, मातरिश्वा, गुरुत्मान, प्रमानिये।
है दिव्य, भूमि, विराट, अग्नी, ओ३म् , ईश्वर, मानिये।
कालाग्नि, विश्व, बृहस्पती, जग ईश, को पहिचानिये ॥ १ ॥
वायू , सुपर्ण, हिरण्यगर्भ-अज, मित्र, तैजस, ईश है।
आदित्य, प्रज्ञ, सुप्राज्ञ, वसु, सविता, कवी, जगदीश है।
है आतमा, परमातमा, शम, इंद्र, वरुण, मुनीश है।
यम, अर्य्यमा, आकाश, पृथिवी, अन्न, प्रानिन ईश है ॥ २ ॥
ईश्वर, उरुक्रम, चंद्र, मंगल, शुक्र, शनि, सब कोइ भजै।
परमेश, अंत, अनंत. बुधवर, यज्ञ, गणपति, गुरु, अजै।

अप, राहु, केतु, सुरुद्र, निर्गुण, करि प्रलय, पुनि जग सृजै।
यह जानि नर नित भजै प्रभु को, सकल औगुन को तजै ॥ ३ ॥
पितु, मातु, बंधु, पिता महा, प्रभु, न्यायकारि, दयालु है।
चित, ज्ञान, आनँद, सत, अनादि, सो मुक्त शुद्ध कृपालु है।
ब्रह्मा, निरंजन, सगुन, शंकर, पुरुष, विश्व भुआल है।
श्री, शक्ति, देवी, लक्ष्मी, जग-नाश के हित, काल है ॥ ४ ॥
भगवान, आप्त, सरस्वती, शिव, महादेव, उचारिये।
शम्भू, स्वयम्भू है अजन्मा, सकल जन उर धारिये।
सोइ सच्चिदानँद एक प्रभु है "इष्ट" हित अपनाइये।
यह गुनमई शत नाम लखि के ओ३म् को चितलाइये ॥ ५ ॥

दो०—इन शत नामन को सदा, पाठ करै चितलाय।
पूरित हों सब कामना, मन-विकार नशि जाय ॥ ३॥
सगुन नाम जगदीश के, ये हैं परम अनूप।
मुख्य नाम प्रभु ओ३म् है, गाइ तरहिं भवकूप ॥४॥

ओ३म् एक रक्षक जग माहीं। शरण तासुकी गहहु सदाहीं ॥
ओ३म् अकार उकार मकारा। करत ऋषीगन पुलुत उचारा ॥
अग्नि विराट विश्व जे नामा। ते अकार में पावहिं ठामा ॥
अरु उकार से तैजस जानौ। हिरण्यगर्भ अरु वायु बखानौ ॥
ईश्वर आदित प्राज्ञ समाना। प्रगट मकार होत जग जाना ॥
जो नहिं नष्ट होत दर्शाई। सोइ उपासक ओ३म् सुहाई ॥
ओ३म् एक प्रभु नाम अलीका। नशहि न कतहुँ होय नहिं फीका ॥
करि समाधि जो जानन योगू। परम पुरुष तेहि मानहिं लोगू ॥

दो०—ओ३म् एक अक्षर परम, सर्वेश्वर जगदीश।
उद्गाता तेहि गावहीं, ध्यावहिं सकल मुनीश ॥५॥

सर्व वेद जेहि आदर करहीं। नर जपि ताहि वेगि भव तरहीं ॥
तेहि उर धरत होहिं ब्रह्मचारी। ओ३म् नाम महिमा अति भारी ॥

नीके नाम बहुत प्रभु केरे । ओ३म् मुख्य गुन नाम घनेरे ॥
रक्षा करत सकल जग केरी । ता कहँ ओ३म् कहत सब टेरी ॥
जो व्यापक जग गगन समाना । तेहि विद्वान सकल खं जाना ॥
लहत बड़ाई जो जग माहीं । ताहि बतावहिं ब्रह्म सदाहीं ॥
देहि सकल शिक्षा दिन राती । स्वप्रकाश अति सूक्ष्म सुहाती ॥
स्वतः प्रकाश मान जगमाहीं । अग्नि स्वरूप विलोकहु ताही ॥

दो०—सकल जगत पालन करै, है ऐश्वर्य महान ।
इन्द्र ताहि सब कहत हैं, मनु स्वरूप विज्ञान ॥६॥

जीवन मूल प्राण यक अहई । निशि दिन व्यापक ब्रह्म कहाई ॥
ब्रह्मा जगत बनावहिं नीके । व्यापक विष्णु सकल जगती के ॥
दे दुख रुद्र रुलावहिं दुष्टन । हैं सदैव शिव मंगल दायन ॥
जो अति श्रेष्ठ जगत के माहीं । वरुण देव जग बीच कहाहीं ॥
है बहु बृहत सकल जग स्वामी । सकल लोक-पति अन्तरयामी ॥
देवन गुरू बृहस्पति जानो । सगुण ईश के नाम बखानो ॥
जासु प्रकाश परम हित होई । ता कहँ सूर्य कहत सब कोई ॥
जो सामर्थवान जगराई । ईश्वर ताकहँ जानहु भाई ॥

दो०—जो जग व्यापक है सदा, आतम रूप लखाइ ।
प्रकृति जीव से पृथक नित, परमातमा कहाइ ॥७॥

परम समर्थ समर्थन के बिच । परमेश्वर मानहु हिरदय खिच ॥
जो उत्पत्ति करत जग केरी । सविता नाम कहत मुनि टेरी ॥
रचि ब्रह्मांड करत जन छाया । धनपति ताहि कुबेर बताया ॥
जल समान जो व्यापक अहई । नारायण ताको मुनि कहई ॥
है आनन्द प्राण को दाता । चन्द्र इष्ट शीतल विख्याता ॥
मंगल रूप एक रस भानू । मंगल दै मंगल परिमानू ॥
जो है ज्ञान रूप जगत्राता । बुद्ध सकल जीवन को दाता ॥
नाम ईश जग तारन हेता । जपत निरन्तर मुनिगन नेता ॥

दो०—जो अति परम पुनीत है, पावन करत जहान ।
शुक्र नाम यह ईश को, जानहु जगत सुजान ॥८॥
मिलहि जो सहज धैर्य युत होई । ईश शनीचर जानहु सोई ॥
जो एकांत स्वरूप अकाया । लगहि न ताहि कतहुँ कोइमाया ॥
जो जग दुष्टन द्वेष छोड़ावहिं । राहु ईश ताकहँ सब जानहिं ॥
जो जग रोग छोड़ावन वारो । केतु नाम ईश्वर उच्चारो ॥
मातु, पिता, गुरु नाम ईश को । भजहु सकल मन भव जगतीको ॥
तीनो काल एक रस रहईं । ईश नाम सत कविगन कहईं ॥
चेतन रूप काल गति जानै । चित सर्वज्ञ सोइ प्रभु मानै ॥
आनँदरूप सदा प्रभु लसई । ताहि भजे हिय आनँद बसई ॥

दो०—जो जग पावन करत है, शुद्ध महा भगवंत ।
कतहुँ नाश नहिं होवई, नित्य सदा सुखवंत ॥९॥

जाननहार सदा जग स्वामी । बुद्ध विलोकहु अन्तर्यामी ॥
जो सब दुःख हरै जन केरे । सुमिरत पावन होत घनेरे ॥
सुनहु शिष्य सोइ मुक्त स्वरूपा । ताहि भजे उबरहिं भवकूपा ॥
निराकार प्रभु है जगसृष्टा । नैनन बिन सब कर्मन दृष्टा ॥
ईश निरंजन नाम जो भावहिं । देहिं सुपन्थ कुपन्थ छोड़ावहिं ॥
पालहिं सृजै सकल जगती को । गणपति ईश हरै दुख नीको ॥
प्रकृति सदा जाके बस रहई । श्री शक्ती देवी बुध कहई ॥
जो नित देखत सकल जहाना । करत हमहिं बहु शक्ति प्रदाना ॥
तेहि जानहु लक्ष्मी सब भाई । भजहु ताहि सब काम बिहाई ॥

दो०—हो पूरित सब-कासना, दुख न रहै लवलेश ।
सर्व शक्ति सम्पन्न है, शक्तीमान सुरेश ॥१०॥

सवैस–होत अभय जन जासु कृपा बल जानहि सत्य असत्य बिचारी ।
सोइ दयालु कृपालु प्रभो भजिये निशिवासर चित्त सम्हारी ॥

है वह एक अनंत गुणेश विलोकहु नाथ सदा सुखकारी ।
'इष्ट' सु शंकर देत सबै सुख नाश करे जन के दुख भारी ॥ ६॥
विद्या निपुण प्रकाशक भानू । महादेव सब देवन जानू ॥
ईश नाम नित जपहु सकलजन । अन्तःकरण विशुद्ध होय मन ॥
बुद्धि, ज्ञान देवै दिन-राती । सरस्वति नाम ईश सुखमाती ॥
जो जान जपै सदा प्रभु नामू । पावहि सुख पूरित हो कामू ॥
कह्यो नृपति सुनिये ऋषिराई । जानेहुँ आजु नाम प्रभुताई ॥
मोहिं सुनावहु नाम बड़ाई । सुमिरत जासु सकल दुख जाई ॥
सुख प्रसन्न बोले ऋषिराई । औरहु एक सुनहु चित लाई ॥
निन्दा रहित कर्म जो अहहीं । बुधजन तेहि करिके सुख लहहीं ॥
दो०-तासों नित प्रति नेह करि, तजहु अधर्म सुवाल ।
करहु धर्म निशि द्योस सब, तजहु सकल जंजाल ॥११॥
जासु कर्म कीन्हें अधिकाई । बढ़ै अधर्म होय दुख भाई ॥
कर्म सो सदा त्यागिबे लायक । पावैं फल निज कर्म विधायक ॥
अधरम के दश चिन्ह बताये । मनु आदिक असमिरतिन गाये ॥
ध्यान करैं पर द्रव्य निरंतर । मनहिं अनिष्ट विचारहिं जो नर ॥
मानत ईश कतहुँ जो नाहीं । मनसा पाप तीन ये आहीं ॥
पारश्वता पिशुनता दोऊ । बोलत झूठ कतहुँ जो कोऊ ॥
बिना प्रयोजन कर बकवादा । पातक चारि बाक मर्यादा ॥
उलटि लेहिं जो जन जग-दाना । हिंसा रत नित प्रेम निदाना ॥
दो०--पर त्रिय प्रेम करै सदा, विलँब न लावहिं नेक ।
शारीरिक यह पाप हैं, त्यागहु जानि विवेक ॥१२॥
वेद शास्त्र की रीति यह, जो हम वर्णन कीन्ह ।
पढ़हु न तुम भ्रमजाल में, जो प्रभु बुद्धी दीन्ह ॥१३॥

सत्य-सागर स० प्र० प्रथम तरङ्ग समाप्तम्

द्वितीय तरंग (स० प्र० २ स०)

सो०--गुरुवर भयो अनंद, सुनत कथा ऋषिराज की ।
अब बरणौं सुखकंद, जाहि सुने हित होय मम ॥१॥
दो०--कह्यो गुरू आदर सहित, सुनहु शिष्य करि नेह ।
ऋषिवर की दूजी कथा, बरणौं सहित सनेह ॥१॥
ऋषि की कथा सुनन के काजा । आये सब मिलि सहित समाजा ॥
देखि विशाल नेत्र अरुणारे । भये मगन दृग टरत न टारे ॥
गौर अंग तनु बाहु विशाला । देखि दुष्ट सब होत बिहाला ॥
मुखकी कांति विलोकहि जोई । नशहिं सकल भ्रम बुधवर होई ॥
याविधि ऋषि हिंविलोकि सबैजन । भरन लगे हियऋषि के बयनन ॥
स्वामि कह्यो सब नर जग माहीं । बिन शिक्षा कछु जानत नाहीं ॥
शिक्षा मार्ग मुख्य हैं तीनी । मातु पिता गुरु पुरुष अधीनी ॥
शतपथ ब्राह्मण में यहि भाँती । लिख्यो जगत हित कर्म सुहाती ॥
दो०--पिता एक शिक्षक परम, दूजी मातु महान ।
अहैं तीसरे गुरु जगत, आचारी सुखमान ॥२॥
धन्य सो कुल जहँ मातु कुलीना । धन्य सो सुत जो पितु आधीना ॥
गुरु सोइ धन्य जोहित अनुसरई । पितु सोइ धन्य पुत्र हितकरई ॥
पर यह बात सकल जग मानत । सुत स्वभाव पितुमातु से आवत ॥
देहिं मातु पितु जेती शिक्षा । मिलै न और काहु सों दिक्षा ॥
माता सुतहिं सिखावहिं नीके । गर्भ समय से वयस जती के ॥
तौ लगि शील सनेह सिखावै । मातृ मान सोइ मातु कहावे ॥
उचितमातु पितु असजगमाहीं । त्यागहिं मादक द्रव्य सदाहीं ॥
जौ लगि गर्भ न धारहिं बाला । गर्भ मध्य अरु अंतिम काला ॥

---

१ देखो संस्कार विधि गर्भाधान जातकर्म अथवा हमारी लिखी गृहदीपक।

दो०--नित प्रति मादक द्रव्य को, त्यागहिं रुचि सों बाल।
रहैं सदा आचार सों, परैं न कहुँ भ्रम-जाल ॥३॥
जन्मत सुत स्नान करावे। नाल छेदि पुनि होम रचावे ॥
माता सीख देइ नित नीके। दुर्गुण सकल निकारहि जीके ॥
तोतलि बात कहन नहिं पावे। आखर ठीक ठीक सिखरावे ॥
बोलनि उठनि चलनि व्यवहारू। मातु सिखावहिं सकल अचारू ॥
मातु उपाय करै नित ऐसा। तजै कुसङ्ग बाल हित वैसा ॥
अधिक खेल अरु रुदन लड़ाई। करै न शिशु सोइ रचै उपाई ॥
व्यर्थ खेल अरु लोभ छोड़ावे। ईर्षा डाह न तेहि ढिग आवे ॥
इन्द्रिय गुप्त छुए नहिं बालक। हों दुर्गन्ध पुरुष कुल घालक ॥
दो०--सदा सत्य भाषन करै, लहै धैर्य्य को बाल।
मातु करै सोइ यतन नित, सुख उपजै तिहुँ काल ॥४॥
पांच वर्ष का बालक होई। पढ़न हेतु बहु यतन करोई ॥
नित नव प्रेम करहि सब ही सों। विद्या विमुख न हो काहू सों ॥
भूत प्रेत की कथा न कहई। सुनै न बालक भय नहिं लहई ॥
सुनहु बतावहिं भूत कहानी। जाहि वरणि मुनिगन हित जानी ॥
गुरु पितु मातु मरै जाही दिन। ताकहँ कर्म करै सब कुल ठनि ॥
सोई शव जग प्रेत कहावे। दाहक प्रेतहार कहलावे ॥
पाछिल पुरुष व पाछिल काला। कहत भूत सब बुद्धि विशाला ॥
या विधि शिशुहिं सिखावे नीती। कुल अरु वेद बतावे रीती ॥
दो०--बुधजन को सिद्धांत यह, जो हम कह्यो बखान।
जासु हृदय संकित महा, सो मतिमंद महान ॥५॥
पुत्र सदा माता हित करहीं। जासों मातु मोद नित भरहीं ॥
उठत प्रात पितु मातु नमामी। ईश बन्दि अरु गुरुहिं प्रणामी ॥
करत कुसंग सदा दिन राती। लाज नशै अपयश बहु भाँती ॥
जो पाखंडी धूर्त अनारी। महा मूर्ख अरु अत्याचारी ॥

स्वार्थी भंगी शूद्र चमारा। म्लेच्छ आदि जे हैं परिवारा॥
ढोंग करैं छल कपट निरन्तर। बाँधहिं यंत्र देहिं बहु मन्तर॥
और करावहिं जूठ अहारा। करहिं सो यतन न हो आचारा॥
नाना भाँतिन ढोंग रचावैं। बाल-वृद्ध सब को अपनावैं॥
नाउत बनि जग मूड़ हिलावें। कहि देवी भैरों बतलावैं॥
पियें शराब करें बलिदाना। बोलैं सदा करहु बहु दाना॥

दो०--पूरे हैं जे गाँठ के, अरु हैं नेत्र विहीन।
ते जन इनमें फँसत हैं, अति स्वार्थी बुधिहीन॥६॥

जो कोउ इन ते पूछै कतऊ। देखहु यहि सुतको का भयऊ॥
तब ये कहत परम हित जानी। ग्रसेहु पुत्र कहँ भूत मसानी॥
पूजा पाठ करावहु हित सों। दीजे भेंट समग्री मन सों॥
जब कोउ हो इन धूर्तन के बस। ह्वै उनमत्त करत सब कनफुस॥
लैकर ढोल मृदंग नकारा। नाचहिं कूदहिं करत इशारा॥
ह्वै उनमत्त एक उठि बोलत। हम हैं भैरव जग में डोलत॥
हमही हैं हनुमान हठीले। मारहिंगे जो हैं गर्वीले॥
लावहु लाल लंगोट मिठाई। सेर सवा मन सिन्दुर भाई॥
औरहु बहुतक बात बतावहिं। करि बहु यत्न जगत भरमावहिं॥

दो०--जब ये नाचहिं कूदहीं, ढोंग करहिं बहु भाँति।
कबहुँ न इनके फंद में, आवै कोई जाति॥७॥

आदर काहू भाँति न कीजै। देखि ढोंग कछुहू ना दीजै॥
ये सब मूर्ख ढोंग बहु करहीं। इनके जाल अबुध जन परहीं॥
औरहु एक ज्योतिषी आवहिं। सबको ग्रह को दोष बतावहिं॥
ता हित पूजा पाठ करावहिं। लेहिं दान अरु भोजन पावहिं॥
करहिं ठगी छल जगत भुलावहिं। जड़ को चेतन रूप बतावहिं॥
देखहु सूर्य चन्द्र तारागन। ये जड़ लोक कहत सब बुधजन॥
यक पंडित तब पूछन लागा। हमहिं बतावहु ग्रहन विभागा॥

जो जन सुख दुख पावहिं निशिदिन। कहहु कहा यह नहिं ग्रहदूषन ॥
दो०--जा नर के ग्रह दुखद हों, पावत दुःख महान।
होहिं सुखद ग्रह जासु के, सो सुख लहत जहान ॥८॥
स्वामि कह्यो यह भूल तुम्हारी। है फल पाप पुण्य अधिकारी ॥
जो जस कर्म करै संसारा। फल पावे ताके अनुसारा ॥
काहू को ग्रह दुःख न देवें। कर्म समान सकल फल लेवें ॥
बहुरि कह्यो पंडित इमि बानी। जोतिष झूठ कौन विधि मानी ॥
स्वामि कह्यो सुनिये मन लाई। अङ्क बीज सब सत्य सदाई ॥
जो फल रच्यो स्वार्थिन निज हित। वह सब झूठ कपट की मूरत ॥
जो अस छल न करत जग भाई। पूछहि इन कहँ को घर जाई ॥
जन्मपत्र लिखि लोग भुलावत। ग्रह उपग्रह के दोष बतावत ॥
दो०--या विधि सों रचि के सदा, करत अडम्बर मात।
अबुध सदाही फँसत है, डरत रहत दिन रात ॥९॥
शोक पत्र वह हमरी जानी। रंग विरंग बनाय सुमानी ॥
धनी पुरुष जे हैं जग माहीं। तिनहिं पाइ ये ठगत सदाहीं ॥
ग्रह की दशा क्रूर कहि देहीं। शोक होय सुनि जन धन खोहीं ॥
रचि के ढोंग जो माँगै कोई। चाहे गुरु पंडित कोउ होई ॥
तिन सतकार करौ जनि कोई। कोउ न पूछहु बात संजोई ॥
निशि-दिन मातु पिता आदरई। सदगुरु की सेवा नित करई ॥
आवत आसन देवै ऊँचा। देकर अर्घ करहिं बहु पूजा ॥
जो गुणवन्त होय जग कोई। आये आदर करिये सोई ॥
सुजन सुसंगति करहिं सदाई। दुष्टन संग तजै दुखदाई ॥
दो०--मातु पिता गुरु की सदा, आज्ञा पालै बाल।
रहै सदाही नेम सों, पड़ै न कहुँ भ्रम-जाल ॥१०॥

मात पिता नित शिक्षा करई। पर उपकार पुत्र हिय भरई॥
करै उपाय सदा हित जानी। धारै उत्तम कर्म अमानी॥
त्यागहिं सदा दुष्ट पथ बालक। होहिं सुबल नहिं हों कुल घालक॥
सिखवहिं पिता नीति व्यवहारा। प्रिय भाषन अरु शब्द उचारा॥
योग-क्रिया कछु देय सिखाई। जासों ब्रह्मचारी बनि जाई॥
सन्ध्या-वन्दन सकल सिखावै। नित्य कर्म सबही करवावै॥
जेहिविधि रोग न होवे तन में। धरै सदा बालक सोइ मन में॥
चलै देखि मारग हर्षाई। पीवे वस्त्र छानि जल भाई॥
सत्य विचारि कहै सब बैना। मनहिं विचारि कर आचरना॥
दो०--तन मन वाणी से सदा, करै पुत्र हित नेह।
सदा यत्न जग करत है, होवे पुत्र सनेह॥११॥
सो पितु मातु शत्रु जग माहीं। जो न पढ़ावत पुत्रन काहीं॥
सभा मध्य वह सोहत कैसे। हंसन बिच बक बैठत जैसे॥
जो न बाल विद्या युत होई। जीवन भर दुःख पावै सोई॥
याते बालन विद्या दीजै। दै बुद्धी औगुन हरि लीजै॥
धन जेतो जग विदित महाना। विद्या धन पूरण जग माना॥
या को चोर न सकै चोराई। ना कोउ लेवै बन्धु बँटाई॥
तासु वृद्धि दीन्हे पर होवे। अरु जन हृदय मूर्खता खोवे॥
विद्या ही जग निपुण सुहाई। ग्रहन करै पावे सुख भाई॥
दो०--याते शिष्य समूह सब, पढ़िये देकर ध्यान।
स्वामि कह्यो यहि कथा में, शिक्षा विविध विधान॥१२॥
दो०--नाथ कृतारथ भयो मैं, सुनिके ऋषि के बयन।
बहुरि सुनावहु ऋषि कथा, खुलै हृदय के नयन॥१३॥

सत्य सागर स० प्र० द्वितीय तरङ्ग समाप्तम्

तृतीय तरंग (स० प्र० ३ स०)

दो०--शिक्षा की जो ठीक विधि, बरणि सुनायहु तात ।
पढ़न पढ़ावन की विधी, कहहु जगत सुखदात ।।१।।
दो०--एक समय बहु शिष्य युत, ऋषिवर पहुँचे जाय ।
गंगातट सुन्दर विशद, मुनिगन जहँ सुखदाय ।।२।।
ऋषिवर तुरत सुनावन लागे । जाहि सुने अवगुन सब भागे ।।
जो नर विद्यावान सदाई । धीर्य्य शील शिक्षा सुखदाई ।।
जाकहँ सत्य नेम जग भाई । तासु सकल औगुन नशि जाई ।।
जाकर भूषन देश सुधारू । धन्य सो नर जो कर उपकारू ।।
विद्या निपुण होय सब कोई । जानै धर्म कर्म बिधि सोई ।।
बालक आठ बरस को होई । पढ़न हेत पठवहु सब कोई ।।
जाबिधि पुत्र पढ़हिं मन लाई । ता विधि कन्या जानहु भाई ।।
पुत्रिन की अध्यापक नारी । होवें शुभ गुन शुचि व्रत-धारी ।।
दो०--जहाँ पढ़त हों पुत्र सब, तहाँ न जावहिं बाल ।
बाल बालिका को मिलन, है असंग तेहि काल ।।३।।
जो अध्ययन काल है भाई । तामँह बालक पढ़त सदाई ।।
मैथुन तजहि सदा ब्रह्मचारी । बाल बालिका जो व्रत-धारी ।।
मैथुन आठ प्रकार बताई । बचै तासु सों मन चित लाई ।।
दरश, परश, एकान्त निवासू । भाषन विषय कथा सहबासू ।।
खेल परस्पर, विषयन ध्याना । मैथुन, आठ प्रकार बखाना ।।
इनसे बचहिं सदा नर नारी । जासों मिलैं सबै सुख भारी ।।
योजन एक गाँव से दूरी । होहिं पाठशाला सुत छोरी ।।
तामह रंक राउ सब पढ़हीं । एक समान सो गुरु गृह रहहीं ।।
दो०--मात पिता सुत सों नहीं, करैं पत्र व्यवहार ।
गृह चिंता फँसि कै तबै, होत न पढ़न विचार ।।४।।

राजा नियम बनावै एका । पढ़ैं सकल बालक धरि टेका ॥
पुनि बहु जाति सभा नर करई । जेहि बल बालक वेदन पढ़ई ॥
सुतउपवीत करहिं घर माहीं । दूसर आचारी पहिराहीं ॥
गुरु पितु पुत्रन धर्म सिखावहिं । गायत्री को अर्थ बतावहिं ॥
भू उत्पन्न करत संसारा । स्वः पूरन सुख देवन हारा ॥
जो जन दुःख छोड़ावन हारा । सोइ भुवः जानहु सुख सारा ॥
जो जग व्यापि रह्यो सब ठामा । परमेश्वर सोइ नाम ललामा ॥
जेहिं सब जगत बेगि उपजावा । सविता देव जानि अस पावा ॥

दो०--निज शक्ती सों जगत में, सूर्य्य चंद्र उपजाय ।
सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुत, सविता ईश कहाय ॥५॥

है अति श्रेष्ठ वरेण्यं जानो । परमातम सोइ इष्ट प्रमानो ॥
है सोइ ग्रहन योग जग त्राता । सोइ त्रिज्ञान स्वरूप विधाता ॥
ताकहँ हम धारहिं हिय माहीं । कारन कवन जगत मनुसाहीं ॥
सो मम बुद्धि धर्म की ओरा । प्रेरहु नाथ जाय दुख मोरा ॥
यह गुरु मंत्र जगत के माहीं । बल बुधि दायक सकल पढ़ाहीं ॥
ईश उपासक सुतन बनावहिं । धर्म नीति कुल रीति सिखावहिं ॥
पुनि सिखलाय शौच की रीती । है मन्वादिक की जो नीती ॥
जल सों होत शुद्ध सब अङ्गा । होय शुद्ध मन सत्य प्रसङ्गा ॥

दो०--शुद्ध होत बुधि ज्ञान सों, तप सों आत्म पुनीत ।
याते सब जन प्रेम सों, मानहु मनु की नीत ॥६॥
बढ़ै ज्ञान यश कीर्ति जग, करै जो प्रणायाम ।
नशै अशुद्धी प्राण की, पावे सुख अभिराम ॥७॥

सो०--धातु सकल मल जाय, अग्नि तपावे यत्न करि ।
इन्द्रिन विषय नशाय, करै जो प्राणायाम नित ॥१॥

प्राणायाम करहिं सब जाती । ऋषिन बतायहु नाना भाँती ॥
प्रथम क्रिया यहि भाँति बताई । प्राणायाम सुरीति सोहाई ॥
बल करि प्राण निकारहिं बाहर । रोकहिं पुनि ताकहँ समरथ भर ॥
मूलेन्द्रिय को ऊपर खींचे । जौं लगि प्राण रहत हैं नीचे ॥
बाहर प्राण टिकै जेहि भाँती ! करै सो यत्न सकल मनुजाती ॥
पुनि वायू को भीतर लीजै । या विधि प्राणायाम करीजै ॥
मन में ओ३म् जपहु तेहि काला । रक्षक सदा जगत महिपाला ॥
हृदयाकाश धरहु प्रभु ध्याना । उपनिषदन जेहि भाँति बखाना ॥

दो०--सुखमय आसन बैठि कै, करिये प्राणायाम ।
सीध अंग तनु ढील करि, जपहु सदा प्रभु नाम ॥८॥

बुधजन एकहि बाह्य* बतावें । दूजो अभ्यन्तर † दर्शावें ॥
तीजो स्थित ‡ वृत्ति अलोपी । चौथा बाह्याभ्यन्तर × क्षेपी ॥
जबहीं प्राण वश्य हो जाई । मन इन्द्रिय स्वाधीन लखाई ॥
बुद्धि बढ़ै पुरुषार्थ अधिकतर । पहुँचे सूक्ष्म विषय के अन्तर ॥

---

* बाह्य—वेग से प्राणवायु को बाहर छोड़े जिस प्रकार वमन में बाहर निकलती है और बाहर रोक देवे उसी समय मूल इन्द्रिय और गुदा को ऊपर की ओर संकोचन करे तो इस अभ्यास से प्राण अधिक बाहर ठहरता है ।

† आभ्यन्तर—प्राणवायु को अन्दर अधिक रोका जावे । घबराहट होने पर सांस लेकर फिर भीतर ही रोकने का अभ्यास करे ।

‡ स्थितवृत्ति—श्वास को जहाँ का तहाँ एक दम रोक देवे और सामर्थ्य भर योग का अभ्यास करे ।

× बाह्याभ्यन्तरक्षेपी—श्वास भीतर जाती हो तो जाने से रोके और बाहर आती हो तो आने से रोकने का अभ्यास करे । इसी प्रकार प्राणायाम करते करते मन वश में हो जाता है ।

शारीरिक बल बढ़ै सदाई। वीर्य-वृद्धि होवै अधिकाई॥
ह्वै इन्द्रीजित सूक्ष्म काला। पढ़ै शास्त्र हो बुद्धि विशाला॥
यहिविधि पुरुष नारि द्वौ करहीं। योगाराधन में चित धरहीं॥
या विधि बालक सिखवै माता। भोजन छादन सुन्दर बाता॥
दो०--यथा योग्य व्यवहार को, सिखवै पितु अरु मात।
ऊँच नीच की रीति सब, अभिवादन की बात॥९॥
संध्योपासन बहुरि सिखावहिं। ब्रह्म यज्ञ ताकहँ बतलावहिं॥
प्रथम आचमन करैं विशेषी। मध्यस्थलि परिमाण अशेषी॥
जासों कंठ शुद्ध होइ जाई। कफ अरु पित्त दोष नशि जाई॥
बहुरि मारजन या विधि करई। अंगुलि मध्य अनामिक धरई॥
वाक आदि इन्द्री जो अहहीं। करि पावन आनन्द को लहहीं॥
अङ्गन ऊपर वारि गिरावै। आलस जाय सुःख उपजावै॥
प्राणायाम उक्त विधि करई। अघमर्षण को पुनि चित धरई॥
मानस परिकरमा जो अहई। उपस्थान की रीति सुहाई॥
ईश्वर स्तुति और उपासन। करैं निरन्तर मंगल दायन॥
दो०--विधिवत नितप्रति प्रेम सों, जा अरण्य के बीच।
सुखद तड़ाग नदी निकट, हिय सावित्री खींच॥१०॥
प्रथम यज्ञ संध्या नित करई। दूजो देव यज्ञ अनुसरई॥
अग्निहोत्र जा कहँ बुध कहईं। कीजै प्रात समय सुख लहईं॥
सोलह अंगुल कुंड खनावै। विधि सों चौरस वेदि बनावै॥
यज्ञ-पात्र सब राखहु भाई। रुचि सों होम करहु सुखदाई॥
काष्ठ सुचन्दन आम-पलासा। राखहु यज्ञ माहिं सुख आसा॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई। यज्ञ हवन सों कहा भलाई॥
कहत स्वामि सब सुनहु भुआला। बढ़ै सुगंध नशै दुख जाला।
तौ कह चन्दन माथ लगावे। सबको एक उपाय सिखावे॥
स्वामि कहत अस बात न भाई। चंदनादि नहियज समताई॥

दो०--भू-विद्या जो जानते, तो न कहत अस बात ।
सूक्षम ह्वै फैले महा, यज्ञ हवन की बात ॥११॥
सो०--रोग सकल नशि जात, हवन करे जो नेह करि ।
अरु दुरगंध नशात, ग्रहन करै सुख सम्पदा ॥२॥
करत प्रश्न यक ऋषि सों आई । और उक्ति दुर्गन्ध नसाई ॥
केसर कस्तूरी बहु भाँती । अतर फुलेल सुगन्धित जाती ॥
राखै तिनहिं भवन के माँहीं । तबहु सुगन्धित पवन लखाहीं ॥
तौ फिरि मंत्र पढ़ै केहि हेता । होम करै बिन मंत्र सचेता ॥
कहत स्वामि यह वैदिक रीती । करिये ताहि सकल करि प्रीती ॥
वेद पाठ होवे सुखदाई । वैदिक कर्म लखहु चित लाई ॥
जो तुम कहत पाप का होई । करै न होम नित्त नर जोई ॥
अवशि पाप होवे सब काहू । जो न करै जन यज्ञ उछाहू ॥
निशि दिन करै त्याग मल मूता । वायु बिगाड़े सकल सँजूता ॥
दो०--प्रात साँझ द्वौ काल में, करैं हवन सब कोय ।
षोडश आहुति नित करें, पति पत्नी युत दोय ॥१२॥
जब लगि रही होम की रीती । सुख पूरित हो अविचल नीती ॥
पंच यज्ञ नर-नारी हित सों । करैं सप्रेम सबल हो जनसों ॥
ब्रह्मचारी दो ही यग करहीं । सन्ध्या अग्निहोत्र उर धरहीं ॥
है अधिकार विप्र के माहीं । दें उपवीत बरण त्रय माँहीं ॥
क्षत्री दोउ कुल दे उपवीता । वैश्य स्वकुल दे करै पुनीता ॥
शूद्रसकल गुणशुभ कुलनीता । धरम निरत अधरम विपरीता ॥
तेहि उपवीत न दीजै भाई । मंत्र छांड़ि सब वेद पढ़ाई ॥
सुश्रुत आचारी यहि भाँती । लिखिनिजग्रन्थ माहिं कछुपाँती ॥
दो०--अवधि जो छुत्तिस बरस की, पढ़ै सो तीनों वेद ।
यक यक द्वादश वर्ष में, पढ़ै सकल तजि खेद ॥१३॥

उत्तम मध्यम अधम प्रकारा। तीनि भाँति ब्रह्मचर्य अचारा।।
अड़तालिस उत्तम व्रत जानौ। मध्यम छत्तिस लौं परिमानौ।।
चौबिस अधम निकृष्ट लखाई। ब्रह्मचर्य की रीति सुहाई।।
या विधि पितु अरु मातु सिखावे। निज निज सुत ब्रह्मचारि बनावे।।
प्रथम अवस्था विद्या देई। दूजे तप हित यतन करेई।।
तीजे निज सन्तति उपजावे। चौथे उपदेष्टा कहलावे।।
जो ब्रह्मचर्य करै चित लाई। आयु वृद्धि होवे सुखदाई।।
धर्म अर्थ कामादिक जेते। युक्ति सहित नर पावहिं तेते।।
दो०-चारि अवस्था देह की, वृद्धि सु योवन देख।
सम्पूरणता को लखहु, किंचित हानि विशेष।।१४।।
षोड़श वर्ष वृद्ध जग माना। पंचविंश यौवन परिमाना।।
चालिस सम्पूरणता मानो। ता पीछे कछु हानि बखानो।।
पुरुष पंचविंशति के माहीं। नारि जो षोड़श बरस सदाहीं।।
वीरज रज समानता जानो। वयस युवा या विधि पहिचानो।।
याही समय विवाह बिचारा। नारि पुरुष दोउ सुख संचारा।।
रोकब काम कठिन है भाई। वश न होत इन्द्री समुदाई।।
विद्यार्थिन के नेम सुनावहुँ। जो हैं करन योग बतलावहुँ।।
धारहिं सदा सुदृढ़ व्रत बालक। पावे सुख हो जन दुख घालक।।
दो०-विधिवत रहि आचार सों, पढ़ै पढ़ावै बाल।
सत विद्या अरु सत्य को, धारहि तीनों काल।।१५।।
धरम सहित तप करै निरंतर। पढ़ि सब वेद धरहिं उर अन्तर।।
दमन करैं इन्द्री निशि वासर। शमन होय मन हो बहु आदर।।
पंच यज्ञ हित सों नित भाई। विद्यारथी करैं सुखदाई।।
पालहिं प्रजा करैं व्यवहारू। देश हेत बहु करत विचारू।।
तदपि करैं स्वाध्याय नवीना। जासों होयँ न कतहुं अधीना।।
बिन यम नियम न होवे कतहूँ। नियम विना यम सधै न कबहूँ।।

ताते यम अरु नियम सदाही । करैं सुबुध जन प्रेम निबाही ॥
वैर त्याग अरु सत्य प्रसङ्गा । करै न चोरि रहै चहुं नङ्गा ॥
दो०-ब्रह्मचर्य व्रत धारई, अपरिग्रहा महान ।
पंच अंग यम के कहे, धारहि सकल जहान ॥१६॥
रहै पवित्र तोष बहु करई । नित अध्ययन माहिं चित धरई ॥
धर्म सहित तप करै निरंतर । ईश्वर ध्यान धरै उर अन्तर ॥
यहि ते जो न करै यम भाई । नियम न होत ताहि सुखदाई ॥
अति कामना और निष्कामा । द्वौ से पावत दुःख ललामा ॥
विन इच्छा नहिं होवे ज्ञाना । कर्म न बनत जो वेद बखाना ॥
नित प्रति पढ़ै पढ़ावै वेदा । ब्रह्मचर्य व्रत धरै अखेदा ॥
होम करै नित सत्य अचारा । त्यागहि झूठ असद व्यवहारा ॥
याज्ञिक बने वेद अनुकूला । सोइ ब्राह्मण तनु होत अमूला ॥
दो०-विषयन विच धावै सदा, इंद्रिय मन के साथ ।
करत चपलता बाजि जिमि, बाग सारथी हाथ ॥१७॥
जीव जबै इन्द्रिन बस होई । नित प्रति दोषित कर्म करोई ॥
जबहिं जीव इन्द्रिन अपनावे । सिद्धि होत अति सुख को पावे ॥
त्यागहिं यज्ञ वेद पथ जोई । दुष्टाचार करत नित सोई ॥
तिनसों उत्तम काम न होई । लहै न सिद्धि परम गति सोई ॥
पंच यज्ञ त्यागै ना कबहीं । या कहँ नित्य कर्म बुध कहहीं ॥
जो लगि श्वास चलत तन माहीं । तौ लगि कर्म करै जग माहीं ॥
जिमि जग धारै सत्य प्रसंगा । त्यागै झूठ स्वभाव कुसंगा ॥
या विधि निशदिन कर्मन पेखें । दिनचर्य्या को विधिवत देखें ॥
दो०-बुध सुशील विद्वान की, सेवा करत जो काउ ।
चारि पदारथ बढ़त हैं, विद्या, यश, बल, आयु ॥१८॥

छन्द—विद्वान त्यागहिं वैर को उपदेश नव नूतन करैं।
बोलें मधुर अरु सत्य वाणी धर्म की उन्नति करैं॥
मन वाक जाकी होंहिं पावन देश रक्षा चित धरैं।
सब भाँति सौं सो लहैं फल को 'इष्ट' भवसागर तरैं॥ १॥
विप्र सोइ जो वेदन ज्ञाता। परमेश्वर नित भजत सुहाता॥
निज स्तुति विषवत जो जानै। डरै सदा अपयश भय मानै॥
निज अपमान अमर पद माने। चहै सो निशि दिन विप्र सयाने॥
द्विज नित बनै वेद अनुगामी। करहिं सुयोग सदा शुभकामी॥
नाना भाँतिन योग सुरीती। ब्रह्म प्राप्ति हित करै सो रीती॥
करै जो श्रम वेदन हित नाहीं। भरमत भूलि अपर मग माहीं॥
जीवत ही सो शूद्र कहावै। विप्र भाव ताको नशि जावै॥
द्विजन केरि यह रीति बताई। करहु सदा जो चहहु भलाई॥
दो०--ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी, करहिं सदा आचार।
मद्य मांस अरुविषय सँग, त्यागैं परुष विचार॥१९॥
अरु श्रृङ्गार तजै सब कोई। इन्द्रिय गुप्त छुए नहिं सोई॥
काम क्रोध मद मोह लड़ाई। इर्षा द्वेष मोह डरपाई॥
शोक करन चिन्ता हिय राखन। पढ़न कुग्रंथ असत को भाषन॥
द्यूत कर्म जग निन्दा भाषन। नारि वश्य एकान्त सुद्दाशन॥
रहै एकान्त नेम व्रतधारी। नशै न वीर्य्य बनै ब्रह्मचारी॥
नशै वीर्य लघु वय के माहीं। पावै दुःख वंश नशि जाहीं॥
या विधि ब्रह्मचारी नित रहहीं। करहिं नेम व्रत दुख बहु सहहीं॥
गुरु पितु सदा सिखावहिं बालन। पड़ैं न कबहुं कोइ भ्रम जालन॥
गुरु उपदेश करहिं बहु भाँती। सुनहिं चित्त दै बटुकन पाँती॥
सदासत्य बोलै रहै कर्मचारी,
जो त्यागै प्रमादै बनै ब्रह्मचारी।
गहै सर्व विद्या गुरु के अधीना,
गृहस्थी बनै कर्म होवे नवीना॥

कभी सत्य औ धर्म त्यागै न कोई,
जो मत्थे विपत्ती पड़े आन गोई ॥
तजै नाहिं विद्वान विद्या सुप्रेमी,
बनै सर्वदा धर्म औ कर्म नेमी ॥
+सुरौ पितृ के कर्म में चित्त देई,
न ह्वै आलसी कर्म त्यागै भलेई ॥ २ ॥

दो०--मातु देव पितु देव हैं, और गुरू है देव ।
आज्ञा इनकी मानिकै, करिये हित सों सेव ॥२०॥
सो०--पलक उठावत नाहिं, विना कामना के जगत ।
सोइ कामना आहि, कर्म जो जन जग करत हैं ॥३॥

जो सद चरित होहिं पितु केरे । चलै सुबुध सुत हेतु घनेरे ॥
परम धर्म्म आचार प्रवीना । वेद-स्मृति ने जो कहि दीना ॥
ताते नित प्रति द्विज गन प्रेमी । धर्म्म चरित के बनहिं सुनेमी ॥
धर्म्माचार हीन द्विज जोई । फल पावै नहिं वैदिक सोई ॥
जो आचार करत द्विज नेमी । पावे फल सब सदगति प्रेमी ॥
जो जग नास्तिक वेद विहीना । ताहि बहिष्कृत करत प्रवीना ॥
विधिवत आचारी दिन राती । दै उपदेश सबन बहु भाँती ॥
राजा नियम बनावे एका । करहि सो प्रेम सहित धरि टेका ॥

दो०--श्रुति-स्मृति आचार सद, निज आतम प्रिय होय ।
चिह्न धर्म के चारि यह, करु धारण सब कोय ॥२१॥

अर्थ काम में रत नहिं होई । धर्म ज्ञान तेहि मिलत सँजोई ॥
क्षत्रिय सदा द्विजन के माहीं । विद्या रीति प्रचारत जाहीं ॥
विप्र केर व्यवसाय निरन्तर । विद्या धरै सकल उर अन्तर ॥
जीवन वृत्ति क्षत्रि आधीना । चलै विप्र सद पन्थ प्रवीना ॥

+सुर=औ-सुरौ ।

क्षत्रिय करै सकल जन रक्षा। पालहि प्रजा दिलावहि दिक्षा ।।
नित नव वैश्य वनिज व्यवहारू। शूद्र करहिं सेवा आचारू।
वरण सबै विद्यावित होही। क्षत्रिय करै निरीक्षण जोही ।।
जो कोउ चलै वेद पथ त्यागी। देहि दण्ड ताकहँ भय त्यागी ।।

दो०—क्षत्रिय हों विद्वान सब, देखहिं मार्ग पुनीत।
तौ फिर उनके सामुहे, होय न ढोंग प्रतीत ।।२२।।

राज कर्म विद्या वित रहेऊ। क्षत्रिय तबै राज पद लहेऊ ।।
जा दिन ते सब गये भुलाई। ता दिन ते यह गति भइ आई ।।
ब्राह्मण निडर भये जग माहीं। प्रकटि पंथ सब जग भरमाहीं ।।
ताते सुनहु हमारी बाता। निज निज कर्म करहु विख्याता ।।
जब सब वरण होहिं विद्वाना। तब न रहै पाखण्ड ज़माना ।।
याते सिद्ध भई यह बाता। क्षत्रिय नियम चलावत ताता ।।
ब्राह्मण संन्यासी जग माहीं। नियम बतावत परम सदाहीं ।।
सबही हैं क्षत्रिय आधीना। नियम चलावत पात्र प्रवीना ।।

दो०--विप्र क्षत्रि द्वौ जगत में, शक्ति समान लखात।
यक मस्तिष्क सम्हारई, यक शरीर सुखदात ।।२३।।

अब पुनि पढ़न रीति सुखदाई। तासु परीक्षा करहु सुहाई ।।
ताकी पांच रीति दरशाई। देखहु सुनहु करहु मनलाई ।।
ईश्वर के गुण कर्म स्वभावा। श्रुति अनुकूल सत्य पथ गावा ।।
यहि को जानि प्रथमपद† भजिये। तासु विरुद्ध असत मग तजिये ।।
दूजे सृष्टि कर्म अनुकूला। है विपरीत तासु प्रतिकूला ।।
तीजे जो विद्वान बतावें। आप्त ताहि सब ही बुध गावें ।।
चौथे जो निजात्म प्रिय होई। सुख दुख सबमें देखहु सोई ।।
पंचम अष्ट प्रमान बताई। तिन से देखहु चित्त लगाई ।।

---

† ईश्वर के गुन, कर्म, स्वभाव को प्रतिक्षण हृदय में राखै।

सो०--है प्रतत्त, अनुमान, संभव, अर्थापत्तियुत ।
ऐतिहेय, उपमान, शब्द, अभावहिं, के सहित ॥४॥
दो०--लत्तण ये प्रत्यत्त के, सुनहु सकल धरि ध्यान ।
इंद्रिय मन आतम विषे, होत प्रकट जो ज्ञान ॥२४॥

जो समान प्रत्यत्त के होई । अपर काल में देखहि सोई ॥
तब अनुमान होत दिन राती । देखहु वस्तु सबै बहु भाँती ॥
देखि धूम अग्नी अनुमाना । बिन अग्नी नहिं धूम प्रमाना ॥
देखि मेघ वर्षा बुध कहहीं । इमि अनुमान करत जग रहहीं ॥
साधन है प्रत्यत्त समाना । ताकहँ सब मानत उपमाना ॥
समता देत एक की एका । ताहि विचारत सुबुध अनेका ॥
शब्द प्रमान वेद के वचना । पूर्वज ऋषिन करी जो रचना ॥

दो०-प्रकट होत इतिहास सों, ऐतिहेय तेहि जान ।
चरित पुर्वजन के लखहु, कर्म सकल सुखदान ॥२५॥

कारन बिन कारज नहिं होई । अर्थापत्ती जानहु सोई ॥
बादल जिमि देखत जग धाई । वर्षा कारण मानत भाई ॥
प्रकृति आत्मा ईशानुकूला । सम्भव सोई होत समूला ॥
प्रकृति विरुद्ध असम्भव जानहु । ताकहँ सत्य कतहुं नहिं मानहु ॥
जिमि कोउ कहै मातु बिन पूता । मृतक जियावन देत सबूता ॥
अरु कोइ कहत पहाड़ उठाये । पत्थर सागर माहिं तराये ॥
कोऊ कहत रविहि मुख लीन्हों । कोउ कह चन्द्रद्वक करि दीन्हों ॥
ईश्वर जन्म लेत जग माहीं । यह कहि सकल जगत भरमाहीं ॥

सो०-सृष्टि कर्म प्रतिकूल, जो कछु देखहु सुनहु जग ।
बुध न होत अनुकूल, ताहि असम्भव मानिकै ॥ ५ ॥
दो०-संभव ताकहँ कहत है, जो प्रकृती अनुकूल ।

सदा चलै बुध पंथ यह, करै न कतहूँ भूल ॥२६॥
जो न होय निज थान पै, जानहु ताहि अभाव ।
सत अरु असत विचार को, कहत प्रमान स्वभाव ॥२७॥
सो०-गुन अरु कर्म स्वभाव, धर्माधर्म विचारिये ।
जानहु द्रव्य प्रभाव, शास्त्र रीति यह जग विदित ॥६॥
दो०-गगन वायु अरु तेज जल, भूमि काल दिशि मान ।
और आत्मा मन सहित, इष्ट द्रव्य नव जान ॥२८॥

मन, वायू, भूमी अरु वारी । तेज, आत्मा, षष्ठ विचारी ॥
है यह क्रिया सहित गुणवाले । द्रव्यकेर गुण लखहु निराले ॥
गगनकालदिशि द्रव्य जो अहहीं । ते बिन क्रिया सदा गुन रहहीं ॥
शब्द अकाश केर गुन एका । सुनत श्रवन ताकहँ धरि टेका ॥
शब्द स्पर्श वायु के माहीं । स्वगुण एक स्पर्श लखाहीं ॥
शब्द स्पर्श रूप युत होई । ताकहँ तेज कहत सब कोई ॥
तेज अंग निज है परकाशा । देखत नेत्र सकल तजि आशा ॥
जल में शीतलता गुन बसई । जिह्वा सों जो रस जन चखई ॥
शब्द स्पर्श रूप रस चारी । बारि माहिं यह रहत सम्हारी ॥

दो०-शब्द स्पर्श रूप रस, गन्ध भूमि के माहिं ।
निज गुण केवल गन्ध है, लखत नासिका जाहिं ॥२६॥

क्षणिक निमेष कालगति जानौ । होय न नित्य अनित्य प्रमानौ ॥
पूरब पच्छिम दक्षिन देखहु । उत्तर ऊपर नीचे पेखहु ॥
चारहु कोण चारि दिशि जानहु । याविधि दशहु दिशा पहिचानहु ॥
है सो दिशा विलोकहु जाई । प्रात सूर्य सम्मुख है भाई ॥
उदय भानु प्राची दिशि जानौ । अस्त काल पच्छिम पहिचानौ ॥
दाहिन अङ्ग सुदक्षिन भाई । लखहु सु उत्तर बाम सदाई ॥

पूरब दक्षिण कोण निहारहु । कहि अग्नेय ताहि उच्चारहु ॥
दक्षिण पच्छिम कोण जो भाई । कहि नैऋत्य सकल समुझाई ॥
दो०--पच्छिम उत्तरकी दिशा, है वायव्य सुजान ।
उत्तर पूरब मध्य को, जानहु कोण इशान ॥३०॥
या विधि दिशा कही शुभ नीता । सुनहु आतमा अङ्ग पुनीता ॥
इच्छा द्वेष प्रयत्न सुज्ञाना । सुख दुख आतमलिङ्ग बखाना ॥
दर्शन न्याय कहत यहि भाँती । लिखत सुवैशेषिक कछु पांती ॥
प्राण अपान निमेषन्मेषा । जीवन मन गति इन्द्रि विशेषा ॥
क्षुधा तृषा ज्वर पीड़ा सुखदुख । इच्छा द्वेष प्रियतनन उत्सुख ॥
यक क्षण गहहि वस्तु द्वौ नीके । ताकहँ मन मानहु जग जीके ॥
या विधि द्रव्य सरूप कह्यो सुनि । ज्ञान न कहत ताहि कोउबुधगुनि ॥
सुनहु द्रव्य गुन आगे भाई । चौबिस * की संख्या दरशाई ॥
दो०--रूप अरु, गन्ध, स्पर्श, रस, संख्या, प्रथक, संयोग ।
पर, अरुअपर, विभाग, दुख, परिणामहु सुख भोग ३१॥

---

* १—नेत्र से जिसका ग्रहन हो (रूप) २—नासिका से जिसका ग्रहन हो (गन्ध) ३—त्वचा से जिसका ग्रहन हो (स्पर्श) ४—जिह्वा से जिसका ग्रहन हो (रस) ५—जो गिनती से जाना जाय (संख्या) ६—जिसका अलग होना (पृथक्) ७—जिसका मिलाप (संयोग) ८—इससे यह पर है (पर) ९—इससे अन्य (अपर) १०—जिससे टुकड़े हो सके (विभाग) ११—दुःख जिससे हल्का भारी विदित हो (परिमाण) १२—सुख १३—बुद्धि १४—द्वेष १५—इच्छा १६—कोमलता हो (द्रवताई) १७—जिससे भारीपन (गुरुत्व) १९—अनेक प्रकार का पुरुषार्थ (प्रयत्न) २०—न्यायाचरण (धर्म) २१—अन्यायाचरण (अधर्म) २२—प्रीति और चिकनापन (स्नेह) २३—दूसरे योग से वासना का होना (संस्कार) २४—जो श्रोत्र व बुद्धि से ग्रहन हो (शब्द) यह २४ द्रव्य गुण हैं ।

बुद्धि, द्वेष, इच्छा, द्रवताई, । गुरुत, प्रयत्न, धर्म, चिकनाई, ।।
संस्कार, अधरम, अरुबानी । हैं सब द्रव्य केर गुण खानी ।।
गुण केहि कहत सुनहु चितलाई । जो जग द्रव्य सहारे भाई ।।
औरौ कोई गुन ना धारै । नहिं संयोग वियोग सम्हारै ।।
अरु साधर्म विधर्म बताई । कारण कार्य केर निपुणाई ।।
बिना कार्य कारन नहिं भाई । बिन कारन कारजहू नाई ।।
या विधि द्रव्य सरूप बखाना । परखहुजड़ चेतन परिमाना ।।
सद अरु असद बिचारहु भाई । लक्षण परखहु चित्त लगाई ।।
दो०--उत्पेक्षण अवक्षेपण, आकुंचन को जान ।
गमन प्रसारण कर्म ये, वैशेषिक परमान ।।३२।।
ऊपर को चेष्टा जो करई । उत्पेक्षण ताकहँ उर धरई ।।
अरु नीचे को लेइ निहारी । अवक्षेपण तेहि कहत उचारी ।।
अरु संकोचन करहि बनाई । आकुंचन तेहि कह गोहराई ।।
है फैलावन की जो रीती । ताहि प्रसारण कहत सप्रीती ।।
गमनागमन भ्रमन जो करई । गमन नाम कहि के उरधरई ।।
द्रव्य केर गुन कारज मन्या । कारण द्रव्य कर्म सामन्या ।।
हैं सामान्य विशेष लखाई । कार्य कारण द्रव्य जो भाई ।।
बुधि बिचार सों जानहु ताई । कार्य कारण की निपुणाई ।।
दो०--पशु ते मनुष विशेष है, व्यक्ति माहिं सामान्य ।
तिमि विशेष ब्राह्मण लखहु अन्य सकल सामान्य ।।३३
निज व्यक्ती सामान्य सब, अन्य से अन्य विशेष ।
नित्य जौन सम्बन्ध है, कह समवाय अशेष ।।३४।।
गुन अरु द्रव्य अरम्भै करमा । तेहि जाती फल कह साधरमा ।।
जिमि भूमी में है जड़ताई । अरु घटादि कारज उपजाई ।।
तैसेहि जड़ता जल के माहीं । उपजत तिमि कारज दर्शाहीं ।।
भूमि और जल धर्म समाना । गुण विरुद्ध वैधर्म लखाना ।।

भूमि कठिनता शुष्क महाना। गन्धयुक्त गुण प्रकटत नाना ॥
अरु जल में है बहु द्रवताई। कोमलता रस गुण दर्शाई ॥
कारन तेही कारज होवै। कारज बिन कारन नहिं खोवै ॥
कार्य कबहुँ कारन बिन नाहीं। होत न कबहूँ सो दर्शाहीं ॥
दो०—जिमि कारण में गुण रहत, तैसेहि कारज माहिं।
द्वैविधि को परिमाण है, अणु[1] अरु महत[2] लखाहिं ।३५॥
भावरूप सामान्य[3] लखाई। पाँच प्रकार अभाव[4] बताई ॥
संस्कार अरु इन्द्रिय दोषा। उत्पति होत अविद्या दोषा ॥
जो विपरीत दुष्ट है ज्ञाना। ताहि अविद्या करत प्रमाना ॥
जो है परम यथारथ ज्ञाना। बुधजन विद्या ताहि बखाना ॥
पृथिवि आदि जो कार्य सरूपा। गन्ध स्पर्श जो रस गुण रूपा ॥
यह सब द्रव्य अनित्य लखाहीं। तैसेहि गुण सब ही दर्शाहीं ॥

१—छोटे से छोटा कण। २—पहाड़।

३—जो सबके साथ अनुवर्तमान होने से सत्तारूप भाव है सो महासामान्य कहाता है।

४—१. क्रिया और गुण के विशेष निमित्त के अभाव से पूर्व न था। जैसे घर वस्त्रादिक उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे, इसका नाम “प्रागभाव” है।

२. जो होके न रहे जैसे घर उत्पन्न होके नष्ट हो जाय वह “प्रध्वंसाभाव”।

३. जो होवे और न होवे जैसे घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं। घोड़े में गाय का अभाव, गाय में घोड़े का, यह “अन्योन्याभाव” है।

४—जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है, उसको “अत्यन्ताभाव” कहते हैं जैसे मनुष्य का सींग, आकाश-पुष्प।

५—घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है। घर के साथ घड़े का सम्बन्ध नहीं है, यह “सम्बन्धाभाव” है।

विद्यमान जो है जगमाहीं। कारन तासु न कोइ लखाहीं ॥
वह है नित्य सदा सब भाँती। कारन कार्य अनित्य सोहाती ॥
दो०--गुन अरु कर्म स्वभाव को, जानहु या विधि भाय।
पढ़न पढ़ावन की विधी, सुनहु जो है सुखदाय ॥३६॥
वरण उचारन की विधी, सिखवै पितु अरु मातु।
जो अक्षर जेहि भाँति के, शब्द क्रिया अरु धातु ॥३७॥
चित लगाइ के नेह सों, पढ़ै पढ़ावै कोय।
अल्प काल में वह पुरुष, विद्यावित जग होय ॥३८॥
सो०--वरष सु द्वादश मांहि, वेद पढ़ै बहु यत्न करि।
बिना वेद सुख नाहिं, मनुज न पावै लोक में ॥ ७ ॥

पाणिनी मुनी की निर्धारी बरण शिक्षा कांहि,
एकही समास में प्रयत्न ते पढ़ावैंगे।
अष्टाध्याई केर पाठ शुद्ध पदच्छेद युत,
एक ही बरष मांहि छात्रन बतावैंगे ॥
धातु पाठ दशहू लकारन के रूप घने,
साथ साथ दशहू क्रियान को सधावैंगे।
लिङ्ग अनुशासन उणादिगण पाठ भले,
प्रत्यय सुबन्त षट मास में सिखावैंगे ॥ १ ॥
शंका समाधान संस्कृत माहिं भाषण जो,
अव्यय उत्सर्ग औ समास भी पढ़ावैंगे।
आठ ही महीने माहिं अष्टाध्याई पाठ काहिं,
करके समाप्त पुनि आवृत्ती करावैंगे ॥
ता पाछे महाभाष्य मुनिवर पतंजलि की,
सहित गण पाठ षट मास में सिखावैंगे।
शिक्षा-व्याकरण की संपूरण योग्यता को,
चारही बरस इस काम में लगावैंगे ॥ २ ॥

यास्क मुनि की निघण्टु और जो निरुक्त दोऊ,
कोष कात्यायनादि उनको बतावैंगे ।
डेढ़ सालही में वाच्य वाचक सम्बन्धहू को,
योगिक औ योगरूढ़ि भेद को बतावैंगे ॥
तीन ही महीना माहिं पिंगल के नियम जानि,
काव्य-रचना को तीन मास में सिखावैंगे ।
एक बरस भर में साहित्य औ सिद्धान्त ग्रंथ,
जोतिष बीज अंकगणित को करावैंगे ॥ ३ ॥

या विधि वेदांग ग्रंथ चार ही महीना माँहिं,
पूरित अध्यापक ब्रह्मचारिन करावैंगे ।
दो ही वर्ष माहिं दर्शनउपनिषद् पाढ़ि,
सूत्र ग्रंथ ब्राह्मण सकल उर धारैंगे ॥
शेष दो बरष माहिं पढ़िकै सु एक वेद,
बारह बरष माहिं पण्डित कहावैंगे ।
करि पुरुषारथ प्रयत्न करि आठों याम,
वेदन को पढ़ि सब देशन सुधारैंगे ॥ ४ ॥

तजि आधुनिक ग्रन्थ समुदाई । पढ़हु आर्ष ग्रंथन सुखदाई ॥
पढ़हु व्याकरण हित हों भाई । पाणिनि मुनि की रीति सुहाई ॥
नूतन ग्रन्थ पढ़ै जो कोई । बहुत समय में कुछ फल होई ॥
स्वार्थिन निज हित ग्रन्थ बनाये । ऋषिन नाम धरि जग भरमाये ॥
यासें भई देश की हानी । तजि श्रुति पंथ भये अज्ञानी ॥
अब यह सुनहु प्रेम सों ताता । त्यागि पक्ष हम कहत सुबाता ॥
त्यागि नवीन पंथ सब भाई । वैदिक पंथ गहहु सुखदाई ॥
वैदिक पथ शुभ कामन दाता । याते प्राप्त होत जग-त्राता ॥

दो०--पुरुष एक बोलत भयो, सुनहु देव ऋषिराज ।
का पुराण इतिहास सब, नाहिं सुधारत काज ॥३६॥

मानत हैं हम सत्य सुबानी । जो कोउ ग्रन्थ पुरान कहानी ॥
है यह व्यास कथा विख्याता । मानत जिन्हैं वेद-पथ ज्ञाता ॥
पुनि कहि झूठ सत्य बतरावहु । भ्रम जेहि जाय विभेद सुनावहु ॥
कहत जो जन इतिहास पुराना । वेदन में केहि भाँति बखाना ॥
कह्यो स्वामि सुनिये चितलाई । अब हम कहत विभेद बताई ॥
सतपथ ब्राह्मण में यहि भाँती । लिख्यो से ऐतरेय बहुपाँती ॥
कल्प पुरान और इतिहासा । गाथा नाराशंसी भासा ॥
पंच- नाम श्रुति कहत पुराना । नाम भागवत तिन नहिं माना ॥
दो०--सत्य लिख्यो जेहि ग्रंथ में, हम मानत सब भाँति ।
धर्म वेद अनुकूल है, ग्रहण करहिं सब जाति ॥४०॥
पर जो सत्य झूठ युत होई । त्याग करै ताकहँ सब कोई ॥
सुनहु बेद मारग मन लाई । वैदिक धरम परम निपुणाई ॥
जो विरोध शास्त्रन बिच माहीं । ताकहँ तुम समुझत कछु नाहीं ॥
दरशन शास्त्र परख के हेता । ताको जानहिं परम सचेता ॥
जिमि विद्या बहुतक जगमाहीं । निज निज भांति कार्य्य दर्शाहीं ॥
तेहिविधि दर्शन शास्त्रन माहीं । लिख्यो ऋषिन निजमन अनुसाहीं ॥
कारन कार्य्य जगत की रचना । मीमांसा में अस ऋषिवरना ॥
वैशेषिक में काल बखाना । जो है समय गती जग जाना ॥
दो०--उपादान कारण कह्यो, न्याय बीच मुनिराज ।
योग कहत पुरुषार्थ को, सांख्य तत्व उपराज ॥४१॥
है बेदान्त ईश गुन ज्ञाना । रच्यो ऋषिन इमि विविध विधाना ॥
जो विधि वैद्यक शास्त्र बखानत । रोगनिदान चिकित्सा जानत ॥
तेहि विधि षट ऋषियनयहि भाँती । लिख्यो सो निज अनुभवसुखराती ॥
औरहु सृष्टि भेद निपुणाई । कहिहौं बहुरि तुमहिं समुझाई ॥
है अध्ययन समय जो भाई । तामहँ विघ्न तजहु मन लाई ॥
दुष्ट संग अरु विषयन प्रीती । सेवन मद्य दुखद जी रीती ॥
वेश्या गमन द्यूत व्यवहारा । बाल-बिवाह निषिद्ध अचारा ॥

दो०--मातु पिता अरु नृपति जग, बुधमंडली जो आहि ।
वेद शास्त्र परचार में, करत प्रेम जो नाहिं ॥४२॥
त्यागन करै प्रेम सों भाई । पावै सुख सब दुख नशि जाई ॥
बाल-अवस्था करहिं जो व्याहा । त्यागि देहिं ब्रह्मचर्य अथाहा ॥
अति भोजन अति ही जागरना । विद्याध्ययन में आलस करना ॥
लाभ न समुझत विद्या माँहीं । कपट करैं त्यागहिं मनमाँहीं ॥
राज श्री बल बुधि औ रोगा । ब्रह्मचर्य्य के जे उपभोगा ॥
तिनहिं न मानत जे नर भाई । ईश त्यागि जड़ मूर्ति पुजाई ॥
खोवहिं व्यर्थ समय जग माहीं । दर्शन पूजन व्यर्थ सदाहीं ॥
जो गुरु मातु पिता विद्वाना । अतिथि जे हैं जग मूर्ति समाना ॥
तिन कर सङ्ग न सेवा करहीं । धर्म त्यागि अधरम अनुसरहीं ॥
दो० -माला तिलक त्रिपुण्डको, मानहिं मुक्ती धाम ।
एकादशी त्रयोदशी, करत सो ब्रत निज काम ॥४३॥
पाप छोड़ावन रीति सँचारी । राम कृष्ण जग नाम उचारी ॥
काशी जाकर गङ्ग नहावें । अस विश्वास पाप नशि जावें ॥
वेद उपनिषद कथा को त्यागत । नाना भाँति पुरान बखानत ॥
लोभी या जग भरमन करहीं । विद्या त्यागि अविद्या धरहीं ॥
जब से भये वेद प्रतिकूला । प्राप्त भयो अज्ञान समूला ॥
निज पथ प्रकटि जगत भरमावें । स्वार्थ सधै सोइ रीति सिखावें ॥
नष्ट करहिं सबके तन मन धन । तिनके जाल फँसहिं जे सद जन ॥
दिन प्रति शोच करत याहि भाँती । हो विद्वान न कोऊ जाती ॥
दो०--होवे जो विद्वान जग, फँसे न सो भ्रमजाल ।
दुष्टन को अपमान हो, सत्य बढ़ै तिहुँकाल ॥४६॥
पंडित एक कहत यहि भाँती । वेद पढ़त कहुँ अन्त्यज जाती ।।
देखहु वेदन केर प्रमाना । तिरिया शूद्र न पढ़न बखाना ॥

कहत स्वामि तुमही जग माहीं। रचि श्रुति वाक्य जगत भरमाहीं॥
है अधिकार जगत के माहीं। वेद पढ़ैं सब जन हरषाहीं॥
कह्यो ज्ञान होवे कल्याना। मनुजनहित वरन्योकरि ध्याना॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य समाना। शूद्र नारि अरु दास बखाना॥
सब कोइ पढ़हिं वेद की बानी। चलहिं सुवैदिक पंथ असानी॥
जाके वाणी बुद्धि विराजै। पढ़न हेत अधिकार समाजै॥
दो०--ब्रह्मचर्य व्रत युक्त हो, अरु विद्वान सु योग।
कन्या युवती व्रती ह्वै, करहि पती सुख भोग॥४५।
पंडित कहत बहुरि यहि भाँती। वेद पढ़ति कहुं नारी जाती॥
स्वामी कहत बहुरि समुझाई। वेदन की अस रीति सोहाई॥
एक बात हम पूछत भाई। हमहिं बतावहु सो समुझाई॥
यज्ञ विषे बहु स्थल माहीं। नारि पढ़ैं यह मन्त्र सदाहीं॥
जो न नारि हो वेदन ज्ञाता। तौ कस यज्ञ करहिं सुख दाता॥
जो न पढ़ै जग नारि सदाई। तौ कस पुत्रन देत पढ़ाई॥
बहुतक नारि भईं जग माहीं। गार्गी लीलावति अनुसाहीं॥
घर के कार्य्य सकल बनि जाहीं। जो घर नारी पढ़त सदाहीं॥
दो०--आर्य्यवर्त्त के देश में, राज-पुरुष की नारि।
धनुर्वेद-विद्या निपुण, युद्ध कार्य सुख-सारि॥४६॥
कैकेइ आदि युद्ध में देखौ। गईं साथ नृप दशरथ पेखौ॥
या विधि क्षत्रिय विप्र सुनारी। पढ़हिं सकल विद्या सुखसारी॥
वैश्या पढ़हि सकल व्यवहारू। शूद्रा पाकादिक आचारू॥
अरु सेवा विधि शूद्रा पढ़ई। जासों उचित कार्य्य सब करई॥
पुरुष व्याकरन धर्म सुहाई। अरु व्यवहार सकल निपुणाई॥
वैद्यक धर्म्म गणित व्याकरना। शिलपकला पाकादिक वरना॥
सब विधि सिखै प्रबंधक रीती। जासों चलै स्वकुल की नीती॥
गृह परिवार सकल के माहीं। चलै सुरीति दुःख नशि जाहीं॥

दो०--सासु ससुर जेहि भांति सों, पावें सुःख महान।
हित सों यत्न करै सोई, जेहि होवे सनमान ॥४७॥

सो०--दान सकल जग माहिं, अन्न गऊ जल वस्त्र तिल।
केवल विद्या आहि, दान दिये बहु बढ़त है ॥८॥

सुनि ऋषि कथा सरल मृदुबानी। गये सकल अवगुन अपमानी॥
सत्य दृढ़ाय असत्य छोड़ावहिं। धर्म्म-राह पर सज्जन चलावहिं॥
महा पखण्डी जे जग माहीं। सुनि यह कथा सुधरितेउ जाहीं॥
जो जग दुराचार कोउ करई। समुझत कथा ज्ञान उर धरई॥
अवगुन रहै न तन कोइ भाई। जो कोइ चलत सुपंथ दृढ़ाई॥
वेद रीति पथ स्वामि सिखायहु। तापर चलत परम सुख पायहु॥
जो कोइ बाल वृद्ध अरु नारी। सुधरहिं यहां जगत हितकारी॥
यातें प्रेम सहित निशि वासर। सुनहु कथा आनन्द उजागर॥

सो०--प्रेम सहित जो नेह करि, पढ़ैं कथा मन लाय।
होवे सब विद्वान जग, मूढ़ अविद्या जाय ॥९॥

सत्य-सागर तृतीय तरङ्ग स० प्र० ३ स० समाप्तम्

चतुर्थ तरङ्ग (स० प्र० ४ स०)

सो०--जानि परम हित मोर, बेगि बतावहु कृपा करि ।
मैं विनवौं कर जोरि, जेहि न पड़ौं भ्रमजाल में ।।१।।
अस कहि गुरु बोल्यो हर्षाई । सुनहु प्रेम युत चित्त लगाई ।।
एक दिन दयानन्द ऋषिराई । बैठे सहित समाज बनाई ।।
कहन लगे कछु कथा पुरानी । सुनहि सप्रेम सो पण्डित ज्ञानी ।।
देवदत्त एक शिष्य अनूपा । विद्या निपुण सील गुण रूपा ।।
बोल्यो नाथ बतावहु मोहीं । केहि बिधि गृहस्थाश्रम सवदोहीं ।।
ब्रह्मचारी कब करहिं विवाहू । त्यागहिं-गुरुकुल सहित उछाहू ।।
कह्यो स्वामि हे शिष्य प्रवीना । पूछेहु कारज सकल नवीना ।।
सुनहु कान दै कहहुं बुझाई । वेद शास्त्र की रीति सुहाई ।।
दो०--विधिवत रहि अचार्य कुल, पढ़ै वेद करि धर्म ।
बनि ब्रह्मचारि व्रती ह्वै, जानि लेहि सब मर्म ।।१।।
जाति स्वभाव धर्म्म निपुणाई । गुरु पितु मातु करै सेवकाई ।।
गुरुहिं देय गोदान सम्हारी । करि सतकार जगत हितकारी ।।
जो शुभ लक्षण अरु विद्वाना । कन्यादान करहिं गुनवाना ।।
अनुमति गुरु सनातक लेहीं । करन विवाह मांहि चित देहीं ।।
पिता गोत्र अरु मातु सपिण्डी । त्यागहिं ब्याह सकलबल खंडी ।।
दुहितननिकट न करहिं विवाहू । नेह न होय, होय उर दाहू ।।
परोक्ष वस्तु सों बढ़ैं सुप्रीती । नहिं प्रत्यक्ष होत मन दीठी ।।
बिन चाखे गुन सुनि ललचाई । प्राप्त होन हित करहिं उपाई ।।
सो०--निकट ब्याह के दोष, सकल सुनाऊँ नेह करि ।
प्रेम न होत विशेष, जाने पर गुन दोष के ।। २।।
दो०--एक संग के रहन से, जानहि सकल सुभाउ ।
प्रेम लड़ाई दोष गुन, करत रहत चित चाउ ।।२।।

एक गोत्र में करहिं विवाहू। उन्नति होय न रहै उछाहू ॥
यक रस मिले न गुन अधिकाई। जिमि मिलि वारिवारि गुन भाई ॥
बिलग गोत्रसों गुन अधिकाई। जिमि सुंठी दूधहिं मिलि जाई ॥
पुत्र पुत्रि यदि रोगी होई। मिटै सो रोग तजे गृह सोई ॥
यदि सम्बन्ध निकट होइ जाई। दुख सुख नित्त सासुहें आई ॥
दूर न होय दुःख लवलेशा। होवे निश-दिन प्रेम विशेषा ॥
याही से दुहिता जग गाई। होत दूर हित दुहितन भाई ॥
निकट घमण्ड होत पितु केरा। निन्दा अधिक विरोध घनेरा ॥
दो०—गौ अरु हाथी अश्व युत, अरु होवें धनवान।
जो दश कुल आगे कहत, लेहु न कन्यादान ॥३॥
जा घर क्रियावान नहिं कोई। वेद पाठि सत पुरुष न होई ॥
जाके तन पर लोभ विशाला। स्वेत कुष्ठ युत गलित कराला ॥
अर्श छुई दम खांसी रोगा। आमाशय मिरगी संयोगा ॥
ये दुर्गुन युत कुल जो होई। करै विवाह मिलहि तेहिं सोई ॥
पीले वर्ण न अंग अधिकाई। अधिक बली नहिं रोगिनि भाई ॥
ना बिन लोम न लोमधिकाई। बकै न बहुत न नेत्र भुराई ॥
नाम न होय नखत नद केरे। पर्वत पक्षी पेड़ घनेरे ॥
सर्प दासिनी भीषन नामनि। करै विवाह चहै सुख धामनि ॥
सो०—सरल सुसीधे अंग, हंस ठवनि गजगामिनी।
लोम केश मृदु दंत, जानि विवाहै नारि शुभ ॥ ३ ॥
दो०—बनावंत की सकल विधि, नाथ सुनायहु मोहिं।
पुनि विवाह के समय को, बेगि बतावहु जोहि ॥४॥
कह तब स्वामि सुनहु चित लाई। है विवाह की रीति सुहाई ॥
कन्या जब सोलह की होई। करैं विवाह सकल गुन जोही ॥
बहु ब्रत नेम करै जब कन्या। चाहै वर चौबिस में धन्या ॥
या विधि पच्चिस औ अड़तालिस। निष्ठोत्तम अरु मध्यम चालिस ॥

ब्रह्मचर्य्य युत करहिं विवाहू । लहहिं सकल गुन सहित उछाहू ॥
तव यक पंडित कहत सुनाई । बात तुम्हारि हमैं न सुहाई ॥
यद्यपि तुम बरणी बहु रीती । देखि प्रथा नहिं होत प्रतीती ॥
वर्ष आठ लौं गौरी जानो । नव के होत रोहिनी मानो ॥
दसहीं वर्ष लोग अस कहहीं । कन्या होत सबै गुन लहहीं ॥
लगत एकादश ऋतुवति होई । माता पिता न देखै कोई ॥

दो०--जेष्ठ भ्रात अरु मात पितु, देखत ऋतुवति बाल ।
जाहिं नर्क यह कह्यो गुनि, काशिनाथ निजकाल ॥५॥

ताही को जग मानत नीके । संशय रहित भावते जीके ॥
यह जो कछु तुम कह्यो सुनाई । मानन योग न हमहिं लखाई ॥
तब बोले ऋषिवर हर्षाई । सुनहु शिष्य कछु चित्त लगाई ॥
हमहुँ सुनावहिं ब्रह्म पुराना । निर्मित आज भई जग जाना ॥
इक क्षण गौरी संज्ञा होई । द्विक्षण रोहिणि मानहु सोई ॥
तिसरे क्षण या कन्या जानहुँ । ता पीछे ऋतुवति अनुमानहुँ ॥
माता पिता सु भगिनी मामा । देखत बाल नरक अभिठामा ॥
क्षण होवे परमाण समाना । कन्या जन्म समय यह माना ॥
स्वामिवैन सुनिचित अकुलाई । बोल्यो पुनरपि शीश नवाई ॥

दो०--नहिं प्रमाण श्लोक यह, जानि असंभव सार ।
कह्यो स्वामि बतलाइये, तुम्हरे में कह सार ॥६॥

पारासर अरु काशीनाथा । गायो इन बहु जोतिष गाथा ॥
तुम इनकी नहिं मानहु बाता । कारन कहा कहहु जग त्राता ॥
बोले स्वामि बहुरि मुसकाई । मानन योग बात यह नाई ॥
सद्यो निर्मित ब्रह्म पुराना । तुमने ताहि असम्भव माना ॥
ताते सुनहु सकल चित लाई । वेद मार्ग पर प्रीति दृढ़ाई ॥
जेहि विधि काशीनाथ सु पंडित । रचत भयो पारासर मंडित ॥

तेहि विधि हम हूँ तुम्हरे हेता। ब्रह्मपुरान बनाइ सचेता॥
यह उत्तम प्रसङ्ग नहिं दोऊ। जानि विरुद्ध तजै सब कोऊ॥

दो०--पंचविंश में पुरुष के, षोड़श नारि प्रमान।
सम रज वीरज होत है, यह वैद्यक अभिमान॥७॥
षोड़श से जो न्यून में, नारि चहै औधान।
पुरुष पंचविंशति बिना, करै जो गर्भाधान॥८॥

सो०--चिरजीवी नहिं सोय, पुत्र जनै यदि कहुँ त्रिया।
निर्बल रोगी होय, जीवे तो बल अधिक नहिं॥४॥

यह जग नियम सृष्टि क्रम भाई। देखहु सुनहु विचार दृढ़ाई॥
अष्ट वर्ष में जनहि न बाला। यह नहिं सृष्टि नियम शुभकाला॥
याको कहत मनू यहि भाँती। सुनहु पढ़हु करि शीतल छाती॥
जब हीं ऋतुवति कन्या होई। तीन बरस तक बीतै सोई॥
निज अनुकूल नारिपति जोवै। करहि विवाह सकल सुख होवै॥
छत्तिस रज दर्शन यहि भाँती। बीते नारि होय सुख माती॥
यह है समय विवाह प्रवीना। याही को उत्तम जग चीन्हा॥
उत्तम कर्म्म स्वभाव निहारी। करहिं विवाह सकल गुनकारी॥

दो०--रहैं कुमारे आयु भर, पुत्र पुत्रि जग माह।
विरुध कर्म कर्ण में कतहुँ, करै न "इष्ट" विवाह॥६॥

पुनि बोल्यो यक शिष्य प्रवीना। कन्या मातु पिता आधीना॥
है विवाह पितु मातु अधीना। अथवा वर कन्या निज चीन्हा॥
स्वामी उत्तर दियो विचारी। वर कन्या अनुमति सुखकारी॥
जो पितु मातु करैं सुत ब्याहू। बिन सुत अनुमति सधै न काहू॥
यदि प्रसन्न दोनों गृह माहीं। होय बिरोध कतहुँ कोउ नाहीं॥
अरु सुत उत्तम होय प्रबीना। बल बुधि विद्या अर्थ नवीना॥
बिन प्रसन्नता करैं विवाहू। होय कलेश अधिक उर दाहू॥
है विवाह वर कन्या काजू। मात पिता कर नाहिं समाजू॥

दो०--तिय पति सों है नेह जहँ, पति तिय सों अति नेह।
तेहि कुल में सुख होय अति, बसै सिद्धि सब गेह ॥१०॥

छंद—उत्तम सु शिक्षा ब्रह्मचर्य, पवीत धारण करत जो।
विद्या ग्रहण करि जीति इंद्रिन, शुभ भवन पग धरत सो।
तबहीं द्विजन्म प्रसिद्धि होकर, मंगल श्री लहत जो।
विज्ञान ध्यानायुक्त विद्या, वृद्धि धीरज युक्त हो॥ १॥
विद्वान् वाही को प्रतिष्ठित, शील उन्नत जानहीं।
बनि कै युवा शुभ बस्त्र धारै, ताहि पण्डित मानहीं।
ब्रह्मचर्य बिन विद्या सुशिक्षा, बाल त्रिय जग ब्याहहीं।
बिदुषन बिषे नहिं होत आदर, नसत कुल निश्चय सही॥ २॥

जब विवाह की इच्छा होई। विद्या विनय शील बल जोई॥
रूप आयु कुल सबल शरीरा। यथायोग्य परिमाण गँभीरा॥
जौ लगि मेल न होत दृढ़ाई। तौ लगि सुख नहिं परत लखाई॥
जो सुख चहै जगत नर नारी। बाल विवाह न करै विचारी॥
अर्थ विवाह न जानहि जौ लगि। रहैं कुमार प्रेम सौंतौ लगि॥
धेनु समान नारि बुध कहहीं। दुहि न काहु वह उत्तम अहहीं॥
बालापना बीति जब गयऊ। सब ब्यौहार करन युत भयऊ॥
है सुकुमार अवस्था नाहीं। पूरन वय युत शिक्षा माहीं॥

दो०--ब्रह्मचर्य विद्या विनय, पूरण युवती नारि।
तरुण पती सँग चहै जग, गर्भ लहै निरधारि ॥११॥

पूरन युवा अधिक सुखकारी। नारि हेतु बहु काल सुखारी॥
मिलहि परस्पर प्रेम दृढ़ाई। रहैं बरस शत लौं सुख पाई॥
अधिक विषय सोंबल क्षति होई। ताते नियम गहहु सब कोई॥
जब तक रही वेद की रीती। सुख पायहु रहि अविचल नीती॥
त्यागि वेद विधि नर दुख पावहिं। विद्या विमुख कुब्याह रचावहिं॥
बाल भये पितु मातु अधीना। करहिं छोट बड़ब्याह नवीना॥

जा दिन ते मति गति भइ भोरी। बँध्यो देश हरिवर की डोरी॥
अबहूँ समुझि बिचारहु नीके। दुर्गुण सकल निकारहु जीके॥

दो०--गुण अरु कर्म स्वभाव को, करि विचार जग माह।
वर्ण व्यवस्था आयुबल, समता में करु ब्याह॥१२॥

देवदत्त अस पूछत भयऊ। बिन ब्राह्मण ब्राह्मण कोउ भयऊ॥
स्वामि कह्यो बहुतक जगमाहीं। भये ऋषीश्वर मानत जाहीं॥
बिन जाने कुल ऋषि जाबाला। छान्दोग्य उपनिषद हवाला॥
विश्वामित्र सुक्षत्री अहहीं। अरु मतङ्ग चण्डाल कहाहीं॥
दोनों ब्राह्मण भये तेहि अवसर। लिख्यों महाभारत करि आदर॥
जो विद्या गुणशील स्वभावा। ब्राह्मण योग्य होत तेहि भावा॥
जो अति मूरख दुखद अनारी। ताकहँ शूद्र कहत नर नारी॥
तबहीं बोलि उठ्यो यक पण्डित। अपनी बात बताय अखण्डित॥
तुम्हरी जगत अनोखी रीती। बीज स्वभाव न मानहु नीती॥

दो०-रज वीरज के योग से, ब्राह्मण तन नहिं होय।
स्वामि कहत मनु के बचन, पण्डित सुनिये सोय॥१३॥

पढ़न पढ़ावन करत विचारा। नाना भाँतिन होम सँचारा॥
नित्य हवन पक्षेष्टि सुहाई। पौरणमास इष्टि सुखदाई॥
सम्वत श्रेष्टी औ नव श्रेष्टी। करहि सकल विधि नाना इष्टी॥
बेद पढ़हिं स्वर अर्थ समेता। अनुष्ठान युत कर्मनिकेता॥
धर्म सहित सन्तति उपराजे। महा यज्ञ करि आसन साजें॥
सत्य बचन सज्जन कर सङ्गा। पर उपकार सुकर्म अभङ्गा॥
सबविधि शिल्प क्रिया पढ़ि लेहीं। दुष्टाचार त्यागि जग देहीं॥
करैं सदा आचार प्रबीना। तब ब्राह्मण तनु होत नवीना॥

दो०-मानत जो यह मनु वचन, पुनि क्यों करत विवाद।
वेद पुरातन जग विदित, है मनु की मर्य्याद॥१४॥

तुम पुरान मानहु कछु पीढ़ी । द्वै अरु चार सात दश सीढ़ी ॥
हम तो कहत सनातन ताहीं । वेद शास्त्र जो रीति बताहीं ॥
मानहिं यदि तुम्हार अनुमाना । लागै दोष होत अपमाना ॥
कहुँ पितु श्रेष्ठ पुत्र दुखदाई । कहुँ सुत श्रेष्ठ पिता कदराई ॥
कहुँ दोनों दुष्टातम जानो । दोनों कहुं अति श्रेष्ठ बखानो ॥
याते सब भ्रम छोड़हु ताता । मानहु सकल मनू की बाता ॥
जेहि मग चलै पिता सतभाऊ । पुत्र सोइ लखि करै सुभाऊ ॥
यदि कोइ पिता दुष्ट मगु जाई । चलै पुत्र स्वइ पन्थ बिहाई ॥

दो०-धर्म पुरुष के मार्ग में, चलत दुःख नहिं होय ।
मानत जो यहि भाव को, वेगि बतावहु सोय ॥१५॥

बहुरि सनातन रीति बतावहुँ । जेहि भ्रम जाय सो बात सुनावहुँ ॥
वेद विदित ईश्वर परकासा । ताहि सनातन कहत हुलासा ॥
वेद विरुद्ध कर्म जो अहई । तिनहि सनातन कोउ न कहई ॥
जाके जिय विरुद्ध सतिभाऊ । तेहि पूछहु तुम सहज सुभाऊ ॥
जाकर पिता दरिद्री होई । सुत सम्पति युत होवै सोई ॥
पितु अभिमान देइ धन फेंकी । पितु दारिद सुत चहै न नेकी ॥
जाकर पितु अन्धा जग होई । फोड़ै आँख कतहुँ सुत कोई ॥
जाकर पिता कुकर्मी होई । करै कुकर्म कहा सुत सोई ॥

दो०-ताते जग यह विदित है, त्यागै दुष्ट स्वभाव ।
अति उत्तम गुन गहै नर, देखि उचित सब ठाँव ॥१६॥

यदि जग उचित बीज निपुणाई । तौ काहे बनि जात इसाई ॥
त्यागि देत सब निजनिज जाती । नाहिं बिठावत आपनि पाँती ॥
याते भई सिद्ध यह बाता । गुनते ऊँच नीच बरियाता ॥
यजुर्वेद इकतिस अध्यावा । मंत्र एकादश माहिं सुनावा ॥
अथ न संगति लागै भाई । वेगि विचारहु चित्त दृढ़ाई ॥
हे प्रभु निराकार सुखदाई । इन्द्रिय रहित सुवेद बताई ॥

ताकहँ तुम यहि भांति बखानहु । ब्राह्मण मुख उरु वैश्यहु मानहु ॥
सुनहु ध्यान दै चित्त लगाई । मंत्र अर्थ हम कहत सुनाई ॥

दो०--निराकार व्यापक जगत, परमातम जग जान ।
तासु अंग होवे नहीं, है यह वेद प्रमान ॥१७॥

जाके नख शिख अंग विशाला । सो न होय व्यापक तिहुँकाला ॥
नहिं वह शक्तिवान जग स्रजता । नहिं सर्वज्ञ न परलय करता ॥
नहिं दै सकै मनुज फल भाई । करै जो पाप पुन्य मनुसाई ॥
मंत्र अर्थ सुनिये चित लाई । ब्राह्मणस्य मुखभास सुहाई ॥

छंद–है ईश्वर व्यापक सृष्टि विषे, मुख सदृश उत्तम विप्र लखाई ।
बाहु समान सु बीरजवान, बली बल संयुत क्षत्रि जनाई ॥
देश विदेश फिरै उरु के बल, जानै पदारथ वैश्य सुहाई ।
जो पग के सम अंग कहावत, शूद्र गुनो जोन हों बुधभाई ॥३॥

उत्तम गुन अरु कर्म सुभाऊ । विद्या निपुण नीति सतिभाऊ ॥
श्रेष्ठ विप्र स्वइ मनुज समूहा । जिमि निजअंग बीच एक मूहा ॥
निराकार प्रभु वेद बखानत । ताके मुख केहि विधि सों मानत ॥

सो०--गुन अरु कर्म स्वभाव, होंय द्विजाती के सदृश ।
द्विज होवे सतिभाव, यदपि शूद्र कुल में उपज ॥ ५ ॥

दो०--होवें द्विज यहि भांति सों, शूद्र कर्म करि शूद्र ।
गती करम की जग विदित, करै सो भोगे क्षिप्र ॥१८॥

यह जग विदित मनू की नीती । आपस्तम्ब की सुनिये रीती ॥
करहिं नीच उत्तम आचरणा । पावहिं उत्तम जाति सुवरणा ॥
उच्च चलैं जो नीच सुभाऊ । घृणित वरण पावैं सतिभाऊ ॥
जा विधि पुरुष कथा मैं बरनी । नारितासु विधिजानहु करनी ॥
याते सिद्धि भई यह वाता । निज निज कर्म करिहि सतराता ॥
जगत न निन्दित कोउ लखाई । संकर वरन रीति उठि जाई ॥

पूछत भयो शिष्य हर्षाई । मोहिं समुझाइ कहहु ऋषिराई ॥
जाके गृह सुत एक प्रवीना । पायहु त्यहि सद् बरन नवीना ॥
भयहु प्रविष्ट अन्य गृह माहीं । ताके मात पिता कहँ जाहीं ॥
भंग मातु पितु सेवा होई । तेहि निर्वंश कहै सब कोई ॥

दो०--स्वामि कह्यो हे शिष्य सुनु, होय न वंशविच्छेद ।
भंग न सेवा होवई, वैदिक रीति अभेद ॥१९॥

ता नर के गुन कर्म स्वभाऊ । मिलहिपुत्र तेहि सहित उछाहू ॥
शासन राज-सभा को जोई । करि नहिं सकै उलंघन कोई ॥
या विधि गुन अरु कर्म विचारी । करहिं विवाह सकल नर-नारी ॥
सुनहु सुनावहिं इनकी करनी । जाविधि मनु कृष्णादिक बरनी ॥
बनि अध्यापक जगत पढ़ावहिं । पढ़ै आप बहुसुख उपजावहिं ॥
नित प्रति यज्ञकरहिं सतिभाऊ । यज्ञ करावहिं सहज स्वभाऊ ॥
देहिं दान उत्तम गुन जानी । लेहिं दान ब्राह्मण हित मानी ॥
ये षट कर्म विप्र के अहहीं । करै सदा या विधि मनु कहहीं ॥

दो०--ज्ञान शौच सम दम तप, शांति नम्रता सात ।
आस्तिकता विज्ञानता, ब्रह्म कर्म विख्यात ॥२०॥

कहत कृष्ण नवगुन यहि भांती । उपज स्वभाव होत दिन राती ॥
अति कोमल चित सरल सुहाई । कुटिल दोष जो त्यागत भाई ॥
जेहि नर को यहि भाँति स्वभाऊ । सो प्रसिद्धि ज्ञानी सदभाऊ ॥
जो नर दयावान जग माहीं । क्षमावान जानहिं बुध ताहीं ॥
जल सों शुद्ध होत सब अंगा । होत शुद्ध मन सत्य प्रसङ्गा ॥
करै प्रीति विद्या तप माहीं । आतम तासु पुनीत लखाहीं ॥
बुद्धि ज्ञान ते पावन होई । या विधि शौच कहत मनु गोई ॥
दुराचार सों इन्द्रिन रोकै । ज्ञान अनल बिच औगुन झोंकै ॥
ताहि कहत दम सकल प्रवीना । जानहु तप आचरन नवीना ॥

दो०--निंदास्तुति सुख दुःख में, हर्ष शोक नहिं होय।
हानि लाभ शीतोष्ण बिच, दुःख करै नहिं कोय ॥२१॥

लखहु ताहि शान्ती की खानी। धर्म धुरन्धर सुन्दर बानी ॥
सरल स्वभाव सु कोमलताई। निर अभिमान सकल निपुणाई ॥
कुटिल दोष त्यागहिं जग माहीं। आर्जव गुन तामहँ सुखदाई ॥
ईश्वर वेद धरम सत सङ्गा। सेवा मातु पिता गुरु अङ्गा ॥
करै न निन्दा जग काहू की। आस्तिक सत्य टेक है जाकी ॥
सकल पदारथ जानहु नीके। जड़ चेतन सब उपज जमीं के ॥
चेतन बुद्धि सदा थिर रहई। जड़ में चेतन बुद्धि न अहई ॥
सोइ विज्ञानवन्त जग माहीं। करि विचार देखहु मन माहीं ॥

दो०--यज्ञ करन विद्या पढ़न, प्रजा पालिबो दान।
विषयन में आसक्त नहिं, क्षत्रि स्वभाव प्रमान ॥२२॥

भय न होय शत सहस समूहा। भिरहिं अकेल सूर बनि जूहा ॥
दीन बचन मुख से नहिं बोलैं। तेजवन्त तनु बचन अडोलैं ॥
होवैं धैर्यवान अधिकाई। राजनीति महँ अति निपुणाई ॥
रहै निसंक सदा रण माहीं। पाछिल पाँव धरत जो नाहीं ॥
करत विजय हित नाना रीती। जीतन शत्रु करत बहु नीती ॥
दान शील द्वौ भूषन नीके। दुष्ट स्वभाव निकारहिं जीके ॥
सबसों यथा योग्य दिन राती। रहित पक्ष बरतै बहु भाँती ॥
ये क्षत्रिन गुन सहज स्वभाऊ। कह्यो वरण विधि सब मुनिराऊ ॥
अरु जग वैश्य कर्म सुनि लेहू। पावहिं सब मिलि सहित सनेहू ॥

दो०--दान करै विद्या पढ़ै, पालै पशू निदान।
करै यज्ञ वाणिज्य पुनि, कृषी कर्म सुखदान ॥२३॥

तजि अभिमान ईर्षा निन्दा। करहि शूद्र सेवा यक धन्दा ॥
यह संक्षेप रीति सों भाई। वरण कर्म गुन तुमहिं सुनाई ॥

जा कह जो अधिकार सुहाई। दीजै ताहि सकल मिलि भाई ॥
उच्च वरण जासों भय करिहैं। शूद्र होन के भय सो डरिहैं ॥
या डर बालक चलहिं सु चाली। पढ़ैं वेद अरु तजैं कुचाली ॥
नीच बरन अति होत उछाऊ। कर्म करै फल पावै चाऊ ॥
विद्या धर्म प्रचार पुनीता। दीजै विप्रन जानि सुनीता ॥
क्षत्रिय सदा राज अधिकारी। करहिं सङ्गठन प्रेम विचारी ॥
काम वनिज वैश्यहिं सुखदाई। करहिं सदा बहु प्रीति दृढ़ाई ॥
दो०--शूद्र मूर्ख विद्या रहित, दीजै नहिं अधिकार।
सेवा ही यक धर्म है, देखहु सहित विचार ॥२४॥
बहुरि सकल शुभ रीति विवाहू। कहत स्वामि अति परम उछाहू ॥
ब्रह्म दैव अरु आर्ष विवाहू। प्रजापत्य आसुर सतिभाऊ ॥
पुनि गन्धर्व राक्षसी जानौ। अष्टम अधम पिशाच बखानौ ॥
धर्म कर्म विधिवत हैं जोई। कन्या वर समानता होई ॥
तात परस्पर करहिं विवाहू। ब्रह्म विवाह कहत सब काहू ॥
यज्ञ बिषे जो ऋत्विज अहई। करत यज्ञ नित आनँद लहई ॥
भूषन सहित सुकन्या देही। दैव विवाह कर्म लखु एही ॥
वर सों लेत द्रव्य जो कोई। आर्ष विवाह बतावहिं सोई ॥
लेन देन दोउ निन्दित आँहीं। ताते त्यागहु याहि सदाहीं ॥
दै दहेज़ जो करत विवाहू। देत कुटुम्बिन को धन काहू ॥
आसुर ताहि कहत मुनि गाई। है यह निन्दनीय अति भाई ॥
दो०--नियम रहित कुसमय कतहुँ, नारि पुरुष सतसंग।
ताहि कहत गंधर्व जग, करै सो सद ब्रत भंग ॥२५॥
छल अरु कपट करै बहु भाँती। नारि हेत निश्चर की जाती ॥
सोवत नारि सङ्ग जो करहीं। ते पैशाच सदा उच्चरहीं ॥
इन में उत्तम ब्रह्म विवाहू। मध्यम दैव बतावहिं जाहू ॥
आर्ष असुर गन्धर्व निकृष्टा। अरुपिशाचराक्षस अति भ्रष्टा ॥

याते सकल विचारहु रीती । विन विवाह होवे नहिं प्रीती ॥
नर अरु नारि एकान्त जो रहहीं । सकल कवी जन दूषित कहहीं ॥
जबहि विवाह समय नगिचावे । एक वर्ष एहि भाँति वितावे ॥
वर अरु कन्या चित्र खिंचाई । पठवहु ताहि दोऊ ढिग भाई ॥

सो०--पठवहु कन्या चित्र, अध्यापक कुल के निकट ।
दीजै चित्र पवित्र, याही विधि अध्यापिकन ॥६॥

जन्म चरित्र सकल वय केरे । मांगहिं गुरुहित सहित घनेरे ॥
पुनि देखै गुन कर्म स्वभाऊ । कह्यो सकल जो पाछिल भाऊ ॥
या विधि निश्चय होत विवाहू । करै मातु पितु सहित उछाहू ॥
मिलिहिं परस्पर वर अरु कन्या । शास्त्र विवाद करहिं अति धन्या ॥
पूछन योग गुप्त कोउ बाता । पूछहिं लेखबद्ध सतराता ॥
पुनि ऋतुकाल समय जब आवै । कुण्ड खोदि मण्डप सजवावै ॥
पुनि विवाह की विधि जो वरनी । संसकार विधि है हित करनी ॥
अर्ध निशा लौं करहिं विवाहू । पाणि-ग्रहन विधि सहित उछाहू ॥

दो०--राति पाछिली में अवशि, करै सो गर्भाधान ।
शुभ विचार हिय राखई, होय बली सन्तान ॥२६॥

गर्भाधान रीति सुखदाई । करै सो नारि पुरुष चित लाई ॥
ता पीछे दोउ करि असनाना । दूध पियें जो कह्यो विधाना ॥
सोंठिइलायचि असगँध केसरि । शालममिसिरी सहित दूधकरि ॥
दोनों प्रेम सहित करि पाना । सोवैं प्रथक प्रथक धरि ध्याना ॥
चतुर नारि जानै तेहि काला[1] । जानहिं एक मास सब वाला ॥
गर्भ रहे ऋतुवति नहिं होई । यह पहिंचान कहत सब कोई ॥

१—श्रवित होय रज वीर्य नहिं उरु जकड़ै श्रम होय ।
चित ग्लानि अरु प्यासवहु—योनि स्फुरित होय ॥
—गृह दीपक

जबहीं गर्भ क्रिया चित धरहीं। तबहिं प्रेम युत यह विधि करहीं॥
निश्चय गर्भ नारि के होई। त्यागहि एक बरस रति सोई॥
दो०–याते हो बलवान सुत, पुनरपि बारहिं वार।
नारि पुरुष सँग को तजै, करत रहै आचार॥२७॥
जो न करै यह विधि सुखदाई। घटै आयु बीरज नशि जाई॥
होवें रोग अनेकन भाँती। रसै वाम संग जो दिन राती॥
सुन्दर भाषन अरु व्यवहारू। अवशि प्रेम चाहिय अधिकारू॥
पुरूष करै बीरज की रक्षा। लहै गर्भ हित नारि सुदिक्षा॥
गर्भ माहिं आचार प्रवीना। जासों पुत्र बलिष्ठ नवीना॥
चौथे मास पुंसवन करई। नारि विशेष ध्यान उर धरई॥
अति विशेष है अष्ट महीना। करि सीमन्त कर्म गुन चीन्हा॥
रेचक मादक रुक्ष अहारू। बुधि बल नासक जो व्यवहारू॥
त्यागहिं नारि परम हित मानी। गर्भ माहिं जो अवगुन खानी॥
दो०–चावल गेहूँ दूध घृत, मूँग उर्द जे अन्न।
देश-काल को ध्यान धरि, सदा खाय हविषान्न॥२८॥
बीते गर्भ काल बहु भाँती। आयो प्रसव काल सुखमाती॥
बालक जन्म भयो जेहि ठामा। सकल मनावत सुकृत ललामा॥
शीतउष्ण जल मिश्रित करकै। बाल न्हिलाय उपटनो करिकै॥
चतुर धाय तेहि क्षण बुलवाई। छेदन नाल तुरत करवाई॥
अंगुल चारि नाभि के ऊपर। बांधै सूत नाल में कसकर॥
तेज धार की छूरी लेवै। काटै नाल परम विधि सेवै॥
जाति कर्म की विधि जेहि भाँती। करै गृहस्थ परम सुखमाती॥
लिखै ओ३म् बालक की जीहा। कहै कर्ण वेदोसि अजीहा॥
दो०–पुनरपि युवती होन हित, यत्न करै सोइ नारि।
शिशुपालन की नेक विधि, धारै चित सुकुमारि॥२९॥

संस्कार विधि के अनुसारा । नाम करन आदिक संस्कारा ॥
प्रेम सहित सो करै सदाई । जा विधि वेद रीति चलि आई ॥
बहुरि नारि ऋतुवति जब होई । गर्भाधान करै सुख सोई ॥
ऋतु अनुकूल पुरुष रति करहीं । अरु निज नारि प्रेम उर धरहीं ॥
तिनहिं सकल ब्रह्मचारी कहहीं । बसि आश्रम शुभकीरतिलहहीं ॥
नारि पुरुष सों करै सुप्रीती । पुरुष नारि हित चहै सुरीती ॥
जा कुल दोउ प्रसन्न बहु भाँती । तहँ कल्यान होत दिन राती ॥
जो न नारि पति आदर करई । सुत न प्राप्त होवे दुख भरई ॥

दो०—जाकुल नारी लहै सुख, बढ़ै सो कुल बहु भांति ।
दुखित नारि के होतही, घटै तुरत वह जाति ॥३०॥
पितु भ्राता पति देवरहु, पूजनीय जहँ नारि ।
कुल भूषन कल्यान युत, प्राप्त होय सुख भारि ॥३१॥

सवै०—पूजित हैं जहँ नारि सदा, तहँ आइ बसैं देव सुभाऊ ।
नारि निरादर होत जहाँ, तहँ जाय क्रिया अरु आवै कुभाऊ ।
पुत्रिन शोच जहाँ निशिवासर, सो कुल नाशत है सतिभाऊ ।
"इष्ट"सुबालन शोच दुरावहु, जाते बढ़ै कुल आदर भाऊ ॥४॥

नित प्रति नारि करै सतकारू । प्रेम सहित मिलि करै जुहारू ॥
नारि प्रसन्न रहै गृह माहीं । दक्ष कार्य्य गृह चतुर कहाहीं ॥
संसकार उत्तम मन रहई । लघु वय में बालक तेहि लहई ॥
दासी दास सकल गृह केरे । निज चातुरता राखै चेरे ॥
गृह व्यय नारि सँभारहि नीके । त्यागि कुभाव सकल निज जीके ॥
सुनहु शिष्य यह बात अनूपा । रतनन में स्त्री धन रूपा ॥
रतन सकल अरु उत्तम नारी । विद्या सत्य शुद्धता भारी ॥
नीक बचन अरु शिल्प कलाको । धारै नर पावे जहहीं सों ॥
बोलै सत्य सहित प्रिय होई । अप्रिय सत्य न बोलै कोई ॥

दो०--यद्यपि प्रिय बोलै सदा, झूठ न होवै बात ।
धर्म सनातन रीति यह, तुम्हहिं सुनावहुँ तात ॥३२॥

बोलै बचन सदा हितकारी । रूख बैर नहिं करै विचारी ॥
बिन अपराध विवाद न करई । पर हित मौन न हिय बिच धरई ॥
ते दुर्लभ जन हैं जग माहीं । जस होवै तस बरनत जाहीं ॥
जो नर चहै बुद्धि धन बृद्धी । शास्त्र पढ़ै जेहि होय समृद्धी ॥
जिमि जिमि होय शास्त्र परिज्ञाना । बढ़ै ज्ञान बहु पावहिं मना ॥
पंच [illegible] निशि वासर करईं । त्यागै कबहुं न यह उर धरई ॥
ऋषि यजदेव यज्ञ सति भाऊ । भूत यज्ञ नृयज्ञ सुभाऊ ॥
पितृयज्ञ नित करत सप्रीती । यथा शक्ति नहिं त्यागहिं रीती ॥
अध्यापन ऋषियज्ञ कहाई । पितृयज्ञ तर्पन सुखदाई ॥

दो०--भूत यज्ञ बलि वैश्व है, हवन देव यज जान ।
अरु अतिथी सतकार को, 'इष्ट' नृयज्ञ प्रमान ॥३३॥

गृहपति साँझ समय यज्ञ करहीं । प्रातकाल लौं सो सुख भरहीं ॥
प्रात करै नित हवन सप्रीती । रहे साँझ लगि अग्नि सुनीती ॥
ताते मिलहि दिवस निशि जबई । संध्योपासन करिये तबई ॥
जौ लगि भानु उदय नहिं होई । नित प्रति बनै उपासक सोई ॥
प्रात काल पूरब दिशि जाई । साँझ सु पच्छिम देखै भाई ॥
साँझ प्रात संध्या नहिं करई । द्विजगण त्यागि देत तेहि त्वणई ॥
शूद्र समान अहै सो भाई । जो न करै नित कर्म सुहाई ॥
तबहीं शिष्य यक बोलत भयऊ । नाथ एक सन्देह न गयऊ ॥
तीन काल संध्या का हानी । सुनत स्वामि बोल्यो इमि बानी ॥

दो०--तीनकाल संध्या नहीं, सुनहु शिष्य धरि ध्यान ।
बिछुरन मिलन प्रकाशतम, यह है सन्धि प्रमान ॥३४॥

काल तीन इमि सब जग जाना। भूत भविष्यत अरु वर्तमाना॥
बीत गयो जो पाछिल काला। मानत ताहि भूत नर बाला॥
बहुरि जो आगे आवे भाई। कहत भविष्यत तेहि जगगाई॥
जो प्रत्यत्त कार्य जग होई। तेहि वर्तमान कहत सब कोई॥
काल गती यहि भाँति बताई। देखहु निशि-दिन नीति दृढ़ाई॥
जो तुम कहत हानि का यामें। तीनि काल स्तुति संध्या में॥
तौ हम कहत सुनहु चित लाई। अर्ध रात्रि औ प्रति पल भाई॥
बनहु उपास्य नेम करि भाई। पर संध्या द्वै काल सदाई॥
दो०—पित्र-यज्ञ को प्रेम सों, करैं सकल मन लाय।
तर्पन श्राद्ध अनेक विधि, पितु सेवा चित लाय॥३५॥
श्रुति को सत्य कहत मुनि लोगू। सत्य युक्त जो कारज भोगू॥
ताही को श्रद्धा मुनि गाई। करहिं प्रेम सों श्राद्ध बताई॥
तरपन है सत्कार प्रवीना। सेवा जीवित कर्म नवीना॥
जो विद्वान जगत के माहीं। तृप्त करहु सब बिधि तिनकाहीं॥
ऋतु, पितु, चन्द्र, औषधी जानो। तर्पन हित शुभदेव बखानौ॥
जीवित ही पितु सेवा करिये। यहयक नियम हृदय बिचधरिये॥
मृत्यु भये कछु मिलत न भाई। केवल एक नाम रहि जाई॥
ताते प्रेम सहित निशि वासर। करहु सदा वृद्धन को आदर॥
दो०—मरीच्यादि ऋषि को सदा, सहित नारि सुत भ्रात।
पितृ नाम तरपन करो, जो जग हैं सुखदात॥३६॥

छन्द—सोमसद, अरु अग्निश्वात्ता, सोमपा, को जानिये।
अरु हविर्भुज, आज्यपा, बर्हिषदः, पहिचानिये।
हैं यमादिक, पितु, पितामह, "इष्ट" मित्र, प्रमानिये।
वृद्धप्पितामह, मातु, मातरु, जगतहित सुखदानिये॥५॥
सम्बन्धि, और सगोत्र, सारे, नारि निज अपनाइये।
हों बृद्ध बुधवर जो अवनि पर, नेह सों चित लाइये।

बहुभाँति आदर दीजिये, सब भाँति सों सुखदानिये ।
निज "इष्ट" इच्छा हेत नितप्रति तृप्त करि सुख पाइये ।।६।।

जो परमातम की गति जानत । अरु पदार्थ विद्या पहिचानत ॥
पित्र सोमसद जानहिं ताही । हरषि तृप्त कीजै तिन काही ॥
जो विद्युत विद्या जग जानहिं । अग्नीश्वात पित्र बुध मानहिं ॥
विद्या बुद्धि युक्त व्यवहारी । पित्र वर्हिषद देखु सम्हारी ॥
रक्षा करत सदा सब केरी । पियत सु औषध सोम घनेरी ॥
ताकहँ पित्र सोमपा जानहुँ । याबिधि "इष्ट" सकलपहिचानहुँ ॥
मादक द्रव्य त्याग जो करहीं । अरु हिंसा में नहिं चित धरहीं ॥
बनहिं सदाहविषान्न के भोजी । सोइ हविर्भुज है बहु योजी ।।

दो०-जग पदार्थ ज्ञातव्य जो, जानि धरै उर माँहि ।
पान करे घृत दुग्ध को, तेइ आज्यपा आंहि ।।३७।।

सदा काल की गति जो जानत । दुष्टन दण्ड सुजन हित मानत ॥
करै न्याय नित नीति विचारी । सोई यम जानहु सुखकारी ॥
जननि सुत अन्न वस्त्र हितकरई । सो पितु सुत शिक्षा उर धरई ॥
पितु के पिता पितामह जानो । तापितु वृद्ध पिता पहिचानौ ॥
या विधि मातृ पक्ष जग जानत । पित्र सकल यहि भांति बखानत ॥
इनहिं तृप्त कीजै बहु भाँती । जासों सुख उपजै दिन राती ॥
श्रद्धा सहित करत हित भाई । प्रीति सहित तर्पन सुखदाई ॥
तर्पन श्राद्ध पितृ यज्ञ अंगा । करत सदा धरि नेम अभंगा ॥

दो०-श्रदा भक्ती सों सदा, करैं मातु पितु नेह ।
जीवत ही सब भोग को, भोगै सहित सनेह ।।३८।।
पितु सेवा की जगत से, उठी रीति तेहि काल ।
मृतक श्राद्ध जब से चल्यो, घृथा जगत जंजाल ।।३९।।

पितु के जीवित प्रेम सों, देय न पानी बाल।
मरे पिता पर सकल जन, खूब उलीचत ताल ॥४०॥
पितृ यज्ञ की रीति बताई। सुनिये वैश्वदेव चित लाई॥
जो कछु पाक भवन में होई। वैश्वदेव हित धरै सँजोई॥
मिष्ट अन्न की आहुति देवे। दुखद कीटनशि अतिसुख होवे॥
अरु कुछ भाग अलग करिलेहीं। वली कर्म जन करत सनेही॥
पापी स्वपच पतित अरु स्वाना। वायस कीर क्षुद्र जन नाना॥
देहि इनहिं कछु कौर सप्रीती। वैश्वदेव बलि कर्मन रीती॥
जाकी तिथी न निश्चित होई। ताकहँ अतिथि कहत सब कोई॥
धर्मवान उपदेशक साँचो। नितप्रति मन उपकारहिं राँचो॥

दो०--ब्रह्मचारी अरु वनी को, अरु संन्यासिहु मान।
येही अतिथि कहावहीं, इनहि न भुलिये जान ॥४१॥

वेद विरुद्ध कर्म जो करहीं। झूठ बोलि जग उदर सों भरहीं॥
करहिं पखण्ड रूप बहु धरहीं। जग बैडाल वृत्ति शठ करहीं॥
इन सौं बात न पूछै कोई। करै न कछु सतकार सँजोई॥
पंच यज्ञ का यह फल भाई। सुनिये सब कोउ चित्त लगाई॥
करहिं जो ब्रह्म यज्ञ सुखदाई। पावैं शुभ गुन कर्म सदाई॥
जे नित अग्नि-होत्र को करहीं। ते जग अशुध वायु को हरहीं॥
जल अरु वायु शुद्ध सब भाँती। होम यज्ञ कीन्हें सुख माती॥
पितु यज्ञ मातु पिता आदरहीं। जीवित सेवा जे नित करहीं॥
पंच यज्ञ की विधि जो वरनी। है सो सकल जनन हित करनी॥

दो०--ब्रह्म मुहूरत के समय, उठै सो मानव जाति।
धर्म लालसा जासु हिय, यत्न करै बहुभाँति ॥४२॥

ता नर केसव दुख नसि जाहीं। श्रद्धा होय वेद के माहीं॥
पिछले भाग निशा के माहीं। चारि घड़ी जब शेष रहाहीं॥

सोई ब्रह्म मुहूरत जानौ। ता महँ ईश भजन नित ठानौ॥
करहिं न कतहुं अधर्म अचारा। निश्चय फल भोगै विस्तारा॥
करत कर्म फल तुरत न होई। ताते डरत रहत जन सोई॥
बढ़त बढ़त जब पूरन होई। तब नशि जात पाप सों सोई॥
त्यागहिं धर्म अधर्म चलावहिं। कपट पखण्ड झूठ सिखलावहिं॥
अरु यह चहैं होय कल्याना। करैं निरन्तर सो विधि नाना॥
दो०—पर यह जानत बात सब, जो अधर्म बढ़ि जाय।
सहित मूल सब नशत इमि, मूल कटे तरु जाय॥४३॥
जो वेदोक्त सत्य है कर्मा। आर्य्य जगत को है सो धर्मा॥
दै उपदेश शिष्य कहँ सोई। बढ़ै निरन्तर बुधिवर होई॥
ऋत्विज प्रोहित औ आचारी। मामा अतिथि वैद्य सुखकारी॥
आश्रित बालवृद्ध दुख पीड़ित। अरु निज बान्धवमातु ससुर हित॥
भ्राता पिता सुभगिनी नारी। पुत्री अरु सेवक अति प्यारी॥
इनसों कबहुँ विवाद न करई। कलह विरोध हिये नहिं धरई॥
सत्य रहित अनपढ़ जे आहीं। धर्मी ह्वै लें दान सदाहीं॥
दोनों पत्थर तरणि समाना। दुख सागर बिच डूबत नाना॥
दो०--इनहिं दान जे देवहीं, सो दाता नसि जात।
जन्म दूसरे में अवशि, मँगता सुःख बिलात॥४४॥
पाहन नाव चढ़त जो धाई। डूबत अवशि बिलम्ब न लाई॥
तिमि दोनों दुख लहत सदाई। देहिं दान अरु लेहिं जो भाई॥
अब पाखण्डिन कहहुँ स्वभाऊ। सुनहु दियो दुखजिन सबकाऊ॥
करहिं न धर्म ठगैं धर्मी बनि। धनहित देश फिरैं बहु बनिठनि॥
लुब्धक सदा कपट की मूरति। लोक दम्भ में सकल बिसूरति॥
हिंसक बनै बचन कटु भाखहिं। अरु विडाल वृत्ती जिय राखहिं॥
कीरति चाहै ईर्षा वादी। स्वार्थी कपटी बहु बकवादी॥
हठकरि अपनी झूठ कहानी। करहि सत्य नितही मनमानी॥

दो०--ऊपर मीठे वचन नित, कहत नेह दिखराय ।
वकवृत्ती हिय में रहै, सोई दुष्ट कहाय ॥४५॥
सो०--मरत गेह बिच जोय, भस्म करत ताको सबै ।
जाय नहीं संग कोय, केवल धर्म विहाय यक ॥७॥

नारि पुरुष अस उचित सदाई । करै सुधर्म कर्म निपुणाई ॥
धर्म हेतु पुरुषारथ करई । दीमक की गति को उरधरई ॥
मातु पिता भगिनी सुत दारा । हैं जो इष्ट मित्र परिवारा ॥
नहिं परलोक सहायक कोई । केवल धर्म जीव संग होई ॥
फल है धर्म सुःख जग माहीं । अधरम से दुख लहत सदाहीं ॥
समुझहु याहि सकल जिय लाई । पाप कर्म की रीति सुहाई ॥
धनहित एक पाप नित करई । तेहि धन कुटुम्ब उदर नित भरई ॥
पाप केर फल भोगै सोई । करै कर्म जग में नर जोई ॥

दो०--एक धर्म ही सों सदा, दुख सागर तरि जात ।
लोक और परलोक में, साथ सबन के जात ॥४६॥

हिंसक क्रूर दुष्ट आचारी । संग करै पावै दुख भारी ॥
इनते अलग रहै जो कोई । ताही को सुख जीवन होई ॥
है व्यवहार बचन के माहीं । जो कोउ बोलत सत्य सदाहीं ॥
है अधर्म यक झूठ सुभाऊ । तजहु ताहि सुख लहहु सदाऊ ॥
दुष्टाचार करत जग आई । निन्दित होत पुरुष सो भाई ॥
भोगे व्याधि अधिक दुखपावें । खोवैं सुख अरु आयु नशावें ॥
परवश काज तजै दिन राती । धारै हिय स्वाधीन सुजाती ॥
परवश समदुख और न दूजा । सुख स्वाधीन एक रस पूजा ॥

दो०--याते सब मिलिके सदा, चलिये सुख के पंथ ।
जासों दुःख नशावई, पढ़हु सोई सद ग्रंथ ॥४७॥

या विधि पुरुष नारि नित रहहीं । चलहिं परम पथ जेहि सुख लहहीं ॥
पुरुष सदा बालकन सिखावहिं । पुत्रिन को नारी समुझावहिं ॥
जौ लगि गुरुकुल बसहिं सुबालक । तौ लगि मानत गुरुनिज बालक ॥
जानहिं अध्यापक यहि भाँती । सिखवत सुत-समान दिन राती ॥
गुरु पंडित ताकहँ जग मानत । आतम भेद सकल विधि जानत ॥
निशि-दिन आलस करै न जोई । हृदय सदा पुरुषारथ होई ॥
सुख-दुख हानि-लाभ अपमाना । स्तुति हर्ष शोक अरु माना ॥
इनमें समता सों जो रहईं । ताही को पंडित मुनि कहईं ॥
दो०--नित प्रति धर्म करै महा, त्यागै अधरम रीति ।
ईश-भक्ति-आचार शुभ, पढ़ै शास्त्र बहु नीति ॥४८॥
जानहिं शीघ्र कठिन जो भावा । अति उपकार करत मन लावा ॥
सोइ पंडित गुणज्ञ जग माहीं । बोलत समय विचारि सदाहीं ॥
वस्तु अप्राप्त चाह नहिं करई । नष्ट भये मन शोक न धरई ॥
है बुधिवान सो पंडित ज्ञानी । मानत ताकहँ सब गुनखानी ॥
निपुण होय वाणी जेहि केरी । विद्यावारिधि शास्त्र घनेरी ॥
तर्क वितर्क स्मृति को ज्ञाना । पंडित वक्ता ताहि बखाना ॥
प्रज्ञा सत्य अर्थ अनुकूला । चलै न आर्य्य पंथ प्रतिकूला ॥
कर्म जासु बुद्धी अनुसारा । ताको पंडित नाम उचारा ॥
दो०--बुधिवर पण्डित जहाँ पर, अध्यापक बनि जात ।
सत्य धर्म आचार शुभ, बढ़ै परम सुखदात ॥४९॥
सो०--मूढ़न की पहिचान, विदुर कह्यो जेहि भाँति सों ।
सोउ सुनहु धरि ध्यान, त्यागन योग स्वभाव सो ॥८॥
छंद--जब वेद शास्त्र न पढ़त कोऊ, अति घमण्ड दरिद्र सो ।
नहिं सुनत सद् उपदेश को, अरु बहु मनोरथ करत जो ॥
निज कामना की करत इच्छा, कर्म बिन जग झूठ सो ।
साई कहावे मूढ़ जग बिच, नित कुपन्थन चलत जो ॥७॥

अरु बिन निमंत्रण जाय पर घर, उच्च आसन बैठहीं।
बकवाद बहुत करैं सदा, कोऊ न उनसों पूछहीं॥
जो योग्य नाहीं वस्तु जग, विश्वास तामहँ मानहीं।
वह मूढ़ प्रकृती नीच जग बिच, मूर्ख पुरुष कहावहीं॥८॥

दो०--यहि प्रकार के पुरुष जहँ, अध्यापक होइ जाहिं।
विद्या धर्म विचार शुभ, गुन कीरती नशाहिं॥५०॥

जबहिं होहिं अस गुरु उपदेशक। कलह अधर्म अविद्या प्रेरक॥
फूट विरोध बढ़ै दुखदाई। तबहिं सुराजहु जात बिलाई॥
लक्षण विद्यारथिन सुनाऊँ। तिनकर अब स्वभाउ बतलाऊँ॥
आलस औ मद मोह चपलता। जो अभिमान-जाल जग फँसता॥
सात दोष विद्यारथि माहीं। त्यागन करें जो जनसुखचाहीं॥
सुख अर्थी कस विद्या पावे। विद्यार्थिन कस सुख भावे॥
सुखी त्यागि विद्या नित देहीं। जाय न विद्या जन ढिग तेहीं॥
विद्यारथी तजै श्रृङ्गारा। विद्याभ्यास ताहि अति प्यारा॥

दो०- सदा सत्य भाषन करैं, इन्द्रिय जित जो होय।
वीर्य गिरावहिं नाकतहुँ, व्रती सुबुध जन सोय॥५१॥

जहँ सुयोग्य अध्यापक बसहीं। विधिवत सो आचारी लसहीं॥
गुरु बहु जतन करै दिन राती। जासों शिष्य पढ़ैं बहु भाँती॥
और बनावहिं शिष्य प्रवीना। जासो जग-हित होय नवीना॥
बोलहिं सत्य प्रेम मन लाई। मानहि सत्य करै सतभाई॥
इन्द्रिय जीति सुशील कहावे। शुभ गुणयुक्त शरीर बनावे॥
आत्म-ज्ञान विद्या अभ्यासू। सभ्य बतावहि तेहिं सहवासू॥
विप्र सदा विद्यावित होई। क्षत्रिय राज-धर्म रत सोई॥
वैश्य बनिज व्यापारहिं करई। शूद्र सु सेवा को उरधरई॥
सेवा करै प्रेम सों जोई। रक्षक बनहिं द्विजाती सोई॥

दो०--पुख-दुख हानी लाभ में, सज्जनता उपकार ।
करहिं परस्पर प्रीति सब, द्विजन केर व्यवहार ।।५२।।
नृपअरु प्रजा प्रेम जहँ होई । बाढ़ै सुख कीरति तहँ सोई ।।
नारि पुरुष गृह प्रीति सुहाई । दोउ मिलि कर्म करहिं सुखदाई ।।
कबहुँ न बिलग पुरुष तिय होवै । जेहि विधिसुखहोसोइ मग जोवै ।।
अवगुन षट बस होवै नारी । सुनहु लहहिं जेहिते दुखभारी ।।
मद्यपान जो करहिं सदाई । दुष्टन संग करत नित धाई ।।
पति वियोग अरु फिरहिं अकेली । करत पखण्डिन दरश अमेली ।।
शयन करै पर घर में जाई । यह षट औगुन नारि लखाई ।।
पुरुषहु जो रत इनमें भाई । बढ़ै दुःख सब सुख नशि जाई ।।
नर-नारी वियोग दुइ भाँती । मानत दुख सुख मानव जाती ।।
दो०--है बिदेश को गमन यक, दूजो मृत्यु बियोग ।
सती नारि जो संग रहै, होत बिदेश संयोग ।।५३।।
नीक वियोग नाहिं बहु काला । युवा पुरुष अरु योवन वाला ।।
पूछत ऋषिहिं जोरि दोउ पानी । करहिं कहा बहु ब्याह सज्ञानी ।।
तबहिं ऋषीश्वर बोल्यहु भाई । एक संग बहु नाहिं सुहाई ।।
बहुरि सो पंडित ने अस कहेऊ । पुनर विवाह कबै कहँ भयऊ ।।
स्वामी कह्यो मनुस्मृति देखहु । रीति धर्म की पण्डित लेखहु ।।
अक्षत योनि पुरुष अरु नारी । पुनर्विवाह केर अधिकारी ।।
केवल पानिग्रहन ही भयऊ । पति-पतनी संयोग न ठयऊ ।।
यहि विधि की जो कन्या होई । करहु विवाह कह्यो मनु सोई ।।
दो०--जो नारी क्षत योनि जग, कहत मनु महराज ।
पुनर-विवाह न होवई, द्विजगण केर समाज ।।५४।।
दोष कहाप्रभु मोहिं समुझावहु । सुपथ बताय कुपंथ छोड़ावहु ।।
सम्भव चारि दोष होइ जाईं । हम जो कहत सुनहु सनलाईं ।।

नर अरु नारि प्रेम घटि जावे। त्याग भाव निश्चय मन आवे॥
निज पति त्यागि चहै दूसर पति। पुरुष न रहैं कबहुँ स्त्री व्रति॥
दूसर दोष होत यहि भाँती। पुरुष मरै जब नारिन जाती॥
पितु सम्पति दूसर लै जावें। तबहिं कुटुम्बी रार मचावें॥
दिन प्रति कलह होत तेहि ठाँवा। लेवे सो जा ढिग जो पावा॥
तीसरि बात सुनहु चितलाई। बहुतक कुल के नाम नशाई॥

दो०--चातुर्थिक हैं दोष यह, पातिव्रत नशि जाय।
पुनर और बहु ब्याह को, करै द्विजाती नाय॥५५॥

पुनरपि पूछन लाग सुपण्डित। जो कहुँ होवे वंश अखण्डित॥
नर अरु नारि होहिं व्यभिचारी। होहिं गर्भ पातादिक भारी।
याके अर्थ सुनहु यक रीती। जो कुछ सद शास्त्रन की नीती॥
जो ह्वै रहै व्रती जग माहीं। ताके ढिग कोइ पाप न जाहीं॥
जेहि सन्तान चाहना होई। करहिं नियोग स्वकुल महँ सोई॥
पण्डित कहत सुनहु मुनिराई। भेद कौन सा कहहु बुझाई॥
तबहिं कहत ऋषिराज सुबानी। पंच भेद की रीति बखानी॥
समता ब्याह नियोग न भाई। हैं बहु भेद कहत समुझाई॥

दो०-है विवाह की रीति यह, कन्या पति-गृह जाय।
पिता केर सम्बन्ध बहु, करत विवाह नशाय॥५६॥

जो विवाह होवे सुख सारी। तो दूसर घर जाय सुनारी॥
पर जो करत नियोग सुनारी। प्रथम पतीसम्पति अधिकारी॥
नारि विवाहित का सुत जोई। पावे निज पितु को हक सोई॥
अरु विधवा के जो सुत होई। करै नियोग जो विधि सों सोई॥
पूर्व पिता सुत सोइ कहावे। सोइ कुल गोत्र सोइ पद पावे॥
बीरज दाता को नहिं नामू। दूसर भेद लखहु परिणामू॥
नारि विवाहित को असयोगा। सेवा पती नारि उप-भोगा॥
नहिं नियुक्त पति सेवा भाई। नहिं कछु कारज और दढ़ाई॥

दो०--पती विवाहित से सदा, मरण काल सम्बन्ध ।
पर नियुक्त पति सों रहै, बीर्य दान सम्बन्ध ॥५७॥
दोनों गृह के काज सम्हारें । है विवाह अधिकार उचारें ॥
पर नियुक्त निज-निज गृहमाहीं । रहैं सहायक धर्म निबाहीं ॥
दस सुत नारि जनन अधिकारी । यह विवाह की रीति संचारी ॥
अरु नियुक्त पति से सुतचारी । जनै नारि सन्तोष सम्हारी ॥
रहत सदा जिमि ब्याह की नारी । तिमिनियुक्तपति नहिंअधिकारी॥
जब ऋतु-दान-काल तिथि होई । तब नियोग विधिकरत संजोई ॥
ऋतु के बाद न कुछ सम्बन्धा । सेवै पुत्र तजै सब धन्धा ॥
निज निज हेत पुत्र उपराजै । शुभनियोगविधि को यह साजै ॥
दो०--वंशनशे यह नियम है, शुभ नियोग विख्यात ।
याते ही संसार में, होत नहीं कुल-घात ॥५८॥
तब पण्डित बोलत मुसकाई । यह व्यभिचार रीति दिखराई ॥
कहत स्वामि व्यभिचार न होई । रीति नियोग सकल शुभ सोई ॥
बिन विवाह व्यभिचार सदाई । तिमि नियोग नहिं जानहु भाई ॥
याते सिद्ध भई यह बाता । अनियम काज सदा दुख-दाता ॥
जिमि विवाह उत्तम जगमाहीं । तिमि नियोग की रीति सुआहीं ॥
पण्डित कहत सत्य यह भाई । वेश्या-गति यह मोहिं लखाई ॥
जीवित पुरुष नारि हर्षाई । जाय सु दूसर पति ढिग भाई ॥
यह व्यभिचार कहहु किमि नाहीं । जब दूसर पति ढिग तिय जाहीं ॥
दो०--तबहिं स्वामि इमि कहत भे, सुनहु चतुर द्विज-राज ।
नहिं नियोग वेश्या सदृश, सोचहु कछु महराज ॥५९॥
वेश्यहिं निश्चित पुरुष न कोई । विषयासक्त जात तहँ सोई ॥
विधि नियोग की व्याह समाना । ताते यहि उत्तम जग जाना ॥
जिमि जग करत सुता को ब्याहा । लाज न होत होत उतसाहा ॥

तबहीं एक पुरुप अस कहई। पाप समान नियोगहु अहई॥
यह धुनि ऋषी कान जब आई। कहत सबन सों भुजा उठाई॥
वेगि बतावहु सब नर-नारी। कहा नियोग पाप अति भारी॥
तौ विवाह किमि पाप न होई। हिये विचारि लेहु सब कोई॥
हमरे जान पाप अति भाई। रोकत जो नियोग सुखदाई॥

दो०-या प्रभु के संसार में, नारि पुरुष व्यवहार।
स्वाभाविक यह काज है, याते नहिं निस्तार॥६०॥

जो वैराग्यवान जग होई। विद्यावित योगी जग जोई॥
सोइ नर बचत प्रकृति सों भाई। नतु सबकी मति जाति भुलाई॥
बिना नियोग काम जग सोई। गर्भ-पात निशि-वासर होई॥
याको कह तुम पावन मानहु। विधवन के सन्ताप न जानहु॥
जौ लगि युवा अवस्था रहई। विषय चाह ताके मन अहई॥
काम वेग की गति अधिकाई। जीतै जो कोउ सो सुखपाई॥
रोकै राज्य जाति व्यवहारा। तौ वे करहिं गुप्त व्यभिचारा॥
रोकैं सदा कुकर्म कुचाली। चलैं सदा जो चाल निराली॥

दो०-इन्द्रिय बस करि जो रहै, जग में कोउ नर नारि।
तौ उत्तम नर जन्महै, देखहु याहि बिचारि॥६१॥

जो नर कबहुँ ब्याह नहिं करहीं। ब्रह्मचर्य-व्रत हिय महँ धरहीं॥
ऊरध-रेता बनि जग माहीं। सकल जगत को योग सिखाहीं
जो नर यह व्रत मनहिं न धारैं। करहिं विवाह काम मद मारैं॥
पर आपत्तिकाल जब आवे। अवशिनियोग सकलजिय भावे॥
याते जग व्यभिचार नशाई। गर्भपात जो बहु दुखदाई॥
प्रेम बढ़ै उत्तम सुत होई। हो सन्तानवान जग सोई॥
नीच पुरुष सम उत्तम नारी। उत्तम पुरुष नारि व्यभिचारी॥
संग कुसंग होय दिन राती। कुल कलंक होवे बहु भाँती॥

दो०-नारि पुरुष संताप सब, निर्वंशी को दोष ।
यह नियोग सों मिटत है, करहु सकल तजि रोष ॥६२॥
कहहु नाथ मो कहँ समुझाई । विधि नियोग की रीति सुहाई ॥
स्वामि सुनाय कहत यहि भाँती । जस विवाह सब करत सजाती ॥
सोई विधि नियोग की जानहु । है सन्तान हेत यह मानहु ॥
उच्च वरण निज वरण सुहाई । करहिं नियोग जगत सुखदाई ॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई । पुरुष नियोग करे किमि भाई ॥
नारि मरे नर दूसर ब्याहा । करहिं पुत्र हित अधिक उछाहा ॥
तब ऋषिराज कह्यो मुसकाई । पूर्व कथा कह दीन भुलाई ॥
द्विज नर नारिन एकहि बारा । ब्याह करन को वेद उचारा ॥
दो०-नर अरु नारि कुमार द्वौ, तौ विवाह शुभ होय ।
यक विधवा यक क्वांर जग, तौ उत्तम नहिं सोय ॥६३॥
जब यह नियम चलै जग माहीं । तो नियोग की रीति सुहाहीं ॥
जस नर चहत न विधवा नारी । तिमि हैं नारि सबै अधिकारी ॥
तब पुनि सब सोचहिं गृहमाहीं । बिन नियोग जग सन्तति नाहीं ॥
अब हम एक प्रमाण सुनावहिं । ऋग को मंत्र तुमहिं समुझावहिं ॥
मंडल दशम सूक्त चालिसवाँ । दूसर मंत्र वेद में जहवाँ ॥
बहुरि सूक्त अष्टादश देखहु । अष्टम मंत्र तहाँ अवलोकहु ॥
बर औ देवर दोउ यहि भांती । निज निज नारि सकलसुखराती ॥
सधवा निज पति संग सप्रीती । नारि सु विधवा देवर रीती ॥
दो०-स्थित ह्वै ऋतु-काल में, करै सो गर्भाधान ।
करै यत्न बहु पुत्र हित, नारि परम सुख दान ॥६४॥
आशय मंत्र सुनहु चित लाई । नारि जासु हित जानहु भाई ॥
जिमि सधवा जग सुत उपजावे । तिमि नियुक्त पति विधवा पावे ॥
है नियुक्त पति नाम सु देवर । मानत जग ताकहँ दूसर वर ॥

अथरबकाण्ड चतुर्दश माहीं । है अनुवाक दूसरा ताहीं ॥
मंत्र अठारह में यहि भाँती । देखहु प्रकट नियोग सजाती ॥
नारि सदा पति को सुख देवै । धर्म नियम सब गृह के सेवै ॥
पढ़ै शास्त्र विद्या युत होई । उत्तम पुत्र जनै सब कोई ॥
पति सुख दै सुत वीर सयाना । जनै नारि अस वेदन माना ॥

दो०--इच्छा करै नियोग की, जो गृह पुत्र न होय ।
अग्निहोत्र को सकल त्रिय, करै प्रेम सों सोय ॥६५॥

अक्षत योनि नारि जग माहीं । करहिं नियोग कहहु कै भाई ॥
तब ऋषि कहत वेद की बाता । मंडल दश ऋगवेद सुताता ॥
सूक्त पचासी में लखि लेहू । मंत्र सुचालिस में चित देहू ॥
प्रथम नियुक्त पती जग माहीं । सोम नाम तेहि वेद बताहीं ॥
दूसर नाम अहै गन्धर्वा । तीसर अग्नी नाम सुधर्मा ॥
अरु चतुर्थ मानुषजा मानहु । औरहु सब याही विधि जानहु ॥
पुत्र हेत जग करहिं नियोगा । बाढ़ै यश पावे सुख भोगा ॥
याविधि एकादश लों जाई । नारि पुरुष सन्तति उपजाई ॥

दो०--ह्वै समुहे बोलत भयो, ज्योतिर्विद यहि भाँति ।
दश सुत एकादश पती, मानहिं मानव जाति ॥६६॥

कह्यो स्वामि तब यह मुसकाई । जो हम मानि लेहिं यह भाई ॥
तौ पुनि कहहु कहहिं केहि देवर । होयनियोग सोकेहिविधि सुन्दर ॥
जो मन्वादिक ने है कहेऊ । सो सब झूठ कहा जग ठयऊ ॥
पुनि यह कहहु हमैं समुझाई । पति जीवित नियुक्त पति आई ॥
स्वामी कहत विप्र सुनि लीजै । ऋगदश मंत्र सूक्त लखि लीजै ॥
पुत्र जनन असमर्थ जो होई । सो निज नारि कहै जन सोई ॥
करि नियोग संतति उपजावहु । बंश चलै सोइ बात बनावहु ॥
जिमि अम्बे आम्बालिक नारी । जन्मि पांडु कुरुवंश सम्हारी ॥

दो०-सुत हित दूसर पुरुष सों, करहिं नारि संयोग।
केवल गर्भ विधान हित, है जग योग्य नियोग ॥६७॥
कथा पुरातन हैं बहुतेरी। जहँ नियोग की रीति घनेरी ॥
पुरुष सदा यह चिन्तन करई। होय न नष्ट वीर्य्य जिय धरई ॥
गर्भाधान बिना जो कोई। भोग बिलास करत नर जोई ॥
वह व्यभिचारी जगत कहावे। वीर्य नसै सन्तति नहिं पावे ॥
जो तनु होय वीर्य्य अधिकाई। तौ उत्तम सुत होत सदाई ॥
हम तौ कहत सुनहु ऋषिराई। रीति विवाह महा दुखदाई ॥
नारि पुरुष यक बन्धन होई। है वह जन दुख कारन सोई ॥
याते केवल प्रेम पियारा। प्रेम जाय सब नसै विकारा ॥
दो०-मूर्ख पतित द्विज जो जगत, पावत हैं बहु मान।
शूद्र जितेंद्री होहिं तो, करत न कोउ सनमान ॥६८॥
यह है सब अज्ञान की बाता। समुझहु ताहि हृदय सों ताता ॥
याते सुनहु सकल चित लाई। गृहस्थ धर्म की अति निपुणाई ॥
जिमि नद नदी सुसागर मांहीं। चलिबहु पंथ तहाँ मिलि जाहीं ॥
ता विधि सब आश्रम के प्रानी। आशा करहिं गृहस्थी जानी ॥
जिमिसब जंतु केर अधिकारा। लहहिं सदा सब वायु सहारा ॥
तिमि ब्रह्मचारि यती संन्यासी। होहिं गृहस्थ मांहिं सब वासी ॥
है गृहस्थ सुन्दर एक ठावां। भरमि दिवस निशि सोवत जहँवां ॥
याते प्रेम सहित नर नारी। बसहिं गृहस्थ मांहिं सुख सारी ॥
दो०-निज मति हम बरनन कियो, जो गृहस्थ को धर्म।
है वह उत्तम पुरुष जग, करै जो या विधिकर्म ॥६९॥
गुरुवर मोहिं संतोष भा, सुनि ऋषि-कथा प्रसंग।
एक मोहिं संदेह है, करहु गुरू सोइ भंग ॥७०॥
जो कछु मोहिं सुनायहु साँईं। धर्म गृहस्थ नियोग सुहाई ॥

है अति नीक रीति यह भाई। यामहँ नाहिं अधर्म लखाई॥
पुनि याको जग करत न कोई। कह्यो स्वामिने जेहि विधि सोई॥
विधवा ब्याह करत सब धाई। ऋषिवर ताहि निषिद्ध बताई॥
यह संदेह मोर मन होई। कहहु नाथ हित सोविधि सोई॥
तब गुरु कहत सुनहु चितलाई। यह तो आपद धर्म दिखाई॥
याको मण्डन कतहुँ न होई। ताते ऋषिवर कह्यो न सोई॥
सब संकेत मात्र ऋषि कहेऊ। जो तुम कथा मांहि चित दयेऊ॥
दो०--नारि कुमारि कुमार सों, करै नेम सौ ब्याह।
विधवा विधवा वर तकै, करै प्रेम उत्साह॥७१॥
विधवा केर विवाह जग, है यह आपद धर्म।
समय-समय संसार में, करै जो मानव कर्म॥७२॥
सोइ जग श्रेष्ठ मनुज हितकारी। चलै जहाँ लगि समय बिचारी॥
जो निज काम सकै नहिं रोकी। चलै न मारग धर्म विलोकी॥
ताकर ब्याह अवशि ही करिये। जग को गर्भपात दुख हरिये॥
यदि द्विजाति तिन नारिन केरा। करहि न ब्याह जाति पुर हेरा॥
ते कुलटा हुइ निज कुल बोरैं। धर्म नशै अधरम बहु जोरैं॥
याते सुनहु शिष्य चितलाई। विधि विवाह इमिजग सुखदाई॥
वेश्यन वृद्धि होत यहि भाँती। जो न विचारत समय सुजाती॥
निश्चित समय न आपद काला। धर्म नसे जग होत बेहाला॥
दो०--याते यहि अवसर विषे, है यह आपद धर्म।
जो विधवा है जगत में, जानहु तिनके मर्म॥७३॥
जो विवाद के योग सुहाई। करहु सकल जन प्रेम दृढ़ाई॥
यदि विवाह नहिं होवे भाई। तौ जग पशुता की अधिकाई॥
याविधि कथा सकल ऋषि केरी। कहिहौं सकल प्रेम रस हेरी॥

सत्य-सागर चतुर्थ तरङ्ग स० प्र० ४ स० समाप्तम्।

अथ पञ्चम तरङ्ग (स० प्र० ५ स०)

वानप्रस्थ सन्यास

सो०—तृप्त भयो मुनि नाथ, गृहस्थाश्रम की कथा सुनि ।
अब बरणहु सुखदात, औरहु आश्रम की कथा ॥१॥

दो०—प्रेम सहित बोलत भये, दयानन्द ऋषिराज ।
गृहस्थाश्रम के बाद ही, द्वै आश्रम सुखसाज ॥१॥

सुनहु आश्रमन की विधि सोई । वर्णाश्रम को राखै जोई ॥
पूरण ब्रह्मचर्य्य जब होई । तब गृह बसत गृही बनि सोई ॥
अवधि गृहस्थ की बीतै जबई । ह्वै कर बनी बसै बन तबई ॥
बनी कर्म जब पूरन होई । तौ संन्यास लेइ जन सोई ॥
विधिवत गृहस्थ रहै घर माहीं । जीति इन्द्रियन गृह सुख चाहीं ॥
शिर के श्वेत केश जब होहीं । शिथिल शरीर विलोकहि ज्योहीं ॥
अरु पुनि पौत्र होय गृह माहीं । तबहिं त्यागि गृहनर बन जाहीं ॥
त्यागहिं ग्राम अहार सदाई । औरहु जो गृह की प्रभुताई ॥

दो०—नारिहिं करि निज पुत्र ढिग, या सँग जाइँ लेवाय ।
ग्राम त्यागि बन में बसै, सोई बनी कहाय ॥ २ ॥

छं०—नित पठन पाठन मैं लगै अरु मित्र बनि सबके रहै ।
विद्यादि दानसो देइ निशिदिन आत्मजित ह्वै सत कहै ॥
इन्द्रिय दमन करि शील धारै काहु सों कछु न चहै ।
निज काज रक्षा करहि हित सों अरु दया को पथ गहै १ ॥

अग्निहोत्र के साधन लेई । इन्द्रियजित ह्वै बास करेई ॥
बन के कन्द मूल फल खाई । तिन्हहीं सों नित अतिथि जेंवाई ॥
संग जो नारि रहै जन केरे । काम हेत नर जाइ न नेरे ॥

भूमिशयन अरु तरुतर बासा। ममता त्यागहि अरु जन आसा ॥
जो चित शान्त अहैं विद्वाना। श्रद्धा सहित करहिं तप नाना ॥
सत्य धर्म भिक्षा आचरना। बसहि बनी ह्वै बास सुपरना ॥
ते नर सूर्य द्वार ह्वै जाहीं। पावैं सुख सुमोक्ष चित चाहीं ॥
करहि होम अरु दीक्षित होई। ज्ञान बिचारत है नर जोई ॥
दो०—दै शिक्षा निशि दिवस ही, शिष्य पढ़ावहिं आप।
बनी कर्म के होत ही, रहै न कोउ संताप ॥३॥
यहि बिधि वानप्रस्थ नर होई। बसि बन संयम नियम करोई ॥
पुनि इच्छा संन्यास की होई। त्यागहि नारि पुत्र ढिग सोई ॥
तीसर भाग रहै यहि भाँती। आयु विभाग करै मनु जाती ॥
भाग चतुर्थ लहै संन्यासी। त्यागहि सकल जगत की फाँसी ॥
एक कहत ऋषि सों चितलाई। गृही बनी यदि होय न भाई ॥
अरु संन्यास लेइ नर कोई। तौ कह पाप लहै नर सोई ॥
तबहिं स्वामि इमि कह्यो बखानी। जब वैराग्य होय मन बानी ॥
ताही समय होय संन्यासी। त्यागहि सदा मोह की फाँसी ॥
दो०—दुराचार से पृथक नहिं, अरु जिय शान्त न होय।
योग आत्मा में नहीं, मन थिर जबै न कोय ॥४॥
तौ लगि जन संन्यास न लेई। प्राप्त न "इष्ट" होत जग तेई ॥
है संन्यासिन सहज सुभाऊ। करहि सुकर्म न हो उरदाहू ॥
संचित कर्म देखि जग केरे। जाय पुरुष वैराग्य के नेरे ॥
प्रेम सहित सद्गुरु पहँ जाई। करि बहु प्रश्न लहै दृढ़ताई ॥
भोग देखि सब कर्म अधीना। हिय धारै वैराग्य प्रवीना ॥
माया बिच नित रहत भुलाने। मानत पंडित आपु सयाने ॥
ते बनि मूढ़ नीच गति पावै। जिमि अन्धा, अन्धा सँग धावै ॥
अबुध अविद्या में रत रहहीं। जानि प्रकट सुख आनँद लहहीं ॥

दो०-मोहित हो संसार में, मोक्ष न पावहि जान ।
जन्म मरन दुख सहै नित, हिय राखत अभिमान ॥५॥
वेद अर्थ जे जानहीं, हिय राखहिं विज्ञान ।
जेहि पावन अन्तष्करन, संन्यासी सुखदान ॥६॥
पावे सुलभ मोक्ष-पद सोई। परमानन्द प्राप्त जब होई ॥
बिना मुक्ति दुख नाश न होई। जेहि दुख जाय सो यतन करोई ॥
देह धरे कर फल जग माहीं। दुखसुख पृथक होत हैं नाहीं ॥
सांसारिक दुख सुख नशि जाईं। जो नर पावे मुक्ति सुहाईं ॥
साधन मोक्ष सुनहु चितलाई। है संन्यासिन मार्ग सोहाई ॥
धन सन्तति अरु जगत बड़ाई। त्यागहि मोह सहित प्रभुताई ॥
पद निर्वान हेत दिन राती। करहि सोयत्न परम सुख भाँती ॥
भिक्षाचरन करहि मन लाई। ह्वै संन्यास परम निपुणाई ॥
दो०-ईश प्राप्ति हित नेह सों, करहिं प्रेम युत याग ।
शिखा सूत्र तहँ त्यागई, जो गृहस्थ को भाग ॥७॥
प्राण समान उदान अपाना। व्यानसहित सब अग्नि समाना ॥
इनमें यज्ञ करै नर जोई। देकर अभयदान हित होई ॥
पुनि संन्यासिन धर्म सुनावहुँ। मुख्य जो नेम ताहि बतरावहुँ ॥
नैन निहारि चलै मग जोई। वस्त्र छानि पीवे जल सोई ॥
सत्य बिचारि कहैं नित बयना। मनहि विचारि करहिं आचरना ॥
निन्दा क्रोध करै जन कोई। तासों दुखित कबहुँ नहिं होई ॥
धर्म सहित समुझावें ताई। इन्द्रिन कर्म सकल बतलाई ॥
करहिं न झूठ कतहुँ व्यवहारू। ईश प्रेम अरु देश सुधारू ॥
दो०-इन्द्रिय दमन करैं सदा, राग द्वेष नहिं चाह ।
होयँ अहिंसक नेह सों, नर जीवित उत्साह ॥८॥
नित प्रति कर्म करै सुखदाई। वस्त्र धारि नहिं करहिं हँसाई ॥

इन्द्रिय विषय सकल तजि देई। धारै हिये मोक्ष सुख लेई॥
धर्म अङ्ग दश मनु ने कहेऊ। तापर चलत सकल चितदयऊ॥
"धृतिः" सदा धीरज जिय राखैं। "क्षमा" दया यह मुनिगन भाखैं॥
"दमन" सुअधरम से मन रोकै। हिय निज धर्म एक अवलोकै॥
चोरि त्याग "स्तेय" को कहईं। "शौच" सदा पावन चितरहईं॥
दुराचार से इन्द्रिन रोकैं। "इन्द्रिय निग्रह" सकल विलोकैं॥
नित प्रति बुद्धि बिचारे जोई। "धी" को धारि सकत नर सोई॥
सो०--जिमि शरीर रथ माहिं, इन्द्री अश्व बिलोकिये।
बुद्धि सारथी आहिं मनलगामकीकठिनगति ॥२॥
दो०--सोई रथ नशि जात है, जेहि सारथि अज्ञान।
ताते बुधि बल हिये धरि, लहहु मुक्ति प्रस्थान ॥९॥
जो कछु जगत बीच है पेखौ। ज्ञान पूरबक ताकहँ देखौ॥
"विद्या" ताहि प्रवीन बतावहिं। जानि पदारथ सुख उपजावहिं॥
है "अक्रोध" एक शुभ अंगा। याते होत सकल दुख भंगा॥
जो कछु देखहु सुनहु सदाई। ताको कहहु सुभय बिसराई॥
है सोइ "सत्य" जगत के माहीं। धारै प्रेम सहित चित लाई॥
ये दस लक्षण धर्म बताये। करहिं इनाहिं संन्यासि सुहाये॥
जो संन्यास धर्म जग अहई। ऋषिवर कौन ताहि अवलहई॥
हैं ब्राह्मण याके अधिकारी। अथवा क्षत्रि आदि बलकारी॥
सो०--कहत स्वामि हर्षाय, सुनहु शास्त्र की रीति यह।
गुन अरु कर्म सुभाय, ब्राह्मण को तनु होतजब ॥३॥
दो०--ब्राह्मण को अधिकार है, जो विद्वान प्रबीन।
धर्म सहित उपकार में, नित प्रति है लवलीन ॥१०॥
है संन्यास कर्म सुखदाई। ताहि द्विजाति करहिं मन लाई॥
जिमि तनु बीच शीश एक लहई। तिमि आश्रमन बीच यह अहई॥

जग उपकार बनत याही में। जो स्वतंत्र पथ धारै जी में॥
गृह धन्धादिक काज घनेरे। और आश्रमन को है घेरे॥
जग संन्यासी बात बखानत। कर्म न कोई मोकहँ भावत॥
त्याग कर्म हमरो यह धर्मा। भोजन भजन पेट हित कर्मा॥
पूछहु तिनहिं प्रेम सों बाता। त्यागहु कर्म कौन तुम ताता॥
भोजन छादन हूँ जग कर्मा। त्यागि देहिं तौ होय अकर्मा॥
दो०--जब यह छोटे कर्म जग, नहिं त्यागत है कोय।
कहहु सो उत्तम कर्म को, कैसे त्यागन होय॥११॥
हम यह कहत सुनहु चित लाई। पालहिं इनहिं गृहस्थ सदाई॥
जो गृहस्थ हित कछु नहिं करहीं। ह्वै पापी नरकी बनि मरहीं॥
जाकर भोजन बसन सुप्रीती। करि हित लेहिं सदा यह नीती॥
जभ हित पर उपकार न करई। वह संन्यासि अयश लहि मरई॥
जो उपदेश करत सब काई। जीव ब्रह्म प्रकृती बिलगाई॥
है अल्पज्ञ जीव दर्शाई। ब्रह्म सदा सर्वज्ञ सुहाई॥
जीव प्रकृति बस दुख को सहई। जानत ब्रह्म परम पद लहई॥
योगाभ्यास करत दिन राती। वैदिक कर्म करै बहु भाँती॥
दो०--करहि सत्य उपदेश नित, परम गृहस्थन बीच।
ते संन्यासी जग बिदित, हिय न लोभ मदनीच॥१२॥
सो०--हे प्रभु करुणासिंधु, परम पूज्य ऋषिराज तुम।
न्यास कर्म सुखसिधु, कह्यो नाथ बहु दया करि॥४॥
नाथ सुनहु यक और ढिठाई। जो उपदेश देहि सब भाई॥
तौ संन्यासिन कहा प्रयोजन। जगसुखत्यागि तपावहिंनिजतन॥
कहत स्वामि यहि विधिमुसकाई। है उपदेश सबन हित भाई॥
यह तो अमर बेलि है भाई। जो पीवे वह सदगति पाई॥
जो उपदेश करत बहुतेरा। ते जग पावत मान घनेरा॥
पर यक बात सुनहु चित लाई। जो जेहि काज सो तासु सुहाई॥

संन्यासिन अवकाश घनेरा। तिन उर चिन्ता नाहिं बसेरा ॥
संन्यासिन उपदेश प्रभावा। जो कछु कहैं करहि सोई भावा ॥

दो०--बिना प्रयोजन के कतहुँ, रहैं न काहू ठाम।
विद्या बल उन्नति करें, जाइ जाइ सब ग्राम ॥१३॥

जनक आदि राजर्षि की भाँती। बनि बिदेह बैठैं सुख माँती ॥
करहिं सदा उपदेश प्रबीना। धारहिं विविध विचार नवीना ॥
जो यह कहत फिरत दिन राती। धन न देहु संन्यासिन जाती ॥
अरु ब्रह्मचारिन पान को बीरा। चोरन कबहुँ न दीजै धीरा ॥
जो जग ढोंग रचे बहु फिरहीं। वस्त्र कषाय जो तनु पर धरहीं ॥
अन्तर तिनहिं पहाड़ समाना। उदर भरन हित फिरहिं दिवाना ॥
तिनहिं द्रव्य कबहूँ ना दीजै। आदर काहू भाँति न कीजै ॥
पर उपकार करत जे निशि दिन। जानिसु "इष्ट" देहु पुष्कल धन ॥

दो०--गुरुकुल विद्यालय अधिक, खुलहिं जगत के बीच।
मूरखता जग की मिटै, रहै न कोऊ नीच ॥१४॥

औरहु बात सुनहु मन लाई। जासों हो कल्यान सदाई ॥
जीवित पिता कार्य शुभ कीजै। नाम हेत चाहे कछु दीजै ॥
ब्रह्मचर्य बनि बनहि गृहस्थी। पुनरपि होवें बानप्रस्थी ॥
तब सन्यास लेइ जग माहीं। जासो उत्तम कर्म सुहाहीं ॥
साधु गोसाईं बहुतक आवहिं। बनि सन्यासी जगत पुजावहिं ॥
ते सन्यासि जगत में नाहीं। फिरत पेटहित रहत सदाहीं ॥
वेद विरुद्ध चलहिं दिन राती। उदर भरहिं जन नाना भाँती ॥
यह यक मार्ग राज सम जानो। हैं परिव्राज सकल पहिचानो ॥

दो०—या संन्यास प्रकरण को, बरणि कह्यो ऋषिराज।
सोई हम तुम सन कह्यो, सुदिन मुहूरत आज ॥१५॥

सत्य-सागर पञ्चम् तरङ्ग स० प्र० ५ स० समाप्तम्

षष्ठम् तरङ्ग (स० प्र० ६ स०)

राज धर्म

सो०--गुरुवर मो हित जान, बहुरि सुनावहु ऋषि कथा ।
मोर होहि कल्यान, गुरुवर सोई कीजिये ।। १ ।।

दो०--जो कछु पूर्व कथा कही, सुनि सुख भयो महान ।
बर्णाश्रम के धर्म को, जानि प्रबल सुखदान ।। १ ।।

राजधर्म की रीति सुहाई । सो मोहि बरणि कहौं गुरुराई ।।
तब गुरु कहत सुनहु चितलाई । कहिहौं प्रेम सहित समुझाई ।।
ऋषीश्वर राज विधाना । सोइ सुनहु तुमहिय धरि ध्याना ।।
एक समय बैठे ऋषिराई । आये तहाँ शिष्य समुदाई ।।
कुशल प्रश्न ऋषि पूछन लागे । प्रेम सहित हिय सों अनुरागे ।।
एक कहत सुनिये मुनिराई । कहहु सो राजधर्म समुझाई ।।
राज प्रथा हम देखत जोई । नाना भाँतिन की है सोई ।।
ताते यह भ्रम मोर छोड़ावहु । सत्य जो राजधर्म बतरावहु ।।

दो०--स्वामि कहत समुझाइकै, राजधर्म की रीति ।
बेद शास्त्र में जो लिख्यो, और मनू की नीति ।। २ ।।
जिमि ब्राह्मण विद्वान जग, सब विधि ज्ञान सुजान ।
न्याय सहित निन्दारहित, जानहि राज्यविधान ।।३।।

राजा प्रजा परस्पर मिलहीं । तीन सभा जग निर्मित करहीं ।।
विद्या धर्म समाजन हेता । राज सभा नर श्रेष्ठ निकेता ।।
राजधर्म सब पालहिं नीके । करहिं सुकर्म सकल जगतीके ।।
सभ्य सभासद होवें जहवाँ । कोउ दुष्कर्म रहै नहिं तहवाँ ।।
राजा और सभासद दोऊ । करै जो कर्म मेल करि सोऊ ।।

परम स्वतंत्र न राजा होई। जो मन भाव करै नृप सोई ॥
यहि प्रकार जहँ राजा अहई। तहँ न कतहुँ कोऊ सुख लहई ॥
ताते द्वौ मिलि कारज करिये। राजा प्रजा प्रेम नित भरिये ॥
दो०--विजय युक्ति जानहि महा, और बढ़ावे मान।
जो गुन कर्म स्वभाव से, आदरणी गुणवान ॥४॥
सभापती ताकहँ सब मानहु। वेद प्रथा यह सब कोउ जानहु ॥
पुरुष जो यहि प्रकार के होहीं। तिनहिं सभापति करिये जोहीं ॥
पालहिं राज धर्म ते नीके। पालहिं प्रजा जो हों शक्ती के ॥
वेद कहत यहि विधि समुझाई। सुनहु सकल जन चित्त लगाई ॥
तोप भुशुण्डि धनुष करबाला। है त्रिशूल शक्ती अरु भाला ॥
नाना विधि आयुध महिपाला। मल्हन हेत रचैं बहु शाला ॥
ये सब होत विजय के साधक। रहै न कोउ तहँ नीति विघातक ॥
दुखदजो निन्दित कारज करई। सो सुख त्यागि दुःख विच परई ॥
दो०--जो शुभ गुन विद्वान जग, नीति निपुण बलवान।
वह राजा सुख लहत है, पावे यश अरु मान ॥५॥
इन्द्र समान लहैं कल्याना। रक्षक प्रान जो वायु समाना ॥
जानन हार हृदय की बाता। सूर्य समान सुःख को दाता ॥
देत सदा दुष्टन सन्तापा। जिमि अग्नी नाशै करि दापा ॥
चन्द्र समान जो शीतलताई। धन रक्षा कुबेर सुखदाई ॥
ये गुण सहित सभापति होई। पावे राजप्रजा सुख सोई ॥
बरणाश्रम के धर्म सुरीती। और चलावत शासन नीती ॥
राजदण्ड सोइ शासन कर्ता। रक्षक रहत प्रजा दुखहर्ता ॥
दो०--याते बुध जन जगत में, कहत धर्म एक दंड।
ताहि तजे सब दुखित हों, अरु बनि जात उदंड ॥६॥
शासन प्रजा दंड से होई। राजकर्म की पद्धति सोई ॥

ताते सुबुध बिचारत नीके। धारहु दंड तजहु भय जीके ॥
बरण सु दूषित हो बिन दंडा। त्यागहिं सब मर्याद उदंडा ॥
दंड छोड़ावहि पापिन पापा। होय सु मोह लोभ अरु दापा ॥
शासक दंड होय विद्वाना। रहै सत्य रत जो बुधिमाना ॥
देखहि धर्म अर्थ अरु कामा। पंडित सोइ राज शुभ कामा ॥
मूरख राजा दंड जो धारहि। लम्पट ईर्षा दाह सम्हारहि ॥
बुद्धिहीन जो राजा होई। महिमा दंड न जानत सोई ॥

दो०--धर्म रहित जहँ दंड है, जात तहाँ को राज।
दुख पावत तेहि राज्य बसि, जेतो मनुज समाज ॥७॥

जो सत पुरुष नीति युत होई। शासन माँहि परम हित जोई ॥
वह अधिपति शासक अधिकारी। तेहि आधीन राज्य सुखकारी ॥
धर्मात्मा सभापति होई। जाहि प्रधान कहत सब कोई ॥
दश विद्वान सभा के अहहीं। अथवा तीन सुबुध हों जहँहीं ॥
शासन तिनकर मानन योगू। जो सुख चहत पराभव लोगू ॥
न्याय शास्त्र अरु चारौ वेदा। पढ़ै निरुक्त धर्म तजि खेदा ॥
राज सभा ते होहिं सभासद। मानहु बात चहहु जो आनँद ॥
धर्म सहित जहँ कारज होई। राज्य सभा है उत्तम सोई ॥

दो०--ऋग यजु साम अथर्व को, जानन वारो होय।
करे व्यवस्था जो कछू, मानत मानव सोय ॥८॥

जो संन्यासी वेदन ज्ञाता। सभा मध्य तेहि मानहु बाता ॥
कोटिन पुरुष कहैं कोउ बाता। अबुध जानि नहिं मानहु ताता ॥
मूरख कोटिन मिलहिं सदाई। ताहि सभा नहिं मानत भाई ॥
विद्या धर्म सभा द्वै भाई। राजसभा की रीति सुहाई ॥
मूरख एको संग न दीजै। बुध जन धार्मिक हों सो लीजै ॥
तीनों सभा जहाँ नहिं होई। बढ़ै अधर्म न जन सुख कोई ॥
ताते राजन धर्म न जावे। करि बहु यतन इनहिं समुझावे ॥

सुपथ चलै नृप हृदय विचारी । करै प्रजा ताकी अनुहारी ॥

दो०--ज्ञाता चारों वेद के, सहित ज्ञान अरु कर्म ।
होहिं सभासद राज के, जानहिं सारे मर्म ॥९॥

न्याय दंड आतम त्रय नीती । करहिं जो ईश गुनन सों प्रीती ॥
विद्या ब्रह्म लोक कुल रीती । जानहिं राज काज की नीती ॥
राज सभा सोइ राजा होई । पालहिं प्रजा प्रेम युत जोई ॥
जिते सभासद और सभापति । इन्द्री जीति चलत अपनी गति ॥
करहिं धर्म नित प्रेम समेता । त्यागहिं अधरम रीति सचेता ॥
याते निशि बासर मन लाई । योगाभ्यास करहु सुखदाई ॥
निज तन की जो प्रजा सोहाई । मन अरु प्राण इन्द्रि समुदाई ॥
निज तन प्रजा वश्य जब करिहौ । शासन प्रजा तबै चित धरिहौ ॥

दो०--जौ लगि इन्द्रिय नेम सों, करै न वश महिपाल ।
तौ लगि है सोहत नहीं, राज चिह्न तेहि भाल ॥१०॥

दश गुन काम निकारहिं जियके । क्रोध अष्ट गुन दुष्ट व्यसन के ॥
जो फँसि जात व्यसन के माहीं । निसरन कठिन रीति जग आहीं ॥
ताते सकल छोड़ावहु फंदन । छोड़त व्यसन होय तन कुंदन ॥
जो जग दुष्ट व्यसन दस अहहीं । उतपति काम होत जन लहहीं ॥
इनमें राज पुरुष जो फँसई । खोवे धन सम्पति दुख लहई ॥
तिनके नाम सुनहु चितलाई । काम ते उत्पति जे दर्शाई ॥
नित नव खेलन जात शिकारा । करत सदा मन द्यूत विचारा ॥
चौपड़ शतरँज और गँजीफ़ा । ताश रमल जो खेल जईफ़ा ॥

दो०--दिवस शयन अरु रति कथा, अधिक त्रियन को संग ।
गाँजा, चरस, अफीम अरु, खाय तमाखू भंग ॥११॥

अरु प्रतिक्षण जन निंदा करहीं । नाचत गावत जे नित रहहीं ॥
औरहु नाच जो देखहि कोई । इत-उत भरमत विरथा सोई ॥

क्रोध आठ गुन कहत बुझाई। नाश शरीर होत तेहिं भाई ॥
चुगलि करन अरु साहस द्रोहा। अर्थ, दोष, ईर्षा, मद, मोहा ॥
पारुषता अरु बाणि विकारा। ये उत्पति हों क्रोधधिकारा ॥
काम क्रोध अरु लोभ सदाई। त्यागि देहु सब जन हर्षाई ॥
मद्य द्यूत पर नारि सुप्रेमा। अरु मृगया युत चारि अनेमा ॥

दो०--काम क्रोध के दोष यह, कठिन महा विख्यात।
पड़ौ न कहुँ भ्रम जाल में, बचिए इनसों तात ॥१२॥

यह समझहु निश्चय तुम भाई। मृत्युश्रेष्ठ व्यसनन ते आही ॥
बाढ़ै व्यसन पाप अधिकाई। दुष्ट कर्म सब होत सदाई ॥
राजा प्रजा उचित अस भाई। चलहिं सुधर्म अधर्म बिहाई ॥
राज सभा यक मंत्री होई। औरहु आठ चतुर नर जोई ॥
वेद प्रथा सब जानन हारे। शूर बीर बुध पंडित न्यारे ॥
राज काज मंत्री बिन नाहीं। जो साथी सुख दुख के माँहीं ॥
ताते उचित सभापति भाई। राज सभा संगठन बनाई ॥
कबहुँक संधि कबहुं विग्रह हित। देखहिं स्थल काज यथोचित ॥
रक्षा राज्य करै दिन राती। करहि शत्रु हित नाना भाँती ॥

दो०--राज्य जो है अधिकार में, तहाँ शान्ति बहु होय।
राजमंत्रि राजा सदा, हृदय विचारत सोय ॥१३॥

निज निज पृथक विचार बतावहिं। बहु सम्मति सों निर्णय पावहिं ॥
आलस रहित सुबल बुधिवाले। अनुचर करै प्रजा को पाले ॥
जो अति शूर वीर बलवाना। सहित सुप्रेम होयँ दरबाना ॥
जे निर्बल अति भीरु लखाहीं। ताकहँ काज देहु घर माँहीं ॥
जो उत्तम कुल चतुर सुहावा। चेष्टा देखि सो जानत भावा ॥
जानहिं होनहार की बाता। चतुर विशारद शास्त्रन ज्ञाता ॥
राज कार्य में हो उत्साही। प्रीति सहित निष्कपट सदाही ॥
आत्म पवित्र समय को देखत। बात सुनी कबहूँ नहिं ठेलत ॥

दो०--रूपवान निर्भय सदा, वक्ता जानि महान।
राज दूत वह होवहीं, नीति कर्म सुखदान ॥१४॥

छंद—शुभ राज्य दंड बनाइ सब मिलि न्याय को जियधारई।
सोई सभासद औ सभापति दूत भेद जो लावई॥
सब मिलि परस्पर प्रेम युत जन दुष्टता को नाशई।
निज शत्रु राजन नीति जानि सो यत्न तिन हित भावई॥ १॥
बन बाग उपवन बाटिका बनवाइ सुख कीरति चहैं।
अरु कठिन दुर्ग बनाइ विधि सों सैन्य चारों दिशि लहैं॥
गिरि होय चारहु ओर गढ़ के नातु जल सरिता बहै।
बनवाइ चारों दिशि नगर के कोट जो कहुं ना ढहैं॥ २॥

दो०--एक पुरुष ही कोट से, करै सुशत सों युद्ध।
शत सहस्र सों भिरत हैं, कोट शिखर सन्नद्ध ॥१५॥

जो धन धान्य दुर्ग के माहीं। बाहन शस्त्र शास्त्र निपुणाई॥
पाठक ब्राह्मण अरु उपदेशा। शिल्पकार अरु यंत्र विशेशा॥
पशुन हेतु राखहु बहु चारा। जल सम्पन्न कोट बिस्तारा॥
मध्य कोट बाटिका सुहावन। ऋतु अनुकूल लहहिं सुख पावन॥
श्वेत बरण गृह भवन रचावें। राजकाज अरु सब सुख पावें॥
राजा एक नारि व्रत होई। कुल मर्याद बिचारहि सोई॥
जाति अगम्य अन्य की नारी। माता पुत्रि समान निहारी॥
करै कुदृष्टि न राजा सोई। राजा प्रजा परमहित होई॥

दो०--पुरोहित ऋत्विज नेह सों, अग्निहोत्र के हेत।
नित्य हवन पक्षेष्टि सब, करि उपदेश जो देत ॥१६॥
राजकाज में मगन नित, पालहिं प्रजा सप्रीति।
राजद्रोह नहिं काहु सों, चलै धर्म की नीति ॥१७॥

राज चलावन के हित भाई। वार्षिक कर बाँधैं सुखदाई॥

नृपति सभापति वेदनुकूला। पितु समान ह्वै नाशहि शूला ।।
राज्य काज जो श्रेणी अहहीं। प्रति श्रेणी अध्यक्ष जो रहहीं ।।
देखहिं सबके काम सप्रीती। न्याय दंड की राखहिं नीती ।।
वेद प्रचार कोष जो भाई। अक्षयरूप सु राखहु ताही ।।
गुरु कुल बसि अस्नातक आवहिं। ते हित सों धन सब विधि पावहिं ।।
क्षत्रिय ह्वै रन पीठि न देई। ह्वै सन्मुख वहु युद्ध करेई ।।
युद्ध कर्म की नाना रीती। करत सुशत्रुन हित बहु नीती ।।

सो०--शत्रु पीठि ना देइ, समर भूमि जब जा डटे ।
गुप्त शत्रु से होइ, जब कोउ और उपाय नाहिं ।।२।।

दो०--बिना विचारे जो जरै, क्रोध अग्नि के माहिं ।
जिमिअभिमानीसिंहजग, बिनाबिचारफँसिजाहिं।।१८।।

जो न होहि सनमुख रन आई। अहै नपुंसक सो नर भाई ।।
जोरहिं हाथ सामुहे आई। बाल खुले अरु बैठहिं धाई ।।
अरु यह कहहिं शरण मैं आयो। मुरछित सोवत नगन गनायो ।।
आयुध रहित शत्रु के साथी। शस्त्र विघात परे मनु जाती ।।
जो कोउ युद्ध भूमि को देखै। मारग सत् पुरुषन को पेखै ।।
इनसों युद्ध करै ना बुधवर। अबुध अबोध होय कोऊ नर ।।
त्यागि स्वामि शरणागत आवै। ताकहँ सब बिधिसों अपनावै ।।
अस विचार क्षत्रिन के माहीं। हिय धारहिं यह नेम सदाहीं ।।

दो०--राज्य वस्तु के प्राप्ति हित, करै यत्न बहु बार ।
जन असमर्थ अनाथ की, रक्षा करै सम्हार ।।१९।।

नित पुरुषार्थ करै बहु भाँती। जासो धन बल बाढ़ै जाती ।।
छल न करै काहू सों भाई। ह्वै निष्कपट रहै सब ठाईं ।।
निज रक्षा हित करहि उपाई। शत्रु हेत छल बल निपुणाई ।।
शत्रु छिद्र निशि बासर देखै। करहिं प्रवेश न सो विधि पेखै ।।

राजनीति राखहिं यहि भाँती । कच्छप की अवलोकिय जाती ।।
अर्थ हेत बक गति को देखै । शत्रुन हेत सिंह क्रम पेखै ।।
राज्य मध्य यदि डाकू चोरा । तिन कहँ दण्ड देइ बरजोरा ।।
जो प्रानी मन लोलुप धरहीं । नृपति तिनहिं निजवश में करहीं ।।

दो०--रक्षा राज्य करैं सदा, दण्ड दुष्ट को देइ ।
जिमि जगचावललेन हित, भूसी दूरि करेइ ।।२०।।

जोरत रहत मोह अविचारा । सोई नृपति लहै दुख भारा ।।
नष्ट होत जीवन तेहि नृप को । ह्वै करभ्रष्ट फिरहि जग भट को ।।
कृषत किये तनु सूखत प्राना । विधि सोइ राज प्रजाहित माना ।।
जो कोउ प्रजहिं देहि दुख भाई । सूखि जात मद मान नसाई ।।
यहि विधि यतन करै सोइ भाई । प्रजहिं दुःख होवे कछु नाईं ।।
यक यक ग्राम केर जो नेता । पहुँचावहिं दशपतिहिं निकेता ।।
दशपति विंशपती के पासा । गुप्त चरित पहुँचावत दासा ।।

छन्द—शत ग्राम के बिच राज थापहि भृत्य योग्य सुराखई ।
अरु ग्राम ग्राम बनाय संघ प्रधान एक सुहावई ।।
यहि भाँति दस-दस ग्राम बिच यक राजपुरुषसुराजई ।
बहु राजकेन्द्र बनाइ बिधिसों नीति को उर धारई ।। ३ ।।

दो०--पुनि सब प्रांतन की कथा, पहुँचै नृप के पास ।
सर्व देश की सभा करि, यत्न करै सुखबास ।।२१।।

विद्या सभा होहिं बहु ठामा । जासु प्रताप लहैं सुखधामा ।।
राज काज शुभ नीति विचारी । करहिं नृपति जो सबहितकारी ।।
धन जो गुप्त लेय अधिकारी । तेहि छीने सर्वस्व सम्हारी ।।
राज दण्ड देवै बहु भाँती । ताते पुनि कोउ होय न घाती ।।
पूरन ध्यान देय नृप भाई । अनुचर रक्षा करत सदाई ।।
सुख मय प्रजा होय जेहि भाँती । दोउ मिलिकर बाँधै सुखमाती ।।

जो सुख सहित प्रजा कर देई । ताकहँ नृप आदर सों लेई ॥
लखि निज लाभ प्रजहिं दुखदेई । नष्ट होत नृप अपयश लेई ॥

दो०--नृपतिसदा ही कार्य को, देखहि सुख के हेत ।
दुष्टन देवै दण्ड नित, सुजनन को सुख देत ।।२२।।

जासु राज्य बहु डाकू चोरा । नित प्रति कमँ करैं घर फोरा ॥
तहँ के शासक मृतक समाना । जीवित सहत रहत अपमाना ॥
याते धरम सहित निशि बासर । पालन प्रजा करै बहु आदर ॥
और करै नित नेह सप्रीती । वेदविहित कुल धर्म सुनीती ॥
पाछिल पहर रात्रि उठिधाई । रुचिसों शौच करै सुखदाई ॥
पुनि स्नान करै हितकारी । सन्ध्या करै प्रेम हिय धारी ॥
अग्निहोत्र सुखमूल सुहावा । करहि प्रेम सों जो हिय भावा ॥
तब पुनि राज सभा को जाई । प्रजहि मान दै करै बढ़ाई ॥

सो--०पुनि एकांत में जाय, बैठहि मंत्रिन सहित नृप ।
करि बिचार सुखदाय, पावन परउपकार हित ।। ३ ।।

मंत्रिन सहित बिचारहिं नीती । राजप्रथा की है जो रीती ॥
नृपति राखि यह निज मन ध्याना । विग्रह[१] संधि[२] सुआसन[३] याना[४] ॥
द्वैध[५] सु संश्रय[६] यह षट कर्मा । जानि यथावत सबको मर्मा ॥
हैं इन कर्मन की द्वै भाँती । युद्ध माँहि नृप रीति सुहाती ॥
निबल शरीर क्षीण तनु होई । हित लखि मित्र जो रोकैं कोई ॥
सो नृप बैठ रहै मन मारी । विविध भाँति "आसन" उच्चारी॥

---

[१] दुष्ट शत्रुओं से लड़ाई करना । [२] उनसे मेल कर लेना । [३] स्थिरता । [४] शत्रु से लड़ने के लिये जाना । [५] दो प्रकार की सेना करके सन्धि कर लेना । [६] निर्बलता में दूसरे प्रबल राजा का सहारा लेना ।

प्राप्त होय कोउ काज यकायक । मित्र सहित जो जावे नायक ॥
है वह "यान" नीति के माहीं । करि विचार देखहु मन माहीं ॥
करिके मेल "सन्धि" नृप करई । अथवा विजय माँहि जिय धरई ॥

दो०--अर्थ हेत निज हाथ सों, अथवा मित्र सुसंग ।
"विग्रह" की विधि जानिकै, करहु राजदुख भंग ॥२३॥

द्वै विधि भाग सेन कर करई । जीतब शत्रु बात उर धरई ॥
"द्वैध" ताहि मानत जग नीके । संश्रय सुनहु प्रेम सों हिय के ॥
जो निज अर्थ शरण में जाई । महा पुरुष बलवान सुहाई ॥
इनहित समय विचारहि राजन । युद्धनीति को करिये साधन ॥
नाना भाँति युद्ध नृप करहीं । जेहिविधि शत्रु मान मदहरहीं ॥
देखहु मत शास्त्रन को भाई । युद्ध क्रिया केहि भाँति बताई ॥
नाना भाँतिन व्यूह बनाये । युद्ध हेत जे परम सुहाये । ॥
सैनिक होहिं नृपति हितकारी । सेना - पति होवै बलकारी ॥

दो--शस्त्र जो नाना भाँति के, राखहि नृपति महान् ।
सन्मुख युद्ध करै महा, सैनिक जेहि गुनवान ॥२४॥

"दंड"[1]"वराह"[2]"शकट"[3] जेव्यूहा । "मकर"[4]सु"सूची"[5]व्यूहसमूहा ॥

---

[1] दण्ड व्यूह — दण्ड के समान सेना को चलावे ।

[2] वराह व्यूह—जैसे सुअर एक दूसरे के पीछे दौड़ते जाते हैं, कभी-कभी मिलकर एक झुंड हो जाते हैं ।

[3] शकट व्यूह—जैसे शकट अर्थात् गाड़ी के समान ।

[4] मकर व्यूह—जैसे मगर पानी में चलते हैं वैसे सेना को बनावे ।

[5] सूची व्यूह—जैसे सुई का अग्रभाग सूक्ष्म और पश्चात् स्थूल और उससे सूत्र स्थूल होता है इसी उद्देश्य से सेना को बनावे ।

“नीलकंठ”[1] अरु चक्र[2] बनावे । वज्र[3] व्यूह रचना देखरावे ॥
समर मध्य की विधि सुखदानी । मनू शास्त्र ने कह्यो बखानी ॥
भूमि अकाश और जल सेना । राखहु जो जेहि भाँति जुझेना ॥
धर्म सहित सोइ यत्न करीजै । दुष्टन हिये बुद्धि बल दजै ॥
जो यहि भाँति न समुझे भाई । कहिये तेहि बहु प्रीति दृढ़ाई ॥
ताही विधि जो मानत नाहीं । यथातथ्य कहिये तेहि ठांहीं ॥
मित्र शत्रु गति जानहि जोई । दुख न लहै बहुविधि सुख होई ॥

दो--निज बल देखि सदा नृपति, करै शत्रु व्यवहार ।
राज काज निज कर्म में, करै मित्र सो प्यार ॥२५॥

नृपति प्रात जागै हर्षाई । वैदिक कर्म करै सुखदाई ॥
संध्या आदि नित्य जो कर्मा । करहिं प्रेम सों है जो धर्मा ॥
पुनि नृप मंत्रि सहित तहँ जाई । देखहिं कोष सैन्य समुदाई ॥
नाना भाँतिन युद्ध की रीती । करहिं सकल अभ्यास सप्रीती ॥
पुनि गृह जाय करै आहारू । हविष अन्न सुन्दर सुख सारू ॥
मद्य मांस बुधि नाशक जोई । मादक द्रव्य तजै नृप सोई ॥
औरहु मादक हैं बहुतेरी । जाकहँ कहत सकल मुनि टेरी ॥
सो कहिहौं पुनरपि समुझाई । धर्म सहित जो नीति सुहाई ॥

---

[1] नीलकण्ठव्यूह—ऊपर नीचे झपट मारता है इस प्रकार सेना को बनाकर लड़ावे । जिधर भय विदित हो उधर सेना को फैलावे ।

[2] चक्रव्यूह अर्थात् पद्म व्यूह—चारों ओर सेना रक्खे और आप बीच में रहे जिधर से विशेष भय हो उधर ही मुख रक्खे । बहुत नृप जो किसी प्रकार की शंका रखते हों वह चारों ओर रहें ताकि सिवा सामने के फाटक के और किसी ओर से शत्रु न आ सके और बाद दूसरा कोई रास्ता निकालने का न हो ।

[3] वज्रव्यूह—जैसा दुधारा खड्ग दोनों ओर काट करता है वैसे युद्ध करते जायँ और प्रविष्ट भी होते चलें ।

दो०--यहि प्रकार कर बाँधई, प्रजा दुखित नहिं होय ।
पिता पुत्र सम्बन्ध है, करि हित राखहि सोय ।।२६।।

राजनीति औरहु सुखदाई । देखहु मनुस्मृती की भाई ।।
अष्टम और नवम अध्यावा । तेहि अवलोकहु परम सुहावा ।।
राज काज अष्टादश अहहीं । जो अपराध मनू ऋषि कहहीं ।।
प्रथम एक 'ऋणदान' कहाई । लेन देन अपवाद जो गाई ।।
है 'निक्षेप' दूसरो भाई । वस्तु धरोहरि लेत दबाई ।।
बिना स्वामि बेचे कोउ दूसर । है 'अस्वामि विक्रय' यह तीसर ।।
'हिलमिल के अपराध' जो करई । चातुर्थिक यह है जिय धरई ।।
पंचम 'देनहार ना देई' । जो कि धरोहर राखहिं तेई ।।

दो०--करहि चाकरी काहु की, तामें होय विवाद ।
वेतन नाहीं देत है, देत तो न्यून देखात ।।२७।।

सत्य प्रतिज्ञा भङ्ग जो करई । सप्तम धारा तेहि उर धरई ।।
अष्टम क्रय विक्रय के माहीं । लेन देन विच झगड़ा ठाहीं ।।
नवम पशू के स्वामी सङ्गा । पालनवारो करत जु दङ्गा ।।
दशम विवाद सुसीमा केरा । करहि मेड़ हित लड़हि सुबीरा ।।
एकादश काहू को भाई । देहि कठोर दंड तन ताई ।।
द्वादश बचन कठिन जो बोलत । है अपराधी जग में डोलत ।।
असत बचन नितकर बकवादा । करहि सदा सुजनन अपवादा ।।

दो०--जे जन चोरी करत हैं, औ नित डाका डारि ।
तिनहि मिलहि अति दंड जग, तेरह के अनुसारि ।।२८।।

जो बलात् जग कारज करहीं । दंड चतुर्दश के सम भरहीं ।।
नर अरु नारि करहिं व्यभिचारा । पंचादश अपराध उचारा ।।
धर्मविरुद्ध नारि नर करहीं । हियबिच उलटित्यागिको धरहीं ।।
षोड़श सोई न्याय की धारा । परम पुरुष मनु ने उचारा ।।

दशम सात नर नारि विभागा। दाय भाग नृप वर्णन लागा॥
अष्टादश में द्यूत बखानत। दाँव जो चेतन को धरि आवत॥
ये अष्टादश हैं व्यवहारा। धर्म सहित नृप करहिं सम्भारा॥
जासु सभा में धर्म न होई। मरे सभासद जानहु सोई॥
दो०--धर्मवन्त जे नर जगत, सभा मध्य नहिं जाँय।
जो जावहिं तो सत्यही, कहैं सुनैं समुझाय॥२९॥
जासु सभा में सत्य की ठाईं। होय असत्य सकल मन भाई॥
सबके देखत ही सो भाई। जानहु सकल मृत्यु नगिचाई॥
तहँ पर धर्म रहै कछु नाहीं। अरु अधर्म फैले सब ठाहीं॥
तेहि स्थल रक्षा नहिं होई। करै उपाय चहै जग कोई॥
धर्महि ते रक्षा नर केरी। होत सदा मुनि गन कह टेरी॥
ताते धर्म करौ मन लाई। आवे सुख सम्पति सब धाई॥
नाशहिं धर्म सो वृषल कहावे। सदा शूद्र की पदवी पावे॥
धर्म लोप कबहूँ नहिं करिये। धर्महि संग जात अनुसरिये॥
दो०--वस्तु जो है संसार में, छूटहि तन के साथ।
केवल धर्महि रहत है, सदा जीव के हाथ॥३०॥
सो०--होत महा अन्याय, जासु नृपति के राज्य में।
चारि भाग ह्वै जायँ, अधरम के तेहि ठाम पर॥४॥
'नृपति' 'सभासद' 'साक्षि' समेता। 'करता' केर कर्म है जेता॥
भोगत चारो हैं तेहि भाई। धर्म प्रथा तहँ जात बिलाई॥
जासु सभा यह नियम अनूपा। जो जस पुरुष तासु अनुरूपा॥
जो स्तुति के लायक होई। ताकी स्तुति करत सँजोई॥
जो नर निन्दा योग्य लखाई। ताकी होत न कबहुँ बड़ाई॥
जो है मान करन के योगा। ताको मान करत सब लोगा॥
जो है दण्ड केर अधिकारी। तिनहिं दण्ड देवे अति भारी॥
तहँ पर नृपति सभासद जेते। रहित पाप पावन हों तेते॥

दो०--कर्ता का ही पाप हो, नीति यहै मर्याद ।
सुनहु सुसाक्षिन की प्रथा, कहत ऋषी सुखसाद ॥३१॥
धर्मवान विद्वान नर, सब वर्णन के बीच ।
लोभ रहित निष्कपट हों, होहि न दुष्ट न नीच ॥३२॥
सदा सत्यवादी जो होहीं । तिनहिं करैं साक्षी सब जोहीं ॥
जो चोरी व्यभिचार बलाता । बचन कठोरहु दण्ड निपाता ॥
साक्षी परख न इन महँ करई । बहु सम्पति तहँ पर अनुसरई ॥
साक्षी द्वै प्रकार जग माहीं । देख्यो सुन्यो सत्य जो आहीं ॥
साक्षी बचन झूठ जो बोलहिं । पावहिं दंड मान निज खोवहिं ॥
असम्बद्ध जो बोलहि बचना । ताहि सभापति करहि न रचना[1] ॥
न्यायाधीश्वर[2] प्राडविवाकाँ[3] । पूछहि साक्षिन कर्म को खाकाँ[4] ॥
जे जग कहहिं सत्य प्रिय भाई । पावहिं सदगति ते सुखदाई ॥
दो०--सत्य व्रती जे पुरुष जग, ते सुख लहत महान ।
यश पावहिं संसार में, अन्त समय सुखदान ॥३३॥
लोभ मोह एकत्व के कारन । जो नर करत असत्य उचारन ॥
वह यह जानि लेहि मन माहीं । है प्रभु अन्तर्यामि सदाहीं ॥
पाप पुण्य सब देखनहारा । तेहि ढिग निसि वासर उजियारा ॥
लोभ मोह भय मित्र के हेता । काम क्रोध अज्ञान अचेता ॥
इनकी साक्षि न मानहिं कोई । मिथ्या समुझि रहैं हिय गोई ॥
मिथ्या साक्षि देय नर जोई । तिन पर दंड कह्यो मनु सोई ॥
लोभ से झूँठ गवाही देई । पन्द्रह दश आना तेहि लेई ॥
कहैं असत्य मोह फँसि जोई । तापर दण्ड तीन द्वि होई ॥
दो०--स्मृति नशत है मोह सों, तेहि पुनि बुद्धि नशात ।
बुद्धि नशे नर नशत है, यह जग रीति लखात ॥३४॥

---

[1] लिखाई । [2] न्यायकर्ता । [3] वकील । [4] समाचार ।

भय से असत सभा के माहीं । कहै कोउ जो बात बनाई ॥
तापर दण्ड सवा छे कीजै । मित्र हेत पर द्वादश लीजै ॥
कछुक बिधी यहि स्थल भाई । दण्ड विधान तुम्हें समुझाई ॥
राजदण्ड की बिधि बहु भाँती । देखहु मनु अध्याय की पाँती ॥
सप्तम अष्टम नवम बिलोकहु । पुनि नवनीति माहिं अवलोकहु ॥
निज निज समय जो हो अधिकारी । करैं समय अनुकूल विचारी ॥
यह संक्षेप रीति से भाई । राज धर्म पद्धति बतराई ॥
जेहि विधि पूर्व ऋषिन ने कहेऊ । हमहूँ दयानन्द सों सुनेऊ ॥

सो०--सोइ तुम्हारे हेत, कह्यो शिष्य समुझाय कै ।
जग उपदेश सुदेत, नशहि जाहि सों दुष्टपथ ॥५॥

दो०--गुरुवर अति सुख पायऊ, सुनि शुभ कथा प्रसंग ।
ऋषिवर की सुनि सुनि कथा, बाढ़त हिये उमंग ॥३५॥

(सत्य-सागर षष्ठम् तरङ्ग स० प्र० ६ स० समाप्तम्)

सप्तम् तरङ्ग (स० प्र० ७ स०)

ईश्वर और वेद

दो०--राज नियम को भेद सुनि, भो संतोष अपार ।
ईशभक्ति के भेद को, नाथ कहहु यकबार ॥१॥

दो०--एक समय ऋषिराज ढिग, भये शिष्य आरूढ़ ।
पूछत परम स्नेह सों, प्रश्न करत अति गूढ़ ॥२॥

सोई कथा सुनहु चित लाई । कहिहौं प्रेम सहित समुझाई ॥
शिष्य एक अति चतुर सुहावा । पूछन चहत ईश को भावा ॥
देखि स्वामि रुख बोलन लागा । नाय माथ हिय अति अनुरागा ॥
बन्दि चरण गुरु ढिग सो जाई । हाथ जोड़ि पुनि माथ नवाई ॥
क्षमहु नाथ यक मोर ढिठाई । पूछहुँ ईशभक्ति निपुणाई ॥
निराकार निर्गुण सुख रूपा । है जग व्यापक परम अनूपा ॥
यहि प्रकार जग मानत कोऊ । मानत ईश न है जग सोऊ ॥
कोउ कहत प्रभु नर दुख हेता । लेत मनुज तनु परम निकेता ॥

दो०--अरु कोउ कहत गुरू है, देव सीख महराज ।
औरहु नानाभाँति सों, कहत रहत द्विजराज ॥३॥

सो०--याते दीनदयाल, मम ऊपर कीजै कृपा ।
मैं न पड़ूँ भ्रमजाल, सोई बिधि प्रभु कीजिये ॥१॥

जेहि प्रकाश गुण कर्म स्वभावा । विद्या वारिधि लोक प्रभावा ॥
व्यापक सोई जगत में जानो । परमेश्वर सुखरूप बखानो ॥
"इष्ट" ईश जो जानत नाहीं । नास्तिक सुबुध कहैं तेहि काहीं ॥
ते डूबत दुखसागर माहीं । पावत कतहूँ सुःख सो नाहीं ॥

कहहुस्वामि पुनि मोहिं समुझाई। वेद कहा बहु ईश बताई ॥
कहत स्वामि अतिही हर्षाई। पूछेहु परम चरित्र सुहाई ॥
सोई प्रश्न अहैं जग नीके। नशहिं कुभाव सदा ही जी के ॥
ईशभक्ति दुर्लभ जग माहीं। बिन सत्संग न पावे ताहीं ॥

दो०--चारों वेदन के बिषे, नहिं हैं ईश अनेक ।
परम पुरुष जगदीश जग, है रक्षक वह एक ॥४॥

नाम अनेक देवतन केरे। लिखे वेद में हैं बहुतेरे ॥
सुनहु कान दै यह प्रभुताई। दिव्य सुखद गुण देव कहाई ॥
देव दिव्य गुण जानत रहहीं। महादेव प्रभु को सब कहहीं ॥
है सोई जग सिरजनहारा। निशिवासर सबका रखवारा ॥
ब्रह्म रात्रि जंग परलय कर्ता। न्यायाधीश सकल दुख हर्ता ॥
यहि प्रकार वेदन के माहीं। ईश नाम गुण कर्म सुहाहीं ॥
यहि बिधि तेंतिस देव बखानत। शत पथ ब्राह्मण में यह भाषत ॥
तेंतिस कोटि देवतन केरी। सुनहु सुनावहुँ कथा घनेरी ॥

दो०--'अग्नि' 'वायु','आकाश''जल,' 'अवनि''चन्द्र' 'नक्षत्र'।
'सूर्य'सहित हैं आठ बसु, सृष्टि विषय यह तंत्र ॥५॥

'प्राण' 'अपान''उदान' 'समाना'। 'नाग''कूर्म'कृकल''अरु'व्याना' ॥
'देवदत्त' औ 'धनंजय' जानहु। सहित 'जीव' यह रुद्र बखानहु ॥
देखि वियोग रुदन बहु करहीं। कहिं बुध रुद्र इनहिं उर धरहीं ॥
'द्वादश' मास जो संवत आई। है आदित्य सुनहु चितलाई ॥
'विद्वित' (इन्द्र) बखानत वेदा। 'यज्ञ' (प्रजापति) है तजि खेदा ॥
ये गुणवान सु तैंतिस देवा। चौंतिस परमातम लखि लेवा ॥
तेहि प्रभु की कीजे शुभ सेवा। "इष्ट" कर्म जो चाहत लेवा ॥
वेद सदा यह भाषत नीके। भजहु ताहि भ्रम त्यागहु जी के ॥

दो०--ईश वचन को प्रेम सों, सुनहु सुसज्जन वृन्द ।
भक्ति करै ता ईश की, छूटैं सब जग द्वन्द ॥६॥
मम प्रकाश है सब जग माहीं । सूर्य समान बिलोकहु ताहीं ॥
जो पथ वेद चलत दिन राती । ताकहुँ दुख न होत कोउ भाँती ॥
ईश करत सब जगकी रचना । पालन प्रलय करत जिमिसपना ॥
ताते सुनहु सकल चितलाई । सदा ईश है जग सुखदाई ॥
जग उपजाय करत रखवारी । एक स्वामि सब जग सुखकारी ॥
तेहि प्रभु की स्तुति दिन राती । करहि सदा जग मानव जाती ॥
यह ऋषिराज कहहु समुझाई । ईश सिद्धि केहि भाँति सुहाई ॥
जग प्रत्यक्ष प्रमाण सुहाई । ज्ञान कर्म जो है निपुणाई ॥
दो०--जग प्रत्यक्ष प्रमाण से, ईश्वर जानो जात ।
बहुरि शिष्य वर्णतभयो, यह न न्याय मर्याद ॥ ७ ॥
तब ऋषि कहत सरल मृदु बानी । गौतम ऋषि की सुनहु कहानी ॥
इन्द्रिय मन सुख दुख समुदाई । हो उत्पन्न ज्ञान सुखदाई ॥
सोई है प्रत्यक्ष प्रमाना । गुन उत्पत्ति होत जग जाना ॥
शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धा । ज्ञान, ब्रह्म तेहि छोरत फन्दा ।
मन प्रत्यक्ष होत जेहि भाँती । ईस लखहु प्रत्यक्ष सुहाती ॥
जीव जबै इन्द्रिन ते छूटत । दिव्य ईश पदवी तेहि सूझत ॥
बहुरि कह्यो समुझावहु भाई । देश विशेष कि व्यापक साँई ॥
स्वामि कह्यो व्यापक जगराई । अन्तर्यामि रूप दर्शाई ॥
दो०--जगदीश्वर करुणायतन, दुखनाशक भगवन्त ।
सत चित आनँदरूपप्रभु, नहिं पावत कोउ अंत ॥ ८ ॥
जो न होत व्यापक जगदीशा । तो सर्वत्र होत किमि ईशा ॥
निराकार अथवा साकारा । ईश्वर के गुन करहु उचारा ॥
तब स्वामी समुझाई सुनीती । निराकार प्रभु की जो रीती ॥

जो ईश्वर मानहि साकारा । तौ व्यापक केहि भाँति उचारा ॥
जब व्यापक नहिं होवे सांई । तौ सर्वज्ञ कहा दर्शाई ॥
एक बात औरहु सुनि लीजै । जो है नाप[1] तौल लखि लीजै ॥
जो परिमित है जग में भाई । ताके गुन परिमित दर्शाई ॥

दो०--ईश्वर स्तुति से सदा, निज गुन होत पवित्र ।
सद विचार की वासना, प्रकट होत सर्वत्र ॥ ९ ॥

कोउ अस कहत जगत के माहीं । प्रकटत निज इच्छातनु माहीं ॥
पहिले निराकार ही रहेऊ । ह्वै सकार पीछे को गयऊ ॥
याते निश्चय करिये भाई । निराकार ईश्वर सुखदाई ॥
शिष्य एक बोल्यो पुनि ताता । है कह शक्तिमान जग त्राता ॥
कहेउ स्वामि सुनिये चितलाई । ईश्वर की गति परम सुहाई ॥
ईश अनादि सकल गुणखानी । जसहम पाछिल कहेउ बखानी ॥
पाप पुन्य फल देत सदाई । जेहि जीवन हो करहि उपाई ॥
स्तुति तासु करहु चितलाई । सहित प्रेम भक्ती मन लाई ॥
छं०—बलवान व्यापक शुद्ध अन्तर्यामि नायक ईश है ।
सर्वज्ञ और अनन्त बुधवर स्वयं सिद्ध कवीश है ॥
अरु है सनातन दिव्य निर्गुण काय रहित मुनीश है ।
नहिं बिधत नारिन बीच निष्पापी सदा जगदीश है ॥१॥
जो अर्थ हमरो होय प्रभु तेहि तुरत तुम पूरन करौ ।
निशि द्योस आठौ याम हमरे काज़ सब हिय में धरौ ॥
मोहिं जानि निज अनुचर दयानिधि दुःखवेगि सबै हरौ ।
वहु भाँति भक्ती प्रेम सों प्रभु विनय निशि वासर करौ ॥२॥

दो--स्वप्रकाश जगदीश प्रभु, ताहि भजत विद्वान ।
बुद्धि हेत निशिवासरहु, हमहु भज़ैं धरि ध्यान ॥१०॥

---

[1] परिमाण ।

हे ऐश्वर्य - वान जग - राई । मोहिं ऐश्वर्य्य देहु सुखदाई ॥
बलयुत नाथ बिलोकहुँ तोही । दीजै बल जेहि मम हित होई ॥
तुम समरत्थवान जग स्वामी । सो मोहिं देहु जानि अनुगामी ॥
देत सदा दुष्टन को दण्डा । जासो कोउ नहिं होत उदंडा ॥
सहन शक्ति प्रभु दीजै मोहीं । जेहि अपराध कतहुँ नहिं होहीं ॥
जो मन जागत जावहि दूरी । तैसेहि सोवत जात जरूरी ॥
हे प्रकाश मय जीवन नाथा । करहु दया मोहिं जानि अनाथा ॥
नाथ कृपा अस मो पर कीजै । मो मन शुभ संकल्पहि दीजै ॥

दो०--जेहि प्रकाश विद्वान नर, करत रहत शुभ कर्म ।
सोई मो मन में बसै, शुभ संकल्प जो धर्म ॥११॥

नशहि सदा मन की अकुलाई । रहै शान्तमय परम सोहाई ॥
जो मन शुद्ध होय बहु भाँती । जासों भ्रमत रहत दिन राती ॥
जो हैं कठिन चेतावन हारा । तेहिवृति करत सकल उजियारा ॥
ताको शुभ संकल्प बनावहु । जेहि न फँसै सो यत्न सिखावहु ॥
यहि विधि प्रभु स्तुति दिन राती । करहि सो पावे सुख बहु भाँती ॥
ऐसे प्रभुहि हिये बिच धरिये । बुध जन के पथ को अनुसरिये ॥
पुनि प्रार्थना करिये सोई । जेहि विधि धर्म अर्थ सुख होई ॥
हे प्रभु स्वप्रकाश जगदीशा । परमातम अति श्रेष्ठ मुनीशा ॥

दो०--मोहिं सदा शुभ पंथ पर, चलन हेत बुधि देहु ।
कुटिल पाप आचार सब, नाथ वेगि हरि लेहु ॥१२॥

हे प्रभु रुद्र स्वरूप महन्ता । हौं न होहुँ काहू कर हन्ता ॥
अरु मोहिं नाथ बताइ सुपंथा । चलहुं सदा जेहि जावहिं सन्ता ॥
अरु मोहिं सदा देहु बुधि नीकी । चिंता नशहि नाथ मम जी की ॥
हे प्रभु दीनदयाल कृपाला । छुटहि असद मारग जंजाला ॥
विद्याविद मोहिं कीजै सांई । शुभ सतमार्ग मिलै सुखदाई ॥
ईश्वर विनय करहु दिन राती । माँगहु जनहित सुख बहु भाँती ॥

पर अस ईस भरोस न कीजै । ह्वै आलसि पौरुष तजि दीजै ।।
जब नर करत रहत पुरुषारथ । देत सदा चित नित परमारथ ।।
तब ईश्वर तेहि नर अवलोकत । ईश दृष्टि जन सुख को भोगत ।।

दो०—कर्म करत जीवित रहै, जो शत वर्ष प्रमान ।
ताको कहुँ दुर्लभ नहीं, है जो जग सामान ।।१३।।

जिमि पिपीलिका जग के माहीं । करत रहत पुरुषार्थ सदाहीं ।।
ग्रहन करै ताकी गति जो नर । अरु पुरुषारथ करहि निरन्तर ।।
पुनि उपनिषद् कहेउ यहि भाँती । सकल विचारहु मानव जाती ।।
मूरखता मल जेहि नशि गयऊ । योग समाधि करत जब भयऊ ।।
आतम परखि परम पद हेरत । निशिवासर पलपल प्रभु टेरत ।।
तेहि सुख योग मिलत है भाई । अन्तःकरण कुभाव नशाई ।।
पुनि अष्टाङ्ग योग अधिकारी । करै सदा भक्ती सुखकारी ।।
प्रभु हिय की गति जानन वारो । सर्वान्तरयामी उच्चारो ।।

दो०—यम अरु नियम सुआसन, प्राणायाम करेय ।
प्रत्याहार अरु धारणा, ध्यान समाधि धरेय ।।१४।।

काहुहिं दुःख देइ नहिं कबई । सदा सत्य उर अन्तर बसई ।।
करै न चोरि बने ब्रह्मचारी । करि संतोष बनै अविकारी ।।
यथा लाभ आनन्द मनावै । अपरिग्रह चिन्ता नहिं आवै ।।
यह यम सूक्षम तुम्हहिं बताये । योग पतंजलि जो मन भाये ।।
जानन चहहु योग की रीती । देखहु योग शास्त्र करि प्रीती ।।
रहहु पवित्र करहु सन्तोषा । अरु तप करहु तजहु सब दोषा ।।
अरु सद्ग्रन्थ पढ़हु निशिबासर । करि स्वाध्यायबनहुजग आगर ।।
ईश ध्यान करिये दिन-राती । है सोइ नियम परम सुखमाती ।।
सदा हिये धारहु सब भाई । ओ३म् नाम ईश्वर सुखदाई ।।
निज आतम परमेश्वर के हित । सौंपहु पुनि आज्ञा धारहु चित ।।

दो०--प्रभु-उपासना चहहु चित, खोजहु ठौर यकन्त ।
शुद्ध देश आसन परम, ईश्वरध्यान धरन्त ॥ १५ ॥
प्राणायाम करहु चितलाई । रोकि मनहिं यक ढिग ठहराई ॥
कण्ठ नेत्र अरु शिखा सुहाई । पीठ मध्य जो अस्थि लखाई ॥
काहू नेत्र मनहि ठहरावहु । करि संयम शुभ आसन साजहु ॥
नर यह यतन करत है जबई । अन्तःकरण शुद्ध हो तबई ॥
धीर चित्त हो जो नर भाई । धारण करै ईश प्रभुताई ॥
यक क्षण ध्यान धरै नर जोई । पावे सुख सम्पति बहु सोई ॥
याते निशि वासर मन लाई । बन्दहु ईश परम सुखदाई ॥
जो जग ईश्वर मानत नाहीं । ते कृतघ्नि मूरख जग माहीं ॥
दो०--एक शिष्य पूछत भयो, कहहु नाथ समुझाय ।
बिना इन्द्रियन के कतहुँ, करत कर्म कोउ नायँ ॥ १६ ॥
जिमि मानव संसार में, कर्म करत निज हेत ।
ताहि भाँति ईश्वर सदा, सब कर्मन कहँ देत ॥ १७ ॥
तब ऋषिराज सुनावन लागे । सुनत नरन के औगुन भागे ॥
तुम उपनिषद् कथा नहिं जानत । ईश्वर के इन्द्री सुख मानत ॥
बिना नेत्र जग देखन हारा । निशि-दिन है ताकहँ उजियारा ॥
कानन बिन जन की जो बानी । सुनहिं प्रेम सों सब गुनखानी ॥
बिन हाथन जेहि जगत रचाया । व्यापक है बिन पद जगराया ॥
जानत है उर अन्तर केरी । अन्तष्करन बिना जग हेरी ॥
सोइ प्रभु पूरन श्रेष्ठ कहावै । भजहि ताहिं इच्छित फल पावै ॥
जो तेहि निर्गुन निष्क्रिय माने । ते नर परम अबोध अयाने ॥
उपनिषदन प्रभु को यहि भाँती । भाख्यौं वेद विहित बहु भाँती ॥
दो०--कारन कारज नहिं अहै, तेहि ईश्वर के माँहि ।
शक्तिवान सम्पन्न जग, परम ईश जग आहि ॥ १८ ॥

प्रश्न करत यक आइके, किमि मानहि हम ईश ।
जब प्रत्यक्ष प्रमाण नहिं, का प्रमाण जगदीश ॥१९॥

स्वामि कहत तेहि क्षण हर्षाई । कछु विचार कीजै मन भाई ॥
ईश्वर नहिं प्रत्यक्ष प्रमाना । कारण आदि जगत सब जाना ॥
अन्त आदि ईश्वर के माहीं । लखहु न कोउ जो मन सकुचाहीं ॥
क्लेश कर्म अरु इष्ट अनिष्टा । रहित वासना ईश विशिष्टा ॥
परम पुरुष जग व्यापक हेता । अरु शरीर बिच जीव निकेता ॥
है निमित्त कारण जगदीशा । प्रकृती वश नहिं होत मनीषा ॥
प्रकृति सदा बदलत यहि भाँती । जासों जन्म लेत सब जाती ॥
ईश्वर प्रकृति वश्य नहिं होई । याते जन्म न धारत सोई ॥

दो०-पुनि कह गीता के बिषे, कह्यो कृष्ण केहि हेत ।
नाश होत जब धर्म को, हौं अवतार सु लेत ॥२०॥

सो०-धर्म सु थापन हेत, युग युग हों जन्मत रहत ।
दुष्ट नरन दुख देत, शुभ सुजनन आनँद करत ॥२॥

यह संदेह मोर मन आई । तेहि पुनि दूरि करो ऋषिराई ॥
चहुँदिशि देखि स्वामि अस कहेऊ । देखत मोह सबन मन लयऊ ॥
परमेश्वर अवतार न होई । धर्मवान जग जन्मत कोई ॥
निज हित कृष्ण कह्यो जो बानी । तौ यामहँ कछु है नहिं हानी ॥
परोपकार सत्पुरुषन को गुण । सुखदाई अपूर्व है लक्षण ॥
जग चौबिस अवतार कहानी । कंस दशानन हेत बखानी ॥
यह सतपुरुष परम गुन खानी । सत्य प्रतिज्ञक अरु बहुदानी ॥
जब जग बढ़त पाप अधिकाई । बुधि विद्याबल सब नशिजाई ॥

दो०-छिपत भानु जब मेघ बिच, जग अँधियार लखात ।
तिमि विद्या के लोप से, "इष्ट" सुधर्म बिलात ॥२१॥

तब नर अधरम में रत होई। वेद विरुद्ध चलैं सब कोई॥
तब कोउ पुरुष जगत के माहीं। प्रकृति आत्म शक्ती दर्शाहीं॥
तिनहिं कहत है जग अवतारा। देखि परम पौरुष उपकारा॥
पर यह बात सुनहु चितलाई। ईश जन्म नहिं परत लखाई॥
वेदन में कहुँ नाहिं प्रमाना। जन्म लेत जो ईश महाना॥
जन्मत सदा जीव जग आई। निज कर्तव सों सो तनुपाई॥

दो०--गमनागमन न ईश में, नहिं है मानव कर्म।
नहि वह पाप छुड़ावई, नाशत नाहिं अधर्म॥२२॥
गती होत प्रकृती बिषे, कर्म हो इन्द्रिन साथ।
ईश छुड़ावत पाप जो, न्याय धर्म नशि जात॥२३॥
नृपति जबै अपराध को, क्षमा करहि जगमाहिं।
तो अपराधी जगत में, प्रकट स्वतंत्र देखाहिं॥२४॥

पुनि पूछत एक चतुर सयाना। जीव स्वतंत्र कि परवशमाना॥
ऋषी कहत सुनिये चितलाई। निज कर्तव्य स्वतंत्र सदाई॥
ईश विषय परतंत्र अमाया। पाणिनि मुनि तेहिकहि समुझाया॥
नाथ सो युक्ति कहहु समुझाई। केहि विधि जीव परम गति पाई॥
इन्द्रिय अन्तःकरण शरीरा। है आतम आधीन समीरा॥
है स्वतंत्र मानहु सब भाई। कर्म करै फल पावै धाई॥
जीव जबै परबस ह्वै जाई। कर्म करै ताके अनुसाई॥
जीव करम हित है स्वाधीना। फल भोगनहित ईश अधीना॥

दो०--ईश रचत संसार को, अरु बहु देत समर्थ।
परम पिता आदेश से, होत सिद्ध सब अर्थ॥२५॥
ईश शक्ति बिन जगत में, करि न सकै कोउ काज।
है किमि भोक्ता कर्म को, बहुरि कहहु महराज॥२६॥

उत्पति जीव होत नहिं भाई । है अनादि आतम दर्शाई ॥
यहि विधि दयानन्द ऋषिराई । कहत सबन सों हैं समुझाई ॥
हम जो कर्म करत दिन राती । तेहि प्रभु देखत हैं सबभाँती ॥
कर्मनुकूल सदा फल पावे । ईश्वर में कछु दोष न आवे ॥
जिमिअसि[1] उपजि परबतनमाहीं । देश विदेश सबै लै जाहीं ॥
कोऊ बनावत है करवाला[2] । अरुकोउरचत सुविधिसोंभाला ॥
ले करबाल हनै[3] कोउ धाई । दोष कहा असिपरबत भाई ॥
अरु यह कहै मोर नहिं दोषा । यह करबाल केर है रोषा ॥

दो०—नृपति दण्ड दे मनुज को, नहिं देवे करवाल ।
त्यहिविधिईश्वर को लखहु, पड़हु न तुम भ्रमजाल॥२७

जो हम कर्म करें दिन राती । ताको फल पावहिं बहुभाँती ॥
ईश जीव के भेद सुनावहुँ । जेहिंभ्रमजाय सोयत्नसिखावहुँ ॥
इच्छा, द्वेष, प्रयत्न गंभीरा । सुख दुख ज्ञान आत्मबलधीरा ॥
ये षट लक्षण जीव विलोकहु । होहिं जहाँ तेहि आतम पेखहु ॥
प्रान, अपान, निमिष, उनमेषा । मन,गति,इन्द्रिय, कर्म विशेषा ॥
सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्ना । वैशेषिक आतम गुन बरना ॥
जौ लगि जीव बसत तनुमाहीं । तौलगि सुखसम्पति दर्साहीं ॥
जीव शरीर केर यह नाता । रथ आरूढ़ रथी जिमिताता ॥

दो०—जीव जबै तनु ते पृथक, होत कर्म अनुसार ।
सहित इन्द्रियन के लखहु, यह शरीर बेकार ॥२८॥

है अल्पज्ञ जीव यह भाई । माया बस सब जात भुलाई ॥
है सर्वज्ञ ईश जग स्वामी । नित्य अनादि जो अन्तर्यामी ॥
जीव ईश गुन बिलग लखाई । परवश जीव कर्म के भाई ॥
पूछत एक ऋषी सों आई । जानि सुअवसर परम सुहाई ॥
पुनि यह कहहु मोहिं समुझाई । ईश्वर सुख दुख देत कि नाईं ॥

---

[1] लोहा । [2] तलवार । [3] मारै ।

है त्रिकालदर्शी जगराया। जानत भूत भविष्य अमाया॥
तौ पुनि दोष जीव किमि होई। जानि भविष्य करावत सोई॥
कहत स्वामिहँसि तुम्हरी जानी। ईश्वर हू है अल्प ज्ञानी॥
तीन काल को जाननवारो। ता प्रभु को यहि भाँति उचारो॥

दो०--ईश्वर को यहि भाँति जो, मानत मानव जाति।
महा अज्ञ ते मनुज हैं, पावत नहिं केहु भाँति॥२९॥

जो उत्पति ह्वै नशहि सदाई। ताकहँ भूतकाल सब गाई॥
बहुरि होत आगे को भाई। जानहु ताहि भविष्य सदाई॥
ईश्वर काल भेद है नाहीं। है सर्वज्ञ सदा सुखदाई॥
ईश्वर पर कोउ दोष न आवत। जीव करत सोई है पावत॥
व्यापक ईश विलोकहु सब जन। व्याप्यजीवको जानहुनिजमन॥
जो तुम यक रस दोनों जानो। जीव ब्रह्म सम गुनकरि मानो॥
तो यह कथन सकल अँधियारा। मानहिनहिं कोउ जहँ उजियारा॥
ईश्वर सेव्य सु सेवक जीवा। स्वामि भृत्य सुतपितु हितसीवा॥

दो०--जिमि पितु देखत सुतन को, सदा चलन व्यवहार।
तिमि सारे संसार को, लेत सु ईश निहार॥३०॥

सुनहु स्वामि हम सुनि सुनि हारे। मैं हौं ब्रह्म अधिक उच्चारे॥
अरु यह कहत वेद के बचना। कबहु कहा वेदन यह बरना॥
बेद बचन नहिं यह ऋषि कहेऊ। स्वार्थिन पन्थ हेत गढ़ि लयऊ॥
जीव ब्रह्म द्वौ बिलग उपाधी। जिमि मैं अरु वह है जनबाधी॥
ह्वै समाधि चित ईशहिं देखै। प्रभु गुन कर्म स्वभावहिं पेखै॥
ईश मगन मन डिगै न कबई। वह सहधर्म ब्रह्मवत गिनई॥
वेद अर्थ नहिं समुझत भाई। जानत नाहिं ईश निपुणाई॥

दो०--छान्दोग्य उपनिषद को, जो तुम देत प्रमान।
ब्रह्म शब्द तहुँ पै नहीं, है अद्वैत महान॥३१॥

अति सूक्षम प्रभु जानन योगा। योवन मूल जनत सुख भोगा ।।
ईश्वर व्यापक है सब ठाहीं। जीव तासु को जानत नाहीं ।।
योगी जब समाधि चित धारै। तबहिं ईशमय जगत निहारै ।।
जो वेदांति नवीन समय के। आतम ब्रह्म कहत हिय ठनि के ।।
नहिं जानत वेदांत को सारा। कह्यो व्यास मुनि जो विस्तारा ।।
याज्ञवल्क ऋषि सहज सुभाऊ। मैत्रेयी सों कह सतभाऊ ।।
अन्तर जीव बसत अविनाशी। पृथक आत्मा से सुखराशी ।।
मूढ़ जीव जेहि जानत नाहीं। व्यापक जीव ईश के माहीं ।।

दो०–तिमि शरीरबिच आत्मा, बसत रहत निसि द्योस।
तिमि आतम बिच ईश है, व्यापि रह्यो ब्रह्म कोस ।।३२

देखत जीव शुभाशुभ कर्मा। दै फल राखत नियमित धर्मा ।।
सो प्रभु अन्तरयाम्य विनाशी। व्यापक जगत सो घट घट वासी।।
जब नर योग समाधि सम्हारे। बैठि यकान्त सो आसन मारे ।।
तब कहि सकत ब्रह्म यह सोई। व्यापि रह्यो जग बिच है जोई ।।
तब दण्डी यक बोलत भयऊ। तैत्तिरीय के बचन जो कहेऊ ।।
ईश कहत रचिके मैं जग को। पुनि प्रकटों प्रानिन के तन को ।।
व्यापक जीव रूप ह्वै करके। बसहु शरीरन में यह ठनिके ।।

दो०–व्याख्या नाम रूप की, करूँ जगत के हेत।
ईश रचाया जगत सब, बसि अन्तर फल देत ।।३३।।

कहत स्वामि सुनिये महराजा। और विचारहु सकल समाजा ।।
जो कुछ शब्द अर्थ तुम जानत। तौ काहे अस अनरथ भाषत ।।
यक प्रवेश यक अनुप्रवेशा। द्वै संज्ञा है पृथक सुरेशा ।।
जीव प्रविष्ट होत तनु माहीं। ईश्वर अनुप्रविष्ट दर्शाहीं ।।
ईश जीव सँग व्यापक भाई। पर नहिं जीव ब्रह्म ह्वै जाई ।।
अनू शब्द का अर्थ विचारहु। निज शंका को पुनि निर्वारहु ।।
बोलत बहुरि सु दण्डी सांई। हम देख्यो जो कहत सुनाई ।।

सो०--ग्रीषम ऋतु के माहिं, जेहि देख्यो वाराणसी ।
जब प्राविट ऋतु आइ, तेहि मथुरा निरखत भयउ ।।३।।

दो०--काल प्रथा को त्यागि के, लखिये पुरुष विशेष ।
भाग त्यागि लक्षण लखहु, ईश परीक्षा देश ।।३४।।

काल उपाधि अविद्या त्यागहि । चेतन मात्र लक्ष को मानहि ॥
यहि विधि जीवब्रह्म हम कहहीं । जो है सत्य ताहि को लहहीं ॥
पूछत स्वामि बतावहु भाई । नित्य अनित्य जीव प्रभुताई ॥
अरु ईश्वर को केहि विधि जानहु । जीव अनित्य या नित्य लखाई ॥
तब दण्डी इमि कहत सयाने । जनित उपाधि अनित्य दोउ माने ॥
स्वामी बहुरि उपाधि के हेता । पूछत नित्य अनित्य निकेता ॥
तब वेदान्त कारिका दण्डी । निज मत बहुरि बताइ अखंडी ॥
षट पदार्थ वेदान्त के मानत । जो संक्षेप रूप हम जानत ॥

दो०--प्रथम 'जीव' को कहत हैं, दूजो 'ईश' महान ।
अहै तीसरो 'ब्रह्म' जग, देखै सुःख महान ।।३५।।

जीव ईश में भेद विशेषा । जानहु ताहि चतुर्थ 'निशेषा' ॥
पंचम है 'अज्ञान' अविद्या । षष्ट सु चेतन योग 'अविद्या' ॥
मानत इनहि अनादि अनन्ता । एक ब्रह्म अरु पाँचौ सान्ता ॥
जौ लगि जन अज्ञानी रहई । तौ लगि जगत पापमय अहई ॥
पुनि जब ज्ञान प्रकट ह्वै जाई । तब यह पाँचौ नशत देखाई ॥
आदि न जान परत पाँचों की । मानि अनादि फिरत हैं अटकी ॥
सान्त कहत इन नाश के हेता । ज्ञान होत वह ब्रह्म निकेता ॥
कहत स्वामि सुनिये वेदान्ती । हो तुम केहि प्रकार सिद्धान्ती ॥

दो०--यह श्लोक तुम्हार द्वौ, हैं अशुद्ध बहु भाँति ।
क्योंकि अविद्या योग बिन, ईश न सिद्ध देखाति।।३६।।

माया जीव केर बिन योगा। सिद्ध तुम्हार ईश मति होगा ।।
षष्ठ पदारथ कहेउ जो भाई। यह पछिले में जात समाई ।।
माया ब्रह्म अविद्या योगा। सिद्ध न ब्रह्म करिसकत लोगा ।।
यह तुम्हार मत के अनुसारा। ईश अविद्या से नहिं न्यारा ।।
याते प्रकट पदारथ दोई। ब्रह्म अविद्या मानत जोई ।।
षष्ठ पदारथ सिद्ध न होई। मानत ईश भाव तुम जोई ।।
याते सुनहु हमारी बाता। जानहु भेद ईश कर ताता ।।
नित्य शुद्ध जो मुक्त स्वभावा। व्यापक बुद्धि अनन्त कहावा ।।

दो०—ईश माहिं अज्ञान को, देत सु आश्रय जोय ।
तो यहि दोष प्रभाव से, ईश शुद्ध नहिं होय ।।३७।।

अन्तःकरन उपाधि घनेरी। ब्रह्म उपाधि हीन कह टेरी ।।
ब्रह्म अखण्ड एक रस भाई। व्यापक ब्रह्म अनादि लखाई ।।
यदि कोउ पूछै दण्डिन जाई। अन्तःकरन चलत कै नाई ।।
तब दण्डी इमि कहत बखानी। चलत सु अन्तःकरन सज्ञानी ।।
पूछत स्वामि चलत का भाई। अन्तःकरन सङ्ग ब्रह्म धाई ।।
स्थिर ब्रह्म सु दण्डी कहेऊ। तब महर्षि समुझावत भयऊ ।।
अन्तःकरन जो त्यागत देशा। तहँ अज्ञान रहत नहिं लेशा ।।
त्यागि देश वह जावे धाई। तहँ को ब्रह्म अज्ञान लखाई ।।

दो०—यहि प्रकार की बात को, जो नर लेवै मानि ।
तो क्षणक्षण में ब्रह्महू, ज्ञानी हो अज्ञानि ।।३८।।

मोक्ष बन्ध क्षण भंगुर होवे। सकल स्मृती को नर खोवे ।।
जो तुम कहौ ब्रह्म है एका। कहहु सो किमि सर्वज्ञ न नेका ।।
जो यह कहेउ सबन समुझाई। अन्तःकरन भिन्न बतराई ।।
होत ब्रह्म यहि भाँति विभिन्ना। लखिचेतन जड़ मन हो खिन्ना ।।
जो इन दोहुन ज्ञान न होई। ज्ञान सो चिदाभास को होई ।।
तो सिद्धान्त हमार बलिष्ठा। रहत जगत चेतन है श्रेष्ठा ।।

अन्तःकरण और चिदा भासा । यह हैं नश्य करै जनि आसा ॥
या विधि मोक्ष दूरि ह्वै जाई । रहत कबहु ब्रह्म स्थिरताई ॥
दो०--तब दंडी इमि कहत भे, कहौ स्वामि समुझाइ ।
होत सिद्ध अद्वैत किमि, जीव ब्रह्म बिलगाइ ॥३९॥
कहत स्वामि डरपहु किमि भाई । विद्या ज्ञान करहु सुखदाई ॥
और विशेष्य विशेषण जानहु । ईश्वर जीव पृथक करि मानहु ॥
ईश अद्वैत विशेषण जहवाँ । जिमि जग कहत कहावत तहवाँ ॥
बसत ग्राम बिचइक अतिधीरा । है नहिं दूसर तेहि सम बीरा ॥
अरु यक धनी देखि नर कहहीं । यहि सम दूसर धनिक न अहहीं ॥
तौ कह सिद्ध होत यह बाता । इनसे बली न कोउ है ताता ॥
तो यह अवशि मानिबे लायक । हैं नहिं न्यून बली धनदायक ॥
या प्रकार जग बहुत कहानी । मानत ताहि सु पंडित ज्ञानी ॥
दो०--ब्रह्म सदा है एक रस, प्रकृती जीव अनेक ।
ब्रह्म निरूपण के लिये, हैं अद्वैत विवेक ॥४०॥
द्वैत और अद्वैत की, सिद्धि न बाधक होइ ।
ब्रह्म जीव अरु प्रकृति जग, हैं अनादि त्रय सोइ ॥४१॥
तुम किमि शोच करहु अधिकाई । हिये बिचारहु कछु प्रभुताई ॥
ब्रह्म सु सत चित आनँद पेखहु । जीव अस्ति नहिं नास्ती देखहु ॥
है प्रिय रूप एकता दोऊ । पुनि किमि बिलग बतावहु सोऊ ॥
यह संदेह होत मन मेरे । कहत सुदंडी वचन घनेरे ॥
तब ऋषि कहन लगे मुसकाई । सुनहु भ्रात कछु चित्त लगाई ॥
होत सधर्म कछुक हैं एका । जिमि जड़ पृथ्वी अग्निअनेका ॥
अवनि माहिं बहु गुण दिखराई । तेहि विधि अग्नि केर निपुणाई ॥
आंखिन देखत जीव सदाई । मुख से अशन करत अधिकाई ॥
सुनै कान सों निशि दिन बाता । चलत सदा पग सों सब ताता ॥

सो०—है अलपज्ञ सुजीव, ब्रह्म सदा सर्वज्ञ है।
पावत सुःख अतीव, जीव जो ईश्वर भजत है ।।४।।
तब यक प्रश्न करन अस लागा। देखि स्वामि अति ही अनुरागा ।।
कबहुँक जीव ब्रह्म यक होई। अथवा रहत बिलग ही सोई ।।
कहत स्वामि हम पूरब कहेऊ। अबहु सुनहु जो कछु भ्रम रहेऊ ।।
ईश ब्रह्म साधर्म को भावा। तबहिं एकता को फल पावा ।।
जिमि आकाश द्रव्य बहुतेरी। होत न पृथक रहत है घेरी ।।
धरम विरुद्ध मेल नहिं होई। करहि उपाय चहै जो कोई ।।
बहुतक प्रश्न करत दिन राती। ईश सगुन वा निर्गुन जाती ।।
विनके हेत कथन अस भाई। निर्गुन सगुन दुऔ विधि साँई ।।
दो०—पूछि उठेउ तेहि काल यक, होवे यह केहि भाँति।
एक म्यान तलवार द्वै, कबहूँ नाँहि समाति ।।४२।।

एक सगुन यक निर्गुन दोऊ। केहि विधि रहत एक में सोऊ ।।
बबहिं स्वामि यह कह समुझाई। स्वाभाविक की रीति लखाई ।।
रूप आदि गुन जड़ के माहीं। चेतन ज्ञान सबै दर्शाहीं ।।
जड़ में ज्ञान न देखत भाई। नहिं चेतन जड़ता दिखराई ।।
कहा सगुन जामहँ गुन होई। गुनके नशत हो निर्गुण सोई ।।
तिमि अनन्त बलज्ञान विशाला। ईश्वर सगुन होत तेहि काला ।।
जड़ गुन रूप आदि तहँ नाहीं। स्वइ परमेश्वर निगु'ण आहीं ।।
पूछत बहुरि कहत स्वइ बाता। जस जग कहतसो सुनिये ताता ।।
दो०—निराकार निगु'ण सदा, सगुन अहै साकार।
निराकार ही सगुन हो, लेत जबै अवतार ।।४३।।
यह कल्पना जगत की झूठी। कहत स्वामि विद्या तेहि रूठी ।।
असम्बन्ध वह कहत सदाई। जिमि ज्वर पीड़ित नर बड़राई ।।
कहन लगत कोउ प्रभु को रागी। अरु कोउ ताहि बताइ बिरागी ।।

राग विराग ईश में नाहीं। इनकी युक्ति सुनहु मनलाई ॥
इच्छा ईश माँहि नहिं होई। कह्यो सो गूढ़ रहस ऋषि गोई ॥
बिनकर सकल जुगत उपजावत। वेदन माहिं तासु यश भावत ॥
सुनहु सुनावहुँ राग विभूती। है विराग की जो करतूती ॥
छंद-अपने से जो कोउ अलग होवे, शुभ पदारथ भावई।
तहँ अर्थ ताके होत प्रीती, ताहि रागी मानई ॥
जो प्राप्त होवे ताहि त्यागे, सो विरक्त कहावई।
है ईश से कोउ अलग नाहीं, नाहिं प्राप्त लखावई ॥ ३ ॥
जो वस्तु जेहि ढिग होत नहिं, तेहि प्राप्त हित इच्छाकरैं।
नहिं ईश से है पृथक कोई, ताहि कोउ त्यागन करैं ॥
है नाहिं कोऊ वस्तु जग में, ईश है जामें नहीं।
यह समुझि निशिवासर भजहु बुधईश व्यापक मानहीं ॥ ४ ॥
सो०--केतिक हैं जग वेद, केहि ऊपर प्रगटत भयो।
नाथ बतावहु भेद, वेद केरि उत्पत्ति कब ॥ ५ ॥
चारि ऋषी जग उत्पति भयऊ। वेद सुचारिहु तिन उर ठयऊ ॥
जग ऋग वेद अग्नि के द्वारा। यजुर्वेद वायू उच्चारा ॥
पुनि आदित्य साम प्रकटायो। अथर्व अंगिरा से जग आयो ॥
एक शिष्य स्वामी सों भाखत। दै प्रमान उपनिषद बतावत ॥
ब्रह्मा के उर वेद प्रकाश्यो। पुनि ब्रह्मात्रय ऋषि सों भाख्यो ॥
कहत स्वामि मनुके कछु बचना। अग्नि वायु रवि से है रचना ॥
यज्ञ हेत प्रगटेउ प्रभु वेदा। ऋग यजु साम जो हैं बिनखेदा ॥
पुनि यह भेद कहौ समुझाई। इनसे इतर कह्यो किमि नाई ॥
सो०--ये पवित्र जग माँहि, विद्या बुद्धि प्रकाश में।
प्रकट्यो वेद सराहिं, नहिं इनते कोउ श्रेष्ठ जग ॥ ६ ॥
दो०--भाषा देश विशेष में, नहिं प्रकटायो वेद।
पद्य त्यागि के रचत भे, संस्कृत बिन खेद ॥४४॥

तबहिं शिष्य पूछत घबराई । ईश्वर वेद रच्यो का भाई ॥
या दूसर केहुँ वेद बनाये । जिमि बहु ग्रन्थ मुनिन हैं गाये ॥
यह प्राकृत भाषा जग रुरी । श्रम समान में होवे पूरी ॥
जो तुम कहौ वेद किमि भयऊ । जीवज्ञान बढ़िनिजहित ठयऊ ॥
तौ यह सुनिये चित्त लगाई । ईश सहस गुन कर्म सुहाई ॥
सृष्टि विरुद्ध न हो जहँ कर्मा । आदि सृष्टि से जानहि मर्मा ॥
वेदन में इतिहास न होई । है वह पूरन ज्ञान लखोई ॥
जब न वेद, विद्या कस होई । प्रकटत वेद न, विद्या सोई ॥
बिन बिद्या नर ज्ञान न होई । चहै विचारि लेइ नर कोई ॥

सो०-ऋग यजु साम अथर्व, चारि वेद यह जग प्रकट ।
मानत याकहँ सर्व, मंत्रसंहिता मात्र ही ॥ ७ ॥

सप्त विंश अरु सहस एकादश । वेदन शाखा जानि लहहु यश ॥
नित्य वेद सँग ईश्वर माना । ईश स्वभाव कर्म गुन जाना ॥
बिन बुद्धी कहुँ ज्ञान न होवे । ज्ञान बिना सुख मोक्ष न जोवे ॥
शौनक गोभिलीय अश्वलायन । है प्रसिद्ध शाखा शुभदायन ॥
वृक्ष मूल जानहु तुम वेदा । मानहु शाखा मत बिन खेदा ॥
वेद विषय जो देखन चहऊ । तौ मम लिखित भूमिका लहऊ ॥
मात पिता जिमि कर सुत प्रीती । तिमि ईश्वर की है नित रीती ॥
जेहि विधि जगत होय बुधिवाला । छुटै तिमिर अरुसब भ्रमजाला ॥

दो०-सोई यतन करै सदा, निशि बासर बहु भाँति ।
सद सत्संग विवेकको, धारहि मानव जाति ॥४५॥
है ईश्वर की रीति यह, देत सबन फल भोग ।
जो जस कर्म करै सदा, तेहि अनुकूल सुभोग ॥४६॥

तब यक कहत कहहु ऋषिराई । वेद अनित्य या नित्य सुहाई ॥
पुस्तक वेद नित्य का भाई । नित्य अनित्य कहहु बिलगाई ॥

ईश्वर वेद नित्य सब ठांई। ईश कर्म गुन नित्य सदाई॥
पुस्तक वेद नित्य है नाहीं। कागज असी अनित्य सदाई॥
या महँ शब्द अर्थ सम्बन्धा। सोसब नित्य लखउ तजिधन्धा॥
तौ पुनि इन ऋषियन के माहीं। देकर ज्ञान वेद प्रकटाहीं॥
तबहिं स्वामि बहु कह समुझाई। वेद केर जो धर्म सुहाई॥
ज्ञानविभेद स्वामि समुझावत। सोइ मानहु जो सब जियभावत॥

दो०—ज्ञान होत नहिं ज्ञेय बिन, सुनहु शिष्य धरि ध्यान।
स्वर अरु छन्द विचारि कै, वेद पढ़ौ यह जान॥४७॥

नाना भाँतिन वेदन रीती। ऋषी मुनिन ने जो कहि नीती॥
याते सकल बिचारहु भाई। दूसर ज्ञान और है नाई॥
वैदिक पथ जग परम पुनीता। चलहु सकल शुभमारग नीता॥
है मत वेद हमारो जानहु। आर्य समाज सोई पहिचानहु॥
वेद माँहि जो वर्णित भाई। सोई है मम धर्म सुहाई॥
ईश्वर वेद कथा हम गाई। अति संक्षेप रूप दर्शाई॥
नित प्रति वेद पढ़हु मन लाई। त्यागि आधुनिक ग्रंथ सदाई॥
जब जग चलै वेद अनुकुला। तब नहिं होहिं धर्म प्रतिकूला॥

दो०—अब संध्या को समय है, ईश भजहु सब कोय।
नित्यकर्म यहि जानि कै, कबहु न त्यागन होय॥४८॥

सो०—शिष्य कहत इमिबैन, गुरुवर मो हित जो कह्यो।
ऋषी कथा सुख दैन, सुनत न तृप्ती होत मन॥ ८॥

सत्य-सागर सप्तम तरङ्ग स० प्र० ७ स० समाप्तम्

अष्टम् तरङ्ग (स० प्र० ८ स०)

सृष्टि-उत्पत्ति

सो०—नाथ मोर हित जान, जो कुछ प्रभु बरनन कियो ।
गयो हृदय अज्ञान, सुनि ऋषि कथा सुहावनी ॥१॥
ईश बेद को भेद, नाथ कह्यो समुझाय मोहिं ।
बहुरि कहहु बिन खेद, जासों रहै न हृदय भ्रम ॥२॥

दो०—मोहिं भ्रम बहुत लखातजग, उपजसृष्टि के माहिं ।
करहु कृपा ताते अवशि, जेहि हमार भ्रम जाहिं ॥१॥

कोउ अस कहत सुनहु गुरुराई । वृषभ-शृङ्ग पर धरनि सोहाई ॥
अरु कोउ कहत वारि उतराई । मानत याहि अधिक समुदाई ॥
उत्पति मनुज विचित्र बतावहिं । सुनत बात हिय बीच न आवहिं ॥
अब मोहिं नाथ कहहु समुझाई । करहु उपाय मोर भ्रम जाई ॥
सृष्टि-नेम हित जो ऋषि कहेऊ । सोइ कहहु जो तव हिय ठहेऊ ॥
जौ लगि प्रकृति जीव अरु ईशा । सृष्टि-नेम जो कहेउ मुनीशा ॥
जानत नहिं नर हृदय विचारी । तौ लगि दुःख सहत अतिभारी ॥
जौलगि त्रिविध ताप नहिं छूटत । ममता जाल जगत नहिं भूलत ॥

दो०—तौ लगि नर पावत नहीं, परम मोक्ष को धाम ।
जौ लगि हिय धारै नहीं, कर्म सदा निष्काम ॥२॥

छं०—हे तात हम तुम सन कहैं, ऋषि की कथा सुखदायिनी ।
जो मनुष-जीवन को सुधारत, सुधारस सो है सनी ॥
जाके सुने नर होत पावन, आर्य पुरुष कहावई ।
औगुन नशैं भ्रम जायँ मनके सत्य पथ नर पावई ॥ १ ॥

सो०–एक समय ऋषिराज, शोभित सुन्दर मंच पर ।
आयो मनुज समाज, सुनन हेत ऋषि की कथा ।।३।।

दो०–उत्पति स्थिति सृष्टि की, अरु बिनाश केहि भाँति ।
कहत स्वामि अति नेह सों, सुनत सकल मनुजाति ।।३।।

जो हम सुन्यो ऋषी सों भाई । सोई हम सब तुमहिं सुनाई ।।
व्यापक ईश ओ३म् प्रभु जानहु । कर्ता सृष्टि ताहि को मानहु ।।
करि उत्पति पुनि पालन करता । सोई प्रभु है जग-संहरता ।।
सृष्टि प्रथम यह जग अँधियारा । रात्रि न तेहि कोउ करत उचारा ।।
गगन समान सूक्ष्म दर्शाई । मानहु ईश केरि परिछाई ।।
तब प्रभु निज समरथ सों भाई । कारण-कारज देत बनाई ।।
भानु प्रकाश जगत जो देखत । यह ईश्वर-गति जग अवरेखत ।।
भूमि अकाश लखत जोई प्रभु । चन्द्र सूर्य में है जा कहँ विभु ।।

दो०--जो अनादि पूरन पुरुष, जग कारण भगवन्त ।
त्रिकालज्ञ परमात्मा, भजत ताहि हैं सन्त ।।४।।
है वह तीनों काल का, रक्षक एक अनीश ।
ब्रह्म सनातन है वही, परमेश्वर जगदीश ।।५।।

जासों जन्म होत जग केरा । पालन करत रहत सब बेरा ।।
पुनि जग प्रलय करत है सोई । तासों ब्रह्म कहत सब कोई ।।
तब पूछत यक शिष्य सयाना । जग-उत्पत्ति ईश कै आना ।।
तब ऋषि शिष्यहि कहत बुझाई । कारन निमित ईश उपजाई ।।
उपादान कारन प्रकृती से । प्रकृति कहा नहिं होत ईश से ।।
है अनादि तब ऋषि इमि कहेऊ । पुनि पूछत अनादि का ठयेऊ ।।
ईश जीव अरु प्रकृति अनादी । कारन जगत सुनावत बादी ।।
कौन प्रमान मोहिं बतलावहु । कहेउ वेद जो मोहिं सुनावहु ।।

सो०--ऋग के मंडल एक, सूक्त सुचौंसठ एक शत ।
मंत्र बीस अवरेख, बरनन या विधि करत हैं ॥४॥

चेतन जीव ब्रह्म द्वौ अहहीं । व्याप्य सुव्यापक प्रकटत रहहीं ॥
सखा अनादि सनातन दोऊ । चेतन गुणयुत जानहु सोऊ ॥
प्रकृती वृक्ष अनादि अनूपा । पाप पुन्य फल के अनुरूपा ॥
प्रति क्षण फल भोगत है जीवा । देखत बिन भोगे बलसीवा ॥
प्रकृति-जीव अरु ईश्वर भाई । है अनादि सब ठौर लखाई ॥
है उपनिषद् केर यह बचना । ईश जीव प्रकृती जो रचना ॥
यह अनादि तीनों हैं भाई । है यह कारण जगत सदाई ॥
कारण नहिं इन कर कोउ अहई । जीव अनादि प्रकृति रत रहई ॥

दो०--ईश कतहुँ नहिं फँसत है, अरु फल भोगत नाय ।
जासु कथा पाछिल कह्यो, सुनहु सकल तुम भाय ॥६॥
लक्षण प्रकृती के सुनहु, जो अनादि है भाय ।
सत-रज तम सम है जहाँ, प्रकृती सोय लखाय ॥७॥
महत सुप्रकृती सों भयो, भयो अहै महदात ।
पंच भूत तासों ठयो, मात्रा पंच देखात ॥८॥

पुनि दश इन्द्रिय उपज लखाई । अरु मन चलत जीव सँग धाई ॥
है अविकारिणि प्रकृति सुहाई । अरु कछु कार्य रूप दर्शाई ॥
महत् तत्त्व अरु सूक्षम भूता । अहंकारयुत कार्य सँजूता ॥
इन्द्रिय मन जो प्रकट देखाई । अरु स्थूल जगत जो आई ॥
कारण भूत यही को मानो । पुरुष न कारण काहुक जानो ॥
करत प्रश्न या विधि यक पंडित । कहत वाक्य उपनिषदन मंडित ॥
सृष्टि पूर्व जग सत दरशाई । असत आत्मा ब्रह्म लखाई ॥
ब्रह्म सोई अपनी इच्छा सों । प्रकटत रूप बहुत निर्भय हो ॥

दो०--और लिख्यो उपनिषद में, जो सुनिये ऋषिराज ।
ब्रह्म रूप संसार है, नहिं कोऊ सिरताज ॥९॥
कहत स्वामि हे पंडित ज्ञानी । अर्थ का अनरथ करत अमानी ॥
पढ़ि छान्दोग्य उपनिषद देखहु । लिख्यो कहा है सो अवरेखहु ॥
कारज पृथ्वी अन्न सरूपा । कारन मूल अहै जल रूपा ॥
जल कारज से तेज सरूपा । होत तेज से है सदरूपा ॥
स्वइ सद रूप प्रकृति नित लहई । सोइ है मूल प्रकृति सत अहई ॥
यह जगप्रथम असत् सम रहेऊ । जीव ब्रह्म प्रकृती में ठयऊ ॥
कतहुँ अभाव भयो है नाहीं । प्रकृति जीव ब्रह्म रहत सदाहीं ॥
यहि विधि बनहु उपासक सुनिके । ब्रह्म एक पूरन यह गुनिके ॥
दो०--ब्रह्म जगत उत्पति करत, पुनि पालै अति प्रेम ।
प्रलय काल सब नाश करि, रहत सदा सुख क्षेम ॥१०॥
तब यक प्रश्न करन अस लागे । कारन जग कितने हैं आगे ॥
तब स्वामी कह सुनिये भाई । कारन तीन जगत दर्शाई ॥
एक निमित्त कहत सब कोई । दूसर उपादान है सोई ॥
तीसर साधारण को मानहु । है यह तीनहु कारण जानहु ॥
बनहि बनाये से जाके ही । जो न बनावत बनहिं न केही ॥
स्वतः बने नहिं और बनावे । सोइ निमित्त कारण कहलावे ॥
जेहि बिन कछु न बनै जग माँहीं । पाइ समय हो रूप सदाहीं ॥
बिगड़त बनत स्वतः सोइ जानो । उपादान कारन तेहि मानो ॥
दो०-है साधन निर्माण में, साधारण नीमित्त ।
तेहि साधारण कहत हैं, कारन जगत निमित्त ॥११॥
कारन निमित लखहु दुइ भाँती । मुख्य निमित्त एक सब भाँती ॥
है वह ब्रह्म सकल जग स्रष्टा । पालन करै करै पुनि नष्टा ॥
अरु वह देखरेख सब राखै । मुख्य निमित्तहि कारन भाखै ॥
ईश पदारथ लै जग माहीं । सकल बनावे काम सदाही ॥

तेहि निमित्त साधारण कहहीं । जो हैं जीव जगत हित लहहीं ॥
उपादान कारन प्रकृती है । अरु परमाणु रचन शक्ती है ॥
सृष्टि नियम जो प्रभु रचि राखा । होय वहै जो वेदन भाखा ॥
रचत जगत कारन कारज सों । बिगड़त बनत जोकाजनिमित्तसों॥

सो०—कुम्भकार जग माँहि, है निमित्त कारन लखहु ।
मृतिका ठीक लखाहि, उपादान कारन यहाँ ॥ ५ ॥
दंड चक्र आभास, है सामान्य विलोकिये ।
दिशा काल आकास, याही विधि अवरेखिये ॥ ६ ॥

हे प्रभु है हमार भ्रम एका । मेटहु ताहि होय अविवेका ॥
नव वेदान्ति कहत यहि भाँती । कारन जगत ईश की जाती ॥
अरु मुंडक को देत प्रमाना । औरो विधी कहत है नाना ॥
जिमि मकरी निज तनु ते भाई । काढ़त तन्तु महा अधिकाई ॥
बाह्य वस्तु की आश न करई । गृह निर्मित करि तामहँ फिरई ॥
तेहि विधिब्रह्म जगत की रचना । निज इच्छा बनाइ जग अपना ॥
अरु माँडूक कारिका कहहीं । भाखत रहत सदा इमि अहहीं ॥
एक ब्रह्म जग पूरब रहई । वर्तमान सोई ब्रह्म अहई ॥

दो०—अन्त समय स्वइ ब्रह्म ही, रहत एक ही शेष ।
याही सों है जगत का, कारण ब्रह्म विशेष ॥१२॥

स्वामि कहत यह युक्ति तुम्हरी । मानहिं नहिं बुधिवर अधिकारी ॥
जो जग मानि लेहिं तब बाता । ब्रह्म विकारवान हुइ जाता ॥
उपादान में जो गुन रहई । स्वइ स्वभाव कारज नित अहई ॥
वैशेषिक इमि करत बखाना । उपादान गुन कार्य्य समाना ॥
ब्रह्म सच्चिदानन्द सरूपा । ब्रह्म अखंड अदृश्य अरूपा ॥
जगत विलोकहु दृश्य सदाई । खंड स्वरूप और जड़ताई ॥
जड़ चेतन द्वै पृथक उपाधी । एक न होहिं सदा ये बाधी ॥
उपादान चेतन जो मानहिं । तो कस जड़ जग कारन जानहिं ॥

दो०--जो जग कारण ब्रह्म को, हम मानहिं यहि भाँति।
तो जड़ताई ईश की, होत ईश की जाति ॥१३॥
जो तुम मकरी रीति सुनाई। सो तुम्हार सिद्धान्त न भाई॥
अद्भुत ब्रह्म प्रभाव सदाई। व्यापक ईश रह्यो सब ठांई॥
जाननहार ईश सब हाला। आदि जगद्अरु अन्तिम काला॥
यह जग प्रथम लखत अँधियारा। प्रलय अन्त कहुँनहिं उजियारा॥
तब कोउ जानि सकै कछु नाई। जानन योग सो पूरन भाई॥
तबही प्रश्न करन एक लागे। विद्यावित बहु शास्त्रन पागे॥
जग निर्माण करत किमि ईशा। या महँ लाभ कहा जगदीशा॥
कहत स्वामि तुम हानि बतावहु। जगत रचै नहिं तो कह पावहु॥
कह पंडित सुनिये ऋषिराई। ईश्वर की लखिये प्रभुताई॥
दो०--ईश रहै आनन्दमय, जीव न भोगे दुःख।
यहि प्रकार सब सृष्टि में, होत सुःख ही सुःख ॥१४॥
कहत स्वामि आलसिन स्वभाऊ। दारिद पुरुष केर यह भाऊ॥
जो जग हैं पुरुषार्थ प्रवीना। भावत तिन कहँ कार्य नवीना॥
प्रलयकाल कहुँ सुखन लखाई। जो जग सृष्टि बीच दर्शाई॥
जो हम तुलना करैं बिचारी। तो है जगत बीच सुख भारी॥
साधन सकल मोक्ष के मिलहीं। मुक्ति हेत नर यतनन करहीं॥
प्रलय समय सुषुप्ति समाना। सोवत रहत काज नहिं आना॥
रचना जगत ईश के काजा। जो है सकल जगत को राजा॥
ईश स्वभाव जगत की रचना। परोपकार ताको गुन अपना॥
दो०--पूछत तरुवर बीज में, कहहु प्रथम को आहि।
कहत स्वामि एक बीज ही, हेतु निदान लखाहि ॥१५॥
बहुरि कहत सुनिये ऋषिराई। है जब शक्तिमान जगराई॥
तौ वह जीव स्वतः उपराजै। कारन हेतु कछू जो साजै॥

यह सामर्थ न ईश्वर माहीं। तौ वह शक्तिमान है नाहीं॥
स्वामि कहत इमिबैन सप्रीती। शक्तिमान प्रभु की यह रीती॥
जो अनहोनी होनी करई। कोउ न शक्तिमान उर धरई॥
जो प्रसंग पाछिल तुम देखहु। शक्तिमान को अर्थ बिलोकहु॥
कहहु हमहि समुझाइ सु ताता। बिन स्वभाव होवै कोऊ बाता॥
याते मन बिचार यह लीजै। सर्वशक्ति मन ईश कहीजै॥

दो०--कारज बिना सहाय सब, करत ईश दिन रात।
सर्वशक्ति सम्पन्न जग, सोई ईश लखात॥१६॥

यक पूछत ऋषि सों करजोरी। सुनहु नाथ यक बिनती मोरी॥
ईश्वर निराकार हम मानहिं। अथवा तेहि साकार बखानहिं॥
जो हम निराकार प्रभु जानहिं। तो जगरचना केहिबिधि मानहिं॥
जब तेहि हाथ न पाँव लखाई। तोपुनि केहि बिधिजगत बनाई॥
मानहिं ईश्वर जो साकारा। होत सिद्ध मम हृदय विचारा॥
कहत स्वामि सुन्दर चित लाई। ईश्वर निराकार सब ठाँई॥
जो आकार शरीर समेता। वह नहिं ईश्वर होत सचेता॥
परिमित शक्ति सहित जो होई। क्षुधा तृषा पीड़ायुत जोई॥

दो०--यह लक्षण सब जीव में, गुन न ईश दर्शात।
जीव पृथक ईश्वर पृथक, गुनहू पृथक लखात॥१७॥

जिमि शरीरयुत हम तुम दोऊ। करिनसकत वशमें अणु कोऊ॥
तेहि बिधि ईश शरीर समेता। सूक्ष्म तत्त्व किमि रखै निकेता॥
सुनहु ईश के हाथ न पाँवा। शक्ति विशेष प्रभू जग भावा॥
स्वामि मोहिं यक है संदेहा। दूरि करहु प्रभु जो है नेहा॥
जिमि पितु मातु लखहु जगमाहीं। तेहि समान सुत होत सदाहीं॥
तेहि विधि निराकार जो ईशा। निराकार सुत होय अनीशा॥

१—जीवात्मा।

सुनहु ध्यान धरि कह ऋषिराई। शिशुसम प्रश्न तुम्हार लखाई॥
हम पूरब कहि तुमहिं सुनावा। है निमित्त कारन प्रभु भावा॥

दो०--उपादान कारण नहीं, ईश जगत को भाय।
जो प्रकृती स्थूलयुत, उपादान सब ठाँय॥१८॥

अरु बिचारि देखहु जग जानू। नहिं स्थूल सकल परमानू॥
अवशि ईश से है स्थूला। जग रचना हित सूक्षम मूला॥
पूछत बहुरि कौन जग धरई। ईश न कारन बिन कछु करई॥
कहत स्वामि समुझाय सप्रीती। होय अभाव न भाव प्रतीती॥
जिमि कोउ कहै बाँझ सुत ब्याहा। मिलहि अकाश पुष्प हिय चाहा॥
मृगतृष्णा जल करि स्नाना। मनुष शृंग धनु धारि सुहाना॥
मेघ बिना वर्षा नित होई। उपजत अन्न भूमि बिन सोई॥
तैसेहि बिन कारण कछु नाहीं। कारज होत न नेक लखाहीं॥
जगत असम्भव जो कछु भाई। सम्भव सो नहिं कतहुँ लखाई॥

दो०--जो जग कारन रूप है, तेहि कारज नहिं होत।
मूल मूल से होत नहिं, जग उत्पत्ति उदोत॥१९॥

सुनहु स्वामि यक बात हमारी। नास्तिक मानत शून्य अगारी॥
नहिं कछु पूर्व न अन्त लखाई। शून्य सदा सब ठौर सदाई॥
तबहिं स्वामि इमि बयन उचारी। शून्य अकाश बिन्दुसम भारी॥
शून्य वस्तु जड़ सब कोइ मानहिं। रहत छिपे सब तामहँ जानहिं॥
एक बिन्दु जग रचत अनोखा। जानहिं शून्यशून्य नहिं जोखा॥
दूसर दै प्रमान कह साँई। भाव अभावहि से दर्शाई॥
जिमि जग बीज नष्ट हुइ जाई। तबहिं बीज अंकुर जमि जाई॥
यदि हम बीज खंड करि देखें। अंकुर तामहँ कहुँ नहिं पेखें॥

सो०--इमि अभाव से भाव, प्रकटत है संसार में।
पूछहुँ सहज स्वभाव, मोहि बतावहु दया करि॥७॥

दो०--जो उपजावत बीज को, अहै बीज के माहिं ।
कहत स्वामि यह शक्तिही, उत्पति रुप लखाहिं ।।२०।।

पुनि तीसर यहि भाँति बखानत । पुरुष कर्मफल सहजहि पावत ।।
बिन कछु काज किये जग माँहीं । फल पावत है वह छण माही ।।
देखियत बहुत कर्म फलहीना । याते कर्म ईश आधीना ।।
चाहत ईश देत फल तेही । नहिं चाहत तेहि देत न केही ।।
स्वामि कहत प्रिय वचन प्रवीना । जो फल कर्म ईश आधीना ।।
तौ बिन किये देत किमि नाहीं । कर्म किये फल देत सदाहीं ।।
यह तौ बात सबै जग मानत । गती कर्म की जो कोउ जानत ।।
अस बिचारि देखहु मन माही । करहु सु उत्तम कर्म सदाहीं ।।

दो०--जो जस कर्म करै सदा, फल पावत तेहि भाँति ।
देखि कर्म फल देत प्रभु, जानहि मानव जाति ।।२१।।

कहत चतुर्थ सुनहु ऋषिराई । बिन निमित्त उत्पति सब ठाँई ।।
जिमि बबूर कंटक अवलोकहु । तीक्ष्ण सहज नुकीले देखहु ।।
याते जानि परत यह बाता । बिननिमित्त तनु उपजत ताता ।।
तब हँसिस्वामि कहन अस लागे । नीति निपुण अतिशय अनुरागे ।।
जो पदार्थ जेहि उपजत भयऊ । सोइ निमित्त ताही कहँ ठयऊ ।।
वृक्ष कंटकी कंटक जायो । अन्य न कंटक तरु दर्शायो ।।
पंचम बोली उठ्यो तेहि काला । नाशमान उत्पत्ति विशाला ।।
जो कछु वस्तु जगत के माहीं । हैं अनित्य यहि भाँति सदाहीं ।।

दो०--ब्रह्म सत्य मिथ्या जगत, यहै वेद की रीति ।
औरहु शास्त्रन को मतो, और गुरु की नीति ।।२२।।

बहुरि स्वमि इमि बोलत बैना । नित्य न होय अनित्य कबैना ।।
जग नित्यता अनित्य बतावहु । अग्निकाष्ट की रीति देखावहु ।।
यह हमहूँ जानत सब भाँती । जारिकाष्ठ अपनहु नशिजाती ।।

पर यह बात सुनहु मन लाई। सहजस्वभाव जो प्राप्त लखाई ॥
सन्मुख सूक्ष्म अनित्य न होई। कारण परम स्वतंत्र न कोई ॥
वेदान्ती जग उतपति मानत। भयो ब्रह्म से यह सब भाषत ॥
ब्रह्म सत्य हम मानि जो लेहीं। होहिं असत कारज नहिं तेहीं ॥
यह नहिं कल्पित स्वप्न समाना। रज्जु सर्पवत् भ्रम जो नाना ॥
दो०--तौ कोउ उत्ती नहिं बनत, कल्पित गुन अवरेख।
पृथक् नहीं गुन द्रव्य है, गुन से द्रव्य न देख ॥२३॥
करत कल्पना जो बहु भाँती। मानत करत नित्य सब जाती ॥
जो कल्पना नित्य ही होई। मनु अनित्य मानहिं सब कोई ॥
विन देखे कहुँ स्वप्न न होई। जागृत वर्तमान लखु जोई ॥
जागृत ज्ञान आत्महि होई। काल सुनिद्रा देखहि सोई ॥
अरु सुषुप्ति भूलहि सब बाता। बाह्य पदारथ होहि न ज्ञाता ॥
नतु जग विद्यमान ही रहई। भूलत जीव सुषुप्ती लहई ॥
तेहि बिधि प्रलय काल को जानहु। नष्ट होत सब जगत बखानहु ॥
दो०--कारन द्रव्य तबै रहत, प्रलय काल के माहिं।
संस्कार बिन स्वप्न को, देखत है जग नाहिं ॥२४॥
पूछत बहुरि स्वामि सों नीती। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति की रीती ॥
जागृत वस्तु स्वप्न में देखै। दुऔ अनित्य सुषुप्ति विलोकै ॥
तौ पुनि जागृत स्वप्न समाना। कुछ नहिं भेद रहत है आना ॥
स्वामि कहत यह कतहुं न होई। स्वप्न सुषुप्ति नेम लखु जोई ॥
बाह्य पदारथ हो अज्ञाना। होत अभाव न कोई आना ॥
जिमि पाछिलदिशि दीठि न जाई। वस्तु कोई नहिं परत लखाई ॥
तिनहिं अभाव न कोऊ मानै। यहि विधि स्वप्न सुषुप्ती जानै ॥
जीव ब्रह्म जग कारन भाई। नित्य अनादि सो तीनों ठाँई ॥
दो०--षष्ठम नास्तिक कहत भो, मोहिं कहहु समुझाइ।
पञ्चभूत के नित्य से, जग सब लिप्त लखाइ ॥२५॥

स्वामि कहत यह सत्य न भाई । कारन उत्पति नाश लखाई ॥
कारन उत्पति और विनाशा । जेहिपदार्थ विच रहत सुश्राशा ॥
यहि स्थूल जगत के माहीं । घट पदादि जो वस्तु लखाहीं ॥
ते सब होत विनष्ट सदाई । मानहिं नित्य कहहु किमिभाई ॥
सप्तम नास्तिक कहत विचारी । हैं सब पृथक् पृथक् गुनकारी ॥
एक पदारथ कोउ न आहीं । जेहि देखत हम दूसर नाहीं ॥
ऋषिवर बोलत बचन सप्रीती । सहज स्वभाव ऋषिन की रीती ॥
बचन सप्रेम भरें गम्भीरा । सुनतहि होत हृदय अतिधीरा ॥

दो०-हैं समूह सब एक ही, जाति पृथक सब काल ।
अरु प्रकाश परमात्मा, वर्तमान को काल ॥२६॥

पृथक् पदारथ और न कोई । रूपसे पृथक् लखत सब कोई ॥
पृथक् पृथक् हम जाहि निहारें । तौ हम एकहि वस्तु उचारें ॥
अष्टम युक्ति मनोहर बरनी । होत अभाव सिद्धहित करनी ॥
विलग अभाव बिलोकहु भाई । अश्व नहिं गो बनि दिखराई ॥
और गऊ नहिं अश्व लखाई । यह अभाव विधि जानहु भाई ॥
स्वामिकहत यह युक्त तुम्हारी । होत न सिद्ध जगत उपकारी ॥
सकल पदारथ में सुनि लीजै । विलगअभावहि को लखिलीजै ॥
पर है अश्व अश्व में भावा । गऊ गऊ में भाव सुहावा ॥

दो०-है अभाव कतहूँ नहीं, जाने लेहु यह बात ।
वस्तु भाव नहिं होवई, तौ अभाव कह तात ॥२७॥

नवम नास्तिक एहिविधि कहई । उत्पति जगत स्वभाव से अहई ॥
जिमि मिलि अन्न वारि सड़िजाई । जगत स्वभाव कीट उपजाई ॥
भूमि बीज मिलि नाना भाँती । उपजत तरु पल्लव बहु जाती ॥
वायु समुद्र वेग जग निज़ई । फेन समुद्र होत नर लखई ॥
औरहुवस्तु जगत बिच अहहीं । मिलत स्वभाव अन्यसँग लहहीं ॥
तत्त्व स्वभाव जगत को रचना । बनत स्वतःयहिको गुन अपना ॥

बहुरि स्वामि इमि उत्तर दयऊ। यदि स्वभावहीते जग भयऊ ॥
तौ विनाश कतहूँ नहिं होई। रीति स्वभाव विधीलख जोई ॥
दो०—यदि विनाशहू होवई, तौ उत्पति नहिं होय।
दोनों मानहु एक सँग, तौ न काम हो कोय ॥२८॥
उत्पतिनाश निमित से मानहु। तौ पुनिपृथक निमित्त बखानहु ॥
उत्पति नाश स्वभाव से जई। समय बीच सम्भव नहिं होई ॥
यदि स्वभाव से उत्पतिमानहु। तौ दूसर भूगोल बतावहु ॥
किमि नहिं अन्य बनत तारागन। होत नकिमि स्वभाव से सबगुन ॥
बीज फूल तरु पल्लव नाना। प्रकटत ईश कृपा नहिं आना ॥
जब द्वै वस्तु परस्पर मिलहीं। बिलग स्वरूप सो प्रगटत रहहीं ॥
यह विचारि देखहु मन माहीं। स्वतः मिलत या आन मिलाहीं ॥
ताहू पर एक युक्त अनोखी। मिलत न न्यूनाधिक अवरेखी ॥
दो०—तिमि प्रभु ज्ञान सु युक्तिसों, लै प्रकृती परमानु।
जग रचना को करत हैं, नित्यशुद्ध भगवानु ॥२९॥
पंडित बोलि उठ्यो तेहिकाला। जग करता नहिं तीनो काला ॥
रहत अनादि काल यहि भाँती। होत न उत्पति नाश स्वजाती ॥
तब स्वामी यहिविधि समुझाई। मानहु बात हमारी भाई ॥
बनहि न बिन करत कछु कबई। क्रिया सदा करता बसरहई ॥
जो संयोग रूप तुम देखत। तेहि अनादिकतहू नहिं पेखत ॥
बनहि जो जगसंयोग सहारा। ताकहँ पूर्व न कछु अविकारा ॥
जो तुम नहिं मानत ममबाता। खनिज फोरिकरि देखहु ताता ॥
पुनितेहि भस्मद्वार करि देखहु। कणकण में परमाणु बिलोकहु ॥
पुनि बहु प्रश्न करन इमिलागे। ईश्वर नहिं अनादि है आगे ॥
योग द्वार जो मिलत सदाहीं। अष्टसिद्धि नवनिधि के माहीं ॥
दो०—प्राप्त करत ऐश्वर्य्य को, ज्ञानवान जो होत।
गुणातीत वह होत है, सोई ईश उदोत ॥३०॥

तब स्वामी पुनि कहत बुझाई । है अनादि ईश्वर जगराई ।।
जगत रचयिता कोऊ न होई । तौ कहुं सिद्धि लहत जगकोई ।।
यह अद्भुत शरीर की रचना । बनि न सकत लै करगुण अपना ।।
करि न सकत साधन नर कोई । बिन साधन कोउ सिद्ध न होई ।।
है उत्कृष्ट योग जग माहीं । पावत अर्थ काम अधिकाहीं ।।
जगत क्रिया नहिं बदलन हारा । योगी कोउ होवे सविचारा ।।
ईश्वर शक्ति विदित सब ठाँई । जीव हुइ सकत ईश्वर नाँई ।।
जिमि जग सृष्टि प्रथम उपजावा । तेहि विधि पुनि जगत रचावा ।।

दो०–सूर्य्य चन्द्र आकाश सब, रचत पूर्व की भाँति ।
अन्तरिक्ष अरु भूमिजल, जोप्रकृती की जाति ।।३१।।

सो०–वेद शास्त्र के माहिं, सृष्टिविषय अविरोध है ।
वरणत हौ तुम ताहि, जो हम आगे कहत हैं ।।८।।

छंद–ईश्वर औ प्रकृती दुहुन ते आकाश की उत्पति भई ।
पुनि वायु उपजत गगनते अरु वायु पावक प्रकटई ।।
अरु बारि प्रकटत अग्नि सों जल भूमि को उपजावई ।
पुनि भूमि औषधि द्रव्य प्रकटत अन्न औषधि लावई ।। २ ।।
अरु अन्न सों जग बीज उपजत बीज पुरुषन को रचै ।
अस लिख्यौ शाखा तैत्तरी में जानि यह हिय में खचै ।।
सो तात मानहुँ बात हमरी यदि विरोध न कोउ कहै ।
जेहि आदि दै प्रभु रचत पृथ्वी आदि में वह ही लहै ।। ३ ।।

ववयक कहत सुनहु ऋषिराई । शास्त्रन मध्य विरोध लखाई ।।
कर्म मीमांसा वरणत भयऊ । वैशेषिक सुकाल को कहेऊ ।।
अरु परमाणु न्याय में पेखौ । पुरुषारथ सुयोग महँ देखौ ।।
सांख्य प्रकृति को कहत बखानी । कह वेदान्त ब्रह्म सुखदानी ।।
कहहु स्वामि हम काको मानें । केहि विधि सृष्टि कीउत्पति जानें ।।
स्वामि कहत हँसि हमरे जानी । यहि में नहिं कोउ झूठ अमानी ।।

जो नहिं समुझत प्रकृति विकारा । होत हृदय बिच तासु विचारा ॥
प्रभु निमित्त कारण जग जानहु । उपादान प्रकृती को मानहु ॥
दो०—महाप्रलय[1] जब होत है, नशत पूर्व की भाँति ।
ईश नाम पहिले कहै, हिरण्य गर्भ सुखदाति ॥३२॥
जो तुम शास्त्रन भेद सुनायहु । अरु विरोध तामहँ समझायहु ॥
स्वामि कहा विरोध है सोई । जहँ यक कार्य विषय यक होई ॥
सुनहु शास्त्र की विधि है जोई । सब अविरोध विचारहु सोई ॥
कर्म बिना जग कछु नहिं होई । मीमांशा में कह ऋषि सोई ॥
कर्म न होत समय बिन कोई । तेहि वैशेषिक कहत सँजोई ॥
कारण उपादान नहिं होई । बनै न जगत वस्तु कहुँ कोई ॥
याको कह्यो न्याय के माहीं । ज्ञान विचार योग दर्शाहीं ॥
जौ लगि तत्त्वभेद नहिं जानत । तौलगि कछु जग काज न मानत ॥
दो०—कह्यो याहि है सांख्य में, जो हम वर्णन कीन्ह ।
बिना बनाये नहिं बनत, सोवेदान्त कहिदीन्ह ॥३३॥
कहहु विरोध कहाँ है भाई । हमहिं सबन को मेल लखाई ॥
जिमि जग फूस छानि के माहीं । सब मिलि ताहि उठावत धाहीं ॥
तिमिषटऋषि मिलिके बहुभाँती । निज निज शास्त्र बताय सुहाती ॥
जगरचना विधिसबकहि दीन्हा । भ्रम न रहै जेहि पूरन कीन्हा ॥
जग अज्ञान स्वरूप लखावै । मनुज अनारि न कछु सुख पावै ॥
जिमिकोउ अंध न हस्तिदेखावा । परखन हित जो हाथ लगावा ॥

---

[1] महाप्रलय—आकाशादि क्रम, अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादिका होता है तब अग्न्यादि क्रम से जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल क्रम से सृष्टि होती है अर्थात् जिस २ प्रलय में जहाँ २ तक प्रलय होता है वहाँ २ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है ।

परसेउ कान सो कहत सुनाई । सूप समान हस्ति है भाई ॥
केवल चरण गह्यो जो आना । कहत सो हाथी खम्भ समाना ॥

दो०—याही विधि सब कहत भे, निजनिज ज्ञान समान ।
ताहि भाँति संसार को, कहत अबुध अज्ञान ॥३४॥

यदि मानत बुद्धिमान न भाई । अंध अंध पाछे ही जाई ॥
बुधवर चलत पंथ को देखी । चलत न स्वारथ लोलुप पेखी ॥
बोलत बहुरि एक तेहि काला । सुनहु स्वामि तुम बुद्धि विशाला ॥
कारण बिन जब काज न होई । कारण कारण तौ किन होई ॥
सरल सु सीधे भ्रात विचारहु । कहत स्वामि यह उर महँ धारहु ॥
युग्म पदारथ हैं जग माहीं । कारण कार्य और कछु नाहीं ॥
जौ लगि पुरुष न समुझत तेही । तौ लगि ज्ञान न होवे केही ॥
सत रज तम गुन समता जानहु । नित्य अनादि स्वरूप बखानहु ॥

दो०—याही को प्रकृती कहत, सबै शास्त्र एक साथ ।
प्रकृती से उत्पति भये, तत्व विकार लखात ॥३५॥

पुनि परमाणु तत्त्वमिलि जाहीं । है सँयोग सब भाँति सदाही ॥
जो संयोग आदि है भाई । अरु वियोग को अन्त लखाई ॥
अथवा इमि जानहु सब ठाँई । होत विभाग न तेहिकर भाई ॥
तेहि कहँ कारन जानहु नीके । साधन याही हैं सबही के ॥
आँख से आँख होत कहुँ नाहीं । नतरु दीप सों दीप लखाहीं ॥
याते यह विचारि अब लीजै । कार्य्य कारण में चित दीजै ॥
जासों जो प्रकटत जग माहीं । तेहि कहँ कारन कहत सदाहीं ॥
प्रकटमान जग कार्य्य कहावे । कार्य्य रूप करता दर्शावे ॥

दो०—असत भाव नहिं होवई, सत अभाव नहिं होय ।
जो देखत इन दुहुन को, तत्वदर्शि है सोय ॥३६॥

तत्त्वदर्शि जानहिं जग कारज । दूसर नहिं जानत कोउ आरज ॥

जो न करत सत्संग विचारा । तौ भ्रम जाल पड़त संसारा ॥
धन्य सो नर विद्यावित जोई । करहिं महापुरुषार्थ सँजोई ॥
जो जग को बिन कारण मानत । यह मानहु वह कछु नहिं जानत ॥
आवत सृष्टि समय जब भाई । तबहि ईश यक करत उपाई ॥
जो परमाणु प्रकृति बिच आहीं । करि यक ठौर सुजगत बनाहीं ॥
प्रथम जगत स्थूल बनावा । महत् तत्त्व ताकहँ कहि गावा ॥
ताहू ते गुरुतम जो होई । अहंकार तेहि कह सब कोई ॥

दो०-पंचभूत ताते भये, इन्द्रिसमूह निदान ।
मनअरु औषधि घृतसब, अन्न वीर्य वपु आन ॥३७॥
आदि अमैथुन जग भयो, ईशकृपा अति कीन्ह ।
तेहिपींछे मैथुन जगत, अति अद्भुत रचिदीन्ह ॥३८॥

स०-अंतर अस्थिन जोड़ दियो पुनि नाड़िन बंधनसों तेहि बाँध्यो ।
मांस को लेप लगाय यथाविधि चर्म के ढक्कनसे तेहि ढाँक्यो ॥
फेफड़ यकृति प्लीहा कला युत व्यञ्जन चोखो सुतामहँ राख्यो ।
लोम नखादिक राखि सुदेहमें चक्षु समेतजो मानव भाख्यो ॥४॥

ता बिच जीव विराजत है निज इन्द्रिन सों रस चाखे सुहाती ।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति समय करि भोगन में मन को दिन राती ॥
मानुष देह अनोखी बनाइ रची यह सृष्टि भली सब भाँती ।
सोकिकहोबिन ईशबने किमि नाना स्वरूप अनेक न जाती ॥५॥

रचना जगत विलोकत कोई । होत भान तेहि ईश्वर सोई ॥
जिमि नर भूषण बन में पावै । तेहि सुन्दरता हिय में भावै ॥
तेहि क्षण मन में होत विचारा । यहि कर कौन बनावन हारा ॥
याही विधि तुम जानहु ताता । ईश निरन्तर सब जग जाता ॥
तब पूछत यक चतुर नरेशा । कहहु मोहिं समुझाइ ऋषेशा ॥
मानव सृष्टि प्रथम ऋषिराई । अथवा पृथ्वी आदि लखाई ॥

आदि भूमि कहि स्वामि बखानी। भूमि बिना नर सुख नहिं जानी ॥
जो न आदि पृथिवी जग होई। तौ नहिं जीवन पालन होई ॥

दो०—पुनि पूछत जग के प्रथम, बहुत भये वा एक।
कहत स्वामि बहुतक भये, बल बुधि सहित विवेक ॥३९॥

पूछत प्रथम कहहु का भावा। बाल युवा अरु वृद्ध सुहावा ॥
इनमें प्रथम कवन जग आवा। अथवा तीनों भये सुहावा ॥
कहत स्वामि जग की है रचना। योवन वय सत गुन लै अपना ॥
यदि जग होत वृद्ध अरु बालक। होत कौन इनकर प्रतिपालक ॥
तब कह आदि बतावहु स्वामी। हौं तुम्हार अनुचर अनुगामी ॥
स्वामि कहत दिनराति की भाँती। है प्रवाह सृष्टी सब जाती ॥
प्रथम सृष्टि पुनि प्रलय सोहाई। प्रथम प्रलय जग अन्तिम भाई ॥
देखहु है अनादि यहि भाँती। राति दिवस की रीति सुहाती ॥

दो०—ईश जीव प्रकृती यथा, है अनादि नहिं वादि।
तिमि उत्पत्ति स्थिति प्रलय, जगत प्रवाह अनादि ॥४०॥

काहुहि ईश मनुज उपजावा। धर्म सिन्धु शुभ गुन को भावा ॥
काहुहि सिंह स्वरूप बनावा। हिंसक क्रूर दुखद गुन पावा ॥
कहहु कहा यह पक्ष न सोई। कहत स्वामि यह पक्ष न भाई ॥
जीव कर्म वश पावत देहा। योनिन भ्रमत कर्म के नेहा ॥
कहहु स्वामि केहि स्थल माँही। उत्पति सृष्टि भई केहि ठाँही ॥
उपजत एक जाति जग आई। अथवा जाति अनेक लखाई ॥
सृष्टी रचना स्वामि बतावत। आदि सृष्टि तिब्बत ठहरावत ॥
मनुष जाति यक उपजी ताता। आर्य धर्म वैदिक विख्याता ॥

दो०—आर्य दस्यु द्वै नाम से, मनुज जाति के माहिं।
आर्य श्रेष्ठ विद्वान जग, दस्यू चोर लखाहिं ॥४१॥

सुनहु कहै यहि स्थल माँई। आये आर्य पुरुष सुखदाई ॥

आर्य दस्यु सुर असुर कहाहीं। भिन्न स्वभाव भिन्न गुन जाहीं ॥
विग्रह होत रह्यो निशि वासर। शूद्र स्वभाव अनीत न आगर ॥
तबहिं आर्य जन हृदय विचारी। बस्यो आय यहि ठौर मँझारी ॥
आर्यवर्त तब से यहि नामा। भयो प्रगट जग विदित ललामा ॥
उत्तरदिशिहिमगिरि अतिसोहा। दक्षिण विन्ध्याचल मन मोहा ॥
सरस्वति पश्चिम ओर सोहाई। अटक नदी पूरब दर्शाई ॥
ब्रह्म पुत्र रेखा बिच माहीं। मध्य सुआर्य्यावर्त लखाहीं ॥

दो०--प्रथम कवन या देश में, बसत रह्यो महराज।
नाम जाति सब कहहु प्रभु, जानि सुमोहित आज ॥४२॥
स्वामि कहत यहि देश को, पूर्व नाम कछु नाहिं।
नहिं कोउ बसत रह्यो यहाँ, आदि सृष्टि के माहिं ॥४३॥

कछुक दिवस तिब्बत में रहेऊ। तेहि पीछे यहि स्थल बसेऊ ॥
कोउ असकहत सुनहु ऋषिराई। आये यह इरान से भाई ॥
तेहि ते परयो आर्य है नामा। कहत देवता सकल अकामा ॥
देव दनुज संग्राम जो भयऊ। सो सब आर्य जाति बिच ठयऊ ॥
स्वामि कहत यह झूठ सदाई। आर्यन महिमा वेदन गाई ॥
धर्म सहित विद्यावित जोई। जानहु ताहि आर्य सब कोई ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य सुजाती। कहत वेद यह आर्य्य द्विजाती ॥
विद्या रहित अधर्मी जो नर। दस्यू ताकहँ कहत सबै नर ॥

दो०--आर्य्यावर्त से भिन्न जो, देश जगत के बीच।
दस्यू तिनहिं बखानहीं, म्लेच्छ भेषगुन नीच ॥४४॥
महाराज इक्ष्वाकु से, कुरु पांडव लौं टेक।
आर्य राज्य यहँ पै रह्यो, बलयुत बुद्धि विवेक ॥४५॥

सुत विराट ब्रह्मा उपजायो। अरु विराट से मनु जग आयो ॥
मनु के दश सुत भये प्रवीना। मरीच्यादि गुणवान नवीना ॥

तिनके सुत इक्ष्वाकु जु भयऊ। प्रथम नृपति यहि देश के ठयऊ ॥
अब हम उतपति भये अभागे। आलस और विरोधन पागे ॥
अन्य भये शासक मन ऊपर। हमरो देखि विरोध परस्पर ॥
राज्य सुदेश सुखद है जेतो। नहिं विदेश सुखदाई तेतो ॥
याते वेद शास्त्र जो रीती। बरनन करत सो मानहुं नीती ॥

दो०—कितो समय उतपति जगत, कहहु नाथ समुझाय।
बीत्यो है यहि समय लगि, कितो काल अधिकाय ॥४६॥

स्वामि कहत गणना इमि भाई। संख्या एक अरब दर्शाई ॥
कोटि छानबे लक्षहु केतिक। बहुतक सहस काल है जेतिक ॥
और अधिक देखन जो चहहू। तौ मम लिखित भूमिका गहहू ॥
वेदन में जेहि भाँति बखाना। तेहिप्रकार तहँ लिख्यो सुजाना ॥
ऋग यजु साम अथर्व के माहीं। जोजसकह्यो लिख्योतेहिठाहीं ॥
पुनि पूँछत यह बात बतावहु। धारन होत जगत किमि मानहु ॥
एक कहत यह शेष पै राजति। दूसर वृषभ शृंग बतरावति ॥
सकल पुराणिक शेष बतावहिं। यवन वृषभ युक्ती ठहरावहिं ॥

दो०—निराधार तीसर कहत, पवन चतुर्थ बखान।
रवि आकर्षित भूमि है, पंचम को अनुमान ॥४७॥

षष्ठम कहत भूमि है भारी। तासों घूमत गगन मँझारी ॥
स्वामि कहत यह बात न कोई। पूछहु इन पर बात सँजोई ॥
जो यह जगत शेष फन अहई। अथवा वृषभ शृंग पर लहई ॥
तौ यह मोहिं बतावहु भाई। रहत मात पितु हैं केहि ठाँई ॥
पूछहु बैल सर्प केहि ऊपर। ते जन मौन होत तेहि औसर ॥
जिनको दृढ़ सिद्धान्त प्रवीना। शेष शक्ति पृथ्वी सुख दीना ॥
ते यह कहत कूर्म पर अहिहै। जलपर कूर्म रहत इमि कहिहै ॥
जल अग्नी ऊपर दर्शाई। अग्नि वायु पर प्रकट लखाई ॥

दो०—वायु सदा आकाश पै, ठहरत है दिन रात।
पुनि पूछत कापै सबै, कहत ईश सतरात ॥४८॥
पुनि इन सों जब पूछहु जाई। वृषभ कूर्म सुत काके भाई॥
कश्यप को सुत सर्प बतावहिं। बैल गाय को पूत लखावहिं॥
कह मरीचि सों कश्यप ठयऊ। मनुमरीचि उपजावत भयऊ॥
अरु विराट ते मनु जग आयो। ब्रह्मा पुत्र विराट कहायो॥
ब्रह्मा आदि सृष्टि में भयऊ। तबकहुँ शेष जन्म नहिं ठयऊ॥
अरु कश्यप से ब्रह्मा ताई। मोहिं पाँच पीढ़ी दर्शाई॥
तब यह कहहु भूमि केहि ऊपर। जब नहिं उपजे शेष दिवाकर॥
तब वे चुप ह्वै करत बितंडा। बात न मानि प्रहारैं दण्डा॥
दो०—सत्य कथा यहि भाँति है, सुनहु सकल दै कान।
प्रलय अन्त जो बचि रहै, ताहि शेष परिमान ॥४९॥
असत कल्पना इन करिलीन्हीं। शेषहिं सर्प मानि मन लीन्हीं॥
सत्य अधार जगत यह भाई। वेदन में यहि विधि दर्शाई॥
उक्षाधार अवनि आकाशा। वेद मध्य यह पाठ प्रकाशा॥
करि कल्पना बैल की ठानी। उक्ष शब्द को अर्थ न जानी॥
बहुतक शब्द वेद के माहीं। लौकिक अर्थ अनर्थ लखाहीं॥
उक्षा अर्थ सूर्य को जानहु। सींचत है जग मेघन मानहु॥
निज आकर्ष जगत ठहरावा। ईश सहारा सूर्य सुहावा॥
कहहु स्वामि जग एतो भारी। याकहँ ईश कौन विधि धारी॥
दो०—स्वामि कहत समुझाइ के, नेक लखहु आकाश।
अरु समुद्र अवलोकिये, तेहि कर रूप प्रकाश ॥५०॥
तेहि अनन्त प्रभु सन्मुख भाई। लोक एक परमाणु लखाई॥
वह व्यापक विभु सेवक माहीं। यह जग धारण करत सदाहीं॥
आकर्षण सौं ठहरत लोका। सकलजगत विभुधारिअशोका॥

कहहु स्वामि मोहिं यह समुझाई । घूमत लोक कि थिर दर्शाई ॥
कहत स्वामि घूमत सब लोका । पुनि पूँछत यह हम कहँ धोका ॥
कोउ अस कहत सूर्य है घूमत । थिर है भूमि कतहुँ नहिं घूमत ॥
कोउ कहइ केवल भूमि भ्रमत है । सूर्य सदा स्थिरहि रहत है ॥
इन दोहुन में को सत साँई । मोहिं समुझाइ कहहु गुरुराई ॥
दो०-स्वामि कहत इन दुहुन को, झूठ पक्ष है अर्ध ।
वारि सहित भूगोल सब, घूमत रवि के गिर्द ॥५१॥
सूर्य सदा आकर्षण गुण सों । देत सुःख लोकन को जल सों ॥
निज परिधी पर घूमत सोऊ । भूमि और रवि लखिये दोऊ ॥
सूर्य एक ब्रह्मांड बिराजत । लोक सकल लोकांत प्रकाशत ॥
जिमिजगचन्द्र प्रकाशत भानू । भूमि आदि लोकन को जानू ॥
दिवस राति सब ठौर सुहाई । सन्मुख सूर्य सोदिवस लखाई ॥
रवि से पृष्ठ भाग जो होई । रजनी ताकहँ जानहु सोई ॥
उदय अस्त द्वौ काल सुहावत । सोई संध्याकाल कहावत ॥
मध्य दिवस मध्याह्न कहावै । मध्य रात्रि निशि माहिं सुनावै ।
दो०-कालचक्रयहिभाँतिसों, सकल लोक के बीच ।
वतमान सब ठौर में, रवि प्रकाश जग सींच ॥५२॥
आर्य्यवर्त जब दिवस लखाई । राति पताल विलोकहु भाई ।
अमरीका अब ताको नामा । पाद तले जो बसत ललामा ॥
घूमत सूर्य कहैं जे भाई । थिर है पृथिवी कहत सुनाई ॥
तिनहिं अज्ञ बुध कहत सदाहीं । जानहिं सूर्यगती ते नाहीं ॥
इन महँ बसत मनुज सब ठाहीं । हैं तहँ वृक्ष पहाड़ सदाहीं ॥
शतपथ को प्रमाण दै स्वामी । वसु स्वरूप बतलाइ अनामी ॥
तहँ पर बसत सकल जन नीके । करत कृत्य निज कर्मन ही के ॥
दो०--नान केर आकार में, कछुक भेद दशांत ।
जिमि यहँ प्रान्तिकभेद से, रूपविभिन्नलखात ॥५३॥

जेहि विधि सृष्टि यहाँ पर भाई। ताही विधि सब ठौर लखाई॥
रचत सदा प्रभु पूर्व समाना। नाना भाँति न सृष्टि विधाना॥
तेहि महँ भेद कछू नहिं होई। नियम एक निर्धारित जोई॥
कहहु कहा सब ठौरन वेदा। लोकन में मानत तजि खेदा॥
कहत स्वामि सब लोकन माहीं। एकहिं वेद दियो सब काहीं॥
पुनि पूछत यह मोहिं समुझावहु। जब तुम जीव अनादिबतावहु॥
तौ अधिकार ईश केहि भाँती। पर बस जीव रहत दिन राती॥
उपमा राज प्रजा की दीनी। पराधीन स्वाधीन प्रबीनी॥
पुनि सब एक पुरुष आधीना। जग रक्षा है ईश प्रबीना॥

दो०--जेहि विधि यहि संसार मैं, प्रजा राज्य आधीन।
ताही विधि सब जीव मैं, परमेश्वर आसीन॥५४॥
रचत ईश जब जीव को, कर्म करन के हेत।
ताही विधि भोगत सबै, प्रभु सब कहँ फल देत॥५५॥
सृष्टि रचै पालन करै, सर्व शक्तिमन ईश।
अरु सँहार हू करत है, बारबार जगदीश॥५६॥
भयो गुरू संतोष मोहिं, सुनि ऋषि कथा प्रसंग।
मोह महातम अज्ञता, नष्ट किये सत्संग॥५७॥

सत्य-सागर अष्टम् तरङ्ग स० प्र० ८ स० समाप्तम्

अथ नवम तरङ्ग (स० प्र० ९ स०)

विद्याऽविद्या बंध-मोक्ष

सो०--जानि सुसेवक नाथ, कथा कहहु ऋषिराज की ।
गुरुवर भयो सनाथ, सत्यकथानिशिदिवसमुनि ॥१॥
दो०--कथासलोनी गुन भरी, सुनि सुनि कान सिहात ।
छूटि जात अभिमान सब, केहुविधि नहिंभुलात ॥१॥
सृष्टिविषयजो प्रभु कह्यो, सुनि मन भयो हुलास ।
अब पुनि विद्यामोक्ष को, कहिये युक्ति विलास ॥२॥
सो०--सुनहु शिष्य मम बात, प्रेम सहित कहिहौं सदा ।
कथा परम सुख दात, धर्म अर्थ फलदायिनी ॥२॥
सुनहु शिष्य तुम बहुत प्रवीना । पूछत निशिदिन कथा नवीना ॥
अब हम कहत सुनहु दै काना । कह्योजोऋषिवरमोक्ष विधाना ॥
विद्या और अविद्या दोऊ । जानत एक संग नर जोऊ ॥
कर्म उपासन योग अविद्या । ज्ञान यथारथ जानहु विद्या ॥
जीतब मृत्यु अविद्या से ही । विद्या मोक्ष पराभव लेही ॥
जेहि विद्या वर्णत ऋषिराई । और अविद्या कहत सुनाई ॥
योग पतंजलि दर्शन माहीं । कह्यो जगत हित परम सुहाहीं ॥
स्वामि अविद्या चिह्न बतावत । हमहूँ तुमका सोइ सुनावत ॥
सो०--जोअनित्य कोनित्य, अशुचिबतावत शुचि सदा ।
दुखमानत सुख नित्त, बिनआतम आतमलखहिं ॥३॥
दो०--ताहि अविद्या कहत हैं, फँसत जो नर यहि बीच ।
विद्या तेहि विपरीत है, धरहु हृदय बिच खोच ॥३॥

जासों होय पदारथ बोधा । विद्या ताकहँ कहत सुबोधा ॥
जानि न परत जासु सौं रूपा । अन्य में अन्य बुद्धि अनुरूपा ॥
ताहि अविद्या कहत पुकारी । भेद सुनहु तेहि कर नर नारी ॥
केहि विधि कहत अविद्याको ही । कर्म उपासन की जग जोही ॥
भीतर बाहर क्रिया विशेषा । ज्ञान न होत न हो निश्शेषा ॥
यहि विधि बिना कर्म शुभ कीने । पार न होत मृत्यु दुख हीने ॥
पावन कर्म उपासन पावन । पावन ज्ञान मुक्ति को साधन ॥
झूठ कर्म पाषाण की पूजा । मिथ्या ज्ञान बन्ध युत दूजा ॥

दो०--होत कर्म से कोउ जन, यकत्तण अलग न भाय ।
तौ शुभ कर्म करै सदा, सत्य मार्ग को पाय ॥४॥
सत्य वचन पुनि धर्मयुत, कर्म करै सतात ।
अरु अधर्म त्यागन करे, मुक्की मार्ग लखात ॥५॥

पूछत एक स्वामि सों आई । पावत मुक्ति न कौन गोसाँई ॥
स्वामि कहत जो बद्ध लखाई । बद्ध कौन है कहिये साँई ॥
कहत स्वामि जो है अज्ञाना । करत रहत अधरम है नाना ॥
सोइ जीव जग बद्ध कहावे । मुक्ति पंथ वह नहिं नियरावे ॥
पूछत स्वामि कहौ समुझाई । बन्ध अरु मोक्ष स्वभाव लखाई ॥
अथवा होत निमित सो साँई । मोहिं समुझाइ कहौ गुरुराई ॥
है निमित्त यह स्वामि बतावत । कारण एक प्रबल दर्शावत ॥
बद्ध अरु मुक्त स्वभाव से होई । तो वृति कतहुँ नाश नहिं होई ॥

दो०- एक कहत ऋषिराज सो, जीव न बन्ध न मुक्त ।
मांडूक उपनिषद् पर, गौड़ कारिका उक्त ॥६॥

जन्म न लेत बन्ध नहिं आवत । नहिं साधक नहिं कर्तृ कहावत ॥
तबहिं स्वामि कह यह उर धारहु । नव वेदान्त कथा उच्चारहु ॥
यह नहिं सत्य होय केहु काला । है अल्पज्ञ जीप तिहुँ काला ॥

जन्म लेत निज कर्मन भोगत। करत भोग पुनि कर्मन जोवत ॥
साधन करत मुक्ति के हेता। प्राप्त होत तब ईश निकेता ॥
तब वह कहत सुनहु ऋषिराई। अन्तःकरण धर्म यह भाई ॥
जीव धर्म यह होय न साँई। देह धर्म यह प्रकट दिखाई ॥
पाप पुण्य से रहित सुजीवा। साक्षी-मान परम बलसीवा ॥

दो०-स्वामि कहत यहदेह जड़, सहत उष्ण अरु शीत।
अरु जड़ अन्तःकरन हैं, होत प्राप्त जो मीत ॥७॥

भोग न होत देह के माहीं। भोगत चेतन है क्षण माहीं ॥
भूख न प्यास प्राण के माहीं। क्षुधा तृषा सब भाँति सताहीं ॥
तैसेहि जड़ मन हर्ष न शोका। भोगत सुख दुख जीव अशोका ॥
मन में होत सदा संकल्पा। भोगत जीव जो होत विकल्पा ॥
जिमि करवाल चलावन वारो। पावत दण्ड महादुख भारो ॥
दण्डनीय करवाल न होई। तिमि अन्तष्को जानहिं गोई ॥
साक्षी जीव कर्म को नाँहीं। कर्ता भोक्ता है सब ठाँहीं ॥
भोगत जीव कर्म जग माहीं। साक्षी ईश्वर जानहु ताहीं ॥

दो०-कहत एक प्रतिबिम्ब है, ब्रह्म जीव के रूप।
दर्पण अन्तःकरण है, जीव ब्रह्म अनुरूप ॥ ८ ॥

दर्पन टूटत है जब भाई। तौ प्रति बिम्बहु जात नशाई ॥
तेहि विधि जीवहृदय बिच अहई। हृदय नशे ब्रह्म आनँद लहई ॥
यहि विधि मुक्त जीव सब बेरा। नहिं भोगत नहिं करत बसेरा ॥
कहत स्वामि यह बालकताई। उपमा घटत ब्रह्म बिच नाँई ॥
सदा होत प्रतिबिम्ब अकारा। निराकार नहिं होत विकारा ॥
दर्पन है साकार सुहावा। अरु सकार मुख उज्ज्वलभावा ॥
अरु सब पृथक पृथक दर्शाहीं। पृथक सुदर्पन मुख सब ठांहीं ॥
ब्रह्म सुव्यापक सब के माहीं। निराकार ईश्वर सब ठांहीं ॥

दो०—हुइ न सकत केहि भाँति सों, ताको जग प्रतिबिम्ब ।
जगदीश्वर करुनायतन, परमेश्वर जगदम्ब ॥९॥
पुनि कह स्वामिसुनहु मम बाता । गगन अभास होत जल जाता ॥
निराकार आकाश बताई । ताको तबहिं अभास लखाई ॥
तेहि विधि ब्रह्म हृदय के माहीं । होत अभास जीव तनु माहीं ॥
चिदाभास ताकहँ बुध कहहीं । जाने ताहि परम पद लहहीं ॥
स्वामि कहत यह झूठ अलापा । बाल बुद्धिवत् करत प्रलापा ॥
काहुहि गगन देखात न भाई । तेह महँ रूप न रेख लखाई ॥
नयनन सों किमि परै लखाई । गगन माहिं गुन रूप न भाई ॥
यह जो नील बरन दिखराई । है नहिं कछु यह शून्य सोहाई ॥
दो०—भूमि वारि अरु अग्नि के, अणु अणु पृथक् लखात ।
सो जल बिच प्रतिबिम्ब है, नाहिं अकाश देखात ॥१०॥
घटाकाश अरु मेघ अकाशा । कहत जो जन यह महदाकाशा ॥
ते जन फँसत अविद्या माहीं । ईश भेद कछु जानत नाहीं ॥
कोउ कह चिदाकाश के माहीं । घूमत जीव रहत सब ठाहीं ॥
जिमि वारिध बिच जीव अनेका । उड़त गगन बिच जे धरि टेका ॥
जीव ब्रह्म द्वौ प्रबल उपाधी । जीवहि होवै ब्रह्म अनादी ॥
तिन को मत यह सत्य न होई । भरमत रहत सदा सब कोई ॥
ब्रह्म अरु जीव एक जो कहहीं । भ्रान्त अज्ञता तीरथ लहहीं ॥
सर्वज्ञता प्रभू की जाई । ब्रह्म न रहत अखंड कदाई ॥
दो०--जीव पृथक ईश्वर पृथक, यह वेदन की रीति ।
ताते निशि-दिन प्रेम सों, गहहु वेद की नीति ॥११॥
अध्यारोप स्वामि सुनि लीजै । अन्य में अन्य वस्तु लखिलीजै ॥
निश्चय ब्रह्म लखहु सब ठाहीं । बोध हेत यह युक्ति सोहाहीं ॥
स्वामि कहत यह हमहिं बतावहु । रोपक कौन ताहि समुझावहु ॥

तब वह कहत जीव है एका । कौन जीव करि कहहु विवेका ।।
अस कह अन्तःकरन के माहीं । चेतन एक विराजत आहीं ।।
तब कह स्वामि ब्रह्म चेतन सोइ । या दूसर है तहँ चेतन कोइ ।।
उत्तर देत ब्रह्म सोई आई । कहत स्वामि समुझावहु भाई ।।
तो कह ब्रह्म सो अपनेहिं माहीं । करत कल्पना जग दर्शाहीं ।।

दो०--हम मानत यहि भाँति सों, तौ कह हानि लखात ।
स्वामि कहतकल्पितअसत, सोकिमिसत्यसोहात ।।१२।।

मन वाणी जेहि कल्पित करई । ताकहँ झूठ सदा उर धरई ।।
तबकह स्वामि कहौ किमि भाई । ब्रह्म असत होवे यहि ठाँई ।।
मिथ्या मन वाणी से जोई । कल्पित करै असत हैं सोई ।।
होय ब्रह्म अस तौ कह हानी । हमरी जान 'इष्ट' मनमानी ।।
कहा स्वामि तेहि बुद्धि सराही । धनि तुम्हार वेदान्त सोहाही ।।
सत्य काम पुनि सत्य स्वरूपा । शुभ संकल्प ब्रह्म यक रूपा ।।
ताकहँ मिथ्याचार बतावहु । निज बुधि देखिनतनिक लजावहु ।।
कौन वेद उपनिषदन माँहीं । कल्पित असत ब्रह्म केहि ठाँहीं ।।

सो०--जो तुम्हार है दोष, ताहि ब्रह्मकल्पित करहु ।
ब्रह्म अहै निर्दोष, सत्य नित्य आनंद प्रभु ।।४।

दो०--जो व्यापक जगदीश है, बन्धन परत न सोय ।
जीव एक अल्पज्ञ है, दुख-सुख भोगत सोय ।।१३।।

यक पूछत प्रभु मोहिं बतावहु । बन्ध मुक्त कर भेद सुनावहु ।।
स्वामि कहत सुनिये चितलाई । मुक्ति स्वतन्त्र परम सुखदाई ।।
जासों दुख छूटत नर केरे । प्राप्त होत सुख ब्रह्म के नेरे ।।
है सोइ मुक्ति जगत के माँहीं । जो न लहत वह अबुध लखाहीं ।।
पुनि पूछत यह मोहिं बतावहु । मुक्ति बन्ध कारण जतलावहु ।।
आज्ञा ईश्वर पालन वारो । पावत मुक्ति ऋषी उचारो ।।

सदा कुसंग अविद्या त्यागै । अधरम व्यसन न जा कहँ लागै ॥
बोलै सदा सत्य प्रिय बानी । परोपकार रत विद्या दानी ॥
पक्ष रहित धर्मी नित होई । स्तुति ईश करत नित सोई ॥
उन्नति ज्ञान करै निशि-वासर । साधन करै धर्म युत आगर ॥

दो०--वह पावत मुक्ती अवशि, करत ज्ञान युत कर्म ।
है स्वतंत्र विचरत सदा, जानि ब्रह्म को मर्म ॥१४॥
चलै ज्ञान विपरीत जो, करै अवज्ञा ईश ।
वह नर बन्धन परत है, दुख भोगत तजि ईश ॥१५॥

पुनि कह स्वामि बतावहु मोहीं । मुक्ति माहिं लय जीव की होई ॥
अथवा रहत जगत के माहीं । वा दूसर कोउ ठौर लखाहीं ॥
कहत विकास जीव ब्रह्म माहीं । विद्यमान बहु रहत सदाही ॥
अरु कह ब्रह्म रहत केहि ठौरा । कहहु जीव गति को सब ब्यौरा ॥
निज इच्छा भरमत सब धाई । अथवा रहत एक हीं ठाई ॥
स्वामि कहत तेहि रोक न टोकू । आनँद सहित स्वतंत्र विवेकू ॥
पूरण ब्रह्म लखहु सब ठाहीं । मुक्ति जीवहू रहत तहाँहीं ॥
जो तुम पूछत जीव सुधीरा । मुक्ति मध्य किमि कहत शरीरा ॥

दो०--सो सुख आनँद भोगई, जीव तहाँ बिन अंग ।
गुण समस्त सगहीं रहत, रहत न भौतिक संग ॥१६॥

मोक्ष माँहि वह अधम शरीरा । भौतिकरूप इन्द्रि बलवीरा ॥
सो न रहत तेहि स्थल माहीं । वपु संकल्प मात्र तेहि ठाहीं ॥
निज स्वभाव इन्द्रिन गुन रहहीं । निज इच्छा आतम सुखलहहीं ॥
श्रोत्र आदि मन बुद्धि सदाहीं । अहंकार तहँ रहत सोहाहीं ॥
शक्ती जीव अनूपम जानहु । मुक्ति बीच यह रहत सो मानहु ॥
चौबिस शक्ति जीव के माहीं । रहत सदा निशि दिवस तहाँहीं ॥
एकहि शक्ति मुख्य तुम जानहु । नाम सु औरन केर सुनावहु ॥

सुबल, पराक्रम, अरु आकर्षण । प्रेरण-गती, विवेचन, भीषण, ।।
दो०--निश्चय, इच्छा, प्रेमयुत, क्रिया और उत्साह ।
द्वेष, संयोग, विभागयुत, कहत स्मरण सराह ।।१७।।
घ्राण, संयोज, विभाजक, दर्शन, स्वाद, स्पर्श ।
गंध ग्रहन, चौबीस हैं, शक्ति जीव आदर्श ।।१८।।
जीव जो ब्रह्म माँहिं लय होई । तौ पुनि सुख भोगत कहुँ कोई ।।
नाश जीव मुक्ती को जानहिं । ते नर मूढ़ अयान प्रमानहिं ।।
मुक्ति समय सब दुख नशिजाहीं । रहत अनन्द सदा तेहि ठाहीं ।।
जीव समर्थ मुक्ति के माँहीं । दुख अज्ञात पाप नशि जाँहीं ।।
मृत्यु शोक वृद्धापन नाशत । क्षुधा तृषा अरु पाप विनाशत ।।
है वह सत्य सच्चिदानन्दा । परमातम शुभ आनँद कन्दा ।।
नर नित करै यत्न तेहि हेता । साधन मोक्ष परम सुख लेता ।।
करि मन शुद्ध नेत्र शुभ्र करई । प्रतिक्षण प्रभुहिं हृदय बिचधरई ।।
दो०--वह मुक्ती सुख भोगई, पुनि न परत भ्रमजाल ।
धर्म अर्थ कामादि सब, मिलत ताहि सत्र काल ।।१९।।
ज्ञानेन्द्रिय अरु शुद्धमन, रहत जीव के साथ ।
थिर बुद्धी तेहि होत है, मोक्ष परम सुख दात ।।२०।।
यक पूछत ऋषि सों कर जोरी । सुनहु नाथ यक विनती मोरी ।।
जन्म मृत्यु जो दुख जग माहीं । मुक्त जीव पावत की नाहीं ।।
हम देख्यो बहु स्थल माँहीं । मुक्त जीव पुनि आवत नाहीं ।।
कहत स्वामि यह ठीक न भाई । वेद निषेध करत अधिकाई ।।
तब पूछत पुनि मोहिं समझावहु । को जग जन्म देत बतरावहु ।।
पुनि कह स्वामि ईश वह एका । धारण करत जगत धरि टेका ।।
दुःख निवृत्ति मुक्ति तुम जानहु । आवत बहुरि इहां परमानहु ।।
कल्प अन्त मुक्ती सुख त्यागत । संख्या कल्प तुमहिं बतलावत ।।

दो०--सहस बीस तैंतालिस, लक्ष वर्ष को योग।
चतुर्युगी परिमाण यह, जानि लेहिं सब लोग ॥२१॥
युग्म सहस्र चतुर्युगि होई। अहोरात्रि तेहि कहत सँजोई ॥
यहि विधि तीसदिवस अहराती। होत मास तेहि काल सुहाती ॥
द्वादश मास वर्ष लखि लीजै। यक शत काल परान्त करीजै ॥
एतो समय मुक्त सुख पावत। बीते समय बहुरि जग आवत ॥
पुनि कह हम जानत इमि साईं। मुक्ति जीव पुनि आवत नाईं ॥
हमरी जानि सुग्रन्थन माहीं। लिख्यो मुक्ति को भाव सोहाहीं ॥
जन्म-मरण बन्धन जग केरे। आवत जीव न ताके नेरे ॥
कहत स्वामि यह बात न होई। देखहु जीव समर्थ सँजोई ॥
दो०--नहिं अनंत है जासु वपु, फल अनंत किमि होय।
तेहि अनंत सुख भोग हित, जीव समर्थ न सोय ॥२२॥
साधन जीव अनित्य सदाई। तेहि फल नित्य होय नहिं भाई ॥
जो न मुक्ति ते आवै कोई। तो निश्शेष जीव जग होई ॥
जो यह कहहु ईश उपराजहि। तौ कस जीव नित्य जग राजहि ॥
जाहिं सकल मुक्ती के माँहीं। तहँ पर होय भीड़ अधिकाहीं ॥
आय अधिकव्ययकछु नहिं होई। कहहु कौन गति ताकी होई ॥
दुख न होय तौ सुख किमिजानै। जिमि कटु चखे मधुर पहिचानै ॥
जीव सदा अल्पज्ञ सहाई। है सर्वज्ञ ईश जग राई ॥
जीव स्वतंत्र मुक्ति में रहई। इन्द्रिन बिन सब स्वाद न लहई ॥
दो०--नित्य मुक्ति जग ईश है, नाथ हमहि दर्शाइ।
मुक्ति काल वह रहत है, जीव ईश गुन पाइ ॥२३॥
है अनन्त गुन कर्म स्वभावा। ईश समर्थ विलोकहु भावा ॥
ता महँ बन्धन दुःख अविद्या। शुद्ध स्वरूप ईश बिच विद्या ॥
कहतस्वामिसों यक अकुलाई। जन्म मृत्यु सम मुक्ति लखाई ॥
स्वामि कहत यह बात न कोई। मुक्ति न जन्म मरण सम होई ॥

छत्तिस सहस बार के माहीं । उत्पति प्रलय सृष्टि दर्शाहीं ॥
एतो समय मुक्तिको जानहु । आनँद लहत जीव तहँ मानहु ॥
इतने समय दुःख नहिं होई । कहहु कहा यह लाभ न सोई ॥
क्षुधा-तृषा नित करत उपाई । जो क्षण-क्षण पर आवत धाई ॥

दो०--हम देखत नित मृत्यु को, जन्म-मरण के बीच ।
पुनि जीवन हित अहर्निश, करत यत्न बल खींच ॥२४॥

तौ पुनि मुक्ति हेत किमि नाई । करहिं उपाय परम सुखदाई ॥
तो तुम साधन मुक्ती पूछत । सुनहुमिलहितेहिजेहिहियसूझत ॥
कछु साधन हम प्रथम बताये । ऋषिन केर मत तुमहिं सुनाये ॥
झूठ, पाप, दुख, त्यागन करई । सत्य धर्म सुख हियमहँ धरई ॥
करत सदा सत्संग प्रवीना । अरु विवेक बुद्धी मन चीन्हा ॥
पंच कोष वपु बिच दर्शाई । जानहु तिनहिं सकलमन लाई ॥
कोष अन्न मय परमपुनीता । त्वचाअस्थि लौं जो शुभ नीता ॥
गमनागमन करै दिन राती । कोष प्राणमय दूसर जाती ॥
तिन महँ प्राण अपान उदाना । व्यान समान वायु परिमाना ॥

दो--०कोष मनोमय है तहाँ, मन विकार जेहि माहिं ।
ज्ञान कर्म इन्द्रिन सहित, नर अकार दर्शाहिं ॥२५॥

इन महँ जीव करत व्यवहारा । ज्ञान कर्म भोगत सुख सारा ॥
हर्ष प्रीति आनंद सदाई । रहत न कछु अथवा अधिकाई ॥
आनँदमय सोइ कोष बिराजत । इनसों जीव जगत बिचराजत ॥
जाग्रत स्वप्नसुषुप्ति अवस्था । सतरज तमप्रकृतीगुनअस्था ॥
यह शरीर स्थूल देखाई । दूसर सूक्ष्म शरीर सुहाई ॥
ज्ञान इन्द्रि अरु सूक्ष्म भूता । पंच प्राण मन बुद्धि सँयूता ॥
सत्रह तत्त्व रहत है तहँवाँ । सूक्ष्मशरीर विराजत जहँवाँ ॥
कारणशरीर तीसरा जानहु । चतुर्थ तुरीय इष्ट पहिचानहु ॥

यह शरीर मुक्ती के माहीं । रहत सदा बिन दुख सुखचाहीं ।।

दो०--जो समुझत यहि भेद को, साधन मुक्ति विवेक ।
यह दूसर साधन लखहु, करहु ताहि धरि टेक ।।२६।।

शम, दम, उपरति और तितीक्षा । श्रद्धा, समाधान की दीक्षा ।।
निज आतम अरु अन्तर भावा । तेहि अधरम सों रहत हटावा ।।
धर्म चरित में रमत सदाई । सो "शम" साधन जानहु भाई ।।
दुराचार सों इन्द्रिन रोकै । इन्द्रीजित कर्मन अवलोकै ।।
अरु कुवासना मनहि न लावै । करि शुभ कर्म सदा सुख पावै ।।
है साधन "दम" जगत प्रवीना । जासों होत शरीर नवीना ।।
जो जग दुष्ट कर्म नित करहीं । तिनसों पृथक् सदा नर रहहीं ।।
यह साधन "उपरति" है भाई । सो न लहत दुख की परिछाई ।।

दो०--केतिक निन्दा होवई, करै बड़ाई कोय ।
होय हानि अरु लाभ तो, हर्ष शोक नहिं होय ।।२७।।

साधन युक्ति निमग्न सदाई । ताहि 'तितिक्षा' जानहु भाई ।।
वेद आदि सद् शास्त्र जो अहहीं । अरुऋषि वचनन में रत रहहीं ।।
"श्रद्धा" साधन परम सुहाई । प्रेम सहित पावत निपुणाई ।।
चित्त एकाग्र परम विधि सोई । "समाधान" साधन यक होई ।।
ए षट साधन परम पुनीता । पावै मोक्ष करै कुल नीता ।।
युक्ति चतुर्थ सुनहु मन लाई । मोक्ष हेत नर करहिं उपाई ।।
जिमि नर क्षुधा तृषा के काजा । करत यत्न मन होत न लाजा ।।
तिमि निशि दिवस मुक्तिरत रहई । और न कछु ताके मन त्रसई ।।

दो०--मुमुक्षत्व ताको कहत, साधन परम पुनीत ।
प्रेम प्रीति सों जो करत, परमारथ सुख नीत ।।२८।।

साधन मुक्ति प्रेम सों करई । इनते विलग न कछु चित धरई ।।

पुनि अनुबन्धचतुष्टय[1] जानहु । श्रवण चतुष्टय बहुरि बखानहु ।।
शान्त चित्त सुजनन की बानी । सुनहु प्रेमयुत श्रवणन आनी ।।
पुनि तेहि मनन करै चित लाई । मौन भाव एकान्त सुहाई ।।
हो निदिध्यासन सों दृढ़ताई । तब तेहि देखन करत उपाई ।।
नितप्रति आप्त विचार सोहाई । त्यागहि आलस क्रोध सदाई ।।
तम गुन आदि रजोगुन नाना । ईर्षा द्वेष काम अभिमाना ।।
त्यागहि इनहिं परम हित जानी । धारहि सत्त शान्त सुखदानी ।।

दो०—विद्या शौच विचारगुन, हिय धारय नर सोय ।
सुखी जनों सें मित्रता, "मैत्रि" एक गुनजोय ।।२६।।

जो जन दुखी अहै जग भांई । तिन पर दया करहु मन लाई ।।
ताकहँ बुध जन 'करुणा' कहहीं । ईश दया यह गुन जन लहहीं ।।
पुन्यात्मा जगत में जोई । तिनहिं देखि जो हर्षित होई ।।
"मुदिता" परमरम्य यह नीती । धारण करहि नेह की रीती ।।
जो जग दुष्टात्मा लखाहीं । तिन सों सदा बिलग हो जाहीं ।।
तिन हित वैर प्रीति नहिं करई । परम "उपेक्षा" को हिय धरई ।।
नित प्रति ध्यान करै मन लाई । घटिका पञ्च अवशि थिरताई ।।
जासों अन्तःकरन बिचारा । मन प्रत्यक्ष होय सुख सारा ।।
योगाभ्यास करै दिन राती । क्लेश छुटै सुख हो बहु भाँती ।।
ब्रह्मानन्द प्राप्त सो करई । साधन मुक्ति हिये बिच धरई ।।

---

[1] —अर्थात साधनों के पश्चात् ये कर्म करने होते हैं—(१) अनुबन्ध इन चार साधनों से युक्त पुरुष ही मोक्ष का अधिकारी होता है। (२) सम्बन्ध ब्रह्म की प्राप्तिरूप मुक्ति प्रतिपाद्य और वेदादि-शास्त्र प्रतिपाद्य को यथाविधि समझकर अन्वित करना (३) 'विषयी' सब शास्त्रों का प्रतिपादन विषय ब्रह्म उसकी प्राप्तिरूप विषयवाले पुरुष का नाम विषयी। (४) 'प्रयोजन' सब दुःखों की निवृत्ति और (परमानन्द) प्राप्त होकर मुक्तिसुख का होना ये अनुबन्ध कहाते हैं।

दो०--अविद्यादि के रूप को, कह्यो पूर्व बहु भाँति।
प्रेमसहित अभ्यास करि, त्यागहु इनकी जाति ॥३०॥
सो०-तब पूछत यक बात, कहहु ऋषी समुझाइ मोहिं।
मानत मुक्ति जो ताह, तब समान कोऊ नहीं ॥५॥
दो०-मोक्षशिला सुन्दर सुखद, है शिवपुर के बीच।
बैठत तेहि पर मौन ह्वै, कहत जैन बल खींच ॥३१॥
अरु मानत यहि भाँति रसाई। चौथा आसमान दिखराई॥
तहँ पर आनँद सहित बिराजत। निकट खुदा के सबकोउ राजत॥
ऐसेहि मुसल्मान हू मानत। आसमान सप्तम ते भाषत॥
अरु सब सुःख इन्द्रियन केरे। होत बहिश्त माँहिं बहुतेरे॥
वाममार्गि शिवपुर को कहहीं। कहत शैव कैलाश शिखरहीं॥
अरु वैकुंठहिं वैष्णव मानहिं। अरुगोसाँइ गोकुल अनुमानहिं॥
ईश लोक में मुक्त जो बसहीं। तेहि "सालोक्य" पुरानिक कहहीं॥
लघु भ्राता सम ईश समीपा। रहत ताहि "सानुज" अनुरूपा॥
होय उपास्य देव जेहि भाँती। धारत मुक्त देह बहु भाँती॥
दो०--कहत ताहि 'सारूप्य' है, अरु 'सामीप्य' को भेद।
ईश निकट ही रहत है, सेवक सम बिन खेद ॥३२॥
अरु 'सायुज्य' ईश सम होई। मानत यहिं कहँ हैं कोइ कोई॥
कहत स्वामि सुनिये मन लाई। है तहँ कौन बात अधिकाई॥
आगे मतन केर सब हाला। कहिहौं जो कछु चरित विशाला॥
वाममार्गि शिवपुर के माँहीं। मानत मद्य नारि रँग राई॥
कहहु कहा यहि स्थल नाहीं। जाके हित मुक्ती लौ जाँहीं॥
वैसेहि श्री विष्णू समताई। शंकर पारबती निपुणाई॥
धनी पुरुष इत आनँद भोगहिं। कौन विशेष बात तहँ होवहिं॥
यह तब युक्ति कल्पना झूँठी। राग भोग सँग परम अनूठी॥

जीव सकल तुम्हरे अनुकूला। बसत मुक्तिमय प्रेम समूला॥

दो०--ईश लोक जब जगत है, यहिं महँ भेद न भाव।
बिन प्रयास सालोक्य को, पावत जीव स्वभाव॥३३॥

व्यापक ईश रहत सब ठाईं। तासों सदा समीप रहाईं॥
पुनि सामीप्य कहा हम करहीं। तेहि हित यत्न वृथा कोउ धरहीं॥
है लघु जीव ईश से भाई। चेतन बन्धु सदा दर्शाई॥
तब सायुज्य कहौं केहि माँहीं। स्वतः सिद्धि सायुज्य सोहाहीं॥
तत्त्व जबै तत्त्वन मिलि जाहीं। मानि मुक्ति तेहि जैन सिहाहीं॥
सो कूकुर गर्दभ सब पावत। सुनिसुनि बात हँसी मोहिं आवत॥
भ्रम मय जगत मुक्ति पथ पेखत। लोकन में मुक्ती अवरेखत॥
लोक माँहि जस बन्धन अहई। मुक्ति समय सो कतहुँ न रहई॥

दो०--निज इच्छा भरमत रहत, मुक्त जीव सब ठाँव।
भय शंका दुख लेश नहिं, बसत नाहिं केहु गाँव॥३४॥

कहत एक सुनिये ऋषिराई। जन्म अनेक कि एक लखाई॥
स्वामि कहत हैं जन्म अनेका। पुनि पूछत यक है धरि टेका॥
तौ स्मरण होत किमि नाई। दूसर जन्म केरि करताई॥
पुनि कह स्वामि जीव अल्पज्ञा। त्रिकालज्ञ ईश्वर सर्वज्ञा॥
याते भूलत जीव सदाई। देखहु निज हिय बुद्धि दृढ़ाई॥
दूसर जन्म कहौं किमि ताता। भूलत याहि जन्म की बाता॥
अल्प ज्ञान आतम बिच रहई। सोकिमि ईश्वर समतालहई॥
पुनि पूछत किमि जीव सुधारू। जीव न जानत निज व्यवहारू॥

दो०--जीवहि ज्ञान न पूर्व का, देत ईश है दण्ड।
किमि सुधार हम मानहीं, ईश्वर न्याय अखण्ड॥३५॥

कहत स्वामि सुनिये चितलाई। ज्ञान विधान आठ दर्शाई॥
धन बुधि विद्या दारिद पेखी। मूरखता सुख दुख अवरेखी॥

पूर्व जन्म जो नाहिं विचारहु । बिन कारज कारणकिमिजानहु ॥
कारन रोग रोगिहू जानत । वैद्य निदान देखि बतलावत ॥
घटै बढ़ै सुख दुख जग माँहीं । पूर्व जन्म की रीति सुहाहीं ॥
यदि हम पूर्व जन्म नहिं मानहिं । तौ ईश्वर द्वेषी ठहरावहिं ॥
पूर्व कर्म सों राजा होई । दुखदारिद पावत कोइ कोई ॥
यह सब पूर्व कर्म फल मानहु । कोउधनपति कोउदारिद जानहु ॥

दो०—पूरब संचित कर्म जो, ह्वै प्रारब्धि सरूप ।
प्रकटत यहि जग के विषे, भोगत रंक अरु भूप ॥ ३६॥

जो तुम कहहु प्रथम दै राख्यो । जो कछुतेहिनिमित्त प्रभुभाख्यो ॥
तौ बिन करम न देवै ईशा । कर्म निरखि फल दें जगदीशा ॥
चहत सदा सुख सब क्षण माँहीं । मिलत दुःख कोऊन सिहाँहीं ॥
पर यह बात लखहु जग माँहीं । चाहत सुख सब वय के माँहीं ॥
जन्म दुखी जग एकहि जानहु । तबकर्मनफलको पहिचानहु ॥
जन्मत एक होत सुख सारा । नाना भाँतिन बजत नकारा ॥
दासी दास अधिक तेहि ठांईं । करत प्रबन्ध परम हित साईं ॥
अरु कोउ जन्मत बन के मांहीं । साधन तहँ कछु नहि दर्शाहीं ॥

दो०—याते यह जानहु सबै, फल दाता जगदीश ।
कर्म हमारे देखि कै, देत सदा फल ईश ॥ ३७॥

पूछत एक कहहु ऋषिराई । एकहि जीव सदा सब ठाँईं ॥
मानुष के तनु में स्वइ जीवा । सोइ पशु योनि पराभवसीवा ॥
सत्य तुम्हार बात यह भाई । जीव भ्रमत सब योनिन जाई ॥
जब नर पुण्य सकल नशि जाई । तब निश्चय पावै पशुताई ॥
उत्तम मध्यम अधम शरीरा । पशु पक्षी आदिक तरु कीरा ॥
भोगत निज कर्मन अनुकूला । होत न कछु प्रकृती प्रतिकूला ॥
जीव शरीर बिलग जब होई । तेहि कहँ मृत्यु कहत सब कोई ॥
जन्म सँयोग सकल बुध मानत । गुन अरु कर्म स्वभावविराजत ॥

दो०–वायु नाम यम को लिखो, है वेदन के माँहि ।
जीव भ्रमावत गगन में, जब शरीर नशि जाँहि ।।३८।।
जो जस कर्म करै संसारा । फल पावे ताके अनुसारा ।।
पावत नर तनु ज्ञान प्रकाशा । साधन धाम मुक्ति पथ आशा ।।
नर तनु पाइ मोक्ष पथ साधन । जो न करहि फँसिजगकेबाधन ।।
तेहिसमअधम न कोउजगमाँहीं । पारस पाइ मिटै दुख नाँहीं ।।
पूछत एक ऋषी सों भाई । होत मुक्ति बहु जन्मन आई ।।
अथवा एक जन्म के माँहीं । मुक्ति प्राप्त होवै केहि ठाँहीं ।।
स्वामि बतावत जन्म अनेका । मुक्ति हेत नर करत विवेका ।।
जौ लगि हृदय अविद्या रहई । तौ लगि किमिआतमसुखलहई ।।
दो०–विद्या ज्ञान प्रकाश जब, होत आत्मा बीच ।
तबहिं ईश अवलोकिये, आत्मतत्व हिय खींच ।।३९।।
व्यापि रह्यो ब्रह्मांड में, अजर अमर अखिलेश ।
जीव पृथक ईश्वर पृथक, प्रलय काल अवशेष ।।४०।।
ईश जीव यदि कहुँ मिलि जाहीं । कहहु तु लहै को मुक्ती काहीं ।।
जब यह जीव वेद पथ चलई । ईश्वर आज्ञा पालन करई ।।
करहि सुकर्म और सत्संगा । साधन मुक्ति योग के अंगा ।।
जो हम पूरब तुम्हहिं बताये । करहु सकल जो तव मन भाये ।।
तौ पावत मुक्ती नर धाई । यहि महँ कछु संदेह न भाई ।।
निज आतम प्रति क्षण प्रभु हेरत । ओ३म् नाम कहि ताकहँ टेरत ।।
ईश धारणा ओ३म् प्रमानहु । साधन योग मुख्य यह जानहु ।।
ताकहँ निशि दिन आठो यामा । जपहु निरंतर ओ३म् सुनामा ।।
दो०–तहँ अनन्त विद्या सहित, जीव ब्रह्म के साथ ।
सुख आनंद सब भोगई, बिन शरीर, अबदात ।।४१।।
सुख विशेष मुक्ती के माहीं । निर्मल ज्ञान होत तेहि ठाँही ।।

सुखसुविशेष स्वर्ग को मानहु। नरक विषय तृष्णा परमानहु ॥
चाहत सुख सुंदर सब कोई। कोउ न चहत दुख तनिकौ होई ॥
पर जौं लगि नर पापन त्यागत। छुटहिं नदुखसुखनिकटनआवत ॥
बिना मूल पल्लव किमि नाशै। ताते प्रथमहि मूल विनाशै ॥
तरु नशि जात मूल के काटे। तिमि दुख नशत पाप के छाँटे
जस जस कर्म करै जग आई। गति पावे ताके मनुसाई ॥
हैं गति तीन कर्म की भाई। श्रेष्ठ मध्य अरु अधम लखाई ॥

दो०-मन वाणी वपु सों सदा, करत जीव सो धर्म।
ताही सम फल लहत है, जो जाको है कर्म ॥४२॥

मन सों पाप करत जग कोई। मन सों भोगत है फल सोई ॥
वाचा कर्म सुवाणी भोगत। कर्म शरीर शरीरहिं होवत ॥
करै चोरि सुजननहिं दुख देवै। रमि परनारि माहिं सुख लेवै ॥
थावर योनि वृक्ष की पावत। जो शरीर के कर्मन धावत ॥
पशु पक्षी आदिक तनु पावहिं। पाप जो वाणी के बिच लावहिं ॥
मन सों पाप करै नर कोई। चांडालादिक तनु लह सोई ॥
जो गुन अधिक होय जेहि माँहीं। तेहिस्वभाव अधिकै हुइ जाहीं ॥
जब हो ज्ञान तो सत पहिचानहु। अरु अज्ञान सोतम गुन जानहु ॥

दो०-राग द्वेष द्वौ रहत जहँ, रजगुन तहँ परिमान।
गुन तीनौं प्रकृती विषे, रहत सदा सुखदान ॥४३॥

मन प्रसन्नता शांति विराजहि। तेहिक्षणसतगुनबुधपहिचानहि ॥
मन आतम दुख संयुत होई। भटकै विषय वासना सोई ॥
तब रज गुन तेहि होत विशेषा। सत अरु तम तहँ होत अशेषा ॥
फँसे मोह बिच ज्ञान बिहीना। विषयासक्त तर्क सों हीना ॥
तब निश्चय समझहु चितलाई। है यह तम गुनकी अधिकाई ॥
अब इन गुनन केर फल जानहु। उत्तम मध्यम अधम बखानहु ॥
वेद अभ्यास धर्म रत रहई। ज्ञान वृद्धि शुचिताअतिलहई ॥

इन्द्रिन रोकि सत्य नित कहई। सतगुन लक्षन जानहु तँहई॥

दो०-असत कर्म को करत नित, त्यागत धैर्य स्वभाव।
नितप्रति विषयन में रमत, तमगुन को यह भाव॥४४॥

होत तमोगुन जेहि तनु माँहीं। अरुसत रज नहिं परतल खाहीं॥
तेहि अति लोभ पाप अधिकाई। आलस नींद अधैर्य लखाई॥
नास्तिक भाव क्रूरता होई। वेद ईश श्रद्धा सब खोई॥
व्यसनन फँसत रहत दिनराती। अन्तःकरण कुभाव सुहाती॥
तम गुन के लक्षण यह जानहु। फँसत जे जनतेहिअबुधप्रमानहु॥
करत कर्म भय शंका होई। तेहि क्षण लाज हिये बिचगोई॥
तब यह जानि लेहु मन माहीं। है तमगुन निश्चय यहि ठाहीं॥
चहत बड़ाई जो जग माहीं। करत धर्म नित नेम निवाहीं॥
तेहि रजगुन अवलोकहु नीके। राग द्वेष सब जावें जीके॥

दो०-तेहि रजगुन अवलोकिये, परम प्रीति सुखदैन।
सत गुन धर्म प्रमानिये, अर्थ रज़ोगुन ऐन॥४५॥

जासों प्रवल आतमा होई। कर्म किये शुभ लाज न होई॥
काम तमोगुन को फल भाई। मानहु यहि प्रकार सब ठाँई॥
तम से श्रेष्ठ रजोगुन जानहु। रजसे सतगुन प्रबल बखानहु॥
अब जेहिगुन सों जो गतिहोई। कहिहौं ताहि सुनहु सब कोई॥
जो नर सात्त्विक परम पुनीता। वह विद्वान देवगुन नीता॥
जे रजगुन में नित लय रहहीं। मध्यम तिनकहँ बुधजन कहहीं॥
अरु तम गुन रत नर जो होई। गति निकृष्ट पावत है सोई॥
जिनमहँ तम गुण अधिकलखाई। थावर तरु उपजत ते जाई॥
मगर मत्स्य कृमि कच्छप योनी। पावत मृग आदिक जो योनी॥

दो०-उत्तम मध्यम अधम है, तमगुन तीनि विधान।
याही विधि सबकी गती, कहिहौं परम सुजान॥४६॥

जिन महँ तम गुन मध्य सुहाई । उपजत हस्ति अश्व ते जाई ॥
शूद्र मलेच्छ अकर्मन कर्ता । सिंह बराह होत जग हर्ता ॥
जिन महँ उत्तम तम गुन होई । चारण भाट धरत तनु सोई ॥
निज प्रभुता अपने मुख कहँहीं । दम्भिक राक्षस हिंसक अहहीं ॥
अनाचार युत रहत सदाई । करत अहार मद्य नित भाई ॥
रहत मलिन पिशाच सम देखहु । यह तमगुन के फलअवरेखहु ॥
अधम रजो गुन में रत रहई । भल्ला ह्वै करवालहि गहई ॥
लै कुदार भूमी को खोदत । ह्वै मल्लाह नाव बिच डोलत ॥
बाँस चढ़ै बहु खेल दिखावै । सो जग में नट नाम कहावै ॥
दो०-मध्यम रजगुन सों नृपति, क्षत्रि वंश उपराज ।
सैनिक ह्वै रन में लड़हि, होत पुरोहित राज ॥४७॥
उत्तम रजगुन से भयो, यक्ष और गन्धर्व ।
रूप और गुन शीलयुत, पावहिं जन्म सगर्व ॥४८॥
अधम सतोगुन तपसी होई । यति संन्यासि ज्योतिषी सोई ॥
होय बिमान चलावन वारो । सतगुन के फल बुध उच्चारो ॥
मध्यम सतगुन कर्मन कीन्हे । हों याजिक विद्वान प्रवीने ॥
विद्युत जानहिं हो अध्यापक । पावहि जन्म सुकर्म विधायक ॥
जो उत्तम सत गुनयुत होई । होत वेदविद ब्राह्मण सोई ॥
पावहिं जन्म सुकुल महँ जाई । ब्रह्मज्ञान जहँ हो अधिकाई ॥
इन्द्रिन वश ह्वै विषयन धारैं । धर्म त्यागि अधरम अनुहारैं ॥
ते जन दुख मय योनिन पावत । यहि विधिसतरजतमगुन भाषत ॥
दो०-जाको जैसो कर्म है, तैसो ही फल हेय ।
बोवै बीज बबूर को, मारग कंटक धेय ॥४९॥
ताते साधन मुक्ति को, करहु सकल चितलाय ।
परम सुखद आनंदमय, पावै सहज स्वभाव ॥५०॥

चित वृति रोकि करै दृढ़ताई। साधन योग करै मन लाई ॥
निज स्वरूप सोइ जानहि गुनिके। करै योग विधि मनमहँ ठनिके ॥
तीनहु दुख जबहीं नशि जाहीं। तब पुरुषारथ परम सुहाहीं ॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। नशहिं न जौ लगि यह परितापा ॥
तौ लगि जीवन मुक्त न होई। करै उपाय जो केतिक कोई ॥
मुक्ति पंथ है अगम महाना। पावत सो नर जेहि अति ज्ञाना ॥
ताते जो कछु तुम्हहिं सुनावा। निजमति अरु शास्त्रन कर भावा ॥
ताकहँ करहु सबै चित लाई। पावहु मुक्ति परम निपुणाई ॥

सत्य-सागर नवम तरङ्ग स० प्र० ६ स० समाप्तम्

अथ दशम तरङ्ग (स० प्र० १० स०)

आचार-अनाचार भक्ष्याऽभक्ष्य विषय

सो०--हे गुरु परम पुनीत, करहु कृपा निज दास पर ।
है तुम्हारि शुभनीति, सुनिसुनि हिय आनंदभयो ॥१॥
दो०--अनचार आचार विधि, खान पान की रीति ।
नाथ कहौ केहि भाँति को, दयानन्द की नीति ॥१॥
छंद—हम कहत ऋषिवर की कथा अब सुनहु तुम चित लाइकै ।
मानुष सदा यह ध्यान राखहिं विषय चित बिलगाइकै ॥
है आत्मा कर्तव्य जाननहार नित अपनाइकै ।
ताते सदा जन राग त्यागहिं "इष्ट" नित गुन गाइकै ॥१॥
अति कामना और निष्कामा । श्रेष्ठ न हैं जग बीच ललामा ॥
जो वेदोक्त कर्म जग माँहीं । होत कामना सों सब ठाँहीं ॥
जो जग कोउ अस साहस करई । निष्कामना हृदय बिच धरई ॥
चंचल मन है इन्द्रिन प्रेरक । इच्छा बिन कछु जग नहिं हेरक ॥
वेद स्मृती ऋषी अस भाषत । करत सोइ जो आतम भावत ॥
कार्य्य करत हिय लाज न आवे । आतम हर्ष सदाहीं पावे ॥
देखहु जग यह विदित सुभाऊ । करत कुकर्म होत उर दाहू ॥
आत्म विरुद्ध काज नहिं करई । हो अनुकूल तहाँ पग धरई ॥
दो०—यहिबिधि निशिवासर सदा, देखहु हृदय बिचारि ।
मानत जो नहिं वेद को, ते नास्तिक नरनारि ॥ २ ॥
जोजन लोभ अरु काम विकारा । फँस्यो विषयबिच सकलप्रकारा ॥
तिनके धर्म निकट नहिं आवत । करत यत्न मन बहु समुझावत ॥
बिलग रहत इन सों जो कोई । सो धर्मी बुध पंडित होई ॥

यहिते वेद चारि जो भाख्यो । वरण विभाग प्रथम रचिराख्यो ॥
कहत मनू ताकहँ यहि भाँती । जो है शान्त रीति सुखमाती ॥
विप्र सुषोड़श वय के माँहीं । द्वाविंशति क्षत्री मनुसाँहीं ॥
वैश्य चतुर्विंशति वय बीते । वह केशान्त करहिं सुखरीते ॥
देश रीति यह परम सुहाई । करहु सकल जन हो निपुणाइ ॥

दो०–शिखा मात्र को राखिकै, क्षौर केश सब होय ।
संस्कार के शान्त की, रीति कहत ऋषि सोय ॥ ३ ॥

कोउ केहु स्थल केश न राखत । कोउ शिरकेशान कतहुँ बनावत ॥
जहँ पर शीत अधिकतर होई । राखहिं केश शीश सब कोई ॥
उष्ण देश सब केश मुड़ावैं । रहैं पवित्र धर्म अपनावैं ॥
नरन केर आचार प्रवीना । इन्द्रिन वश हितयत्न नवीना ॥
सारथि वस्यकरत जिमिबाजी । तेहि विधि इन्द्रिन रोकहु साजी ॥
विषय माँहिं इन्द्रिन लपिटावे । ह्वै असक्त अधरम पथ धावे ॥
निश्चय सो नर दोषी होई । लहत महा दुख बुधि को खोई ॥
इन्द्रिन जीति धर्मरत होई । "इष्ट" सिद्धि नर पावत सोई ॥

दो०–अग्नि प्रबल जब होवई, घृत ईंधन के योग ।
काम योग कामी बनै, बढ़त सकल तेहि भोग ॥ ४ ॥

तासु उपाय विषय नहिं फँसई । फँसतहि हिय कुवासना बसई ॥
जो अजितेन्द्रिय पुरुष अनारी । तेहिकहँ विद्या दुष्ट पुकारी ॥
तेहि हिय यज्ञादिक नहिं बसईं । सदा अधर्म हृदय बिच लसईं ॥
दश इन्द्रिन द्वै भाग विलोकहु । ज्ञान कर्म दोऊ अवरेखहु ॥
अरु मन साथ एकादश धरई । इन कहँ नर अपने वश करई ॥
तब वह योग कर्म अनुसारा । पुष्ट शरीर करै निशिवारा ॥
निज स्तुति सुनि हर्ष न करई । निन्दा सुनत शोक नहिं भरई ॥
सुख-दुख समता हार-विहारा । ताहि जितेन्द्रिय परम उचारा ॥

दो०-बिन पूछे कबहूँ कतहुँ, कहै न कोऊ बात ।
ते बुधवर हैं जगत में, परम चतुर सुखदात ॥ ५ ॥
लहत बड़ाई जो जग मांहीं । ताकी पाँच रीति दर्शाहीं ॥
पहिले जेहि धन प्रभुता होई । दूजे कुटुम्ब प्रबल जेहि होई ॥
तीसर आयुवान जग राजत । उत्तम कर्म चतुर्थ विराजत ॥
पंचम विद्यावान विवेका । क्रम से श्रेष्ठ एक से एका ॥
बालक बुधवर है विद्वाना । नहिं सम शतवर्षी अज्ञाना ॥
श्वेत केश धनपति नर होई । बहुकुलवान कुटुम्बयुत सोई ॥
ज्ञान बिना वह बूढ़ न होई । ज्ञानी बालक वृद्ध लखोई ॥
विप्र ज्ञान सौं लहै बड़ाई । क्षत्री बल सों हो अधिकाई ॥
दो०-वैश्य सुधन सम्पत्ति सों, शूद्र जन्म अधिकाय ।
जो नर विद्या हीन जग, वह मूरख सब ठाँय ॥ ६ ॥
मूरख नर जग में इमि डोलत । काष्ठ हस्ति मृग सम सो मोहत ॥
नित प्रति करै शौच की रीती । अन्न वस्त्र स्नान की नीती ॥
प्रथम धर्म आचार प्रवीना । बोलहिं सत्य वेद पथ चीन्हा ॥
मात पिता अतिथी की सेवा । निज आतम प्रिय है सुखदेवा ॥
जासु कर्म जग होय भलाई । करहु सोताहि सकल मन लाई ॥
जासों होय जगत की हानी । त्यागहु तिनहिं अकर्म बखानी ॥
नास्तिक लम्पट मिथ्यावादी । स्वार्थी कपटी बहु बकवादी ॥
अरु विश्वासघाति कुविचारा । छली दुष्ट सँग करहु किनारा ॥
दो०-तब ऋषिसों पूछत भये, शिष्य परम गुनवान ।
अन्य देश यात्रा करहिं, धर्मनशत सुखदान ॥ ७ ॥
होत अचार नष्ट यहि भाँती । त्यागि देत तिनकहँ निज जाती ॥
तब ऋषि कहत सुनहु चित्तलाई । मिथ्या बात तुम्हार सदाई ॥
अन्तश जासु पवित्र विराजत । तेहि न कतहुँ आचार नशावत ॥

वह भरमै सब देशन जाई । धर्म भ्रष्ट तेहि होत न भाई ।।
शांति-पर्व महाभारत देखहु । मोक्ष धर्म अध्याय विलोकहु ।।
शुक अरु व्यास केर सम्बादा । बैठि पताल करत मर्य्यादा ।।
तेहि पताल अमरीका कहहीं । मुनिवर व्यास तहाँ पर रहहीं ।।
यकदिन शुक पूछत यहि भाँती । विद्या आतम मोहि सुहाती ।।

दो०-ताहि बतावहु दया करि, है एती ही बात ।
अथवा अधिक विकाश तेहि, कहहुपरम सुखदात ।।८।।

तबहिं व्यास मुनि हृदय विचारा । अरु कछु उत्तर नाहिं उचारा ।।
कहा जाहु मिथिला पुर माहीं । तहँपर जनक राजयक आहीं ।।
उतर तुम्हार जनक जो दीहैं । भ्रम शंका तुम्हरी हरि लीहैं ।।
तब शुक मिथिलापुर की ओरा । पितु पद बंदि चले करजोरा ।।
उत्तर पूरब दिशि सो जाई । जहाँ हिमालय परम सुहाई ।।
अरु उत्तर पश्चिम जो देशा । कहत ताहि हरि वर्ष सुवेशा ।।
संस्कीरत हरि बानर गाई । लाल बरन मुख नेत्र भुराई ।।
अब सो यूरप देश कहाई । रहेउ सो तब हरिवर्ष सुहाई ।।

दो०-शुकआचार्य्य विचार करि, गये यहूदी देश ।
चीन जाय हिमगिरि गये, पहुँचे मिथिला देश ।। ९ ।।

केतिक हैं यहि भाँति कहानी । गये विदेश सुअवसर जानी ।।
श्रीकृष्ण अर्जुन द्वौ बीरा । गये पताल देशमतिधीरा ।।
अग्नि यान चढ़ि के सो गयऊ । उद्यालक ऋषिवर जहँ ठयऊ ।।
उद्यालक ऋषि को लै आये । धर्मराज जहँ यज्ञ रचाये ।।
गान्धारी धृतराष्ट्र की नारी । जो कन्धार देश गान्धारी ।।
महराज ईरान की कन्या । नाममाद्रि अतिरूप सुधन्या ।।
सो श्री पांडुराज को ब्याही । सुतसहदेव नकुल भये जाही ।।
अरु अर्जुन अमरीका जाई । राजसुता जहँ निपुण सुहाई ।।

दो०--नाम उलोपी विदित जग, वर्यो धनंजय वीर ।
यहि विधिसब देशन विषे, भ्रमण करत रणधीर ॥१०॥
जो न जात इन देशन ठाँई । तौ सम्बन्ध होत किमि भाई ॥
पूर्व काल से प्रचलित रीती । जात विदेश परम यह नीती ॥
यज्ञ हेत भीमादिक वीरा । गये विदेशन चतुर गँभीरा ॥
ताते देश विदेशन जाई । करहु समागम प्रेम बढ़ाई ॥
सुन्दर सुगम स्वच्छ जो रीती । धारन करहु परम यह नीती ।
जाँहि सकल देशन में भाई । भ्रष्ट अचार न कतहुँ लखाई ॥
मन शुचि जासु धर्म में प्रीती । तेहि ढिग आवत नाँहिं कुरीती ॥
सो जन दुख कबहूँ नहिं भोगत । आनँद सहित सदा वह सोवत ॥
दो०--जासु देश या पुरुष में, देखहु शुभ गुन जोय ।
ताहि ग्रहण कीजै अवशि, परम चतुरता सोय ॥११॥
जेहि दिन ते गई बुद्धि भुलाई । तेहि दिन ते भई भूमि पराई ॥
झूठ अन्याय दोष जे नाना । त्यागि तिनहिं नर पावत माना ॥
परोपकार निर्वैर सप्रीती । सज्जनता हिय धारहु नीती ॥
यह आचार परम शुभ अहई । सहित अचार कहहु कोउ रहई ॥
जात रहत सब द्वीपन माहीं । भ्रमन करै निज धर्म सराहीं ॥
जो लगि तुम न विदेशन जाई । करि व्यापार परम निपुणाई ॥
तौ लगि देश धनी नहिं होई । दारिद दुःख कतहुं नहिं खोई ॥
जे अनपढ़ हैं मूर्ख अनारी । निजवश राखत सब नर नारी ॥
दो०--मानहु तिनकीबातनहिं, लखहु सकल व्यवहार ।
देश विदेशन घूमि के, करहु अधिक व्यापार ॥१२॥
भोजन छादन की यह रीती । भखहु न मद्य मांस है नीती ॥
जैसो जब जहँ अवसर आवै । त्यागि अभक्ष प्रेम सों खावै ॥
युद्ध समय चौका कस लागे । तहँ पर "इष्ट" युद्ध अनुरागे ॥

झूठ बिरोध कीन्ह निशि वासर । गयो राज्य धन विद्या आदर ॥
हिय राखहि यह परम बिचारा । भोजन समय केर आचारा ॥
बनहि सुभोजन जेहिथल माहीं । तेहि कहँ राखहु स्वच्छ सदाही ॥
वह फूहड़-पन हमहिं लखाई । करत जो यवन और ईसाई ॥
कबहुं न स्वच्छ रसोंई राखत । जेहि स्थल महँ भोज बयावत ॥
दो०--मिलत न पानी अरब में, केहि विधि शुचिता होय ।
रीति अरब भूलत नहीं, कहै जो केतिक कोय ॥१३॥
भ्रष्ट पाकशाला को राखत । मुसलमान ईसाई राजत ॥
तुम्हरे हिय यह रहै विचारा । पाक भवन शुचि जाहि निहारा ॥
भोजन तहाँ प्रेम सो कीजै । यथा समय आचार करीजै ॥
औरहु एक बात नित करहीं । सखरी निखरी विधि उच्चरहीं ॥
घृत के सहित जो वस्तु बनावें । ताकहँ निखरी कहि गोहरावें ॥
जो केवल जल माहिं बनाई । तेहि सखरी सो कहत बुझाई ॥
कोउ पक्की कच्ची कहि टेरत । निशिवासर तेहिमाला फेरत ॥
पेटार्थिन यह रीति चलाई । घृत मिष्टान्न खाहिं अधिकाई ॥
दो०--नाथ कहहु समुझाइ मोहिं, द्विजन रसोई भेद ।
निज कर भोग बनाइ कै, भखत रहत बिन खेद ॥१४॥
अथवा शूद्रन हाथ वनाया । द्विज नितकरहिं भोज सुखदाया ॥
कहत स्वामि इमि बैन उचारी । मूर्ख नारि नर शूद्र अनारी ॥
शूद्रन हाथ बनाई खावै । द्विजनिज कर्मन में चित लावै ॥
जो द्विज नित्त रसोई करहीं । विद्या कौन समय महँ पढ़हीं ॥
अरु जो क्षत्रि करै पकवाना । राज्य प्रबन्ध करै को आना ॥
यदि यहि काज वैश्य चित देई । तो व्यापार काज को लेई ॥
यहिते जो कोउ मूर्ख लखाई । तिन सों काम लेहु यह भाई ॥
दो०--शूद्रन के गृह पात्र में, द्विज न करहिं आहार ।
कछु आपत्ती होय जब, तब नहिं करहिं विचार ॥१५॥

आपस्तम्ब सूत्र के माहीं। देखि विचार करहु मन माँहीं ॥
आर्य्य पुरुषन के परिवारा। करहिं रसोईं शूद्र गँवारा ॥
मूर्ख नारि व पुरुष जो होहीं। तिनहि देहु सेवा विधि जोहीं ॥
औरहु एक सुनहु चित लाई। जब आर्य्यन गृह भोज बनाई ॥
तब मुख बाँधि लेहि यहि भाँती। निसरहि नाहिं न स्वाँसविजाती ॥
अरु अष्टम दिन चौर करावहिं। नख आदिक सबही कटवावहिं ॥
पुनि स्नान करहिं चित लाई। जाहिं पाकशाला शुभ ठाईं ॥
सुनहु स्वामि मोहिं यक संदेहा। ताकहँ दूरि करहु करि नेहा ॥
दो०--शूद्र गेह को अन्न जब, भखे दोष अति होय।
खाहिं बनाये हाथ को, केहि विधि दोष न कोय ॥१६॥
दो०--स्वामि कहत समुझाइकै, यह कल्पित है बात।
इनके हाथन कर कहहु, कौन जगत नहिं खात ॥१७॥
जे जग दूध पिसान मिठाई। चीनी शाक मूल फल खाई ॥
जानहु तिन सबके कर खावा। खायहु अति उच्छिष्ट सुहावा ॥
देखहु जे जन काटत ऊखा। तोड़त खात लगावत भूखा ॥
बनत जहाँ चीनी बहु भाँती। तहँ पर कौन श्रेष्ठ है जाती ॥
जेहि करनित शौचादिक करहीं। सोइ कर ते सब बस्तु पकरहीं ॥
तहहीं रोटी लेत पकाई। खात जात सो नहिं शरमाई ॥
निजगृह को जल दूध मिलावत। सकल द्विजातिनताहिपिलावत ॥
कहत एक फल मूल न दोषू। बिन देखे कछु होत न रोषू ॥

दो०--स्वामि कहत यहिभाँतिसो, सुनहु ताहि मन लाय।
जो आदृश्य में दोष नहिं, ता कस दोष लखाय ॥१८॥

हम पूछत तुमसे यक बाता। सोसमुझाइ कहहु मोहिं ताता ॥
दृष्टि ओट यदि स्वपच चमारा। ठीक बनावहिं विविध अहारा ॥
कहहु कहा तुम भोजन करहू। जानि अदृश्य दोष किमिधरहू ॥

सुनहु बात यक यह है भाई। हैं जो मुसलमान ईसाई ॥
जे जग मद्य मांस आहारी। निन्दित कर्म करहिं दुखकारी ॥
इनके हाथ न करहिं अहारा। लागहि दोष सकल परिवारा ॥
मद्य मांस को परै स्वभाऊ। हो आचार नष्ट सति भाऊ ॥
आर्य्य पुरुष को भोजन एका। दोष देखात हमहिं नहिं नेका ॥
दो०--जौ लगि होय न एक मत, एक लाभ अरु हानि।
सुखदुख समता होय नहिं, होय न उन्नतिजानि ॥१९॥
जो जग खान पान यक होई। होय सुधार न तिनको कोई ॥
जबलगि दुराचार नहिं त्यागत। अरुसदचरितमनहिंनहिंआवत ॥
तौ लगि वृद्धि न परत लखाई। नित नव अवनति ही दर्शाई ॥
देश विदेशिन के वश भयऊ। तब से कुमति फूट द्वौ बसेऊ ॥
ब्रह्मचर्य्य पथ गयो नशाई। बाल विवाह भयो अधिकाई ॥
विषयासक्त झूठ व्यवहारू। वेद विरुद्ध सकल आचारू ॥
अरु कुकर्म नाना हिय धरहीं। बहु विश्वासघात जन करहीं ॥
भ्रातृ दोष नित नूतन बढ़ई। मारग वेद न कोऊ चलई ॥
दो०--भई दशा यह देश की, कैसे निबहै धर्म्म।
पेट हेत निसि द्योस सब, करत रहत है कर्म ॥२०॥
यह यक रीति सदा चलि आई। जब द्वौ भ्रातन होत लड़ाई ॥
तब तीसर बनि आवत न्याई। दोहुन घुड़कि करत प्रभुताई ॥
का भारत की कथा भुलानी। रारि कौरवन ने जब ठानी ॥
पाँच सहस्र वर्ष हैं बीते। धर्मराज अरु कृष्ण सप्रीते ॥
करत रहे भोजन रन माँहीं। ते नहिं भ्रष्ट भये तेहि ठाहीं ॥
यक सँग भोजन करत सप्रीती। लड़त बहुरि क्षत्रिन जो रीती ॥
कौरव पांडव वंश नशानो। आर्य्य धर्म पथ वेद हेरानो ॥
जब से देश लगी यह छूती। तब से नशी सकल करतूती ॥

दो०--नहिं जानै कबहूँ बहुरि, ईश निहारै मोहिं ।
राज रोग जब नाशई, सुख सम्पति तब होहिं ॥२१॥
दुर्योधन निज देश विनाशक । कौरव वंश भयो कुल घालक ॥
तेहिसग चलत दुःख बहु भोगत । आर्य पुरुष सुख सम्पति खोवत ॥
अब पुनि सुनहु अहार की रीती । भक्षाभक्ष्य सुद्वैविधि नीती ॥
वैद्यक शास्त्र कहत यक रीती । दूसर धर्म शास्त्र परतीती ॥
मनु अध्याय पाँच अवलोकहु । विधि जो खान-पान की देखहु ॥
चारों वर्णों के हित भाई । कह्यो मनू निज शास्त्र सोहाई ॥
विष्ठा मूत्र आदि संसर्गा । उपजत मूल कन्द फल वर्गा ॥
भाँग अफीम मद्य अरु गाँजा । नाशहिं बुधिमदकारि विराँजा ॥
दो०--वैद्यक शास्त्रन ने कह्यो, बहु स्थल के बीच ।
बुद्धि नशै जेहि वस्तु सो, है अहार वह नीच ॥२२॥
जासु स्वभाव मांस आहारी । मादक द्रव्य केर अधिकारी ॥
ताके हाथ न भोजन कीजै । हिंसक हिंसा दूरि करीजै ॥
देखहु एक गाय जो भाई । देत दूध घृत, बैलन जाई ॥
पीढ़ी एक विचारहु ताकी । करहु गणित सुन्दर सुख माकी ॥
पौने पाँच लाख गनि लीजै । आगे छै सौ और धरीजै ॥
एते जन सुख पावहिं नीको । नाश भये दुख होत सभी को ॥
अस उपकारी जीव जे मारत । ते जग सदाबुद्धि से हारत ॥
भैंस आदि जे जीव दुधारू । तिन महँगाय अधिक उपकारू ॥
दो०--पशू न बधिवे योग हैं, का बकरी का भैंस ।
मृत्यु समय सब मरहिंगे, बीते अपनी बैस ॥२३॥
गाय दूध अति बुद्धिप्रदाता । है वह मानव को सुखदाता ॥
कृषी प्रधान जु भारत देशा । वृषभ बिना वह लहत कलेशा ॥
बकरी भेड़ दूध सों भाई । लाखन पुरुष जियन ह्वै जाई ॥

गोरक्षा विधि देखन चहहू। तौ मम गोकरुणा निधि गहहू ॥
नाना भाँतिन लिख्यो बनाई। देखहु जो तुम चित्त लगाई ॥
जो मारत जग पशु को धाई। तिन कहँ सबकोइ कहत कसाई ॥
आर्य्य राज्य जब यहि स्थल रहेऊ। तब उपकारि जीव सुख लहेऊ ॥
द्वीप जितेक जगत के माहीं। आर्यवर्त सम है कोउ नाहीं ॥

दो०--तहँ घृत दूध विशेष हो, जहाँ न हों पशु घात ।
बल पौरुष सब बाढ़ई, सुख आनँद अवदात ॥२४॥

जब से हिंसक मद्य अहारी। भयो देश राजा अधिकारी ॥
तब से आर्य्यजनन दुखपावा। नितनवमिलहिंविविधिदुखदावा ॥
मूल कटे फल होत न भाई। तेहि तरु की गति जात नसाई ॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई। होहिं अहिंसक जो सब भाई ॥
तौ जगव्याघ्र अधिक दुखदेवे। तब कछु नहिं पुरुषारथ होवे ॥
स्वामि कहत यह नृप के काजा। रक्षा करि सुखदेहि समाजा ॥
जो पशु दुखद जगत के माँहीं। तिनहिं मारि पुरुषार्थ सराहीं ॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। मारहिं जब तिन कहँ वै धाई ॥
कहहु कहाँ तेहि फेंकहिं माँसू। भखहि ताहि अरु रहैं सुपासू ॥

दो०--कहत स्वामि है मांस नहिं, मानुष को आहार ।
राक्षस ताहि बखानहीं, करत जो असव्यवहार ॥२५॥

दुखदाई हिंसक पशु जेई। मारहिं नृपति प्रजा हित लेई ॥
स्वान आदि जे मांस अहारी। तिनहिं खवाइ देहु हितकारी ॥
यदि वह मांस खाइ जन कोई। तौ भारत की हानि न होई ॥
पर स्वभाव हो मांस अहारी। छल अरु कपट सदा उरधारी ॥
तिनके हिय कछु दया न रहई। अरु विश्वासघात नित लहई ॥
यह अभक्ष्य दुर्बुद्धि बढ़ावहिं। अरु सुजनन निशि द्योस सतावहिं ॥
हिंसा रहित धर्म सों जोई। प्राप्त अभक्ष वस्तु जो होई ॥
रोग नशै जेहि स्वास्थ्य बढ़ावैं। बल बुधि आयू अधिक दृढ़ावैं ॥

दो०--चावल गेहूँ दूध घृत, सकल मूल फल कन्द ।
यथा समय रुचि के सदृश, भोग करहिं आनन्द ।।२६।।
प्रकृति विरुद्ध विकार करैया । त्यागन सदा करै दुख दैया ।।
मानव हित जोविहित पदारथ । ढूँढ़हु तिनहिं सोकरि पुरुषारथ ।।
यक सँग भोजन करहि जो कोई । तौ गुरु कहौ दोष का होई ।।
कहत स्वामि एक संग जो खावे । तेहि स्वभाव दूसर को आवे ।।
यह यक दोष अहै जग माहीं । प्रकृति विरुद्ध जोयक सँग खाँहीं ।।
कुष्ट रोग जाके तनु होई । रक्त बिकार लहत है सोई ।।
ताते यक सँग भोजन माँहीं । होत सुधार कतहुँ कोउ नाहीं ।।
निज उच्छिष्ट देहु नहिं काहू । नहिं दूसर कर जूठन खाहू ।।

दो०--अधिक न भोजन करे कोउ, जूठे ना कहुँ जाय ।
लहत अजीरन दुःखनित, बुधिबल जात नसाय ।।२७।।
गुरु उच्छिष्ट पाठ अवलोकी । खात जूठ लज्जा हिय रोकी ।।
ताको अर्थ कतहुँ यह नाहीं । गुरु पीछे शिशु खात सदाहीं ।।
तब यक पूछत यह मुसुकाई । शहत सदा उच्छिष्ट देखाई ।।
हम नित पियत दूध हैं जूठा । बछियन प्याय सुबाँधत खूठा ।।
ग्रास खाइ आगे सब जूठा । का यह भोजन रहेउ अनूठा ।।
कह तब स्वामि सहत नहिं जूठा । पुष्पन सार अरोग्य अनूठा ।।
बाह्य बछड़ा पियत सदाई । सो उच्छिष्ट होत नहिं भाई ।।

दो०--थन को जल सों धोइ कै, शुद्ध पात्र के बीच ।
दूध निकारहिं प्रेम सों, निज बाहूबल खींच ।।२८।।
निज उच्छिष्ट विकारन करई । नहिं स्वभाव दूसर अनुसरई ।।
बात स्वभाव सिद्ध यह भाई । काहु कि जूठन कोउ न खाई ।।
जिमि निज मलसों घृणा न होई । तिमि दूसर मल चहत न कोई ।।
यह व्यवहार सृष्टि क्रम भाई । नहिं तनिकौ विपरीति लखाई ।।

याते मानव उचित सदाई। खाहु न तुम उच्छिष्ट कदाई ॥
कहहु स्वामि नर नारि न खाँहीं। तब कह स्वामि नीति यह नाहीं ॥
विलग स्वभाव नारि नर केरे। ताते मन समझहु हिय हेरे ॥
तौ कह दोष बतावहु साँई। खाइ जो मानुष हाथ बनाई ॥

दो०--ब्राह्मण स्वपच शरीरयक, हाड़ मांस सब मांहिं।
दोष कहा तेहि हाथ मैं, कहौ नाथ समुझाहिं ॥२९॥

तब कह स्वामि दोष बहुतेरे। जो जानत सो जात न नेरे ॥
श्रेष्ठ पदारथ भोजन पाना। होहिंविप्र तनु शुभ गुन नाना ॥
दोषरहित रज वीर्य सोहावा। उत्पति होत सतोगुन भावा ॥
तस चण्डाल शरीर न होई। नित दुर्गन्ध बसत हिय सोई ॥
श्वपच किरातन केर शरीरा। दुर्गन्धित परमाणु गँभीरा ॥
अशुच शरीर कर्म अकुलीना। भोजन तिनके हाथ न लीना ॥
भंगि चमार नीच चण्डालू। तिनके हाथ न करहु ब्यालू ॥
तिनसौं कहहु जो तुमसन बूझहिं। चर्म शरीर सकल के सूझहिं ॥

दो--०पुत्री माता भगिनि हूँ, पुत्र वधू अरु सासु।
नारि संग व्यवहार जस, करहु कहातुम आसु ॥३०॥

छं०—तब मौन वृत्ती धरैं हिय कछु बात बनि आवे नहीं।
जस अन्न पावन खाहु मुख से गंधि तस खावै नहीं ॥
अस भयो कोऊ नाहिं हमरी जानि जो अस खावई।
तौ आर्य पुरुष पुनीत पावन कौन भाँति भुलावई ॥ २ ॥

जो गोवर उपमा तुम देहू। बात हमारि बहुरि सुनि लेहू ॥
अस दुर्गन्ध, सुगोवर अहई। लेपन किये सुखद ही लहई ॥
गोवर लेपन छूत बतावहु। चूल्हे के बिच ताहि जलावहु ॥
मृतिका गोवर देत मिलाई। जेहि दिवार महँ देत लगाई ॥
पुष्ट सुरम्य होत है सोई। पाकस्थान सुपावन होई ॥
जो गोवर सों लीपत नाहीं। तिन भवनन देखहु शुचिताई ॥

जूठ अनूठ सकल दिशि माहीं । केहिविधि तहँ पर भोजनखाहीं ।।
देखत घृणा लगति जिय माहीं । केहि विधितहँपर भोजन खाहीं ।।
दो०--स्वच्चसो सुन्दर थान जहँ, तहाँ खाहु सुखपाय ।
शुद्ध आदि स्थान में, है कोऊ विधि नाय ।।३१।।
जो आर्य्य परिवार में, बनै रसोई शुद्ध ।
तहँ सब भोजन पावहीं, जहँ हैपाक विशुद्ध ।।३२।।
यह तुम सोचि लेहु मन माँई । विद्या ध्यन करै जो भाई ।।
वह नित चूल्हा चौका फूँकै । पढ़ै कहा वह निशि दिन सूखै ।।
पूर्व काल की रीति सुहाई । करत रहे भोजन समुदाई ।।
जब से मुसलमान ईसाई । भारत देश बसे हैं आई ।।
तब से मांस मद्य आहारा । भयो अधिक या देश प्रचारा ।।
वैर विरोध बढ़्यो अधिकाई । नाना भाँतिन पन्थ चलाई ।।
देखहु कतहुँ समय अस रहेऊ । सुताविदेशिन की तिन लयऊ ।।
गान्धारी अरु माद्रि उलोपी । यह विवाहि आई प्रण रोपी ।।
दो०--शकुनी और सुपाण्डव, खात रहे यक संग ।
नहिं विरोध हिय राखहीं, करत नीति नहिं भंग ।।३३।।
सब भूगोल वेद मत राजै । कबहू कोउ पाखंड विराजै ।।
हानि लाभ दुख सुख सबही में । रहत समग्न परस्पर जी में ।।
यहि ते ईश बुद्धि शुभ देई । मतन केर अंकुर हर लेई ।।
शुद्ध विचार होहिं सब केरे । चलहिं वेद पथ चतुर घनेरे ।।
छोड़ि विरोध भाव सब लोगू । लहहिं सदा जग आनँदभोगू ।।
यह कछु हम आचार विचारा । भक्ष्याभक्ष्य सकल व्यवहारा ।।
कहेहु तुमहिं समुझाइ सुप्रीती । हिय धारहु जो हमरी रीती ।।
तौ मन इच्छित को फल पाई । धर्म अर्थ कामादि बड़ाई ।।

सत्य-सागर दशम तरङ्ग स० प्र० १० स० समाप्तम्

श्रीसत्य-सागर उत्तरार्द्ध प्रारम्भः

अथ एकादश तरङ्ग (स० प्र० ११ स०)

वेद विरुद्ध मतमतान्तर विषय

दो०--ब्रह्म सच्चिदानंद घन, अनघ अगोचर ईश ।
हृदयाकाश बिलोकहीं, ब्रह्मानन्द मुनीश ॥ १ ॥
अकथ अलौकिक "इष्ट" प्रभु, गुणातीत भगवंत ।
योग युक्ति पावत रहत, ब्रह्मनिष्ठ जे संत ॥ २ ॥
ईश्वर अनुभव होय जेहि, कहि न सकत वह भाव ।
जानहि ज्ञान विचार सों, गुनअरु कर्मस्वभाव ॥ ३ ॥
नाथ भयो संतोष मोहिं, सुनि ऋषि कथा प्रसंग ।
होत न पूरित कर्ण घट, नित नव परम उमंग ॥४॥

ईश्वर के शत नाम सुनायहु । श्रुतिन की व्याख्यासमुझायहु ॥
जो कछुशिक्षाविधि ऋषि केरी । दुसरे महँ समुझाइ घनेरी ॥
तीसर ब्रह्मचर्य्य उपदेशा । गृहस्थ चतुर्थ बताय ऋषेशा ॥
पंचम बनी और संन्यासी । कह्यो कटै जेहि मोह की फाँसी ॥
षष्ठम राजधर्म कहि भावा । सप्तम ईश्वर वेद सुहावा ॥
अष्टम सृष्टियुत्पति बताई । नवम मोक्ष-विद्या दर्शाई ॥
भक्ष अभक्ष दशम के माहीं । अनाचार आचार सुहाहीं ॥
या विधि समुझायो मोहिं साईं । भयो बोध संशय कछु नाईं ॥

दो०--अब कछु धर्मन को मतो, नाथ कहहुसमुझाय ।
आर्य्यवर्त के देश में, कवन धर्म सुखदाय ॥ ५ ॥

सो०--सुनहु शिष्य मम बात, कहिहौं धर्मन को मतो ।
कह्यो जो ऋषि सुखदात, सोई हम तुम सन कहब ॥१॥
दो०--यक दिन सुन्दर मंच पर, सोहत वैदिक हंस ।
दयानंद आनंद घन, घृजानंद अवतंस ॥ ६ ॥
तहँ राजत बुधमंडली, सुखद सुरम्य वितान ।
देखत ऋषिकी ओरसब, श्रवण जात अकुलान ॥७॥
सो०--कहत सबन समुझाय, प्रथमऋषीयहिभाँतिसों ।
वेद धर्म दिखराय, पाँच सहस के पूर्व लौं ॥२॥
गयो वेद को धर्म, कारन महभारथ भयो ।
कियो अविद्या कर्म, विद्या जग त्यागन करी ॥३॥

छं०–मन जासु आयो जौन मत परचार तेहिं तैसेहि कियो ।
जैनी किरानी औ पुरानी अरु कुरानी मंत लियो ॥
यक सहस साखा भई ता महँ वेद धर्म विरुद्ध जो ।
तेहि सत्य को निर्णय करनहित सुनहु मेरी बात जो ॥ १ ॥
सत को ग्रहन करि असत त्यागहि मूलतत्त्व विचारिकै ।
अरु पक्षपात न करहि कबहूँ, धर्म को हिय धारिकै ॥
कहिहौं पुरानन की कथा, बहु भये जासों भेद हैं ।
संक्षेप से हम कहहिंगे, जे सुनहिं चित्त अखेद हैं ॥ २ ॥
जो खोज करि हम कहत हैं; सत असत निर्णय के लिये ।
मानहुं नहीं उपकार हमरो, तौ विरोध न कीजिये ॥
याते सकल जन "इष्ट" के हित न्याय दृष्टी हिय धरैं ।
यह मनुष चोला पाइ नर नित सत असतनिर्णय करैं ॥ ३ ॥
मत मतान्तर को विवाद जो होइ जग सब सों घनो ।
तौ जाल छूटहिं जगत के अनरीति में है जो सनो ॥

हम सकल जन तजि ईर्षा मिलि एक ठौर बिचारहीं।
है कोउ बात असाध्य नाहीं जासु नाहिं सुधारहीं ॥ ४ ॥
जब से भये विद्या विरोधी जाल तिनके सब फँसे।
पायो न फल कबहूँ कछू अज्ञान कीचड़ में धँसे ॥
ताते सकल जन एकमत ह्वै युक्ति मम हिय बिच धरैं।
पड़िहैं न कबहूँ फंद में जो "इष्ट" पुरुषारथ करैं ॥ ५ ॥
पुनि ऋषि कहत सुनहु सब लोगू। जो यहँ बसत करत सब भोगू ॥
आर्य्यवर्त बिच बहु मत अहहीं। तिनकी कथा सुनहु हम कहहीं ॥
या सम देश और कोउ नाहीं। स्वर्ण भूमि सम सकल बताहीं ॥
उपजत रत्न यहाँ अधिकाई। देशन माँहि बड़ाई पाई ॥
याते आदि सृष्टि के माहीं। आइ बसे सब आर्य्य सराहीं ॥
श्रेष्ठ पुरुष जग आर्य्य कहावें। इनते भिन्न दस्यु गुहरावें ॥
जेते देश जगत के माँहीं। आर्य्यवर्त को सकल सराँहीं ॥
पारस की महिमा सब गावत। लोहा छुअत सुवर्ण सुहावत ॥

दो०--हम जानत यह देश ही, पारस रूप लखात।
छुअत विदेशी निर्धनी, सब धनाढ्य है जात ॥ ८ ॥
आर्यवर्त के देश से, सीख्यौ सकल जहान।
निज निज शिक्षा चरित सब, पायो मनुज महान ॥९॥

पाँच सहस्र वर्ष हैं बीते। तौ लगि आरज राज्य सहीते ॥
चक्रवर्ति सब भूतल केरे। राजा रहे एक पथ हेरे ॥
प्रति मंडलहू नृपति विराजत। आर्यवर्त आधीन सोराजत ॥
कुरु पांडव लौं शासन नीती। रही सकल विधि वेदन रीती ॥
आदि सृष्टि से मनु की नीती। प्रचलित भई करत सब रीती ॥
उत्पति ब्राह्मण भये कुलीना। क्षत्री वैश्य शूद्र सुख दीना ॥
दस्यु मलेच्छ आदि जे वर्णा। निजनिज चरित करत आचर्णा ॥
महभारत लगि कछु कछु नीती। रही जहाँ तहँ वेदन रीती ॥

दो०--धर्मराज के यज्ञ में, आये नृपति प्रवीन ।
राजवचन सब पालहीं, सबै रहे आधीन ॥१०॥

जो भगदत्त चीन को बासी । प्रबल शल्य ईरान निवासी ॥
अमरीका का बभ्रूवाहन । बिड़ालाक्ष यूरुप सोहावन ॥
औरहु बहुतक नृपवर आये । शासन मानि अनी संग लाये ॥
जब महराज रघू यहँ रहेऊ । तब रावण यहँ के बस भयऊ ॥
जब वह विमुख भयो सब भाँती । जाइ तहाँ तेहि राम निपाती ॥
तबहि विभीषन राजा कीन्हा । थापिधरम अधरम हरि लीन्हा ॥
स्वायंभुव मनु से कुरु ताँई । वैदिक राज्य रह्यो सुखदाई ॥
चक्रवर्ति शासन तिन लहेऊ । होत विरोध सबै नशि गयऊ ॥

दो०--ईश सृष्टि को नेम यह, करत सदा नहिं राज ।
अन्याई अभिमान युत, अबुध जो हैं महराज ॥११॥

अरु यह प्रकृति स्वभाव निराला । जब नर होत बहुत धनवाला ॥
तब तेहि बढ़त ईर्षा द्वेषा । करत परस्पर है बहु रोषा ॥
बढ़ै प्रमाद नशै सब सीक्षा । चलै न तहाँ काहु की दीक्षा ॥
दुर्गुण बढ़ै कर्म नशि जाहीं । श्रेष्ठ स्वभाव रहत कहुँ नाहीं ॥
बाल बिवाह अरुमांस अहारा । पिएँ मद्य हों दुष्ट बिचारा ॥
तब कोउ उपजत है बलवाना । अरु नाशत है तिनकर माना ॥
वीर शिवा अरु गोविन्द राना । यवनन जीत बजाय निशाना ॥
बहुतक उदाहरण यहि भाँती । तिनपथ चलत रहत सबजाती ॥

दो०--भूरिद्युम्न सुद्युम्न नृप, इन्द्रद्युम्न कुवल्याश्व ।
अश्वपती आदिक नृपति, शशबिन्दूयोवनाश्व ॥१२॥

ऋषि सों एक पुरुष अस कहई । अग्नि अस्त्र विद्या जो अहई ॥
जो यह सत्य ताहि समझावहु । अथवा असत वेगि बतलावहु ॥
अरु तेहि समय भुसुंडी रहहीं । अथवा कौन शस्त्र तह ठहहीं ॥

कहत स्वामि यह सत्य कहानी। अस्त्र शस्त्र सब रहै अमानी॥
जो पदार्थ विद्या सों भावत। ताकहँबुध जन सम्भव मानत॥
मंत्र शब्द सों कछु नहिं होई। मंत्र विचार कहत बुध सोई॥
जो मानहु यह मंत्र प्रतापा। निसरत अग्नि अस्त्रसों तापा॥
तौ प्रथमहिं मुखकिमिनहिंजारत। जो यह मंत्रप्रभाव उचारत॥

दो०--तिनहि मंत्र मानत सुबुध, जो विचार जगमाहिं।
अग्नि वरुण मोहनास्त्रसब, जानत युक्ति सिहाहिं॥१३॥

भरत पदारथ अस्त्रन माँही। उपजत धुँआँ वारिबनिजाहीं॥
रगड़े प्रकटत अग्नि लखोई। धूम से मोहित हो सबकोई॥
याविधि हैं जग अस्त्र घनेरे। धनुर वेद जानत बहुतेरे॥
यह उपदेश यजुर में भाई। ता महँ विद्युत क्रिया सुहाई॥
तोप बन्दूक आदि जे नामा। भाषा इतरमाँहि अभिरामा॥
तोप शतघ्नी को बुध कहहीं। अरु भुसुंडि बन्दूक सोहाहीं॥
संस्किरत को जो नहिं जानत। ते बहुतक याही विधि मानत॥
कछुक बोध मोक्षमूलर भयऊ। तिन अज्ञानअधिक नशि गयऊ॥

दो०--देश सु यूरुप के विषे, मोक्षमुलर विख्यात।
संस्किरत अरु वेद किय, निज भाषा अनुवाद॥१४॥

आर्यवर्त सम सो बुध नाहीं। कहत विदेशी ताहि सराहीं॥
तेहि तुम समुझिलेहु यहि भाँती। तरु न जहाँ तहँ अंडकी ख्याती॥
वेद अर्थ बहु अनरथ कीन्हें। सायण भिन्न अर्थ लिखि दीन्हें॥
जो मम भाष्य भूमिका देखहु। बेद अर्थक्रम तामहँ पेखहु॥
तव तुम्हार सन्देह नशाई। अर्थ अनर्थ भयो किमि भाई॥
विद्या जेतिक जग के माहीं। गई यहाँ से तहँ की नाहीं॥
देखहु पैरिस के जो वासी। कहत सु जैकालयट[1] सुपासी॥

---

[1] —एक पुरुष का नाम है।

आर्यवर्त से वह जग माहीं। विद्या फैलि गई सब ठाहीं ॥
दो०--दारा ने यहि भाँति सों, लिख्यो स्वपुस्तक माहिं।
विद्या जेतिक जगत में, संसकिरत सम नाहिं ॥१५॥
मैं साहित्य बहुत विधि देख्यों। मन चीन्हा आनँद नहिं पेख्यों ॥
जब व्याकरन पढ़्यो धरि ध्याना। तब यथार्थसुख हृदय समाना ॥
पर यह देश शिरोमणि रहेऊ। मह्भारत अहि या कहँ डसेऊ ॥
जब यक भ्रात, भ्रात हनि डारै। पुनिजगकस सुखशान्तिविचारै ॥
मंत्र कला जो पूरब केरी। देखहु जाइ बनारस हेरी ॥
मंदिर मान विलोकहु जाई। यंत्रचक्र बहु परत लखाई ॥
तहँ शिशुमार चक्र अवलोकहु। गृह नछत्रगति सबकोउ देखहु ॥
अब कछु नष्टभ्रष्ट ह्वै गयऊ। तदपिबहुत कछु तेहि थलठयऊ ॥
भारत भयो यहाँ पर जबते। नित प्रति दुसह सहत हैं तबते ॥
दो०--आवत समय विनाश को, बुद्धि होत विपरीत।
या विधि बुध बरनन करत, है चाणक्यकी नीत ॥१६॥
कोउ सिखावत नीक स्वभाऊ। समुझत सदा सो उलटे भाऊ ॥
ऋषिमुनि बुधवर अरु महराजा। भारतयुद्ध मरे सब राजा ॥
तब से वैदिक धरम नशान्यो। मातृभाव कुल भेष भुलान्यो ॥
ईर्षा द्वैष बढ़्यो अभिमाना। तेहि क्षण भये उपद्रव नाना ॥
जो बलवान भयो तेहि काला। जीत्यो खंड खंड महिपाला ॥
राज नियम सब खंडित भयऊ। वर्णाश्रम पथ तब नसि गयऊ ॥
मूरख विप्र भये बहुभाँती। किमि बरनैं हम नाना जाती ॥
वेद शास्त्र सब पढ़त सदाहीं। कर्म करत वैदिक सब ठाहीं ॥
दो०--तहाँ नष्ट सब होत है, जहँ विद्या नशि जात।
पाठ मात्र विधि कहुँरहत, अर्थ न काहु सोहात ॥१७॥
जो विद्वान जगत उपकारी। कहत विप्र तिन कहँ सुखकारी ॥

जब यजमान सु संस्कृत रहेऊ। तब कछु ढोंग यहाँनहिं ठयऊ ॥
ब्राह्मण ढोंग करन बहु लागे। अपने पाश मांहिं सब पागे ॥
या विधि तिन जगको भरमायो। बनि ईश्वर नित जगत पुजायो ॥
विद्या विमुख अधिक धनवाले। देत इनहिं धन जो मतवाले ॥
मुरखन धन जबहीं मिलि जाही। उन्मतह्वै नाशत हैं ताही ॥
विषयानन्द करहिं बहु भाँती। त्यागहिं वैदिक धर्म सुहाती ॥

दो०--गुन अरु कर्म स्वभाव को, नष्ट कियो बहु भाँति ।
केवल जनमहिं मानि कै, लेतदान सब जाति ॥१८॥

हम भूदेव कहन अस लागे। मम सेवा सब औगुन भागे ॥
बिन पूछे कछु काज न कीजै। प्रति क्षणहीं मोकहँ कछु दीजै ॥
विप्रद्रोह नहिं कबहूँ कीजै। मेरे वचन सदा उर लीजै ॥
तब तुम इन सों पूछहु बाता। कहँ पर जाइ बसहु तुम ताता ॥
कर्म तुम्हार नरक हित जानहु। हुइहौ कीट पतंग प्रमानहु ॥
तबहिं कहत हम दीहैं शापा। सहि न सकहु हमार परितापा ॥
द्रोही विप्र टिकत है नाहीं। सहितकुटुम्ब सकल नशिजाहीं ॥
हाँ यह बात प्रकट जग माहीं। जो ब्राह्मण धर्मी केहु ठाहीं ॥

दो०--है विरोध तिनको अवशि, सदात्यागिबे योग ।
जे उपकारी विप्रवर, पावहिं ते सुखभोग ॥१९॥

यह बिचार लीजै मन माँही। कर्म विहीन न विप्र लखाहीं ॥
ते जग में नहिं सेवा लायक। अरुनहिं ब्राह्मण नामविधायक ॥
तब यक पंडित पूछन लागे। हम हैं कौन कहहु प्रभु आगे ॥
तब ऋषि पोप बतायहु तेही। पूछत पोप कहत हैं केही ॥
स्वामी तेहि समुझायहु नीती। रोमन भाषा पोप सहीती ॥
तहँ पर पोप पिता सम मानहिं। अबतो कपटी छली प्रमानहिं ॥
तब पंडित इमि बैन उचारी। विप्र हमार पिता महतारी ॥
हम हैं अमुक साधु के चेले। ताते हम ब्राह्मण गर्वीले ॥

दो०--स्वामि कहत चित दै सुनहु, जो हमारि है बात।
मात पिता ब्राह्मण भये, पुत्र न विप्र लखात ॥२०॥
जामहँ गुण अरु कर्म सुभावा। जाकहँ परोपकार अति भावा ॥
सोइ जगविप्र परम सुखदाता। करहिं कर्म सुख सम्मति दाता ॥
पोपनकी विधि नितनव करई। अरु निज मुख ब्राह्मण उच्चरई ॥
रोमन देश पोप जो अहहीं। निज चेलन समुझावत रहहीं ॥
जो जग मम सेवा नहिं करई। स्वर्ग न कबहूँ सो पग धरई ॥
यदि मम सन्मुख अपने पापा। कहहु तो छमहिंसकलपरितापा ॥
मम आज्ञा बिन कछु नहिं होई। कोटिन यत्न करहि जो कोई ॥
मम समीप धरिहौ निज थाती। पावहु जाइ स्वर्ग बहु भाँती ॥
दो०--यह बातैं सुनिकै जबै, नैन अन्ध धनवान।
स्वर्ग प्राप्तहित जात तब, पोप समीप निदान ॥२१॥
तबहि पोप ईसा ढिग जाई। स्वर्ग खर्च सब देत बनाई ॥
कछु धन में गृह निर्मित कीजै। कछु रथ तुरंग न खर्च करीजै ॥
कछु भोजन मिस इनके राखैं। या विधि पोप तहाँ पर भाखैं ॥
अरु यक हुंडी लिखत बनाई। निज हस्ताक्षर करत सुहाई ॥
अरु दै देत शिष्य कहँ सोई। कहत सुराखहु याहि सँजोई ॥
जब ये मरैं तबै अस कीजै। दफ़नभये[1] सिर ढिग रखिदीजै ॥
हुंडी सहित तहाँ लै जावै। निकट खुदा सब न्याय चुकावै ॥
सुनि यहविधि मोहिं आवतहाँसी। पोप कर्म अन्याय की फाँसी ॥
दो०--ताही विधि या देश में, कियो जाल विस्तार।
मानहु श्रीयुत पोपजी, लीन्ह आइ अवतार ॥२२॥
राजा प्रजा न बुधवर होई। अरु सतसंगी होइ न कोई ॥
स्वार्थ कपट अरु लोलुपताई। करहि ठगी जग बहु समुझाई ॥

---

[1] —इनमें जब कोई मरता है तो गाड़ दिया जाता है।

यहि प्रकार नर पोप कहावैं। साधुविप्र ह्वै जग भरमावैं ॥
कर्म सुधारत ब्राह्मण साधू। जेहि न रहहिं कोउ पुरुष असाधू ॥
यदि ब्राह्मण जग कोउ न आवत। कोसत वेद अर्थ दिखलावत ॥
केहि विधि वेद कथा जगहोती। को करि अर्थ देखावत ज्योती ॥
जैनी यवन ईसाइ सतावत। इनके जालन कवन बचावत ॥
कवन प्रीत की रीति चलावत। छुटे भ्रातगन कवन मिलावत ॥
विप्र, साधु बिन दूसर नाहीं। विषहु पियत जो अमृत सराहीं ॥

दो०—मूर्ख भये यजमान सब, बिप्रन किय अभिमान
कछु पूजा कछु पाठ करि, गुरु बनि बैठि निदान ॥२३॥

करि सम्मति यह भाषन लागे। हैं अदंड ब्राह्मण गुन पागे ॥
साधु बिप्र नहिं मारन योगू। इमिकहिबचन करत सब भोगू ॥
शब्द जो साधु बिप्रहित रहेऊ। वह यहि समय पोपहित भयेऊ ॥
नाना भाँतिन ग्रन्थ रचाये। ऋषिननाम धरि जग भरमाये ॥
अरुबहु कठिन नियम तिन बाँधे। विनआज्ञा कोउकार्य्य न साधे ॥
गमनागमन और असनाना। खान पान आदिक विधिनाना ॥
निज आज्ञावशसब कछु राख्यो। हैं अदंड साधू अस भाख्यो ॥

दो०—महभारत के युद्ध से, वर्ष सहस ही पूर्व।
देश दशा बिगड़न लगी, बिगड़ी आज अपूर्व ॥२४॥

सत उपदेश रह्यो कहुँ नाहीं। मूरखता फैली सब ठाहीं ॥
जब कोउ रहत न समुझनवारो। तब उपदेश लगत है भारो ॥
तब कछु सिद्धी नाहिं लखाई। केतिक कोउ उपदेश सुनाई ॥
होत जबै उत्तम उपदेशक। धर्म अर्थ शुभ बुधिके प्रेरक ॥
नाना भाँतिन सिद्धी होई। अन्धाधुन्ध जात सब खोई ॥
इन उपदेश न मानत जोई। सहत महादुख सुखको खोई ॥
निश दिन पोप पुजावत चरना। निजवशकरि कहिगौरव अपना ॥
बनि निर्द्वन्द विषय रत होवहिं। विद्या बुधिबल सबकछुखोवहिं ॥

शुभगुन नष्ट भये यहि भाँती। मद्यमांस सब काहु सोहाती॥

दो०-शिवौवाच कहिके कोऊ, कोउ पार्वत्योवाच।
भैरव देवी आदि लै, वाक्य कहे जनु साँच ॥२५॥

तन्त्र नाम धरि लीला कीन्ही। रचि निज ग्रन्थ कुदीक्षा दीन्ही॥
मुक्ती मानत पंच मकारा। कालि[1] तंत्र कहि ताहि उचारा॥
भैरवि चक्र सबै जब राजत। तहँ पर कोउनहिं जाति बिचारत॥
तेहिनिवृत्त हो निजनिज जाती। तंत्रकुलार्णव[2] जगत सुहाती॥
जौलगि भुँइ न गिरैं अकुलाई। तौलगि मद्य पियें समुदाई॥
वहुरि उठै पुनिपियहिं शराबा। तंत्र महानिर्माण[3] सुहावा॥
मातु विना जेती जग नारी। रमन करहिं तिनसँग सुखकारी॥
वेदशास्त्र अरु सकल पुराना। हैं समान गणिका हम जाना॥
याहि सम्भवी मुद्रा जानहु। तदा ज्ञान संकलनी[4] मानहु॥
औरहु बात सुनहु इन केरी। कहत योगनहिं कहिहौ फेरी॥

दो०-ऋतूकालके समय को, नहिं त्यागत यह लोग।
तीरथ सम फल मानहीं, अरु मानहि बड़ भोग ॥२६॥

---

[1] १—मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च। एते पंच मकाराः स्युः मोक्षदा हि युगे युगे। (कालीतंत्र)।

[2] २—प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा विजातयः। निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्। (कुलार्णवतंत्र)।

[3] ३—पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले। पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते। (महानिर्वाणतंत्र)

[4] ४—मतृयोनिं परित्यज्य विहरेत सर्वयोनिषु।
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव॥
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव (ज्ञानसंकलनीतंत्र)

रजस्वला[1] तिय करहिं सँग, तीरथ पुष्कर मानि ।
चांडाली काशी लखहिं, रजकी मथुरा जानि ॥२७॥
मानि चमारि प्रयाग सम, भोग करै मनलाय ।
करहि कंजरी संग तो, तीर्थ अयोध्या बताय ॥२८॥

तीरथ मद्यहिं कहत बुझाई । कहत शुद्धि मांसहिं निपुणाई ॥
पुष्प मच्छिका कहत बखानी । खाहिंसकल जलतुम्बिक जानी ॥
सुद्रन नाम धरे यहि भाँती । जेहि भ्रमजाल फँसे सब जाती ॥
आद्रवीर शम्भव अरु कौला । धरि निजनाम सुबाँध्यौ डौला ॥
इनते विमुख रहे जो कोई । कंटक ताहि उचारत सोई ॥
विमुखहि शुष्कपशू ते जानहिं । करतकर्म जियलाज न मानहिं ॥
चक्र भैरवी को जब लहहीं । तहँ सब वरण द्विजाती रहहीं ॥
पूजा विधि हम तुमहिं सुनावहिं । वाममार्गि गुरु जो करवावहिं ॥

दो०-बिन्दु त्रिकोण बनावहीं, भूमि पटा के बीच ।
मदिरा घट तापै धरहिं, पूजन करहि सहीच ॥२९॥

पुनि यह मंत्र[2] पढ़हिं चितलाई । मद्य हरहु मम शाप सदाई ॥
गुप्त रहत स्थल एक ठाहीं । जहँ पर कोऊ और न जाहीं ॥
जुरत तहाँ पर नर अरु नारी । पूजत नग्न नारि नर झारी ॥
पुनि मद पियहि होहिं मतवाले । भोगहिं नर नारिन भय त्यागे ॥
तहँ परज्ञान रहत यह नाहीं । माता भगिनी नारि को आहीं ॥
जो जेहि पाव रमण तब करहीं । सुता नारि हिय भेद न धरहीं ॥
पुनि यक थाल माँस भरिलावें । सहित मद्य तहँ पर धरि जावें ॥

---

[1] १—रजस्वला पुष्करी तीर्थं चांडाली तु स्वयं काशी चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता ॥ अयोध्या पुंकसी प्रोक्ता । (रुद्रयामलः तंत्र)

[2] २—ब्रह्मशापविमोचन ।

दो०-पुनि बोलत आचार्य्य इमि, हम भैरव शिव देव ।
पियत सकल मिलि पात्र में, जूठ अनूठ न भेव ॥३०॥
गणिका, नारि नग्न यक करहीं । सुनहुतासुकरमहँ असि[1] धरहीं ॥
तासु नाम देवी कहि टेरहिं । नर को महादेव कहि हेरहिं ॥
इन्द्री गुप्त सु पूजन करहीं । करहिं कुकर्म मत्त ह्वै गिरहीं ॥
मुष्ट प्रहार परस्पर करहीं । केश पकड़ि उनमत ह्वै लरहीं ॥
काहुहि वमन होहि तेहि ठामा । खाइ ताहि सो अधिक ललामा ॥
सोई सिद्ध महा है पंडित । सिद्ध अघोर सुकरम अखंडित ॥
मदिरा पान करत अधिकाई । कौलव चक्र[2] कहत तेहि गाई ॥
जो निर्लज्ज महा बटमारी । लरहिं न कानि सदा व्यभिचारी ॥
दो०-लोक लाज कुल लाज में, फँसे रहैं सोइ जीव ।
ह्वै निलज्ज काज करहिं, सोई शिव बलसीव ॥३१॥
सुनहु तंत्र उड्डीस कहानी । लिख्यो प्रयोग परम मनभानी ॥
एक भवन में चारों ओरा । धरहु मद्य अलेन महँ जोरा ॥
पियहि एक पुनि दूसर पीवैं । तीसर चौथ सकल दिशि पीवैं ॥
भूमि गिरैं पुनि उठि सोधाई । पिवहि शराब तहाँ सो जाई ॥
ताकहँ पुनरजन्म नहिं होई । आवै जो यहि मारग कोई ॥
विद्यामहा तहाँ दश जानहिं । यक मातंगी विद्या मानहिं ॥
ते मातंगी मात न त्यागत । जपत मंत्र नितप्रति सुखचाहत ॥
इन सम मूर्ख कवन जग माहीं । झूँठ हेत जन सत्य छिपाहीं ॥
दो०-अरु बोलत एक संग सब, महा असम्भव बात ।
वेद शास्त्र सामान्य सब, गणिका इव हैं तात ॥३२॥

---

[1] —तलवार । [2] —हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु । विराजते कौलवचक्रवर्ती ॥

पंथ चलायहु वेद विरुद्धा। तब न रहो सुजनन की श्रद्धा ।।
वेद नामधरि लीला कीन्ही। वाम मार्गिन जो गढ़ि[१] लीन्हीं ।।
पियहि सोमरस यज के माहीं। सौत्रामणि जहँ यज्ञ लखाहीं ।।
ताकहँ मानि लीन्ह यहि भाँती। यज्ञ विव मदिरापिइहिंसुजाती ।।
अरु कह दोष न यज के माहीं। खाइ मांस परसाद बनाई ।।
वैदिक हिंसा हिंसा नाहीं। वाममार्ग की रीति सुहाई ।।
पूछहु इन धूर्तन सों कोई। या विधि हिंसा जो नहिं होई ।।
तौ सब कुटुँब तुम्हार समेता। होमहिं अग्नि माँहि सुखहेता ।।
तौ तुम का सुख मनिहहु भाई। ह्वै आरूढ़ कहहु हर्षाई ।।
दो०-अहै छछोरापन यहाँ, जो यह मानत लोग।
मद्य मांस परनारि सँग, जे चाहत सुखभोग ।।३३।।
मिलहि न मांस जीव विन मारे। होत अधर्म जीव हनि डारे ।।
मद्यपानं वर्जित सब ठाईं। काहू ग्रन्थ न पड़ै लखाईं ।।
वाम मार्ग के ग्रन्थन माहीं। केवल लिखित मिल्यो तेहिठाहीं ।।
इनहीं के संसर्ग से भाई। मनुआदिक ग्रन्थन में जाई ।।
अद्भुत बात एक दर्शाई। वेदन में हिंसा दिखराई ।।
अरु सबको समुझावन लागे। अश्वमेध गोमेध बखाने ।।
तब यक ऋषिसों पूछत भयऊ। गो अरु अश्वमेध का ठयऊ ।।
स्वामि कहत विन अर्थ न जाने। घोर अविद्या माहिं भुलाने ।।
दो०-गौ घोड़ा को मारिबो, लिख्यो न केहु थल माहिं।
वेद अर्थ जानत नहीं, अनरथ करत सदाहिं ।।३४।
कहुँ कहुँ शास्त्रन परत लखाई। जानहु वाममाग निपुणाई ।।

१—सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्। प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति। न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने। प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ।।

पालन प्रजा धर्मयुत करई। विद्यादान माँहि चित धरई॥
यज्ञ करहि लै जन समुदाई। अश्वमेध[1] सो जगत कहाई॥
प्राण यज्ञ इन्द्रिय मल हरई। करि बहु यज्ञ किरण शुचकरई॥
तेहि गोमेध[2] कहत जन टेरी। देखहु प्रेम सहित हिय हेरी॥
पुनि यक कहत सुनहु ऋषिराई। जो तुम मोसन कहत सुनाई॥
यज्ञ पशू अरु वह यजमाना। पावत स्वर्ग माहिं सुख नाना॥
कहत पशू पुनि जीवित सोई। कहा स्वामि यह सत्य न होई॥

दो०--काहू क्षण यह सत्य नहिं, सुनहु हमारी बात।
अरु जिनको सिद्धांत यह, तिनहि सुनावहु तात॥३५॥

जो पशु स्वर्ग जात यजहोमे। तौ किन निजपरिवारहि होमे॥
होमे पशु जिमि जीवित करई। ताविधि निज कुटुम्ब अनुसरई॥
पुनि कह यज्ञ में मन्त्र न पढ़हीं। वेदनरीति जानि हिय धरहीं॥
कह ऋषि मंत्र चहै कोउ पढ़ई। शब्द स्वरूप जगत बिच अहई॥
मंत्र अर्थ हवि यज में डारै। वायु शुद्ध हो रोग निवारै॥
पर इन मूढ़न अर्थ न जानी। कार्य करे अपने मनमानी॥
मृतक श्राद्ध इन सबन कराये। पहुँचहि पितुढिग कहि समुझाये॥

दो०--पोपन लीला बहुकरी, गोरखपुर के बीच।
नृप नारी अरु अश्वसों, संग करायहु नीच॥३६॥

रानी मरत नृपति हियमाहीं। श्रद्धा घटी जाल खुलि जाहीं॥
राजछोड़ि नृप बनहिसिधाये। पोपन जाल अधिक देखराये॥
चारवाक आभाणक दोऊ। तिनकी साख रही है सोऊ॥
तब सबको समझावन लागे। पोपन जाल छुड़ावन पागे॥

---

[1] राष्ट्रं वा अश्वमेधः॥ शतपथ० १३।१।६।३॥ अग्निर्वा अश्वः आज्यं मेधः॥

[2] अन्नꣳ हि गौः॥ शतपथ० ४।३।१।२५।

छंद—जो स्वर्ग पशु होमे मिलिहि, तो किमि न याजक होमही ।
ते किमि न पहुँचावत सदा, निज मातु पितु अपने सही ॥
यदि श्राद्ध कीन्हे मृतक तृप्ती, होत है निश्चय सही ।
तौ पथिक जन किमिसहैं दुख, तिन श्राद्ध सों पहुँचै सही ॥६॥
पहुँचत जब मृतकनहै भाई । किमिनपथिकजनमिलहि सुहाई ॥
जियतनरन यदि पहुँचत नाहीं । तो किमि भोगत मृतक सराहीं ॥
जैन धरम इमिवाढ़न लाग्यो । चन्द्रकला जिमि पूरन पाग्यो ॥
जब न गली कछु दालि गलाये । तब जैनी बनि प्रीति बढ़ाये ॥
जैनिन में बहुतक है लीला । सो आगे कहिहौं सुखशीला ॥

दो०--जैनधर्म सब देशभो, छुट्यो वेद को पाठ ।
कछु स्थल तब रहि गये, ठाठि आपनो ठाठ ॥३७॥

वैदिक चिह्न जनेऊ आदिक । त्यागन लगे बने सब नायक ॥
जहँ कहुँ पावत वेदन पोथी । देत जलाइ बतावहिं थोथी ॥
आर्य्यजनन पर शासन कीन्हों । अरु सब भाँतिनतिन्हदुख दीन्हों ॥
तिनहि रही कछु शंका नाहीं । ह्वै उनमत जगद्वन्द मचाहीं ॥
आप रहैं सुखमय आसीना । फूले फिरत मनहु जल मीना ॥
तीर्थंकरन की मूर्ति बनाई । तिन पूजा अरु जगत पुजाई ॥
आदि वृषभ महावीर सुअन्ता । भये तीर्थंकर जैन महन्ता ॥
ढाई सहस बरष हैं बीते । लुप्त भयो वेदार्थ सप्रीते ॥

दो०--वर्ष सुबाइस शत भयो, प्रकटे शंकर देव ।
द्रविड़देश उत्पन्न भे, कीन्ह वेदमत सेव ॥३८॥

पढ़ि व्याकरण बने ब्रह्मचारी । ब्राह्मण आस्तिक अरु आचारी ॥
देख्यो तहाँ वेद मत हानी । झूठ असत मत जैनअमानी ॥
शंकर देखि भयो दुख भारी । तब निजमन यक बात विचारी ॥
गये उज्जैन देश आचारी । तहँ शास्त्रार्थ कीरीति सम्हारी ॥
तहाँ सुधन्वा राजा रहेऊ । जैन-धर्म ताके हिय ठयऊ ॥

रह्यो नृपति विद्वान सोहावन । जन सत्कार करहि हियपावन ॥
नृप समीप तब शंकर जाई । कह शास्त्रार्थ करावहु राई ॥

दो०–जैनधर्म अरु वेद मत, कवन सत्य ठहरात ।
ताहीपर हम तुम चलहिं, जो होवे सुखदात ॥३९॥

करहि प्रतिज्ञा यहि थल आई । जो जीतै तेहि मत हुइ जाई ॥
यदपि सुधन्वा जैन महाना । तदपि सुग्रन्थन देख्यो नाना ॥
तेहि मन विद्या केर प्रकाशा । तामहँ पशुता की नहिंआशा ॥
यह जग रीति सदा चलि आई । जेहि बुधिहोत सोसत अपनाई ॥
अबलौं राजहि मिल्यो न कोई । सत्य असत्य बतावत जोई ॥
शंकर की सुनि के यह बानी । शास्त्र विवाद करावन ठानी ॥
जैनी पंडित अधिक बोलाई । दूरि निकट जे चतुर सोहाई ॥
शंकरपक्ष वेदमत साँचा । वेदविरुद्ध जैनमत ढाँचा ॥

दो०–उभयपक्ष बहु दिवस लगि, कीन्हों अधिक विवाद ।
करता ईश विचारहीं, युक्ति प्रबल द्वौ बाद ।४०॥

करता सृष्टि न ईश अनादी । जगत जीव द्वौ रहत अनादी ।
इनकर नाश कतहुँ नहिं होई । जैन वाद पथ जानहु सोई ॥
जग कर्ता यक ईश अनादी । जीव जगत द्वौ झूठ उपाधी ॥
यह जग ईश्वर निर्मित करई । करि पालन सँहार हियधरई ॥
बहुतक दिवस रह्यो यहवादा । रही सुशंकर की मर्य्यादा ॥
वैदिक धरम सदा शुचिसाँचा । सोई रह्यो जेहि शंकर बाँचा ॥
भये पराजित जैनी पंडित । करत रहे जो राज अखंडित ॥
जैनधर्म तिन त्यागन कीन्हो । बुधमंडली सहित नृप चीन्हो ॥

दो०--शंकर के अनुकूल तब, करन लगे जप याग ।
नृपति सुधन्वा कुल सहित, तिन पायो बड़भाग ॥४१॥

शंकर को दिग्विजय करायो । आप संग लै सैन्य सिधायो ॥

छंद—जो स्वर्ग पशु होमे मिलिहि, तो किमि न याजक होमही।
ते किमि न पहुँचावत सदा, निज मातु पितु अपने सही॥
यदि श्राद्ध कीन्हे मृतक तृप्ती, होत है निश्चय सही।
तौ पथिक जन किमिसहैं दुख, तिन श्राद्ध सों पहुँचै सही॥६॥
पहुँचत जब मृतकनहै भाई। किमिनपथिकजनमिलहि सुहाई॥
जियतनरन यदि पहुँचत नाहीं। तो किमि भोगत मृतक सराहीं॥
जैन धरम इमिबाढ़न लाग्यो। चन्द्रकला जिमि पूरन पाग्यो॥
जब न गली कछु दालि गलाये। तब जैनी बनि प्रीति बढ़ाये॥
जैनिन में बहुतक है लीला। सो आगे कहिहौं सुखशीला॥
दो०--जैनधर्म सब देशभो, छुट्यो वेद को पाठ।
कछु स्थल तब रहि गये, ठाठि आपनो ठाठ॥३७॥
वैदिक चिह्न जनेऊ आदिक। त्यागन लगे बने सब नायक॥
जहँ कहुँ पावत वेदन पोथी। देत जलाइ बतावहिं थोथी॥
आर्य्यजनन पर शासन कीन्हों। अरु सब भाँतिनतिन्दुख दीन्हों॥
तिनहि रही कछु शंका नाहीं। ह्वै उनमत जगद्वन्द मचाहीं॥
आप रहैं सुखमय आसीना। फूले फिरत मनहु जल मीना॥
तीर्थंकरन की मूर्ति बनाई। तिन पूजा अरु जगत पुजाई॥
आदि वृषभ महावीर सुअन्ता। भये तीर्थंकर जैन महन्ता॥
ढाई सहस बरष हैं बीते। लुप्त भयो वेदार्थ सप्रीते॥
दो०--वर्ष सुबाइस शत भयो, प्रकटे शंकर देव।
द्रविड़देश उत्पन्न भे, कीन्ह वेदमत सेव॥३८॥
पढ़ि व्याकरण बने ब्रह्मचारी। ब्राह्मण आस्तिक अरु आचारी॥
देख्यो तहाँ वेद मत हानी। झूठ असत मत जैनअमानी॥
शंकर देखि भयो दुख भारी। तब निजमन यक बात विचारी॥
गये उज्जैन देश आचारी। तहँ शास्त्रार्थ कीरीति सम्हारी॥
तहाँ सुधन्वा राजा रहेऊ। जैन-धर्म ताके हिय ठयऊ॥

रह्यो नृपति विद्वान सोहावन । जन सत्कार करहि हियपावन ॥
नृप समीप तब शंकर जाई । कह शास्त्रार्थ करावहु राई ॥

दो०-जैनधर्म अरु वेद मत, कवन सत्य ठहरात ।
ताहीपर हम तुम चलहिं, जो होवे सुखदात ॥३९॥

करहि प्रतिज्ञा यहि थल आई । जो जीतै तेहि मत हुइ जाई ॥
यदपि सुधन्वा जैन महाना । तदपि सुग्रन्थन देख्यो नाना ॥
तेहि मन विद्या केर प्रकाशा । तामहँ पशुता की नहिंआशा ॥
यह जग रीति सदा चलि आई । जेहि बुधिहोत सोसत अपनाई ॥
अबलौं राजहि मिल्यो न कोई । सत्य असत्य बतावत जोई ॥
शंकर की सुनि के यह बानी । शास्त्र विवाद करावन ठानी ॥
जैनी पंडित अधिक बोलाई । दूरि निकट जे चतुर सोहाई ॥
शंकरपक्ष वेदमत साँचा । वेदविरुद्ध जैनमत ढाँचा ॥

दो०-उभयपक्ष बहु दिवस लगि, कीन्हों अधिक विवाद ।
करता ईश विचारहीं, युक्ति प्रबल द्वौ बाद ।४०॥

करता सृष्टि न ईश अनादी । जगत जीव द्वौ रहत अनादी ।
इनकर नाश कतहुँ नहिं होई । जैन वाद पथ जानहु सोई ॥
जग कर्ता यक ईश अनादी । जीव जगत द्वौ झूठ उपाधी ॥
यह जग ईश्वर निर्मित करई । करि पालन सँहार हियधरई ॥
बहुतक दिवस रह्यो यहवादा । रही सुशंकर की मर्य्यादा ॥
वैदिक धरम सदा शुचिसाँचा । सोई रह्यो जेहि शंकर बाँचा ॥
भये पराजित जैनी पंडित । करत रहे जो राज अखंडित ॥
जैनधर्म तिन त्यागन कीन्हो । बुधमंडली सहित नृप चीन्हो ॥

दो०--शंकर के अनुकूल तब, करन लगे जप याग ।
नृपति सुधन्वा कुल सहित, तिन पायो बड़भाग ॥४१॥

शंकर को दिग्विजय करायो । आप संग लै सैन्य सिधायो ॥

किय उपनयन सकल बरजोरी । बढ़्यो सुवैदिक धरम बहोरी ॥
यहि प्रकार दश बरषबिताने । आर्यवर्त से जैन हेराने ॥
भयो युद्ध बहु स्थल माहीं । नष्ट भईं मूर्ती बहु ठाहीं ॥
जैन पूर्ण कछु शैव देखाने । खंडन कीन्ह वेद सनमाने ॥
तेहि अवसर धनवंत महाजन । निर्मित कीन्ह सुमंदिर साजन ॥
मंदिर बृहत नाहिं तोड़वाये । गुरुकुल हेत तिनहिं रखवाये ॥
तब द्वै जैनी कपट स्वरूपा । प्रगट वेद मत राक्षस रूपा ॥
दो०--पाइ सुअवसर दीन्ह विष, कपट कुचाली कूर ।
क्षुधामन्द ऋषि की भई, भयो अंग सब चूर ॥४२॥
छं०—षट मास के बिच देह त्याग्यो, चतुर शंकर वीर ।
उत्साह तब सबको गयो ह्वै गये सकल अधीर ॥
विद्यादि धर्म प्रचार हित जो कार्य्य शंकर कीन्ह ।
वह काज कछु होने न पायो, त्यागि जग चलिदीन्ह ॥ ७ ॥
जैन के प्रतिवाद हित जो युक्ति तिन निर्मितकरी ।
है जगत मिथ्या ब्रह्म सत, ब्रह्म जीव की यकताकरी ॥
पुनि शिष्य सब मठबाँधि बैठे जीव ब्रह्म उचारहीं ।
सब वेदमार्ग विनष्ट ह्वै गयो कौन जद्यत सुधारहीं ॥८।
दो०--शृंगेरी दक्षिण दिशा, गोवर्धन दिशि पूर्व ।
उत्तर जोशो मंठ थप्यो, बैठत भये सगर्व ।४३॥
बहु प्रभुता धन सम्पति पाई । करन अनन्द लगे अधिकाई ॥
अब यह बात विचारन योगू । शंकर युक्ति परम तपभोगू ॥
यहि अवसर शंकर समुदाई । करि प्रचार चाहै निपुणाई ॥
कहौं कहा शंकर को यह मत । चलतशिष्य यहिअवसरजो पथ ॥
हम समुझत याको यहि भाँती । शंकर देव सुपरम सुहाती ॥
पक्ष सिद्धि हित लिय यक अंगा । अरु जीत्यो सब भाँति अभंगा ॥
अरु जो मत यह शंकर केरा । जीव ब्रह्म एकहिं सब बेरा ॥

तौ यह बात बनत है नाहीं। ब्रह्म जीव नहिं होत कदाई ॥
केवल जैन विवादहि लागी। बने नवीन वेदान्ति विरागी।
दो०--तब ऋषि सों पूछत भयो, एक पुरुष यह बात।
जगत रज्जु भ्रम सर्पवत, मृगतृष्णा जल जात ।।४४।।
चाँदी सीप देखात जिमि, इन्द्र जाल की भाँति।
यह झूठा संसार है, सत्य ब्रह्म यक जाति ।।४५।।
स्वामि कहा जेहि स्थिति नाहीं। सोकि कहहुकिमिप्रगटल खाहीं ॥
कहहु कवन को झूठ लखाई। अरु अप्रकट प्रकट हुइ जाई ॥
अध्यारोप[1] कहत हम ताही। जेहि निश्चय तुम मानहु भाई ॥
स्वामि कहत सुनिये चित लाई। मानत रज्जु वस्तु सब ठाँई ॥
सर्प अवस्तु तुम्हारी जानी। पड़ि भ्रम जालसो मती भुलानी ॥
तब स्वामी समुझावन लागे। परम चतुर बहु विद्यन पागे ॥
रसरी प्रकट तुम्हारी जानी। सर्प अवस्तु हिये बिच ठानी ॥
जब रसरी महँ अहि भ्रम करई। सर्प भावना हिय बिच धरई ॥
दो०--सर्प भावना हृदय बिच, रहत रही प्रतियाम।
तब केहि विधि भ्रम होवई, जीव ब्रह्म सुख धाम ।।४।।
सो०--बिना मूल नहिं सोउ, स्वप्न भावना होत जग।
प्रथम रहत है सोउ, संस्कार आतम बिषे ।।४६।।
कहत एक हम सपना दीखत। कोउविनशीशकोउ-कोउखीझत ॥
जो कतहूँ देख्यो है नाहीं। स्वामि कहौ किमिप्रकटलखाहीं ॥
जो देखात कतहूँ है नाहीं। वह प्रतच्छ केहि भाँति लखाहीं ॥
तब कह स्वामि सुनहु चित लाई। बात तुम्हारि बनत इमिनाहीं ॥
संस्कार बिन स्मृति नाहीं। बिन स्मृति अनुभव कछु नाहीं ॥

१—पदार्थ कुछ और हो उसमें अन्य वस्तु का आरोपण करना अध्यारोप कहाता है।

जब कहुँ सुनेहु कस्यो नरशीशा । रोवत देख्यो जात अनीशा ॥
सोई स्वप्न आत्म बिच आई । रोवत आपुहि शीश कटाई ॥
इमि न बस्तु बिच होत अबस्तू । पुनि आरोप बतावहु बस्तू ॥

दो०-सुनहु चित्रकारी करत, देखि अकर्ता मित्र ।
नैन मूँदि तेहि लिखत सब, और बनावत चित्र ॥४७॥

सोई कतहुँ स्वप्न बिच देखहु । जाग्रतसम नहिं सपना पेखहु ॥
अंधहि रूप स्वप्न नहिं होई । जन्म ज्योति जाकी गइ खोई ॥
याते तव मिथ्या अध्यासा । मिथ्या अहै अरोपित आसा ॥
वेदान्तिन उपमा यह झूँठी । सर्प रज्जु भ्रम मान अनूठी ॥
बहुरि कहत ऋषि बचन प्रवीना । जेहि मत है वेदान्त नवीना ॥
अधिष्ठान बिन नहिं अध्यासा । होय प्रतीत करौ नहिं आसा ॥
बिन रसरी अहि भान न होई । यह निश्चय जानहु सब कोई ॥
केहु क्षण सर्प न रसरी माहीं । जबतम बढ़त तो प्रकट देखाहीं ॥
दीपक सों जब देखत ताही । तबभ्रम तुरतसकल नशि जाही ॥

दो०-ब्रह्म बीच तिमि जगत की, होत प्रतीती झूट ।
जब जानत बहु ब्रह्म को, जात तबै भ्रम छूट ॥४८॥

तैसेहि रज्जू प्रकट देखाई । सर्व केर भ्रम जात नसाई ॥
कहत स्वामिकछुमोहिंसमुझावहु । केहि जान्यो सो मोहिं सुनावहु ॥
ब्रह्मबिच जगत जीव ने जान्यो । पंडित कहि यहिभाँति बखान्यो ॥
जीव भयो किमि कह ऋषिराई । बोलत यह अज्ञान से आई ॥
बहुरि कहत ऋषिकिमि अज्ञाना । भयो कहाँ से कहहु विधाना ॥
रहत कहहु केहि स्थल माहीं । कह्यो ब्रह्मबिच रहत सदाहीं ॥
कह ऋषि वह अज्ञान ब्रह्म केरा । अथवा अन्य काहु को हेरा ॥
अरु केहि भयो महा अज्ञाना । कह भो चिदाभास को माना ॥
पुनि पूछत ऋषिरूप बतावहु । चिदाभास कह है दर्शावहु ॥

दो०-चिदाभास ही ब्रह्म है, ब्रह्महि ब्रह्म अज्ञान।
निज स्वरूप सो भूलई, है यक युक्ति महान ॥४६॥
तब ऋषिकहत निमित्त बतावहु। पंडित कह्यो अविद्या जानहु॥
बोलत ऋषी सरलमृदु बानी। कहहु अविद्यागुन केहि मानी॥
बहुरि अविद्या गुण सर्वज्ञा। अथवा यह जानहि अल्पज्ञा॥
यह गुन जो अल्पज्ञ लखायहु। तौ तुम्हार मतनहिं बनि पायहु॥
जब चेतन यक है जग माहीं। दूसर कोउ चेतन है नाहीं॥
तब अल्पज्ञ कहाँ ते आयो। ब्रह्ममाहिं अल्पज्ञ न पायो॥
ब्रह्म ते पृथक जो मानहु भाई। तो मत ठीक तुम्हार लखाई॥
जो हो ब्रह्म बीच अज्ञाना। तौ तम बढ़ै महा अभिमाना॥
दो०-पंडित कहत उपाधि का, धर्म जगत विख्यात।
ब्रह्मकेर यह धर्म नहिं, सत्य बतावहुँ बात ॥५०॥
सो०-यह तुम्हारि यक बात, कहत सुनत लागत हँसी।
यह उपाधि जड़ तात, अथवा चेतन है कहहु ॥५॥
जिमि द्वै धातु मिलावे एका। परखै पारखि सहित विवेका॥
द्वौ मिलि एक कतहुँ नहिं होई। प्रकट दिखात दुऔ गुन सोई॥
पंडित कहत सुनहु ऋषिराई। जिमि घटमठ आकाश लखाई॥
मेघ अकाश आदि आकाशा। हैं यह जानहु महदाकाशा॥
प्रकट सुघटमठ पृथक लखाहीं। नतुसब एकहि रूप सुहाहीं॥
या विधि माया व्यष्टि समष्टी। अन्तःकरन अविद्या इष्टी॥
जाकहँ ब्रह्म बोध है नाहीं। तेहि उपाधि ये पृथक लखाहीं॥
जाविधि अग्नि सकल दिशि जारै। भाँति-भाँति के काठ सँहारै॥
दो०--होत तहाँ तदरूप है, औ पुनि पृथक लखात।
तिमि परमातमको लखहु, अन्तःकरन समात॥५१॥
पर है पृथक सदा सब ठाईं। अन्तःकरन ईश दिखगाईं॥

यह मत व्यर्थ तुम्हार लखाई। तब ऋषि कह यह मानहु भाई ॥
घट मठ मेघ पृथक जब मानहु। तौ किमि जीव ईश अपनावहु ॥
जगत जो कारन कार्य्य सरूपा। जीव ब्रह्म द्वौ भिन्न अनूपा ॥
तव पंडित कह सुनहु गोसाईं। व्यापक ईश रमै सब ठाईं ॥
जिमि अग्नी प्रविशै सब माँहीं। तदाकार बनि रहत तहाँहीं ॥
तिमि परमातम जड़ अरु जीवा। ह्वै व्यापक धरि रूप अतीवा ॥
अज्ञानिन हित प्रकट लखाई। नतु ईश्वर जड़ जीव सदाई ॥

दो०--जिमि सहस्र जलकुंड में, देखहु भानु प्रकाश।
कुंड नशे जल के नशे, होत बिम्ब नहिं नाश ॥५२॥

या विधि अन्तःकरन के माहीं। जीव ब्रह्म प्रतिबिम्ब लखाहीं ॥
जबहि ज्ञान होवे अधिकाई। अन्तःकरन बिकार नशाई ॥
तब यह जीव ब्रह्म ह्वै जावै। अरु जगबन्धन से छुटि जावे ॥
तब ऋषि कहत सुनहु चित लाई। है सिद्धान्त व्यर्थ यह भाई ॥
जेते हैं दृष्टान्त तुम्हारे। ते साकार सबै उचारे ॥
वारि-पात्र साकार सुहाई। अरु सविता साकार लखाई ॥
तौ प्रतिबिम्ब होत सब ठाँई। निराकार प्रतिबिम्ब न भाई ॥
तौ किमि ब्रह्म होत प्रतिबिम्बा। व्यापक निराकार जग अम्बा ॥
ब्रह्म अभास कहहु किमि होई। बिन अकार प्रकटत नहिं सोई ॥

दो --अन्तःकरन उपाधि से, जीवहि मानत ब्रह्म।
नष्ट भये अन्तःकरन, जात कहाँ सो ब्रह्म ॥५३॥

यह लरिकाईं सम है बाता। ब्रह्म अखंड अचल है ताता ॥
जीव ब्रह्म जो पृथक न मानहु। तौ हमको यह बात बतावहु ॥
अन्तःकरन जहाँ तहँ जाई। हो अज्ञानि तहाँ ब्रह्म भाई ॥
जेहिते पृथक होत जेहि काला। सो तब होत महा बुधिवाला ॥
जिमिं छतरी की छाया धाई। जात जहाँ सो तहँ चलि जाई ॥
यामें दोष ब्रह्म को लागै। जीव दोषमय ब्रह्महु पागै ॥

चेतन ब्रह्म एकरस अहई। तामहँ दुख अज्ञान न रहई॥
जो हम मानहिं तुम्हरी बाता। लागत दोष ब्रह्म विच ताता॥
दो०--शुद्ध बुद्ध अरु नित्य प्रभु, है तेहि मुक्त स्वभाव।
तात्रभु के यहि भाँति तुम, मानत हो सब भाव॥५४॥
प्रभु अखंड निर्दोष है, होत खंड तेहि नाहिं।
बिना रूप आभास नहिं, होत न केहू ठाहिं॥५५॥
जो न कतहु केहि भाँति लखाई। सो किमि दर्पन देत देखाई॥
है यह प्रकट जगत की रीती। प्रकट अकार लखात सुनीती॥
निराकार कोउ कतहुँ न पेखे। कहहु अकाश तबै केहि लेखे॥
कहहु स्वामि यह कहा देखाई। नील वरन आकाश सुहाई॥
स्वामि कहत सुनिये यक बाता। जो यह नील अकाश सुहाता॥
भूमि अग्नि जल रेणु जो अहहीं। चलि सो गगन बीचमें रहहीं॥
यह वितान सम दीखत जोई। वर्षा गोलक लखिये सोई॥
जिमि कोहिरा घन सम दर्शाई। तिमि जल गगन बीच ठहराई॥
दो०--तब पण्डित कहसुनहु ऋषि, हम जो कह्यो का झूठ।
रज्जु सर्प स्वप्नादि सब, जो दृष्टान्त अनूठ॥५६॥
कहऋषि समुझ तुम्हारी झूठी। युक्ति कही सब पूर्व अनूठी॥
एक बात तुम हमहिं बतावहु। केहि अज्ञान प्रथम समुझावहु॥
बोलत ब्रह्महि प्रथम अज्ञाना। भयो सो तामहँ सकल समाना॥
कह ऋषि कहहु ब्रह्म अल्पज्ञा। अथवा जानि परत सर्वज्ञा॥
तब नवीन पण्डित इमि बोलत। निज बुधिकेर कपाटहि खोलत॥
सुनहु ब्रह्म नहिं है सर्वज्ञा। अरु न होहि कबहूँ अल्पज्ञा॥
सर्वज्ञता केर गुन जोई। अल्पज्ञता रहत तहँ सोई॥
सहित उपाधि जो हैं जग माँहीं। ताही में यह गुन दर्शाहीं॥

कहऋषि सहित उपाधि बतावहु । कवन वस्तु ताकहँ समुझावहु ॥

दो०--ब्रह्महिं सहित उपाधि है, कह पंडित यहि भाँति ।
कहत भये ऋषिराज यह, बात न हमहिं सुहाति ॥५७॥

जब है ब्रह्म सदा सर्वज्ञा । अरु सोई नित है अल्पज्ञा ॥
तौ तुम किमि पहिले यह कहेऊ । ब्रह्म बीच यह कछु ना ठहेऊ ॥
असत उपाधी मानहु जोई । कल्पित करि सब साधन होई ॥
तौ यह कहहु कवन वह भाई । करत कल्पना जो सबठाँई ॥
पुनि यक ऋषि सों पूछन लागे । कहहु सो जीवब्रह्म ही आगे ॥
अथवा अन्य कहहु समुझाई । तबऋषि तेहिक्षण कहत बुझाई ॥
जीव से ब्रह्म अल्प है भाई । तामहँ कल्पित वस्तु न आई ॥
होय कल्पना मिथ्या जोई । कर्ता तासु सत्य किमि होई ॥
तुम सत असत झूठ द्वौ मानत । मिथ्या वाणि विकार पुकारत ॥

दो०--कहत ऋषी हे विप्रवर, जब मानत तुम झूँठ ।
तब तुमहूँ झूठे सदा, किमि न होहु भय ठूँठ ॥५८॥

हे ऋषि सतअरु असत हमारे । कल्पित करि ताकहँ हिय धारे ॥
हम दोहुन के साक्षि सरूपा । अधिष्ठान जानत जगरूपा ॥
कह ऋषि तुमहिं दोहुंन आधारा । चोर साहसम तुमहिं पुकारा ॥
तेहि प्रमान मानत संसारा । जेहि सब काल सत्य उरधारा ॥
बात तुम्हारि असत सब भाँती । ताते काहुहिं नाहिं सुहाती ॥
माया तुम मानत यहि भाँती । होय न वस्तु अभास सुहाती ॥
सो यह वह मानहि जग माँहीं । जाके हिये आँख है नाहीं ॥
देखहु हिय बिचारि दिनराती । जगत अवस्तु भास केहि भाँती ॥

दो०--वन्ध्यासुत प्रतिबिम्ब किमि, होय जगत के बीच ।
"इष्ट" असम्भव कतहुँ नहिं, होत न सम्भव खीच ॥५९॥

एक कहत सुनिये ऋषिराई। बहुतक भये श्रेष्ठ मुनिराई।
मुनि वशिष्ट शंकर आचारी। निश्चल दास महा तप धारी॥
तुमसे अधिक सो पंडित रहेऊ। धर्म मार्ग बहुतक कहि गयेऊ॥
तव समान ते नहिं विद्वाना। तदपि कछुक राखत हैं ज्ञाना॥
कह ऋषि पक्ष तुम्हार वलिष्ठा। शंकर निश्चल दास वसिष्ठा॥
तौ मम सन्मुख राखहु जोई। खंडन करहिं पक्ष हम सोई॥
युक्ति प्रबल तुम्हरी जो भाई। कहहु न काहे न सन्मुख आई॥
हम अनुमान करत यहि भाँती। "इष्ट" सुशंकर युक्ति सोहाती॥
दो०--मत जैनिन खंडन कियो, श्री शंकर विद्वान।
सम्भव यह मत हिय धर्‍यो, एक पक्ष बलवान॥६०॥
यह जग रीति विदित सब ठाँई। पक्ष बनाइ लेत मनु साँई॥
देखत देश काल की रीती। निज मत थापि बनावत नीती॥
बहुतक जग स्वार्थी विद्वाना। आत्म विरुद्ध बनावत बाना॥
कहत न जीव ब्रह्म यकताई। जग व्यवहार असत बतराई॥
तौ न कोउ सच मानत तेहिछन। बात कही तेहि अवसर मुनिगन॥
निश्चल दास केरि पँडिताई। देखहु जीव ब्रह्म यकताई॥
यक अनुमान मात्र लिख दीन्हो। चेतन जानि जीव ब्रह्म चीन्हों॥
यह अबोध पुरुषन समबाता। केवल एक धर्म जहँ ताता॥
दो०--एक धर्मही मात्र से, होत न दूजो एक।
पृथ्वी जल साधर्मता, करिये जानि विवेक॥६१॥
जिमि यह बात सत्य नहिं होई। तिमि निश्चलबुधि जानहु सोई॥
जीव सदा मायावश होई। है अलपज्ञ बिचारहु जोई॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। व्याससूत्र वेदान्त लखाई॥
देखहु तिनके अर्थ विचारा। ब्रह्म जीव एकहि परिवारा॥
जो है ब्रह्म एक अबिनाशी। व्यापक है सब घट घट बासी॥
जीव रूप सोइ प्रकटत आई। जानहु ब्रह्म केर निपुणाई॥

यह मत व्यास[1] केर लखि लीजै । आगे जैमिनि[2] को सुन लीजै ॥
हेतु जौन ऐश्वर्य विधायक । ब्रह्मरूप ते जीव सहायक ॥
औडलोमि[3] पुनि या विधि कहेऊ । जो वेदान्त माहिं है ठयेऊ ॥
आत्मरूप सोइ चेतन हेतू । रहत मुक्त वह दुःख समेतू ॥
औरहु व्यास[4] कह्यो यहि भाँती । जीव जबै ऐश्वर्य सोहाती ॥
तबहिं होत सो ब्रह्म सरूपा । मुक्त समय सो रहत अनूपा ॥

दो०--कहत स्वामि चित दै सुनहु, है न अर्थ यह भाय ।
तजि बिचार हिय राखिकै, सुनिये कान लगाय ॥६२॥

जो वेदान्त सूत्र तुम गाये । अरु करि अर्थ मोहिं समुझाये ॥
सत्य अर्थ इन सूत्रन केरा । जो हम कहत रहत सब बेरा ॥
निज कृत शुद्ध स्वरूपहि पावे । जबहि जीव सबमल नशिजावे ॥
होत पवित्र न जौलगि सोई । जौ लगि योगयुक्त नहिं होई ॥
योग ऐश्वर्य्य केर बिन पाये । जीव न ब्रह्मानन्द समाये ॥
मुक्ती सुख स्वइ भोगत जीवा । ब्रह्मानन्द मिलत बलसीवा ॥
पाप रहित याही विधि होई । योग ऐश्वर्ययुक्त हो सोई ॥
जबहि अविद्या छूटत दोषा । काम क्रोध आदिक मद रोषा ॥
सुस्थिर होत तहाँ पर जीवा । लखत ब्रह्म जहँ पै सुखसीवा ॥

दो०-होत तबै सम्बन्ध है, जीव ब्रह्म के साथ ।
तदात्मकत्व तेहि जानहू, कर्म आपने हाथ ॥६३॥

जब वह ब्रह्मकेर सँग धाई । पावत शुध विज्ञान सुहाई ॥
तब वह जीवनमुक्त कहावे । निर्मल रूप पाइ सुख पावे ॥

१—सम्पाद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात् । (व्यास) २—ब्राह्मेण जैमिनि रुपन्यासादिभ्यः । (जैमिनि) ३—चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादि त्यौडुलोमिः ४—एवं मप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः। अतएव चानन्याधिपत्तिः । (वेदान्तदर्शन अ० ४ पाद ४ सू० १।५।७।६)।

योगी सत संकल्पी होई । ईश प्राप्त मुक्ती सुख जोई ॥
मुक्ती सदा एक रस रहई । तहँ बड़ छोट कछू ना अहई ॥
ब्रह्म बिना दूसर कोउ नाहीं । कर्ता सृष्टि जो परत लखाहीं ॥
अल्प समर्थवान है जीवा । रचतसो केहिविधिसृष्टि अजीवा ॥
जीव ब्रह्म द्वौ पृथक लखाहीं । लखहु ताहि उपनिषदन माहीं ॥
ब्रह्मानन्द रूप रस एका । पाइ जीव सोइ होत अलीका ॥

दो० -याते हैं नहिं एक द्वौ, जीव ब्रह्म जग मांहिं ।
ब्रह्म जीव के पृथक गुन, जानि लेहु सब ठाँहिं ॥६४॥

छंद—अज व्यापक शुद्ध अमूर्त प्रभो, है बाहर भीतर दिव्य विभो ॥
दुख जन्म औ मृत्यु के भोगतना, वपुधारि नआवतहै जगमां ।
मन केर विकार न हों तेहि में, नहिं श्वास समीर बहै उर में ॥
है एक प्रकाश सरूप महा, परमातम अक्षर वेद कहा ॥९॥
प्रकृती से परे यह जीव अगे, है जीव से सूक्षम ब्रह्म परे ।
यह तीनहुभिन्न अनादिलखौ, रस आनँद"इष्ट"सुजानिचखौ ॥
रमि ब्रह्म तजै प्रकृती दलको, करि योग नशै मन के वल को ।
प्रकृती से परे हो जीव जबै, रस पावत आनंद ब्रह्म तबै ॥१८॥

दो०--सर्ब व्यापक ब्रह्म में, होत जीव को योग ।
जीव मांहिं ब्रह्म योग करि, लहहु महा सुख भोग ॥६५॥

जग यह रीति सदा चलि आई । योग करत जो भिन्न लखाई ॥
अन्तरयामि धर्म ब्रह्म केरा । व्यापक रहत सदा सब बेरा ॥
जीव सुव्याप्य विलोकत ताही । व्यापक ईश रहत सब ठांही ॥
है सम्बन्ध परसपर दोऊ । व्याप्य सुव्यापक जानहु सोऊ ॥
उपनिषदन बहु भाँति बतावा । जीव ब्रह्म को भेद दृढ़ावा ॥
वपु धरि जीव ब्रह्म नहिं आवत । भेद सरूप सिद्ध सब गावत ॥
वेदांतिन को जो मत ओऊ । घटत न है केहु भांतिन सोऊ ॥

दो०--जगत ब्रह्महीं से भयो, प्रलय भयो तेहि मांहिं ।
अब विचार कीजै तनिक, होत भाव ब्रह्म माँहिं ।।६६।।

उत्पति नाश रहित ब्रह्म मानत । वेद सदा याही विधि भाषत ।।
ब्रह्म विकार रहित सब ठाहीं । शुद्ध सनातन चेतन आहीं ।।
आगे कथा सुनहु यहि भाँती । कहत स्वामिहित हो मनुजाती ।।
या विधि बीति गयो बहु काला । चलत रहे द्वौ धर्म विशाला ।।
द्वौ गुरु शिष्य करत निजकाजा । जैन पंथ शंकर महराजा ।।
खंडन मंडन द्वौ दल माँहीं । कतहुँ होत शास्त्रार्थ सुहाँहीं ।।
वर्ष तीन शत शंकर पाछे । नृप विक्रमादित्य भये आछे ।।
जहँ उज्जैन नगर विख्याता । करत राज्य तहँ प्रजा सुहाता ।।

दो०--राज्य विरोध मिटाइकै, शान्ति दई तहँ थापि ।
भये भर्थहरि भ्राततिन, काव्यकला कुशलापि ।।६७।।

वर्ष पाँच शत विक्रम बीते । भये भोज विद्या गुन रीते ।।
भोज कीन्ह विद्या परकाशा । काव्य व्याकरन रही जो आशा ।।
तिनके राज्य भये विद्वाना । कालिदास सम मूर्ख अयाना ।।
जो कोउ एक काव्य रचिलावे । मन इच्छित सोऊ धन पावे ।।
ता पीछे जो नर श्रीमाना । करन लगे अति ही अभिमाना ।।
त्यागि दीन विद्या को पढ़ना । जड़ मति भई गयो आचरना ।।
शंकर को मान्यो यहि भाँती । शिवअवतार कहत सबजाती ।।
बढ़्यो शैव मत तेहि क्षण माँई । वाममार्ग को दीन्ह सहाई ।।

दो०--भस्म और रुद्राक्ष सब, लीन्ह अंग में धार ।
जासु अंग रुद्राक्ष नहिं, देत ताहि धिक्कार ।।६८।।
बहुप्रकारश्लोक तिन, किय निर्मित तेहि काल ।
चांडाल सम त्यागिये, भस्म न जाके भाल ।।६९।।

बत्तिस बाँधै कंठ में, शिर में चालिस धारि ।
कर्ण माँहि छैछै धरै, षोड़श बाहु सम्हारि ।।७०।।
द्वादश बाँधै करके माहीं । मध्य शिखा धरि एक सराहीं ।।
यकशत अष्ट हृदय बिचधारहिं । तेहि शिव साक्षात उच्चारहिं ।।
मिलि शिव वाममार्गि द्वौ पन्था । थाप्यो लिंगयोनिलिखि ग्रन्था ।।
शैववाममार्गी दोऊ मिलि । पूज्यहु थापिलिङ्गभगहिलिमिलि ।।
लिङ्ग जलाधारी तेहि कहहीं । करत सुपूजन सकल सराहीं ।।
लाज हीन तनि लाज न आई । स्वार्थिन दोष न परत लखाई ।।
धर्म अर्थ कामादिक मोक्षा । मिलिहैं सबन देत यह दीक्षा ।।
घर घर मंदिर दीन्ह बनाई । पूजा करत नारि नर धाई ।।
सो०--मंदिर जैन जो जाइ, ताहि बतावें सकल मिलि ।
प्रान बचत जो धाइ, मँदिर जैन न जाइये ।। ६ ।।
दो०--भाषा यवन न बोलिये, प्राण कंठ गत एह ।
गज घेरे चापै चान, बचिये जैन न गेह ।।७१।।
या विधि सबसन कहत बुझाई । कहत पुरान बिलोकहु भाई ।।
पूर्व जो ऋषी व्यास जग ठयेऊ । तिनके नाम पुरानन रचेऊ ।।
भोजहि मिली सूचना जबई । बन्द कियो यह दूषण तबई ।।
बहुतन केरे हाथ कटाये । बहुतक तुरत विदेश पठाये ।।
अरु यह कह्यो सबन समुझाई । भोजराज नीतिज्ञ सुहाई ।।
लिखहु ग्रन्थ बहु चित्त लगाई । नाम आपने करहु बड़ाई ।।
ऋषी व्यास के नाम जो धारी । लिखिहैं ग्रन्थ जगत अनुसारी ।।
ता कहँ दंड होइ तेहि काला । नीति भोजकी परम विशाला ।।
दो०--नाम सँजीवनि ग्रन्थ यक, लिख्यो भोज करिध्यान ।
भिंड माँहिं यह ग्रन्थ है, राज्य ग्वालियर जान ।।७२।।
ता महँ लिख्यो सुनहु चितलाई । व्यास लिख्यो जेतो दर्शाई ।।

चारि सहस्र चारिशत जानहु । महाभारत श्लोक प्रमानहु ॥
विक्रमादित्य समय जब आयो । बीस सहस तेहि औसर गायो ॥
कहत भोज मम पितु के काला । पचिस सहस रह भारत हाला ॥
अर्ध भाग मम आयु के माहीं । तीस सहस यह परत लखाहीं ॥
या विधि सों जो बाढ़न लागे । तौ यह ग्रन्थ जाइ कहँ आगे ॥
ऋषिन नाम धरि निर्मित करिहैं । तौ भ्रम जाल अधिक ही बढ़िहैं ॥
जानि परत तेहि औसर माहीं । वेद भाव कछु परत लखाईं ॥

दो०--एक व्यजन यक अश्वकल, भोज काल के माहिं ।
भे निर्मितयहजगविदित, सुनतआजदुचिताहि ॥७३॥

अश्वयंत्र इक घटिका माहीं । ग्यारह कोस जात सब ठाहीं ॥
भूमि चलत आकाशहु जाई । या विधि काष्ठ अश्व मड़राई ॥
बिन मानुष सो चलै निरन्तर । व्यजन मनोहर थाअति सुन्दर ॥
दोनों यत्र होत यहि काला । तो यूरुप जन होत बेहाला ॥
पोपन रची जगत यक माया । जैन मूर्ति दर्शन छुड़वाया ॥
अरु यह सोचि बनावन लागे । मन्दिर मूरति में अनुरागे ॥
चौबिस तीरथ अरु अवतारा । कथि पुरान चौबिस विस्तारा ॥
भोज डेढ़ शत बीत्यो वर्षा । वैष्णव पन्थ भयो सह हर्षा ॥
यक शठ कोप सुकंजर जाती । प्रकस्यो पन्थ जानि सुखमाती ॥
पुनि भो यवन तहाँ आचारी । ता पाछे ब्राह्मण गुनकारी ॥

दो०--रामानुज़ तेहि नाम है, परम चतुर विख्यात ।
पन्थ बढ़ायोऽनेकविधि, करि बहु यतन सुहात ॥७४॥

शैव शाक्त पुनि औरहु भयेऊ । निज वृद्धीहित ग्रन्थ रचेऊ ॥
शिव पुरान तब शैव बनायो । देवि भागवत शाक्त रचायो ॥
वैष्णव विष्णु पुरान बनावा । रचि के ग्रन्थ जगत भरमावा ॥
व्यास नाम धरि ग्रन्थ रचाये । निज अनुकूल सबन समुझाये ॥
देवि भागवत में यहि भाँती । सृष्टि नेमइमिलिख्यो सुहाती ॥

मानत श्री देवी यक अहई । जग निर्मित ताके वश रहई ।।
इच्छा भई जबै हिय बाला । वाम हाथ यक निकस्यो छाला ।।
ताते ब्रह्मा को उपजायो । पुनि देवी यह बैन सुनायो ।।

सो०- करहु ब्याह मम साथ, उतर ताहि ब्रह्मा दियो ।
हौं तुम्हार सुत मात, कहा कहति भावे नहीं ।। ७ ।।

दो०--तब क्रोधित देवी भई, भस्म कियो निज लाल ।
बहुरि हाथ घिसिके कियो, दूसरसुत तेहि काल ।।७५।।

नाम विष्णु सुन्दर तेहि धारयो । ताहू सों पुनि वचन उचारयो ।।
भोग करहु मम संग हरषाई । पति समान तुम रहहु सदाई ।।
तब वोहू ने मानि न बाता । तेहि करि भस्म सो निठुरमाता ।।
ताही विधि तीसर उपजावा । महादेव तेहि नाम सुहावा ।।
निज विवाह हिततेहि सों कहेऊ । महादेव इमि बोलत भयऊ ।।
हौं न करहुँ यहि तनु सों भोगू । धारहु तनु दूसर सुख योगू ।।
दुइ स्थल यह भस्म सुहाई । कहहु कहा यह वस्तु लखाई ।।
तब कह देवि सुनहु चितलाई । यह द्वौ भ्रात तुम्हार लखाई ।।

दो०--मम अज्ञा मानी नहीं, भस्म भये तत्काल ।
अब तुम्हारि आशा रही, करहु सो पूरित लाल ।।७६।।

तब कह महादेव दुचिताई । मैं अकेल क्या करिहौं माई ।।
भ्रात जिलाइ देहु यहि ठाईं । और रचहु द्वै नारि सुहाईं ।।
बहुरि धरहु तनु आपन दूसर । होहि विवाह तबहिं सुखमागर ।।
सुनहु रीति यह परम अनोखी । त्यागि मातु भगनी गहिचोखी ।।
तीनि नारि इन्द्रादिक देवा । रचिके ब्याहि दीन त्रयदेवा ।।
पालकि केर उठावन हारे । भे कहार चारों बुधिवारे ।।
या विधि लिख्यो असम्भव वाता । मानन योग न हैं वह ताता ।।
इन सों पूछहु प्रेम दृढ़ाई । कहाँ रहत देवी सुखदाई ।।

दो०--या विधि देवी भागवत, लिख्यो व्यास के नाम ।
जगत रचैता ताहि को, मान्यो है सुख धाम ॥७७॥
ता विधि विष्णुपुराण सुहाई । आदि सृष्टि विष्णू से आई ॥
शिवपुराण में शिव अगुआई । जासु पुराण सोई निपुणाई ॥
निन्दा एक सु दूसर करहीं । निजसम और नाहिं उरधरहीं ॥
मुक्ति हेत रुद्राक्षहि धारी । भस्म लगावहि अंग मझारी ॥
अश्रुपात जब रुद्र के भयऊ । प्रकट्यो वृक्ष मानि अस लयऊ ॥
तेहि रुद्राक्ष कहत हैं सब कोउ । हिय धारै सुख चाहै जोऊ ॥
या विधि कथा कही बहुतेरी । ध्यान न आवत युक्ति घनेरी ॥
भस्म लगाइ जो हो बुधिवाला । तो पशु धूरि रमै सब काला ॥
दो०--बीज माल सब धारहीं, कोल्ह भील दिन रात ।
होत न बुधवर कोउ हैं, पंथ मुक्ति नहिं जात ॥७८॥
तब पंडित यक कहत बुझाई । सुनहु ऋषीश्वर कान लगाई ॥
काल अग्नि उपनिषद सुहाई । भस्म लगावन विधि दर्शाई ॥
अरु है यजुर्वेद को वचना । मंत्र[1] त्र्यायुषं की जो रचना ॥
तब कह स्वामि सुनहु ममबाता । वेद भाग उपनिषद् न ताता ॥
काहू भस्म लगावन वारो । लिखि उपनिषद् नाम उच्चारो ॥
बहुतक लेख ग्रन्थ के माहीं । लिखे असम्भव हैं सब ठाहीं ॥
मंत्र माहिं नहिं भस्म प्रकारा । देखहु शतपथ अर्थ उचारा ॥
चक्षु अर्थ जमदग्नी जानहु । ज्योति प्रकाशक अर्थ प्रमानहु ॥
दो०--ज्योति बढ़ै मम नेत्र की, करै विनय दिन रात ।
श्रोत्र नेत्र मस्तिष्क सब, होयँ प्रबल सुखदात ॥७९॥
जो तुम पहिले बात सुनाई । तामहँ कछु न सार दर्शाई ॥

---

[1] त्र्यायुषं जमदग्ने: कश्यपस्य त्र्यायुषं यद्देवेषु त्र्यायुषं । तन्नोअस्तु त्र्यायुषम् ॥ य० अ० ४ मं० ६२ ॥

यह सब काज बनचरन केरे । सजहिं अंग बनमाल घनेरे ॥
मत शैवादिक जो फैलाये । ते सब वेद विरुद्ध सुहाये ॥
एक कहत है वेद प्रमाना । रुद्र विष्णु गणपति जगजाना ॥
तब तुम केहि विधि दोष लगावहु । यह सब तुरत मोहिं समुझावहु ॥
कहत स्वामि इमि सिद्धि न होई । अर्थ करत जेहि विधि तुमसोई ॥
यह सब नाम ईश के जानहु । गुणातीत प्रभु को पहिचानहु ॥
प्रथम कथाविच जो हम कहेऊ । तामहँ ईश नाम सब रहेऊ ॥
बहुरि ताहि तुम लेहु बिचारी । जानहु नाम ईश गुनकारी ॥
सो०-सुनहु कहानी एक, सोइ तुम्हारि है आजु गति ।
राखत हिय में टेक, तनिक बिचार न करतकोउ ॥८॥
यक बैरागि बसत यक ठामा । सरल स्वभाव महा गुणधामा ॥
दुइ सेवक ताकी सेवकाई । करत रहत निशिदिन हर्षाई ॥
बाँटि लीन्ह यक यक तेहि अंगा । चापत रहत सो निजनिजअंगा ॥
यक दिन यक चेला कहुं गयऊ । दूसर सेवा में चित दयऊ ॥
चरन सुनिज चापत हर्षाई । परयो चरन दूसर तहँ आई ॥
शिष्य विचार तुरत मन भावा । दूसर पग किमि मम ढिगआवा ॥
हन्यो दंड यक तेहि क्षण धाई । गुरु दूसर पग ढिग जो आई ॥
सेवक आइ गयो तेहि काला । देखि भयो तब क्रोध बिशाला ॥
दो०--तब दूसर पग में हन्यो, दंड एक तेहि काल ।
सैन्य दूसरो मानिके, करत युद्ध विकराल ॥८०॥
जब कछु वृद्ध पुरुष तहँ आये । तिनतब तुरतै गुरुहिं छोड़ाये ॥
अरु उपदेश कीन्ह बहु भाँती । कछु विचारहिय धरहु सोहाती ॥
यह दोनों पग गुरु के भाई । सेवा हेत लिये अपनाई ॥
यक चापत सुख दोहुन होई । समुझि लेहु ताकहँ सबकोई ॥
या विधि करो ईश की लीला । निज मतथापि लीन्ह यकहीला ॥
अरु निशिवासर करत विरोधा । लावत नहिं मनतनिकौ बोधा ॥

हे जगदीश्वर सर्व नियन्ता। अद्वितीय शिव विष्णु कहन्ता ॥
भला कहहु यह किमि सुखपावें। जब ईश्वर को इमि बिलगावें ॥

दो०--देखहु वैष्णव पन्थ में, चक्रांकित यक अंग।
मानत हैं यह पाँच ही, संस्कार सुख संग ॥८१॥
ताप, पुण्ड्र अरु नाम को, माला, मंत्र बखानि।
संस्कार यह पाँच हैं, व्याख्या तिन की जानि ॥८२॥

शंख चक्र अरु गदा अकारा। पदम सहित यह चारि प्रकारा ॥
इनहिं तपाइ दंड भुज माहीं। चिह्न बनावत हैं अँग माहीं ॥
देखि डरैं जेहि यमके दूता। है चपरास समान सँजूता ॥
तिलक छाप माला सों डरहीं। कालू कहत अभय उर धरहीं ॥
तिलक त्रिशूल समान लगावहिं। चिह्न भालबिच अति दर्शावहिं ॥
कमल गटा आदिक तुलसीसी। मालाधारि बनहिं सब तपसी ॥
निज अनुरूप मंत्र गढि दीन्हों। पंथ चलाइ देश ठगि लीन्हों ॥
मंत्र[1] प्रमाण देत हैं जोई। जो ऋगवेद माँहिं है सोई ॥

दो०—करत विचार न अर्थ को, सिद्ध करत निज बात।
ना जाने केहि भाँति सों, तप मानत यह तात ॥८३॥

---

(१) पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्य्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्ं तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्ततस्समाशत ॥१॥ तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे ॥२॥ ऋ० म० ९ सू० ८३ मंत्र १। २

(अर्थ) हे ब्रह्माण्ड और वेदों के पालन करनेवाले प्रभु, सर्वसामर्थ्य-युक्त, सर्वशक्तिमान् आपने अपनी व्याप्ति से संसार के सब अवयवों को व्याप्त कर रक्खा है। उसे आपका जो व्यापक पवित्र स्वरूप है उसको ब्रह्मचर्य्य सत्य भाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्संगादि तपश्चर्या से रहित जो अपरिपक्व आत्मा अन्तःकरण युक्त है वह उस तेरे स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और जो पूर्वोक्त तप से शुद्ध हैं वे ही इस तप*

सत्य सदा तप वेदन गायो। दमअरु शान्तसो तपठहरायो॥
अरु स्वाध्याय करत दिनराती। वेद उपनिषदन को सबभाँती॥
सो तप श्रेष्ठ जगत के माँहीं। अथवा दहन शरीर लखाहीं॥
यह अति भ्रष्ट महा कुविचारी। चक्र तपाइ लगावत भारी॥
दुग्धमाहिं पुनि ताहि बुझावें। पियें आप अरु सबन पियावें॥
कहहु कहा यह उत्तम रीती। मनुषमांसरस पियहिं सप्रीती॥
यह मानत हम बहुत पुराने। परम्परा निज मतको माने॥
किय शठकोप प्रथम गुरुआई। कंजर जाति अनूप सोहाई॥

दो०--भक्तमाल के ग्रन्थ को, नाभा डूम बनाय।
अरु चक्रांकित ग्रन्थ में, या विधि लिखो देखाय॥८४॥

सूप बनाइ बेचि धन लेई। जीवनवृत्ति यहै चित देई॥
यह शठकोप केरि प्रभुताई। योगी कहत सकल समुदाई॥
जब वाके मन इच्छा आई। बिप्रन से पढ़िये मन लाई॥
हौं जानत सो उनहिं सिखाऊँ। कर्म बढ़ै अस करहुँ उपाऊँ॥
जब बिप्रन मिलि कीन्ह बिरोधा। तब शठकोपहि आयो क्रोधा॥
तबही से यक पन्थ चलायो। मनमानी तामहँ ठहरायो॥
तेहि चेला मुनिबाहन भयऊ। वंश सुचाण्डाल में रहेऊ॥
अरु पुनि यवनाचार्य सुहाई। भयो यवन कुल में सो आई॥

दो०--ता पाछे भये विप्रकुल, रामानुज सिरताज।
चक्रांकित आदर दियो, पढ़ि विद्या सुखदात॥८५॥

※ का आचरण करते हुए उस तेरे शुद्ध स्वरूप को अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं॥ १॥ जो प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्र-वरणरूप तप करते हैं वेही परमात्मा को प्राप्त होने योग्य होते हैं॥ २॥ तो अब आप विचार करें कि रामानुजादि इन मन्त्रों से चक्राङ्कित कैसे सिद्ध करते हैं। भला कहिये विद्वान् थे या अविद्वान्। केवल अतप्ततनू शब्द है उसी से मान बैठे हैं, इसका अर्थ नख से शिखा पर्यन्त है।

कछुक संस्कृत जानिकै, ग्रंथ किये निर्मान।
समुझाये उलटे अरथ, उलटेहि देत प्रमान ॥८६॥
शंकासे अतिही अधिक, वेद विरुद्ध यह पंथ।
देखि विचारहु सकल जन, चक्रांकित के ग्रंथ ॥८७॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई। मूरति पूजा कहँ ते आई॥
कहन स्वामि जैनिन दर्शाई। मूरत पूजा प्रथा चलाई॥
होय ध्यान यह कहत सुनाई। देखि मूर्ति सुन्दर निपुणाई॥
चेतन जीव मूर्ति जड़ताई। किमिहो ध्यान कहहु समुझाई॥
जैनिन मत आगे पुनि कहिहौं। अरु पाखण्डरीति दर्शैहौं॥
जैनिन ने जस मूर्ति बनाई। कहहु न शाक्त शैव तसभाई॥
तब कह स्वामि ठीक यह बाता। समता होत न जैन सुताता॥
यह तो हैं जैनिन विपरीता। करहिं सिंगार अधिक नवनीता॥
दो०--जैन मूर्ति नंगी रहत, इन सिंगारयुत कीन्ह।
तिन समान ही ग्रंथ रचि, पोप जाल भरिदीन्ह ॥८८॥
नाना भाँतिन पूजा करहीं। रवि के मूर्ति भेष बहु धरहीं॥
खोह तड़ाग वृत्त में धाई। धरि आवत कहुँ मूर्ति छिपाई॥
अरु पुनि कहतस्वप्नमोहिंदीन्हो। पूजा करहु सकलकहि दीन्हो॥
तबहिं पोप सब सों गोहराई। कहत चलहु सब लोग लुगाई॥
पुनि ताकहँ अपने घर लावहिं। करि स्थापन भवन बनावहिं॥
अरु ताके वह होत पुजारी। भोग लगावत निज अनुसारी॥
या विधि लीला नित प्रति करहीं। करिबहु युक्ति सबन धन हरहीं॥
तब पंडित यक बोलत बैना। कहहु ध्यान किमि आवत नैना॥
जब तुम निराकार प्रभु कहहू। बिन मूर्ती किमि ताकहँ लहहू॥
दो०--निराकार व्यापक प्रभू, मूर्ति न ताकी भाय।
जन्म न ताको होत है, कहत स्वामि समुझाय ॥८९॥

जो तुम कहत मूर्ति कहँ देखे । ईश ध्यान होवे तेहि पेखे ॥
अरु स्मरण होत है ईशा । पाप छुटत तेहि दरश मुनीशा ॥
कह ऋषि बात सत्य यह नाहीं । मूरति ईश्वर नाहिं लखाहीं ॥
जो हम यह मानहिं जियलाई । ईश्वर है यक ठौर सुहाई ॥
तो हमरे जिय में यह आवे । विन मंदिर नहिं ईश सुहावे ॥
जब से भई मूर्ति मठ पूजा । मानत ईश नाहिं कोउ दूजा ॥
तब से बढ़्यो पाप अधिकाई । करत कुकर्म सकल दिशि जाई ॥
है व्यापक ईश्वर सब ठाईं । देखत कर्म हमार सदाईं ॥

दो०--निशिवासर क्षण एक में, द्रष्टा मानहिं ईश ।
तेहि डरसों नहिं पाप हो, जानिसबलजगदीश ॥९०॥
नाम रटै निशिदिवस ही, लाभ कबहुँ ना कोय ।
जिमि मिसरी मिसरी कहे, मुख नहिं मीठो होय ॥९१॥

तब यक बोलत ऋषिसों बचना । झूठ नितान्त नाम को जपना ॥
रीति तुम्हारि न ठीक लखाई । कहत ऋषीश्वर तब समुझाई ॥
तुम्हरी रीती वेद विरुद्धा । करत रहत नितजो करिश्रद्धा ॥
ईश नाम या विधि उचारै । प्रेम सहित हिय संयम धारै ॥
नाम न्यायकारी जग भाखत । न्यायकरन में पक्ष न राखत ॥
सो व्यवहार “इष्ट” नित करहीं । हिय अन्याय कतहु नहिं धरहीं ॥
एक कहत हम जानत साईं । निराकार ईश्वर सब ठाईं ॥

दो०--शिव विष्णू सूर्यादि सब, राम कृष्ण अवतार ।
तिनकी मूर्ति बनाइकै, पूजत हौं बहु बार ॥९२॥

कहहु कहा यक झूँठ कहानी । जो सब करत रहत हित जानी ॥
अवशि झूठ यह ऋषि तब कहेऊ । जन्म मरन ईश्वर नहिं सहेऊ ॥
है अज एकपाद वह ईशा । कहत अकामय सकल ऋषीशा ॥
वेद कहत प्रभु वपु ना धारै । व्यापक और अनन्त उचारै ॥

सुख दुख रहित ईश कहँ कहई। सो शरीर केहि कारन लहई॥
जेहि बिन यक परमाणु न भाई। सो अवतार लेत किमि आई॥
जो हम मानत तेहि अवतारा। मानहु भो बन्ध्या परिवारा॥
एक कहत ऋषिसों समुझाई। जब ईश्वर व्यापक सब ठाँई॥

दो०--तब हम काहू वस्तु में, करहिं ईश को भाव।
करि पूजा निजभाव में, ध्यावहिं सहज स्वभाव ॥६३॥
काठ माहिं नहिं ईश है, नहिं पत्थर के बीच।
ईश मृत्तिका नहिं रहत, भाव ईश कहँ खींच ॥६४॥

भावहि से प्रगटत जगदीशा। बिना भाव कहुँ मिलत न ईशा॥
स्वामि कहत सुनिये चितलाई। जब ईश्वर व्यापक सब ठाईं॥
तो यक वस्तु भाव किमि साजा। राज्य त्यागि कुटिया बसे राजा॥
यह अपमान तनिक का भाई। ईश्वर की जड़ मूर्ति बनाई॥
ईश्वर को जब व्यापक मानत। तौ किमि अक्षत पुष्प चढ़ावत॥
चन्दन घिसि बहु भाँति लगावहु। धूप दीप नैवेद्य चढ़ावहु॥
घंट और घड़ियाल बजाई। स्तुति करहु सकल हर्षाई॥
हाथ शीश ईश्वर के मानत। जोड़िहाथकिमिशिरहिझुकावत॥

दो०--सकलवस्तु व्यापक प्रभू, हैं मूरतिहू माहिं।
पुनि कैसे पूजा करहु, अहै ईश सब ठाहिं ॥६५॥

जो तुम व्यापक पूजा करहू। तो पखान किमि आगे धरहू॥
अरु ताकहँ स्नान करावहु। घिसि बहु चन्दन तासु लगावहु॥
अरु जो करहु व्याप्य की पूजा। तौ किमि कहहु करत प्रभु पूजा॥
कहहु सदा हम पूजहिं पाथर। बोलि झूठ बनते किमि कादर॥
अब यह कहहु भाव है साँचा। अथवा झूठ मनहि जो राँचा॥
भाव अधीन होय जो ईशा। तो हुइ बद्ध जाय जगदीशा॥
यदि जग भाव श्रेष्ठ है भाई। तौ काहेन असकरत उपाई॥

मैदा भाव धूलि मँह मानहु । बालुहि शकर समान प्रमानहु ॥
वैसेहि स्वाद कहहु तेहिमाहीं । खाहु प्रेम सों भाव सराहीं ॥

दो०—सकल करत सुखभावना, दुख की करत न कोय ।
पुनि दुख काहे होत है, हिये विचारहु सोय ॥६६॥

अन्धा नेत्र भावना करई । कहहु सो नैनशक्ति का धरई ॥
मृत्यु भावना कोउ न करई । आये समय सकल जन मरई ॥
तुम्हरी झूठ भावना सारी । करत भाव दुख भोगत भारी ॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । वेदमंत्र की बात जनाई ॥
पढ़ि यक मंत्र अवाहन करहीं । आइ जात सोई तेहि क्षणहीं ॥
जबै विसर्जन बोलहि मंत्रा । जात तहाँ सो ईश स्वतंत्रा ॥
कहत स्वामि मानहि जो बाता । हो केहि विधि जड़ चेतन ताता ॥
अरु यह कहहु कहाँ से आवत । जात कहाँ जो सबन बतावत ॥

दो०—यह आवाहन की प्रथा, और विसर्जन दोय ।
हैं असत्य दोनों सदा, मानि लेहु सबकोय ॥६७॥

मंत्र प्रयोग ईश जो आवत । स्वर्गगये पितु किमिन बोलावत ॥
बैरी तनु ते जीव बोलावहु । मंत्र विसरजन ताहि नशावहु ॥
सुनहु भ्रात तुम हो अतिभोले । तुमहि ठगत हित आपन खोले ॥
वेदन में कहुँ नाहिं प्रमाना । गमनागमन न ईश बखाना ॥
कल्पित वाक्य कहौ जो भाई । वाममार्गिन लिखे बनाई ॥
वेद वचन सो कतहुँ न होई । तंत्र मंत्र जानहु हिय गोई ॥
तंत्र झूँठ हैं मानहु ताता । अरु पाहन बिच जीवन जाता ॥
पूजा विधि जो देत देखाई । फूल पात नैवेद्य चढ़ाई ॥

दो०—है निषेध बहु वेद में, बिधी कहुँ है नाहिं ।
याते ईश्वर की जगह, वस्तु कोई है नाहिं ॥६८॥

सुनहु निषेध सकल मन लाई । वेद माँहिं बहु मंत्र लखाई ॥

ब्रह्म स्थान प्रकृति जो पूजत। अन्धकार दुखसागर डूबत।।
पाथर भूत, वृक्ष, आदरहीं! त्यागि ब्रह्म स्तुति नितकरहीं।।
घोर नरक पड़ि दुख सो भोगत। पड़तमहातम सबसुख खोवत।।
निराकार व्यापक जो ईशा। प्रतिमारहित अमूर्त्त मुनीशा।।
ईश विषय अस है नहिं भाई। दै जल कहहु लेहु यह साँई।।
नैनन सों नहिं ब्रह्म लखाई। इन्द्रिन विषय न है यह भाई।।
है प्रकाश मय जगत रचैता। अणु अणु है सोइ ब्रह्म रमैता।।

दो०--और बहुत परमान हैं, कहिहौं अवसर पाइ।
जड़प्रकृती जानहुसदा, चेतन पुरुष लखाइ।।९९।।

एक कहत यदि पुण्य न होई। तौ पापहु नहिं पूजे कोई।।
कहत स्वामि दुइविधि हैं कर्मा। बिहिताविहित जगत जो धर्मा।।
विहित सदा कर्तव्य हमारो। अविहित है नित त्यागन वारो।।
मूरति पूजा वेद निषिद्धा। तातें हियबिच करहु अश्रद्धा।।
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। वेद अनादि ज्ञान मयसाईं।।
तेहि अवसर मूरति का कामू। होत प्रतक्ष देव सुख धामू।।
समरथ न्यून भयो जा दिन ते। प्रकटत देव न हैं ता दिन ते।।
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। अज्ञानिन हित मूर्ति बनाई।।

दो०--अबुधन के हित मूर्ति है, लखहु नसेनी आहि।
मूरति पूजा प्रथम पथ, जानि करहिं हम ताहि।।१००।।

जब मम हृदय ज्ञान बहु होई। अंतःकरन हो पावन सोई।।
तब हीं ध्यान ईश में लागे। गुण गहि हृदय ताहि में पागे।।
जिमि भेदक यक लक्ष बनावत। तिमि मूरति पूजा ठहरावत।।
सूक्षम ब्रह्म लखहि केहि भाँती। जौ लगि कोउ न लक्ष सुहाती।।
जिमि जग खेलत बाल खिलौना। रचति ब्याह मनचाहत गौना।।
जब तेहि होत व्याह की बाता। जानत सबै चतुरता ताता।।
पूर्व खेल विधि पतिहि बिलोकी। करत सदा सुखहित अवलोकी।।

स्वामि कहत हिय धारहु बाता। मूरति पूजा अस नहिं ताता॥
दो०--वेद विहित जब धर्म है, है विपरीत अधर्म।
तब मूरति पूजन सदा, है नहिं मानव कर्म॥१०१॥
मानत वेद मार्ग जो नाहीं। नास्तिक सकल कहत हैं ताहीं॥
वेद विरुद्ध पंथ जग जेते। निर्मित किये कुमार्गिन तेते॥
जग सरिता में देत डुबाई। दुखदायक सोइ कर्म सदाई॥
प्रकटत ग्रन्थ जो वेद विरुद्धा। रहत कछुक दिन होत न श्रद्धा॥
नशत शीघ्र सो निष्फल जानी। बुध न कोउ ताकहँ सनमानी॥
ब्रह्मा से जैमिनि तक जे मत। धारहु हिय विचारि जोहैं व्रत॥
वेद विहित हैं मानन योगू। वेद विरुद्ध तजत बुध लोगू॥
जानि अवैदिक मूरति पूजा। जड़मति होत करे जड़ पूजा॥
दो०-ज्ञान बुद्धि नशि जात है, जड़ पूजत जो कोइ।
ईश न आवत ध्यान बिच, निश्चयजानहु सोइ॥१०२॥
मूरति पूजा नाहिं नसेनी। किन्तु अहै खाईं दुख देनी॥
गिरे तासु उबरै नहिं कोई। नष्ट होत तब जीवन सोई॥
बुधन केर सतसंग नसेनी। हाँ यह कहौ तो है सुखदेनी॥
सतविद्या सतकर्म सुहाई। पावहिं संग करे सुखदाई॥
मूरति पूजा लच्छ न होई। ना है वाल खेल यह कोई॥
जग विद्या वित कर्मन करई। ईश प्राप्त हित हिय अनुसरई॥
बहुरि कहत ऋषि बर समुझावहु। दोष कौन है मोहिं बतावहु॥
जो हम नित प्रति पूजा करहीं। मूरति सनमुख प्रभु चित धरहीं॥
दो०-मन थिर होत सकार में, हम जानत ऋषिराज।
निराकार आधार नहिं, महा कठिन सुखसाज॥१०३॥
सो०-कबहुँ न मन थिर होय, अवलोकत साकार के।
अँग अँग उपमा जोय, भ्रमत रहत मन कहत ऋषि॥९॥

निराकार प्रभु में मन धावे। दौड़त अन्त कतहुँ नहि पावे ।।
प्रभु स्वभाव नित सोचत रहई। मन थिर होत तबै सुख लहई ।।
या जग में नर धन सुत लागी। स्त्री मित्र आदि सुख पागी ।।
ताही में निशि वासर भरमें। कहहु कहाँ मन स्थित धरमें ।।
निराकार मन स्थिर होई। अवयव[1] रहित बसत है सोई ।।
दूसर यह समझहु जिय लाई। मन्दिर में बहु द्रव्य नशाई ।।
तीसर बाढ़त बहु व्यभिचारा। मेला होत जबै संसारा ।।
चौथे साधन मुक्ती मानत। तजि पुरुषारथ जन्म गँवावत ।।
पंचम फूट बढ़ावन वारी। नाना भाँतिन मूर्ति प्रचारी ।।

दो०—सकल पुजारिन के बिषे, एका नाहिं लखाइ ।
नाम रूप सिंगार सब, पृथकहि पृथक बनाइ ।।१०४।।

षष्ठम करि भरोस तेहि केरा। तेहिसन विजय चहत सबबेरा ।।
या भ्रम सों बहु दुख को भोगत। शत्रुन के डर सों नहिं सोवत ।।
सप्तम दोष होय यहि भाँती। जो जड़ पूजत मानव जाती ।।
जब कोइ कहत काहु सन धाई। धरहु नाम ढिग पाथर लाई ।।
तेहि छण सो जन मारन धावे। नाना भाँतिन बचन सुनावे ।।
ता विधि तुम निज हियके माहीं। जड़ मूर्ती धारहु तेहि ठाहीं ।।
जेहि थल ध्यान[2] ईश को होई। जीव ब्रह्म जहँ मिलत सँजोई ।।
अष्टम भ्रमत सकल दिशि माईं। दुख भोगत धन देत गँवाईं ।।
नवम पुजारिन को धन देवैं। लै धन ते वेश्या घर सोवैं ।।
मद्य मांस ते करत अहारा। धनसों करत रहत व्यभिचारा ।।

दो०—दशम मातु पितु त्यागि कै, करत मूर्ति सनमान ।
होत कृतघ्नी हैं सदा, खोइ देत अभिमान ।।१०५।।

एकादश यह दोष लखाई। जब कोइ मूरति लेत चोराई ।।

१—टुकड़े। २—'ध्यानं निर्विषयंमनः' अर्थात मन का निर्विषय हो जाना ही ध्यान है।

अथवा ताहि तोड़ि कोउ डारैं। तब सब हाहाकार उचारैं॥
द्वादश भय परनारिन संगा। नारि पुरुष जहँ रहत असंगा॥
सेवक स्वामि विरोध सदाई। आज्ञा पालन होय न भाई॥
दोष चतुर्दश जड़ जो ध्यावे। तेहि आतम बुधि जड़ हुइ जावे॥
अरु जग रोग निवारण हेता। बाग लगावत सकल सचेता॥
नाना भाँतिन पुष्प लगावें। जेहि सुगन्धसों सुख सब पावें॥
सो वह पुष्प तोड़ि लै जाहीं। मूरति ऊपर ताहि चढ़ाहीं॥
पंद्रहवाँ यह दोष बतावा। जड़ मूरति पूजा को भावा॥
पुष्पादिक सड़ि वायु बिगारैं। परैं कीट बहु रोग सँचारैं॥

दो०--जो मूरति पूजत सदा, अवशि दोष यह होय।
बचै न काहू भाँति सों, यत्न करै वरु कोय॥१०६॥
मूरति पूजा काहु विधि, है न कतहुँ कर्तव्य।
पंचदेव पूजा कहा, ऋषिवर मोहिं ज्ञातव्य॥१०७॥

हौं जानत शिव विष्णु गनेशा। सूर्य सरस्वति देव विशेशा॥
एही पंचदेव जग धाई। पूजत है सो मूर्ति बनाई॥
कहहु कहा यह पूजा नाहीं। पंचायत विधि करि सुख चाहीं॥
स्वामि कहत केहु विधिसों नाहीं। मूरति पूजन धर्म लखाहीं॥
मूरति पूजा करहु न ताता। जानि सदा जड़ता दुख दाता॥
यह पूजा सत कर्म कहाई। मूर्ति मान जो पितु समुदाई॥
पंचायत यह शब्द अनोखा। पंच देव हित जो तुम जोखा॥
सो हम पूर्व बहुत कहि आये। शिव आदिक के अर्थ बताये॥
पंच देव यहि भाँति कहानी। वेदन ने बहु भाँति बखानी॥

दो०--मातु देव है प्रथम यक, दूजो पितु है देव।
अरु तीसर आचार्य है, अतिथिचतुर्थोदेव॥१०८॥

नारि हेत पंचम पति जानौ। पूजनीय सब भाँति बखानौ॥

कपट त्यागि करिये बहु सेवा। तन मन धन सुख पावहिं देवा॥
यह है पंचायत की पूजा। मूर्तिमान यक यह नहिं दूजा॥
इनते सद् शिक्षा नित मिलई। ईश्वर साधन विधि अनुसरई॥
इन देवन की सेवा त्यागत। मूर्ति पखान नित्य अपनावत॥
तब ऋषि सों यक पूछन लागा। सुनि सद् वचन परम अनुरागा॥
हम नित करहिं मातु पितु सेवा। अरु नित पूजहिं मूरति देवा॥
तौ कह दोष होत है स्वामी। मोहिं समुझाइ कहौ अनुगामी॥

सो०--कहत स्वामि हरषाय, धरहु हमारी बात हिय।
पूजन मूर्ति बनाय, सदा त्यागिबे योग है॥१०॥

दो०--माथ झुकावे मूर्ति को, यह अनर्थ की बात।
त्यागत हैं प्रत्यक्ष जो, मातादिक सुख दात॥१०९॥

जो कछु वस्तु सामने लावें। मात पिता सब सन्मुख खावें॥
मूर्ति पखान न कछु ही खावे। मूर्ति देखाइ स्वतः भखि जावे॥
जिमि यक वस्तु धरत केहु आगे। अरु अँगुठा देखाइ लै भागे॥
सोइ कर्तव्य पुजारिन केरा। शंख बजावत भोग की बेरा॥
पूजा जग सतकार कहाई। करहु जासु तुम मानत भाई॥
या विधिछल करिजगत भुलावा। लूटि खसोटि माल सब खावा॥
होत नृपति धर्मी यदि कोई। देत तुरत इनकी विधि खोई॥
एक कहत ऋषि सों यहि भाँती। जिमि देखत जग नारि सुहाती॥
तो उपजत नर काम विकारा। होत मगन चित नाहिं सम्हारा॥

दो०--जब विराग सुखशान्तिमय, मूर्ति बिलोकत कोय।
तब मन थिरहुइ जात है, शान्ति कहानहि होय॥११०॥

स्वामि कहत यह झूठ विचारा। जड़ बिच जो चैतन्य निहारा॥
बिन विवेक वैराग न होई। बिन वैराग ज्ञान नहिं सोई॥
विना ज्ञान कहुं शान्ति न रहई। सँग उपदेश हृदय बिच लहई॥

अब इतिहास बिलोकै जोई । गुन गहि होत विवेकी सोई ॥
मूढ़ आलसी भये पुजारी । तिन मूरखता जग विस्तारी ॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । चमत्कार यह सुनेहु न साँई ॥
जब औरंगजेब यहँ आयो । काशी जाय तोप बरसायो ॥
तब भैरवजी ने दर्शायो । भँवर छोड़ि सब यवन भगायो ॥
कह ऋषि यह भैरव करतूती । जो पाषाण केरि है मूर्ती ॥
क्रूर भ्रमर छत्ता तहँ होई । लागत शस्त्र भगे तब सोई ॥
तुम भैरव करनी गोहराई । निज लीला करि सबन भुलाई ॥

दो०--माधव कीन्हों विप्र गृह, लिंग कूप में डारि ।
और सुनायो सबन कहँ, यवन न देख्यो झारि ॥१११॥

सुनि लीला मोहिं हाँसी आवत । जहँ पर भैरव लाट सोहावत ॥
तहँ की मूरति गजनी जाई । करयो निरादर तेहि समुदाई ॥
लिख्यो पुरानन में यहि भाँती । शंकर त्रिपुरासुर संघाती ॥
तहाँ यवन दल कछु समुदाई । विजय कियो काशी हर्षाई ॥
तब कछु मूरति काम न आई । विश्वनाथ भैरव समुदाई ॥
जहँ यमदूत न आवहिं नेरे । ता कहँ म्लेच्छ पड़ो है घेरे ॥
बस न चल्यो काहू को तबहीं । लै गये लूट मार धन सबहीं ॥
मूरति तोड़ी मन्दिर ढाये । तहँ पर निज मस्जिद बनवाये ॥

दो०--पोप जाल यह मानहू, फँस्यो देश तेहि माँहि ।
तब से धन पोरुष गयो, लेश रह्यो सुख नाहिं ॥११२॥

अब तुम कहत गया की बाता । पाप छुटत पितु श्राद्ध सुहाता ॥
पिंड लेत पितु सन्मुख आई । मानत सत्य सकल समुदाई ॥
यह अति झूठ सकल है भाई । जो महिमा यह कहत सुनाई ॥
सन्मुख पिंड न कोऊ लेवे । पिंड न पहुँचत है पितु देवे ॥
इन कपटिन पाखंड रचायो । मूरख जानि सबै बहकायो ॥
नाना भाँतिन झूठ कहानी । रची स्वार्थिन है मनमानी ॥

वैजनाथ गोकरन कहानी । लै आयो रावण अभिमानी ॥
एक कहत जग काली माई । हैं पूजत तेहि बहु समुदाई ॥

दो०--कामाक्षा की तहाँ पर, बहुत बड़ाई होय ।
चमत्कार दिखरावई, कलकत्ते में जोय ॥११३॥

कहत स्वामि अन्धा जग होई । मानत है याकहँ जो कोई ॥
चलत भेंड़ सम सो, तेहि ठाँई । गिरत अंध बनि आगे धाई ॥
जगन्नाथ महिमा कहि गावत । रथ यात्रा की बात बतावत ॥
जावे बदल कलेवर तबहीं । अद्भुत चरित देखावत जबहीं ॥
हाँडी सात धरहिं यकजाई । पकै उपर्ली यह प्रभुताई ॥
जो न लेइ ताकी परसादी । कुष्ठी होत बनत जो वादी ॥
पापिहि दर्शन कबहुँ न होई । प्रभुता है देखरावत सोई ॥
मूर्ति कलेवर बदलत जबहीं । तीन पुरुष सँग जावहिं तबहीं ॥

दो०--यक बढ़ई, पण्डा महा, और नृपति तेहि ठाँय ।
मरत कलेवर के समय, ईश संग लै जाँय ॥११४॥

याकी कथा बहुत हम जानत । मोहिंमिल्यो है यक अभ्यागत ॥
द्वादशवर्ष सो तहँ पर रहेऊ । ह्वै विरक्त मथुरा सो गयऊ ॥
तेहि सब कही पुरी की बाता । महाँ झूठ कर्तव विख्याता ॥
सो हम तुम सन कहत सुनाई । सुनहु सकल जन चित्त लगाई ॥
आवत जबै कलेवर बेरा । चन्दन काटि सिन्धु में गेरा ॥
तेहि गढ़ि पोल बनावत मूरति । करत शृंगार एकांत विसूरति ॥
बनत रसोई जहँ पर वादिन । कोउनहिं जात वहाँ पर तादिन ॥
चूल्हे छै अरु सात बनावैं । चक्राकार ताहि दर्शावैं ॥

दो०--सात आठ नौ पात्रको, यक यक चूल्हे माँहिं ।
तले उपर राखत सबै, चतुराई दिखराहिं ॥११५॥

नीचे कच्चे चावल राखत । उपर पके यह सबै सुनावत ॥

यात्रिन को देखराइ बिभूती । ठगहिं खूब समुझाइ कुनीती ॥
पूरन द्रव्य देत जो कोई । ताकी पूरी हाँडी होई ॥
अरु जाके ढिग कछु ना होई । मिलत ताहि जूठन ही सोई ॥
मन्दिर माँहि रहत अँधियारा । दीपक जरत सदा निशिवारा ॥
तहँ पर रचत पोप यक लीला । वस्त्र कोट राखत सुख शीला ॥
दरश हेत यात्री जब आवत । वस्त्र ओट वह मूर्ति छिपावत ॥
वह जब देत पुजारिन को धन । तब देखरावत मूरति को तन ॥
दो०—बहुतक कुष्ठी तहाँ पर, रहत पड़े दिन रात ।
जूठ खात हरि भजत हैं, कुष्ठ न तिनकर जात ॥११६॥
बहुतक निजकर भोग बनावहिं । शुचिता सहित तहाँपरखावहिं ॥
पर न होत कुष्ठी कोउ देख्यो । शुचि आचार सुनहुतन पेल्यो ॥
यह तो वाममार्ग की लीला । बलदाऊ की बहिन सुशीला ॥
दोनों भ्रातन बीच बिठाई । नारि समान तहाँ दर्शाई ॥
रथ में कीली एक लगाई । खैंचत उलटि तहाँ रुकिजाई ॥
तहँ पर पोप पुजारी बोलत । दान देहु तब रथ पुनि डोलत ॥
या बिधि करि बहु यतन महाना । ठगत सदा धन बुद्धि निदाना ॥
दो०--इन्द्रदमन यक नृपति तब, रहत रहेउ तेहि देश ।
धनी विपुल रह शाक्तमत, सो बलवान नरेश ॥११७॥
बहुतक धन तिन दीन्ह लगाई । दिय विशाल मन्दिर बनवाई ॥
शिलपिन की देखहु चतुराई । उपमा केहु न आज लग पाई ॥
पोप पुजारिन बहुविधि कीन्हीं । करिलीला माया रचि दीन्हीं ॥
लै धन जात गाँठ के पूरे । तिनहिं देत धन बुधि के रूरे ॥
सो धन आजु खात वेश्या जन । ताहि कमायो है जो कृषकन ॥
भोग बिलास रमै दिन राती । धनखोवत जो दिय बहुजाती ॥
लघु वय बालक लेत भुलाई । कहि चेला ते करत बुराई ॥
जहँ तहँ मन्दिर लेत बनाई । धन माँगत बहु कहि प्रभुताई ॥

दो०-तब यक पूछत स्वामि सों, प्रेम सहित शिरनाय ।
स्वामि बतावहु कृपाकरि, असहभारमिटजाय ॥११८॥
रामेश्वर स्थापना, रामचन्द्र ने कीन्ह ।
यशकीरतिबाढ़योबहुत, ऋषिमुनिमनसुखदीन्ह॥११९॥
सो०-आइ चढ़ावत कोय, गंगोतरि जल लाइकै ।
झूठ कहा है सोय, बढ़ै लिंग विख्यात यह ॥११॥
स्वामि कहत यह झूठ कहानी । जो जेहि चह्यो कह्यो मनमानी ॥
होत प्रकाश न मन्दिर माहीं । विनदीपक कछु दीखत नाहीं ॥
जलधारा कोउ छोड़त जाई । तब दीपक प्रतिबिम्ब लखाई ॥
चमकदेखि सब मनहिं सिहाहीं । बढ़त लिंग अस मूरख कहहीं ॥
जग पाषाण घटत नहिं बाढ़त । यह पदार्थ विद्या उच्चारत ॥
त्रेता राम जन्म जब भयऊ । तब न तहाँ पर मंदिर रहेऊ ॥
दक्षिण देश बसत यक राजा । राम नाम विख्यात समाजा ॥
जेहि राजा मन्दिर बनवायो । रामेश्वर तेहि नाम धरायो ॥
दो०--सीता को लै रामजी, आये जब तेहि ठाम ।
कहा राम सुनिये प्रिया, कियो जो है हम काम ॥१२०॥
तव वियोग व्याकुल बहुतेरा । घूमत फिरेउँ सकल बन हेरा ॥
चातुर्मास वास यँह कीना । ईश ध्यान में भये लव लीना ॥
देवन को जो देव सदाई । महादेव शंकर सुखदाई ॥
व्यापक विभु परमातम जानहु । तासु कृपा यहप्रिय पहिचानहु ॥
सेतु बाँधि लंका में जाई । हन्यो महाबलि रावण धाई ॥
तब प्रिय तुम्हहिं यहाँ लै आये । सेतुबन्ध स्थान दिखाये ॥
वाल्मीक ऋषि ने यहि भाँती । लिखी यहाँ पर पंक्ति सुहाती ॥
दो०--कहतएक ऋषिवर सुनहु, पियतचिलमयक मूर्ति ।
चमत्कार अस देखिकै, बुधजन होत अमूर्ति ॥१२१॥

दक्षिण दिशा कालिया कन्ता। तासु बड़ाई करत महन्ता॥
और सुनहु डाकोर कहानी। मूरत चली भगत को मानी॥
सवा रती सुबरन सौं भाई। मूरति तुलत तहाँ पर आई॥
सोमनाथ पृथिवी से ऊपर। रहत सदा मध्याह्न जगह पर॥
निराधार सो सबहि लखाई। चमत्कार केतिक दर्शाई॥
नली लगावत पाछिल भागा। धरत चिलम अतिही अनुरागा॥
पियत तमाल पुजारी जबहीं। निकसत धुवाँ मूर्ति से तबहीं॥
कहहु कहा यह झूठ कहानी। ऋषिबर कहत सुनहु सुखदानी॥
महा झूठ यह पोपन लीला। मूर्खन हेत बनायो हीला॥

दो०--चोरी करि डाकौर को भक्त गयो लै भाग।
सवारतीं तुलना करी, गप्प दई बहु हाँक॥१२२॥

सो०--लग्यो सुमंदिर माँहि, चुम्बक चारों ओर से।
गिरत काहु दिशिनाहिं, बीच मूर्ति लटकी रहत॥१२॥

जब गजनी ने मन्दिर तोड़्यो। सैन्य सहस दससोंमुखजोड़्यो॥
स्तुति पोप पुजारिन कीन्हा। शंकर हनहु म्लेच्छ दुखदीन्हा॥
असुराजन यह कहि समुझावहिं। वीरभद्र अबहीं यहँ आवहिं॥
हनुमत दुर्गा दीन्हों सपना। म्लेछन मारि करहुं हित अपना॥
केहुसन कहहिं मुहूरत नाहीं। योगिनि सनमुख परत दिखाहीं॥
अष्टम चन्द्र काहु बतराहीं। कहहिं बृहस्पति तब हित नाहीं॥
या विधिकहि क्षत्रिन बल रोक्यो। धनसम्पतियवननमुख झोक्यो॥
जब कछु चली कोइ नहिं बाता। मंदिर यवनन जाइ निपाता॥

दो०--तबै पुजारिन यह कह्यो, जोड़ि हाथ तेहि ठाँव।
तीन कोटि लेद्रव्य को, जाहु आपने गाँव॥१२३॥

यवनन उत्तर तेहि क्षण दीन्हा। बुतपरस्त का हम कहँ चीन्हा॥
हम बुत शिकन महा बलधारी। तोड़हिंगे मन्दिर सब झारी॥

तेहि अवसर यदि पोप पुजारी । करत न निज माया विस्तारी ॥
तौ काहू विधि यवन न नीतत । क्षत्रिन रक्त यवन दल भीगत ॥
यह परिणाम भयो तेहि काला । चले तेग बल्लम अरु भाला ॥
मंदिर तोड़ेउ मूर्ति गिराई । कोटि अष्टदश निधि तहँ पाई ॥
मूर्ति माँहिं यह रतन छिपाई । राखे पोप पुजारिन भाई ॥
बहुतक मार पड़ी जब ऊपर । कोष बताइ दीन्ह था जहँ पर ॥

दो०--तब मूरति टूटी तहाँ, यवन लियो सब छीनि ।
मनहुँ उन्हीं के हेतइन, गाड़िधर्योधनबीनि ॥१२४॥

लै धन अपने देश सिधारे । मनुष गुलाम बनाये न्यारे ॥
बहुतन सों बिष्ठा उठवाई । अरु बहुतन सों घास खुदाई ॥
केवल चना खान को दीन्हे । लीन्ह बेगारि बनाइ नवीने ॥
यदि कछु काम बुद्धिसों लेते । तौ काहे धन सम्पति देते ॥
वीरन को सत्कार न कीन्हो । पाथर पूजन में चित दीन्हों ॥
शूरन यदि न पुजारि भुलावत । तौ वह म्लेछन मारि गिरावत ॥
विजय होत क्षत्रिन तेहिकाला । टूटत मन्दिर नाहिं विशाला ॥
शूरन की यदि पूजा होती । तो काहे यह सम्पति खोती ॥

दो०--भक्ति पुजारिन कीन्ह बहु, पै कछु सरेउ न काम ।
लूटि ले गये शत्रु सब, धनसम्पतिनिज धाम ॥१२५॥

तब यक पूछत ऋषि सों आई । है रण छोड़ द्वारिका भाई ॥
नरसी की हुंडी जिन पारी । भक्त हेत सब कीन्ह मुरारी ॥
प्रकट देवि ज्वाला मुखि भाई । राखि प्रसाद भाग निज खाई ॥
का यह है सब झूठ कहानी । जो कीन्हीं अपनी मनमानी ॥
कहत स्वामि यह झूठ सदाई । पोप पुजारिन सकल बनाई ॥
कृष्ण नाम धरि कोउ तेहि बेरा । ले धन नरसी को निर्वैरा ॥
और उड़ाइ दीन्ह यहि भाँती । कृष्णनाम धरि करदी ख्याती ॥
जब औरंगजेब यहँ आई । तोड़ि मूर्ति धन लैगयो भाई ॥

तब काहू विधि मूर्ति न जागी । म्लेच्छन सैन्य कतहुं ना भागी ॥

दो०--होत कृष्ण सम कोउ जो, तौ अस अधरम होत ।
मारि गिरावत सबन कहँ, करत सुयश उद्योत ॥१२६॥

ज्वालामुखि देवी नहिं होई । यह प्रकृती की विधि हैं सोई ॥
छोड़हिं शेष कहत जो कोई । देखहु घर घर यह नित होई ॥
जब कोउ वस्तु बघारन हेता । घृत डारत चम्मच में जेता ॥
अग्नि ज्वाल बढ़ि घृतहि जलावे । अर्ध भाग ज्वाला लै जावे ॥
देवी मानि बनायहु मन्दिर । छलन लगे धूर्त न कहँ सुन्दर ॥
गिरि महँ निकसत जहँ तहँ ज्वाला । सो न होय देवी तिहुँकाला ॥
योनि यन्त्र आदिक जो माया । रचि पोपन यह जगत भुलाया ॥
याही विधि बहु झूठ कहानी । लिखी सकल हैं तहँ मनमानी ॥

दो०--अमृतसर तालाब की, बात कहत जो आप ।
काहुसमय तेहि सर बिषे, रह्यो न कोऊ ताप ॥१२७॥
अमरनाथ में लिंग सब, बनत कौन आश्चर्य्य ।
नितप्रति परवत कटतहै, वारि प्रकृतिको कार्य्य ॥१२८॥

महिमा हरिद्वार की जानहु । हरि की पैड़ी जहाँ बखानहु ॥
और तपोवन में जो रहई । सोई जग में तपसी अहई ॥
गंगोत्री अरु उत्तर काशी । दर्शन करहिं गुप्त जो काशी ॥
त्रियुगी नारायन को जाई । बदरी और केदार सुहाई ॥
शंकर मुख नैपाल में राजै । अरु नितम्ब केदार बिराजै ॥
जंघा तुङ्गनाथ में सोहै । अमरनाथ को लखि जग मोहै ॥
यदि कोउ चहै स्वर्ग को जाना । तौ किदार बद्री प्रस्थाना ॥

दो०-हरिद्वार स्थान यक, गिरि यात्रा के अर्थ ।
कहत स्वामि तपथान है, तहँ पर करत अनर्थ ॥१२९॥

हरि पैड़ी विसरात सुहाई । तहँ पर यात्री जाइ नहाई ॥

हौं जानत हरि पैड़ी नाहीं । पैड़ी हाड़ तहाँ दर्शाहीं ॥
मृतकन की अस्थी लै आवत । डारि तहाँ पर पुण्य बतावत ॥
अरु यह कहत सबै समुझाई । जो अस्थी यहँ डारत आई ॥
सबही पाप छुटैं प्रानी के । छुटहि कुकर्म भोगदानी के ॥
काहू समय तपोवन अहई । अब भिक्षुक बन प्रकट लखाई ॥
बिन्ध्येश्वरी के दर्शन पाये । तीरथराज में मूड़ मुड़ाये ॥
यह साधन मुक्ती कोउ नाहीं । करत जो तीर्थन जाइ सदाहीं ॥

दो०--मूर्ति सनातन जो कहत, सो असत्य सब भाँति ।
तीरथ नाम महात्म सब, पाप न छुटत लखाति ॥१३०॥

सो०--बहु बनाइ श्लोक, जगत भुलायो ढोंग करि ।
महाशोक पुनिशोक, मनुषजन्म लहिबुद्धिनहिं ॥१२॥

गंगा नाम नित्य जो ध्यावै । कहहु स्वामि का मोक्ष न पावै ॥
नामहि से सब छूटहिं पापा । केतिक होय चहै परितापा ॥
हरि दो अक्षर नाम जो लेई । कबहुँ न पाप होत है तेई ॥
प्रातकाल शिव देखै कोई । पाप तासु निशि छूटत सोई ॥
कहहु कहाँ यह झूठ कहानी । महिमा दर्शन कहत बखानी ॥
तब ऋषि कहत बात सब झूठी । कछु न होय संशय बिधिरूठी ॥
गंगा शिव दुर्गा को नामा । रटहु निरन्तर तजि सब कामा ॥
छुटहि न पाप कहत ऋषिराई । छुटत पाप दुख होत न भाई ॥

दो०--होत पाप संसार में, केहु बिधि छूटत नाहिं ।
तीर्थनाम के आड़ से, कहि बहुपाप सिहाहिं ॥१३१॥

जिन कहँ तुम सब तीर्थ बतावहु । सत्यनाम कहि सबन सुनावहु ॥
नित प्रति वेदशास्त्र जो पढ़ई । विद्या ध्यान सदा चितधरई ॥
धार्मिक बुधवर कोहै संगा । परोपकार निर्वैर असंगा ॥
ब्रह्मचर्य व्रत अतिथी पूजा । सेवा मातु पिता नहिं दूजा ॥

ईश्वर की स्तुति नित कीजै । अरु उपासना चित में दीजै ॥
कर्म जो करत सदा ही पावन । ताकहँ होवे दुःख नशावन ॥
इन्द्रिय जीति करै पुरुषारथ । धर्म शील विज्ञान निस्वारथ ॥
यह तीरथ दुख नाशन वारे । जलथल कबहुँ न मनुज निवारे ॥
समय पाइ नर डूबि जो मरहीं । तब नाहीं कछु तीरथ करहीं ॥

दो०--जगतारन यदि तीर्थ हैं, तो नौका को मान ।
पार करै सो सिन्धु से, तारक जगत महान ॥१३२॥

विद्या पढ़ि ब्रह्मचारी बनईं । तेहि तीरथ सेवी बुध गनईं ॥
मानहु इनहिं तीर्थ सुखदाई । भवसागर हित नाव सुहाई ॥
ब्रह्मचारी अरु यक आचारी । पढ़हिं शास्त्र यक संग विचारी ॥
विमल होइ बुधि पावहिं ज्ञाना । तीरथ शास्त्र विचार महाना ॥
ज्ञान नाव चढ़ि होवहिं पारा । परे जो भवसागर मझधारा ॥
गुरु गृह जाइ करै तप भाई । ब्रह्मचर्य व्रत धरहिं सदाई ॥
विद्याव्रज स्नातक होई । अथवा व्रती रहत है जोई ॥
रुद्र वसू आदित्य सरूपा । सो स्नातक बनहि अनूपा ॥

दो०--वेदशास्त्र अरु धर्मयुत, सतवादी जो होय ।
तीर्थ मानि तेहि दीजिये, अन्न पदारथ जोय ॥१३३॥

धर्मयुक्त यश देवन बारो । परमेश्वर तेहि नाम उचारो ॥
याविधि पहिले नाम बताये । ईश्वर के गुन कर्म सुहाये ॥
गौणिक नाम अहैं बहुतेरे । किये नाम गुन गान घनेरे ॥
जानि ईश गुन कर्म स्वभाऊ । सकल बनावहु आपन भाऊ ॥
तब यक ऋषि सों कहत बुझाई । महिमा सकल गुरू की गाई ॥
सब देवन से गुरु यक देवा । शिवबिरंचि आदिक मह देवा ॥
यह माहातम सत्य का नाहीं । पैरधोइ हम पियहिं सदाहीं ॥
गुरु आज्ञा का हिय में धारी । बनै सदा गुरु आज्ञाकारी ॥

दो०--यदि लोभी गुरुदेव हों, तो बावन सम जान ।
क्रोध होय अँग में अधिक, तौ नरसिंह प्रमान ॥१३४॥
यदि गुरु मोह माँहि चित देहीं । तो हम जानि राम कहँ लेहीं ॥
कामी गुरू कृष्ण सम मानहिं । गुरुको कतहुँ निंद्य ना जानहिं ॥
कैसेहु पाप होय गुरु माहीं । करिदर्शन हम जात सिहाहीं ॥
अश्वमेध फल होवे ताहीं । जो गुरु दर्शन करत सराहीं ॥
कह ऋषिबुधि तुम्हारिनहिंठीका । जो देवतन लगावहु टीका ॥
ईश नाम ब्रह्मादिक अहहीं । ताको गुरु समता नहिं लहहीं ॥
गुरु गीतादिक पोप कहानी । रची धूरतन हैं मनमानी ॥
दो०--मातपिता आचार्य्य गुरु, सेवहु अतिथि समान ।
गुनग्राही बनि लहहु गुन, करहु सत्यसनमान ॥१३५॥
बुधवर विद्यावान जो, करहु सदा तिनमान ।
जो गुरुआई करि ठगहिं, देहु न कबहूँ दान ॥१३६॥
वेद मंत्र ते कतहुँ न जानत । नाना भाँतिन मंत्र बतावत ॥
कण्ठी तिलक सबन सिखलावहिं । ते न होहिं गुरु जग भरमावहिं ॥
भेड़न की गति हिन्दुन केरी । एक जाइ तहँ जात बनेरी ॥
लोभी गुरू लालची चेला । करत रहत नित ठेलमठेला ॥
तरन हेत भवसागर माईं । पाथर नाव चढ़त दोउ धाईं ॥
पोप पुजारिन जस छल कीन्हो । वैसेहि गुरु लोगन रचि दीन्हो ॥
गुरु महात्म गुरु गीता आदी । रचि पुस्तक तेहिं कहत अनादी ॥
दो०--ऋषिवर सों तेहिकाल में, करतप्रश्न यक आय ।
करता सकल पुरान को, सत्यवती सुत भाय ॥१३७॥
है पुरान यक पंचम वेदा । मानत हैं तेहि सब तजि खेदा ॥
बहुतक हैं प्रमाण यहि भाँती । मन्वादिक लिखि दीन सुहाती ॥
मूरति पूजा तीर्थ विधाना । लिख्यो जहाँतहँ करिये ध्याना ॥

याबिधि हम कहँ मिलत बिधाना । तब किमि खण्डन करहु महाना ॥
तब ऋषि कहत सुनहु धरि ध्याना । व्यास महायोगी बुधिवाना ॥
यदि ऋषि व्यास पुरान बनावत । तौ अस झूठ जाल फैलावत ॥
जिन शारीरिक सूत्र बनाये । योग भाष्य करि सबन बताये ॥
सतवादी योगी विद्वाना । धार्मिक व्यासदेव भगवाना ॥

दो०--स्वार्थी मूरख जे जगत, महा लोभ तन माहिं ।
व्यासनाम धरि तब लिखे, ग्रन्थ पुरान जे आहिं ॥१३८॥

सो०--है इतिहास पुरान, गाथा कल्प बखानहीं ।
नाराशंसी जान, पाँच नाम इतिहास के ॥१४॥

जग इतिहास मनोहर ताई । याज्ञवल्क प्रति जनक सुहाई ॥
आदि जगत उतपति जहँ होई । ताहि पुरान कहत बुध जोई ॥
वेद शब्द जहँ होवे अर्था । कहत कल्प हैं ताहि समर्था ॥
अरु दृष्टान्त कथा जो अहई । तेहि गाथा सब मुनिबर कहईं ॥
मानव को जो चरित बखानत । अनुचितउचित हृदयजोराखत ॥
तेहि नाराशंसी जग कहहीं । इनहिं सुने जग आदर लहहीं ॥

दो०-व्यास जन्म ते पूर्वही, सुनत रहे बहु भाँति ।
ब्राह्मण ग्रन्थ पुरान हैं, पढ़ै सकल मनु जाति ॥१३९॥

शिव पुरान आदिक जे ग्रन्था । पढ़ै सुनै सो जाइ कुपन्था ॥
वेदव्यास कहत सब कोई । वेद पढ़्यो अरु अर्थ करोई ॥
शुक अरु जैमिनि शिष्य पढ़ाये । कृष्ण द्वैपायन नाम कहाये ॥
कोउ अस कहत जगत के माहीं । व्यास कियो वेदन इकठाहीं ॥
सो यह सबकी झूठ कहानी । कही स्वार्थहित जेहि मनमानी ॥
व्यास पिता प्रपितामहँ आदिक । पाराशर वसिष्ठ ब्रह्मादिक ॥
व्यास पूर्वजे ऋषी सुहाये । पढ़े वेद करि अर्थ लखाये ॥
एक कहत पुनि मोहिं बतावहु । है जो सत्य सोइ समुझावहु ॥

दो०–प्रश्न करत ऋषिराज सों, एक शिष्य यहि भाँति।
सत्य कोऊ अस्थल नहीं, असतपुरान देखाति ॥१४०॥

स्वामि कहत बहु असत कहानी। कछुक सत्य अवलोकत ज्ञानी ॥
जो कछु है तहँ सत्य कहानी। सो सब वेद शास्त्र से आनी ॥
झूँठ बहुत निज स्वारथ हेता। अधिक पुरान बनाइ सचेता ॥
पारस्परिक बिरोध लखाई। यह लेखक की है निपुणाई ॥
निज प्राचीन विधी सब मानत। सृष्ट्युत्पत्ति सकल दर्शावत ॥
शिव पुरान शिव ईश्वर मानत। विष्णु पुरान विष्णु उच्चारत ॥
देवि भागवत देवी मानहिं। आदिसृष्टि उतपति तेहि जानहिं ॥
हैं जेते पुरान जग माहीं। तेती विधि सृष्टी दर्शाहीं ॥

दो०–अहैं परस्पर भेद जग, उपज सृष्टि के माहिं।
महा असम्भव रीति तिन, प्रकटत परम सिहाहिं ॥१४१॥

शैवसदा या विधि उर धरहीं। रचत कथा तनिकौनहिं डरहीं ॥
प्रथम एक नारायण अहई। जल सौं सो उतपति करिरहई ॥
तेहि निज नाभि कमल उपजावा। कमल माहिं ब्रह्मा प्रगटावा ॥
जब देख्यो तेहि वारि असीमा। इकअंजुलिजलउलिचअनियमा ॥
तब बुदबुद उठि प्रगटत भयऊ। तेहि क्षण एक पुरुष तहँ ठयऊ ॥
करेहु बिवाद परस्पर दोहुन। प्रथम भयेउ को यहँ पर पाहुन ॥
दिव्य सहस्र वर्ष यहि भाँती। लड़त रहे जल पर दोउ जाती ॥
तब शंकर इमि कीन्ह बिचारा। जिन पर सृष्टि भार हम डारा ॥

दो०–वे दोनों यहि भाँति सों, लड़त रहत दिन रात।
शान्ति हेतु तिनके तबै, उपज्यो लिंग सुहात ॥१४२॥

तेज पुञ्ज सो लिंग सुहावा। उपजत तुरत गगनको धावा ॥
चकित भये दोउ लिंग निहारी। आदि अन्तकी परख बिचारी ॥
आदि जानि जो पहिले आवै। अथवा अन्त जानि जो पावै ॥

आवहि प्रथम पिता है सोई । दूसर पुत्र मानि चुप होई ॥
विष्णु धरेउ तब कूर्म सरूपा । चले आदि खोजन अनुरूपा ॥
अरु ब्रह्मा भये हंस सुहाये । उड़ि आकाश ओर नियराये ॥
दिव्य सहस्र वर्ष सो घूम्यो । थाह न पाई दोउ जन भूल्यो ॥
बीचहि ब्रह्मा सोचन लागे । विष्णु थाह लै ऐहैं आगे ॥

दो०—तेहि अवसर यकवृक्षतहँ, नाम केतकी जान ।
ओर गऊ आई तहाँ, दीन्हेउ आइ प्रमान ॥१४३॥

पूछेउ गाय कहहु निज बाता । कौन कहाँ ते आये ताता ॥
तब ब्रह्मा सब बात सुनाई । पूछेउ अन्त कहाँ है माई ॥
कहत गऊ तुम थाह न पावहु । चाहे कोटिन जन्म बितावहु ॥
तब ब्रह्मा समुझावन लागे । है साक्षी चलिये मम आगे ॥
गउसन कहेउ कहहु यहिभाँती । हम नित छाँड़त दूध सुहाती ॥
कहेहु वृक्षसन तुम अस कहहू । छाँड़त फूल रहत निशि अहहू ॥
अस साक्षी दीजे मम हेता । चलहु तुरत तुम विष्णुनिकेता ॥
तब दोहुन कह सुनिये भाई । झूठ कहब तहँ हमनहिं जाई ॥

दो०—तब रिसाइ ब्रह्मा कहत, यदि न गवाही देहु ।
भस्म करहुँ यक क्षणिकमहँ, लखुसरापममएहु ॥१४४॥

सुनत श्राप दोनहु डरि गयेऊ । जसतुम कहहु सोइ हम कहेऊ ॥
तब वह तीनो नीचे आये । विष्णुहि प्रथम तहाँ ही पाये ॥
विष्णु कहा हम थाह न पाई । कह ब्रह्मा तब इमि समुझाई ॥
थाह ऊपर की हम लै आये । साक्षि गाय तरु केतकि लाये ॥
साक्षी दुहुन दीन्ह तेहि अवसर । निशि दिन रहे लिंग के ऊपर ॥
निकसेहु शब्द लिंग से तबहीं । कहेहु झूठ तीनहु ने जबहीं ॥
पुष्प तुम्हार निरर्थक होई । देवार्चन में धरहि न कोई ॥
अस केतकि को दीन्हो श्रापा । गउसन कहेहु बहुरि करि दापा ॥

दो०--जामुख से तुमने कह्यो, झूठ वचन यहि बार ।
ताको कोउ पूजै नहीं, भखहु पुरीष निहार ।।१४५।।
ब्रह्महिं श्राप दियो यहि भाँती । पूजहि तुमहि न कोऊ जाती ।।
अरु वर दीन्ह विष्णु कहँ भाई । पूजहि तुमहिं जगत समुदाई ।।
तब दोहुँन मिलि स्तुति कीन्ही । लिंगदेव तनमय हित चीन्ही ।।
प्रकटेउ जटाजूट बिकराला । शंकर महादेव तेहि काला ।।
कहत रिसाइ दोहुँन सों बाता । लड़न हेत का आयेहु ताता ।।
हम तो कहा सृष्टि उपजायहु । तुम दोहुँन बहु रारि बढ़ायहु ।।
तब विष्णू कह सुनहु महेशा । सृष्टि हेत कछु नहिं अवशेशा ।।
काढ़ि जटा सों शंकर लीन्हो । गोला एक भस्म को दीन्हो ।।
दो०--और कहा लै जाहु तुम, सृष्टि रचहु बहु भाँति ।
भाँति-भाँतिफलफूलसब, और अनेकन जाति ।।१४६।।
याबिधिकल्पित कथाबहु, रची पुरानन खींच ।
पूछहु इनसों प्रेम युत, बुद्धी को धरि बीच ।।१४७।।
नहिं जब सृष्टि तत्त्व नहिं भूता । तब कहँ कमल लिंग जलयूता ।।
अरु वह भस्म कहाँ ते आई । वृक्ष सुकेतकि अरु शुभ गाई ।।
शिव पुरान की सृष्टि कहानी । सुनत पढ़त अनहित अनमानी ।।
याही विधिहै विष्णु पुराना । तिनहु लिख्यो गाथा है नाना ।।
और भागवत इमि दर्शाई । प्रथम भये विष्णू सुखदाई ।।
निकसेउ कमल नाभि से भाई । ब्रह्मा उत्पति तहाँ बताई ।।
ब्रह्मा के दाहिन अंगुष्ठा । निकसेउ स्वायम्भुव अवधिष्ठा ।।
अरु बायें सतरूपा रानी । अरु ललाट से रुद्र प्रमानी ।।
तिनसों भये दश पुत्र मरीची । भये प्रजापति दशतिन सींची ।।
दो०--अरु तेरह पुत्री भईं, तिनकर कीन्ह विवाह ।
कश्यपऋषि ध्योतावने, कीन्हेउ सृष्टि प्रवाह ।।१४८।।

दिति से दैत्य भये वहुतेरे। दनु से दानव जगत घनेरे॥
अदिति से भे आदित्य प्रवीना। विनता पक्षी प्रबल नवीना॥
कद्रू सकल सर्प उपजाये। कूकुर स्यार आदि अपनाये॥
गज हय ऊँट गधा अरु भैंसा। घास फूस कंटक तरु जैसा॥
और त्रियनसों यह सब भयऊ। जो जग में बाकी रहि गयऊ॥
यह भागवत केरि पंडिताई। लिखत तनिक लज्जा नहिं आई॥
मनुज योनि से कूकर स्यारा। सिंह अश्व तरु आदि उचारा॥
सृष्टि विरुद्ध कहहु किमि होई। लीला पोप विचारहु कोई॥

दो०--हम जानत ते अन्ध अति, पढ़त सुनत निशि द्योस।
महा घोर तम में फँसत, रहत बुद्धिनहिं जोस ॥१४९॥

तव यक कहत सुनहु ऋषिराई। हमहि न कछु विरोध दिखराई॥
जासु विवाह गीत हैं तासू। करत कवन विधि तुम परिहासू॥
जब हम करत विष्णु की पूजा। तब विष्णू सम और न दूजा॥
तव विष्णू को ईश्वर मानहिं। अन्य जिते सब दास प्रमानहिं॥
जब शिव के गुन को हम गावहिं। तब तिन को परमातम मानहिं॥
अरु औरन कहँ किंकर जानहिं। रीति सदा याही उर आनहिं।
माया सों सब कछु बनिजाई। है ईश्वर की यह प्रभुताई॥
वह नर को पशु तुरत बनावै। अरु पशु को मानुष दरशावै॥
बिन कारन समरथ अपनी सों। प्रकटत सृष्टि सकल शक्ती सों॥

दो०-कहत स्वामि भोले मनुज, हृदय बिचारहु नेक।
हैं विवाह के गीत जहँ, तहाँ बड़ाई एक ॥१५०॥

दूसर की निन्दा नहिं करहीं। पितु समान नहिं तेहिउर धरहीं॥
तुम स्वारथ वश अधिक भुलाने। सत्य असत्य नाहिं पंहिचाने॥
नियम विरुद्ध कछू नहिं होई। सृष्टि नेम तनि देखहु जोई॥
यह अनुमान सत्य है भाई। करी भूल पोपन समुदाई॥
शतपथ में यह लिख्यो सुहावा। कश्यप सकल सृष्टि उपजावा॥

कश्यप नाम ईश यहि भाँती । देखत सकल चराचर जाती ॥
पश्यक से कश्यप बनि गयऊ । आदि अन्त विपरीत जो भयऊ ॥
अर्थ न जानि कथा गढ़ि डारी । सृष्टि विरुद्ध रची विधिन्यारी ॥

दो--०अद्भुत कथा बिचारिये, दुर्गापाठ निहारि ।
मार्कण्डेयपुरान बिच, लिख्योताहिबिस्तारि ॥१५१॥

देवी तनु से निकस्यो तेजा । तेहि महिषासुर फोर्यो भेजा ॥
रक्त बीज तेहि मारि गिरायो । भूमि रक्त गिरि दृश्य देखायो ॥
उपजे रक्त बीज बहु तेरे । भये जगत बिच रूप घनेरे ॥
सरिता रक्त बही तेहि काला । या विधि लिख्यो बहुत बेताला ॥
कहहु असम्भव केर ठिकाना । जो लिखि मार्यो बहुत पुराना ॥
लीला सुनहु भागवत केरी । करत बड़ाई जासु घनेरी ॥
है अस्कंद दूसरे माहीं । नव अध्याय बिलोकहु जाहीं ॥
नारायण ब्रह्मा सन कहेऊ । चारि श्लोक भागवत दयेऊ ॥

दो--०परम गुह्य विज्ञान जो, है रहस्य की बात ।
धर्म अर्थ कामादि सब, ग्रहन करहु सुखदात ॥१५२॥
सृष्टि प्रलय सब काल में, मोह न ब्यापै ताहि ।
नारायण यहि भाँतिसों, चतुराननहि बताहि ॥१५३॥

अरु अध्याय दशम तुम देखहु । वत्सहरन ब्रह्मा जहँ पेखहु ॥
दोनहु सत्य कहहु किमि होहीं । या वरदान झूठ है ओहीं ॥
तनि विचारकरि या कहँ देखहु । मूल सत्य वा असत विलोकहु ॥
मूल पुष्ट जाकर नहिं होई । बढ़ै कवन विधि सों तरु सोई ॥
जब वैकुण्ठ बड़ाई करहीं । तहँ न द्वेष ईर्षा उच्चरहीं ॥
पर वैकुण्ठ कथा इमि कहहीं । द्वारपाल जय बिजय सुअहहीं ॥
जब सनकादिक तहँ पर गयऊ । द्वारपाल तब रोकत भयऊ ॥
तिन अपराध कहहु का कीन्हा । कार्य स्वामिबिचजोचित चीन्हा ॥

दो०–तब सनकादिक शाप दिय, गिरहु भूमि पर जाइ ।
का भूमी तहँ ना रही, पंचतत्व बिलगाइ ॥१५४॥
पुनि जय विजय कीन्ह गुनगाथा । करि स्तुति अरु नायहु माथा ॥
कहा नाथ यह मोहिं बतावहु । आउब बहुरि कबहुँ यहि ठांवहु ॥
तब सनकादिक कहत बुझाई । करिहहु ईश भक्ति मनलाई ॥
तौ तुम जन्म सातवें माहीं । पुनि ऐहहु वैकुन्ठ सराहीं ॥
यदि विरोध भक्ती तुम करिहहु । जन्म तीसरे यह तनु धरिहहु ॥
अब विचार करिये सब लोगू । किमि जय विजय शापके योगू ॥
स्वामि काजमहँ तिन चित दीन्हा । कार्य्य जो द्वार केर सोइ कीन्हा ॥
का नारायण नीति न जानत । बिन अपराध दुःख में सानत ॥
दो०--जो निज सेवक की दशा, देखि न करत उपाय ।
कहहुऔरकीकरहिंकिमि, "इष्ट"सुतनिकसहाय ॥१५५॥
सो०–नारायण घर न्याय, कहहु कहा यहि भाँति है ।
अब जानेहु यहि भाय, बड़ेहिं देखि सब डरत हैं ॥१५॥
पुनि देखहु यह कथा सुहाई । भे हरिण्याक्ष कशिपु दोउ भाई ॥
हिरण्याक्ष यक कीन्ह उपाई । भूमि लपेटी मनहुँ चटाई ॥
तापर शिर धरि सोवन लागा । कीन्ह वराह युद्ध तब जागा ॥
विष्णु धरेउ बाराह स्वरूपा । सुन्दर मुख अरु दाँत अनूपा ॥
तब पृथ्वी मुख ऊपर धारी । शिर से लीन्हीं तुरत निकारी ॥
भई परस्पर अधिक लड़ाई । मारेहु हिरण्याक्ष हर्षाई ॥
अब इन पोप पुजारिन पूछहु । भूमि चटाई गोल प्रतीतहु ॥
जिन खगोल भूगोल दिखावा । नाना भाँतिन गणित बनावा ॥
तिन घर आजु भये यह पोपा । रचि पुरान बनिगे सब भोपा ॥
दो०–जब पृथिवी हिरण्याक्ष ने, सीस तरे धरि लीन ।
कहहुसों सोयो है कहाँ, भूमिबिना बुधिहीन ॥१५६॥

अरु बराह कापै पग धारी । लड़े कवनबिधि दोउ बलकारी ॥
भूमि बराह जबै शिरधारी । बिना भूमि सो किमि सुखकारी ॥
कहहु कहा इन पोपन छाती । लड़त रहे जहँ दोनहुँ जाती ॥
गप्प कहाँ लगि इनकी देखी । मनहु गप्प गप्पी सम पेखी ॥
अब कश्यपु की सुनहु कहानी । रची जो पोपन ने मनमानी ॥
ताकहँ सुत प्रहलाद कहाई । पठव्रत पढ़न हेत गुरु ठाँई ॥
पितु आज्ञासम पढ़त न सोई । तब पितु दंड दीन्ह है ओई ॥
कूप गेरि परवत लुढ़कावा । अग्नि माहिं पुनि ताहिबिठावा ॥

दो०–अबविचार यहकीजिए, नारायण की बात ।
चौथी पीढ़ी में भयो, यह प्रहलाद सुतात ॥१५७॥
चतुरानन सों प्रजापति, तिनसों कश्यप देव ।
कश्यपसों हिरण्याक्ष भे, हिरण्यकर्षिपु दुखदेव १५८॥

तब प्रहलाद तजेउ नहिं प्राना । बाँध्यो खम्भ परम सुखमाना ॥
अरु लै शस्त्र पिता इमि कहई । बचहु कवन विधि जानत चहई ॥
तब नरसिंह प्रकट हुइ गयऊ । हिरण्यकशिपु परधावत भयऊ ॥
तब पुनि कहब होइ केहि भाँती । इक इसकी सदगति सुखमाती ॥
पुनि भे कुम्भ करन अरु रावन । ऋषिन केर तपयज्ञ नशावन ॥
दूसर जन्म भये पुनि एही । दन्तवक्र शिशुपाल सनेही ॥
तिन हित राम कृष्ण जग आई । मारेहु तिनहिं सहित समुदाई ॥

दो०–ऐसेहि सागर की कथा, कहत सबन समुझाइ ।
प्रियव्रत के रथ चक्र सों, लीकसमुद्र लखाइ ॥१५९॥
ऐसेहि नाना भाँति की, लिखी कथा अधिकाय ।
व्यास देवको नाम धरि, लिख्यो पोपहर्षाय ॥ ६०॥

बोप देव जयदेव सुहाई । रहे सहोदर दोनों भाई ॥
बोप भागवत दीन्ह बनाई । गीत गोविंद जयदेव रचाई ॥

ग्रन्थ हिमाद्रि बिलोकहु जाई। हैं जामहँ श्लोक सोहाई ।।
भोज सचिव तेहिनाम हिमाद्री। पूछत बोप देव सों आद्री ।।
श्रीमद्भागवत ग्रन्थ तुम्हारा। सुनि न सकहुँ बहु है बिस्तारा ।।
तातें कछु संक्षेप की भाँती। सूची पत्र बनाइ सुहाती ।।
तौ लघु कालहि में प्रभुताई। समुझहुँ कथा परम सुखदाई ।।
तब यक सूत्री पत्र बनावा। कथा सार तामहँ दर्शावा ।।

दो०–जौन बोध यहि भाँति हो, देखहु ग्रन्थ हिमाद्रि ।
बोपरचितयह ग्रन्थ है, निरखिबिचारहुआद्रि।।१६१।।

या विधि सकल पुरानन केरी। जानि लेहु लीला बहु तेरी ।।
कृष्ण कथा महभारत देखहु। गीता चरित सो पावन पेखहु ।।
श्रेष्ठ कर्म गुन तहँ पर भाई। अरु स्वभाव उत्तम दर्शाई ।।
तहँ से ज्ञात होत यह नाहीं। कृष्ण कियो अधरम केहु ठाहीं ।।
कृष्णहि चोर जार बतलायो। भागवत में बहु दोष देखायो ।।
दूध दही माखन की चोरी। गोपिन संग कीन्ह बरजोरी ।।
पर नारिन संग रहस रचायो। अरु कुबिजा संग प्रेम बढ़ायो ।।
यहि प्रकार की कथा सलोनी। भागवत में बिर्ची अनहोनी ।।
कहूँ कहाँ लगि इनकी करनी। नाना भाँति पुरानन बरनी ।।

दो०–एक कहत ऋषिराज सों, नहिं जानत यह बात ।
पुरुष केर सामर्थ जस, तस तस ग्रन्थ लखात ।।१६२।।

छन्द—जब वेद की सामर्थ नाहीं स्मृती तबहीं भई।
जब स्मृती बुधि में न आईं शास्त्र तेहि क्षण उपजई ।।
जब मन न लाग्यो शास्त्र में तबहीं पुरानें निर्मई।
पढ़ने लगे जब शूद्र याको तब अधर्म देखावई ।।११।।

स्वामि कहत यह मिथ्यावादा। करत निरर्थक जौन बिवादा ।।
बिना पढ़े सामर्थ न होई। पढ़ै जौन विद्यावित सोई ।।
तुम तौ कहत नारि नहिं पढ़हीं। वेद पढ़न अधिकार न लहहीं ।।

तो गार्गी आदिक जे नारी । शास्त्र विवाद कीन्ह विस्तारी ॥
ताही विधि छान्दोग्य विलोकहु । शूद्रवंश में जनश्रुति देखहु ॥
मुनिवर रैक्य[1] निकट सो जाई । वेद पढ़्यो अतिही हर्षाई ॥
यदि मानहु तुम वेद की बाता । यजुर्वेद अवलोकहु ताता ॥
है अधिकार शूद्र को तहँवाँ । लिख्यो विप्र आदिकको जहँवाँ ॥
दो०--छब्बिसवें अध्याय में, मंत्र[2] दूसरा जान ।
मनुष मात्र अधिकार है, वेद पढ़ै सुखदान ॥१६३॥
तापर स्वार्थी स्वारथ हेता । मिथ्या ग्रन्थ बनाइ सचेता ॥
मूर्ख रहे जो या जग माहीं । जाइ फँसे सो हैं तेहि ठाहीं ॥
जब गृह चक्र विचित्र चलावा । झूठ कथा सत कहि समुझावा ॥
बेदन के बहु मंत्र※ देखाए । जिन महँ नाम गृहन समुझाए ॥

---

[1] —जनश्रुति और रैक्य मुनि का संवाद उपनिषद् में देखो ।

[2] —यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय । विप्रो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादो नयतु ॥ य० अ० २६ मं० २ ॥

* १—आकृष्णेन रजसा य० अ० ३४ मं० ३१ (सूर्य का मं० बताया) २—इमं देवा असपत्नᳬ य० अ० १० मं० १८ (चन्द्रमा का मंत्र बताया) ३—अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः य० अ० ३ मं० १२ (मंगल का मंत्र बताया) ४—उद्बुध्यस्वा य० अ० १८ मं० ६१ (बुध का मंत्र बताया) ५ - बृहस्पते अतियदर्य्यो य० अ० २६ मं० ३ (बृहस्पति का मंत्र बताया) ६—अन्नात्परिस्रुतोरसं ब्रह्मणा शुक्रमंधसः य० अ० १९ मं० ७५ (शुक्र का मंत्र बताया) ७—शन्नो देवीरभिष्टये य० अ० ३६ मं० १२ (शनैश्चर का मंत्र बताया) ८ —कयानश्चित्र आभुव य० अ० ३६ मं० ४ (२६-३९) (राहु का मंत्र) ९—केतु कृण्वन्न केतवे य० अ० २९ मं० ३७ (केतु का मंत्र)

नोट —संकेतमात्र मंत्र लिखा है। पूरा मंत्र देखना हो, तो यजुर्वेद में उपरोक्त संकेतों से देख लेना। उपरोक्त मंत्र ग्रहों के वाचक नहीं हैं। वास्तविकता इन मंत्रों की इस प्रकार सूक्ष्मरूप से यहाँ लिखी है।※

अर्थ न जानि पड़े भ्रमजाला। आपु गिरे अरु सब जग घाला॥
एक कहत का गृह फल नाहीं। स्वामि कहत तुम समुझे नाहीं॥
सूर्य्य सदा उषमा युत होवे। चन्द्र शीत किरणैं नित देवे॥
ऋतु सों काल चक्र यहि भाँती। हित अनहित सबकाहु दिखाती॥

दो०--पर तुम लीला करत हो, भय मिथ्या दिखराय।
गृह के दोष बताइ कै, दान करावत जाय॥१६४॥

अरु यह सब सन कहत सुनाई। ब्राह्मण की जग में गुरुआई॥
है सब जगत दैव आधीना। देव रहत मंत्रन आसीना॥
ते सब मंत्र विप्र आधीना। याते विप्र गुरू पद चीन्हा॥
देखहु केहि विधि देत प्रमाना। जग समुझावत है मनमाना॥
पूछहु इनसों सब कोइ जाई। तुम्हरे बस्य देव समुदाई॥
डाकू चोर कुकर्मी जे जन। ते आधीन तुम्हारे देउतन॥
तो शुभ अशुभ करम जो आहीं। सबै करावत दैव सराहीं॥
तौ कस देव निशाचर भेदा। जो मानत याको तजि खेदा॥

दो०-जो तुम्हरे बस देवता, तौ किमि माँगत भीख।
लै कुबेर धन घर धरहु, यह मानहु मम सीख॥१६५॥

रवि प्रसन्न जा नर पर होहीं। डरहि तपन से किमि नर सोई॥
तिन कहँ जेठ मास के माहीं। राखहु घाम मोंहिं यक ठाहीं॥
तब देखिय वह नाहीं भागत। सूर्य्य तेज तिन कहँ नहिंलागत॥

---

*(१) आकृष्णेन यह मंत्र सूर्य्य और भूमि का आकर्षण सिद्ध करता है (२) राजगुण विधायक है (३) अग्नि से सम्बन्ध रखता है। (४) यजमान से सम्बन्धित (५) विद्वानों के सम्बन्ध में (६) वीर्य और अन्न के सम्बन्ध में (७) जलयान और परमेश्वर के सम्बन्ध में (८) मित्र के सम्बन्ध में (९) ज्ञान ग्रहण का विधायक है। विशेष देखना हो तो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा मूल सत्यार्थप्रकाश में देखो।

यह सब भाँतिन झूठ कहानी। रचीं सकल पोपन मन मानी ॥
दुखी होहिं इनकहँ नहिं दीन्हे। ठेका मनहु गृहन कर लीन्हे ॥
तबयक कहत सुनहु ऋषिराई। ज्योतिष फल प्रत्यक्ष लखाई ॥
गगन माहिं देखहु तारागन। राहु चन्द्रसिलिग्रहन होत घन ॥
तेहि सँयोग पहिलेहि कहि देहीं। पुनि प्रत्यक्ष होत वैसेहीं ॥

दो०–याही विधि प्रत्यक्ष है, ग्रहन केर फल आय।
सुखी दुखी जेते जगत, राज रंक जो भाय ॥१६६॥

बोलत ऋषी सत्य मृदु बानी। गणितसत्य सबविधि सन्मानी ॥
फलित सत्य कबहूँ नहिं होई। मानन योग न है जग सोई ॥
पृथवी सूर्य चन्द्र गति जोई। लिखा सूर्यसिद्धांत लखोई ॥
आवत सूर्य चन्द्र भूमी बिच। तबहीं कहत ग्रहन पत्रा खिच ॥
ताकहँ चन्द्रग्रहन सब कहहीं। सूर्यग्रहन याही विधि अहहीं ॥
निज कर्मन मिस राजा होई। होत धनी दारिद्री सोई ॥
बहुतक ज्योतिष ज्ञाता देखे। करत काज तिथि पत्रा पेखे ॥
तिनहू घर बिधवा बहु अहहीं। मरैं नारि दुख नाना सहहीं ॥

दो०–याते या सब झूठ है, गती करम की साँच।
ताते करम करहु सदा, हिये न आवहि आँच ॥१६७॥

तब यक कहत गरुड़का झूठी। जो पुरान अति परम अनूठी ॥
स्वामिकहत सब असत कहानी। बहुरि कहतऋषिसों अभिमानी ॥
मृत्यु भये पर कस गति होई। तब कह स्वामि कर्म जस सोई ॥
बहुरि कहत सुनिये ऋषिराजा। है जहँ चित्रगुप्त यमराजा ॥
महा भयंकर गण तहँ रहहीं। सो लैजात जीव को तहहीं ॥
पाप पुन्य को करत विचारा। पठवत स्वर्ग नरक बहु बारा ॥
पुन्य श्राद्ध तरपन गोदाना। करतसकलजन बिविधबिधाना ॥
बैतरनी सरिता तरि जाहीं। का यह झूठ अहै सब ठाहीं ॥

दो०—कहत ऋषी यह सब कथा, है गपोड़ की बात ।
करि लीला पुजवाइ जग, पेट भरत दिनरात ॥१६८॥
है केतिक यमलोक बतावहु । न्याय होत काको जो गावहु ॥
जब कहुँ आग लगत बनमाहीं । च्यूँटी आदि जरत सबठाहीं ॥
तब केतिक यम गन तहँ आवत । लै विमान फरसा जो धावत ॥
गऊ पूँछ पकड़त जेहि करसों । सो जरिजात चिता में जरसों ॥
अरु वह गऊ जात तहँ नाहीं । जहँ बैतरनी[1] नदी बताहीं ॥
कहहु पूँछ पकड़त वह कैसे । तहँ न गऊ नहिं हाथ अनैसे ॥
एक कथा हम तुमहिं सुनावहिं । जाट केर करतब बतरावहिं ॥
जाट एक अति चतुर सयाना । पुत्र पिता धन सम्पति नाना ॥
दो०—गऊ एक ताके रही, पालहि परम सनेह ।
बीस सेर सो नित दुहै, दूध धरहि निज गेह ॥१६६॥
देखि सुप्रोहित डाह बढ़ावा । सोचत यत्न उपाय न आवा ॥
चाहत कब ऐसे दिन आवैं । गाइ जाट सों पुन्य करावैं ॥
जोहन बाट वृद्ध की लागे । आवहि मौत भाग मम जागे ॥
या विधि कछु दिन गये बिताई । जाट पिता मृत्यू नगिचाई ॥
सेवा करत सकल परिवारा । बेगि उठावत थूक खखारा ॥
तबहिं पोपजी पहुँचे आई । परम मित्रता तहँ दर्शाई ॥
कह अब करहु तुरत गोदाना । देत होइ जो दूध महाना ॥
मरहिं बाप कह बारहिं बारा । गऊ करत प्रानी निस्तारा ॥

---

[1]—बैतरनी नदी कोई स्रोत की नदी नहीं है इस नदी का वर्णन माता के उदर से मिलता है गौ की पूँछ पकड़ने से पार हो जाता है यह ठीक है पर अर्थ भेद है यहाँ पर गौ नाम इन्द्रियों का है पूँछ इन्द्रियों की मन है मन को अन्त समय पकड़ लेने से माता के गर्भ से पार हो जाता मानो आवागमन से रहित हो जाता है ।

दो०--तबहिं जाट कछु द्रव्य लै, देत विप्र के हाथ ।
विप्र कहत लै का करौं, तवपितु परमसनाथ ॥१७०॥
साक्षात गउ दीजै भाई । जासों बैतरनी तरि जाई ॥
जब कछु जाट विचारन लागा । गऊ नेह में है बहु पागा ॥
तब पुनि विप्र कहत रिसिआई । का पितु ते बड़ि गाय देखाई ॥
चहत न पितु बैतरनी नाघै । डूबहि सहै दुसहदुख आघै ॥
तुम सुपुत्र कस हौ जग माहीं । जो न करत पितु अन्त सहाहीं ॥
सकल कुटुम्ब जन प्रोहित ओरा । ह्वै कर कहन लगे बरजोरा ॥
तुरत गाइ दीजै पितु हेता । पुन्य करहु पुनि जो कछुचेता ॥
तेहि क्षण जाट मौन हुइ रहेऊ । प्रोहित तबै गऊ लै गयेऊ ॥
दो०--गऊ दोहनी को तबै, प्रोहित घर लै जाय ।
ताकहँ घर में राखिकै, बहुरि पधारे आय ॥१७१॥
जाटपिता तौ स्वर्ग सिधायो । प्रोहित मृतक क्रिया करवायो ॥
महब्राह्मन प्रोहित दोनों मिल । लूट्यो ताहि कियो नाना छल ॥
जाट दूधबिन बहु दुख पायहु । केहुविधितेरह दिवस बितायहु ॥
दिवस चौदवें जाट सिधारे । गये सु प्रोहित केर दुआरे ॥
दुहत गाइ अति हर्ष बढ़ाई । जाट गये तहँ पर नियराई ॥
जबै दूध लै घरहिं सिधाये । तबहिं जाट यह वचन सुनाये ॥
विप्र बात मेरी सुनि लीजै । ता पीछे कछु और करीजै ॥
कह हम दूध घरहिं धरि आवहिं । जाट कहत यह हमहिं न भावहि ॥
दो०--सहित दोहन दूध के, आवहु तुम मम पास ।
सुनि प्रोहित आये तहाँ, मनमें कछुक उदास ॥१७२॥
जाट कहत तुम हो अति झूठे । कहत पोप तुम किमि हो रूठे ॥
बोलत जाट कहहु केहि हेता । गउ लाये तुम दूध समेता ॥
तब कह पोप नदी तारन हित । बैतरनी पितु तरहिं यथोचित ॥

तब कह पुनि बैतरनि किनारे । काहे न पहुँचायहु यम द्वारे ॥
उलटि गऊ लै घर बिच बाँधी । पिता फँसे जानें कस व्याधी ॥
कहत पोप नाहीं यजमाना । दान से बनत गऊ तहँ नाना ॥
जाट कहत केतिक है दूरी । अरु केहि ओर बतावहु रूरी ॥
कहत पोप दक्षिण की ओरा । जहँ नैऋत्य कोण को छोरा ॥
तीस करोड़ कोस पर जाई । है बैतरनी नदी सुहाई ॥
दो०--कहत जाट बतलाइये, समाचार तुम पास ।
चिट्ठी अथवा तारसों, केहिविधि आयोखास ॥१७३॥
सो वह मोहिं देखावहु भाई । पुन्य से गाय बनी तहँ जाई ॥
अरु पितु गये नाँघि बैतरनी । मोहिं देखावहु आपनि करनी ॥
तब तो पोप कहत सुनि लीजै । गरुड़पुराण लेख चित दीजै ॥
गरुड़ प्रमाण हमारे पासा । दूसर और कोउ नहिं आसा ॥
पत्र तार कछुहू ना आवत । पुन्य प्रभाव सबै दर्शावत ॥
हम याको किमि साँची मानहिं । पोप कहत जस सबकोइ जानहिं ॥
जाट कहत पूर्वज जे रहहीं । यह पुरान जीवन हित अहहीं ॥
गऊ दूध सँग लै कर बाछा । चले जाट कछनी को काछा ॥
दो०--और कहत प्रोहित सुनहु, आवहिं पिता सँदेस ।
तब भेजब हम गऊ को, साक्षात यहि भेस ॥१७४॥
पोप कहत हुइहै तब नाशा । देकर दान लेत निज आशा ॥
कहत जाट बोलिय नहिं बाता । नहिं तो और देहुगे घाता ॥
तेरह दिवस दूध बिन भाई । दुख पायो सो लेहुँ छिनाई ॥
मौन भये तब पोप सयाने । जाट दूध लै घर नियराने ॥
सुख सों जाट रहे घरमाहीं । पोप जाल छुटि अधिकसिहाहीं ॥
जाट समान होहिं यजमाना । तब नहिं पोपन चलै बहाना ॥
एक बात औरहु चित दीजै । पोपन की लीला लखि लीजै ॥
करत पिंड जब होत सपिंडी । गात्र अंगुष्ठ प्रमान अखंडी ॥

बनकर गात्र जात यमलोका । कहहु कहा तब होत अशोका ॥
दो०--प्रश्न करत ऋषिराज सो, एक पुरुष हर गाय ।
स्वर्ग माहिं कछु ना मिलै, एक पुन्य बिलगाय ॥१७५॥
कहतस्वामि तब स्वर्ग से, यहै लोक है नीक ।
जहँ सब भाँति सुपास की, मिलत वस्तु है ठीक ॥१७६॥
पुनि कह जब न अहै यमलोका । करै न्याय को धर्म बिलोका ॥
कहतस्वामि जोकछु तुम कहहू । गरुड़ पुराण प्रमान न लहहू ॥
सो सब झूठ महा अज्ञाना । वेदन में बहु मिलत प्रमाना ॥
है यम नाम वायु का जानो । अन्तरिक्ष में भ्रमत प्रमानो ॥
त्याग करत जब जीव शरीरा । बायु संग भरमत अति धीरा ॥
अरु जो पक्षरहित जग माहीं । परमात्मा सत्यव्रत जाहीं ॥
ता कहँ धरमराज सब कहहीं । करतन्याय बुधजन सुखलहहीं ॥
और कहूँ स्थान न कोई । ना केहु ठौर सभा कोउ होई ॥
दो०--एक कहत तुम्हरे कहे, देइ न काहू दान ।
दान पुण्य सब घृथा जग, करहिं तुम्हारी जान ॥१७७॥
स्वामिकहत यह भूल तुम्हारी । पर उपकारिन देहु सम्हारी ॥
सुबरणरजत औ माणिक हीरा । मोती अन्न थान[1] जल चीरा[2] ॥
उचित अवशि करिये बहुदाना । देहु कुपात्र न एकौ दाना ॥
पुनिकहऋषिवरयह समुझावहु । पात्र कुपात्र मोहिं दर्शावहु ॥
कहत स्वामि जो हैं छलवादी । कपटी लम्पट मिथ्यावादी ॥
मोह से युक्त करैं पर हानी । करि आलस सब बात भुलानी ॥
दाता ढिग जावहिं बहुवारा । धरना दै पुनि करै सहारा ॥
जब कोइ दाता नाहीं करहीं । तदपिकरहि हठतनिक न टरहीं ॥
मन संतोष होत नहिं कबई । जो न देइ निन्दा तेहि बकई ॥

१—स्थान, २—वस्त्र ।

दो०-गाली और सराप को, देवहिं तिनके हेत ।
जो कछु इनको देत नहिं, जानहिं शत्रु निकेत ॥१७८॥
साधु भेप धरि जग भरमावहिं । ठगहिं आप औरन ठगवावहिं ॥
जो कछु वस्तु होइ ढिग माहीं । तौ यह कहहिं निकट कछु नाहीं ॥
औरन को फुसिलाइ सदाई । अर्थ सिद्ध निज करहिं बनाई ॥
मांगहिं भीख सदा दिनराती । मादक द्रव्य पियहिं जो जाती ॥
ह्वै उन्मत्त प्रमादी बनिके । सत्य भुलावहिं जग बनिठनिके ॥
चेलन सों सेवा करवावहिं । यहै तीर्थ मुक्ती दर्शावहिं ॥
मातु बन्धु व्यवहारि अप्रीती । करहिं सकल अनुचित ही रीती ॥
यह कुपात्र लक्षण तुम जानहु । है सुपात्र सो तुमहि सुनावहु ॥
दो०-होहिं जितेन्द्री वेद वित, जो ब्रह्मचारि सुशील ।
सतवादी पुरुषारथी, परोपकार प्रिय शील ॥१७९॥
छं०—विद्या धरम की करहिं उन्नति शान्त ह्वै निर्भय रहैं ।
निन्दा सुने तेहि दुख न होवे नाहिं स्तुति सुख चहैं ॥
उत्साहि योगि उदार बनकर ईश के गुन में रमै ।
वेदज्ञ ज्ञानी सृष्टि कर्महि जानि नहिं योनिन भ्रमै ॥१२॥
सो पक्षपात न करै कबहूँ न्याय की विधि को कहै ।
तिनसों यथारथ ही करें जो प्रश्न करि उत्तर चहैं ॥
निज आत्मा सम 'इष्ट' निशिदिन अन्य दुख सुख जानहीं ।
अरुहानि लाभ समान जानहिं हृदयक्लेश न मानहीं ॥१३॥
दो०-अविद्यादि हठ क्लेश को, दुराग्रहहु अभिमान ।
इनसे अलग रहै सदा, होत आत्म बलवान ॥१८०॥
जिनहिं सदा अपमान पियारा । अमृत सम तेहि पात्र निहारा ॥
विष समान सो समुझहिं माना । हिय संतोप रहै सुखनाना ॥
करहिं सदा सुजनन कर संगा । चलहिं कतहुं नहिं चालकुसंगा ॥
करहिं न कतहुँ दुष्ट आचारा । संग द्वेष कछु नाहिं विकारा ॥

परहित लागि तजत जो माना। तेइ सुपात्र जग विदित महाना ॥
पर जब आवत आपत काला। हों अकाल में सबै बिहाला ॥
तबहिं दान दीजै सब काहू। अन्न वस्त्र औषध उत्साहू ॥

दो०–एक कहत ऋषिराज सों, मन अति प्रेम बढ़ाइ।
दाता किते प्रकार के, मोहिं कहहु समुझाइ ॥१८१॥

स्वामि कहत हैं तीन प्रकारा। उत्तम मध्यम अधम विचारा ॥
देशकाल अरु पात्र न देखै। सत विद्या नित धर्म न पेखै ॥
परोपकार अरु उन्नति हेता। देइ दान अरु रहै सचेता ॥
सो उत्तम दाता जगमाहीं। धर्मपन्थ पर चलहिं सदाहीं ॥
स्वारथ मानि चहै निज कीरति। दान करै मध्यम ताकी गति ॥
नीच कतहुँ उपकार न करई। वेश्यन में निशिवासर फिरई ॥
भाँड़ आदि मँगता जे नीचा। तिनहिं देत धनवारि उलीचा ॥
निन्दित कर्म करत दिन राती। हैं जेती जग मँगता जाती ॥
तिनके हित धन बहुत लुटावें। स्वाँग आदि बहु नृत्य करावें ॥
पात्र कुपात्र न करहि विचारा। दान देहिं नहिं लखहिं अचारा ॥

दो०--सहित परीक्षा दान जो, धर्मवन्त को देइ।
वह दाता उत्तम लखहु, अनहितनाहिं करेइ ॥१८२॥

जो कबहूँ कछु नाहिं विचारहिं। अन्धा धुन्ध दान करि डारहिं ॥
ते निकृष्ट दाता जग जानहु। दान क्रिया यहि भाँति प्रमानहु ॥
कहत एक सुनिए ऋषिराई। दान माहिं फल कौन लखाई ॥
कह ऋषि फल होवै सबकेरा। जो दाता देवहि सब बेरा ॥
कहत ऋषी सबको फल होवे। जस जस कर्मन को वह जोवे ॥
जिमि जग में जो डाकू चोरा। जात सो बंदी गृह बरजोरा ॥
ताही विधि प्रभु की है रीती। सुख दुख देत विचारिके नीती ॥
जाविधि कर्म करत निशिवासर। वैसेहि फल देवै प्रभु आगर ॥

दो०--गरुड़आदि जे ग्रन्थ जग, देखि होत अनुकूल।
सो यह वेद विरुद्ध हैं, सदा धर्म प्रतिकूल ॥१८३॥
जिमि जग होय एक को मित्रा। अरु ताके बहु होत अमित्रा॥
ताही विधि पुरान जग मानहु। और तंत्र आदिक तहँ जानहु॥
ये पुरान नहिं मानन योगू। है पशुता यह कह बुध लोगू॥
निरखहु शिवपुरान के माहीं। मुख्य त्रयोदशि सबन जताहीं॥
अरु दिन सोमवार शुभ कहहीं। रवि आदित्य वार जे अहहीं॥
या विधि ग्रह नक्षत्र बहु भाँती। मानत विविधभाँति सब जाती॥
लीला तिथिन सुनहु मनलाई। जा विधि लिखा पुरानन भाई॥
छं०--वावन एकादशि द्वादशी नरसिंह की मानत सबै।
शिव की त्रयोदशि अरु अनन्त चतुर्दशी जानत सबै॥
है चन्द्रमा की पूर्णिमा दिगपाल की दशमी अवै।
दुर्गा कि अष्टमि वसुकी नवमी मुनिनकी सप्तमि जवै॥१४॥
छठि स्वामि कार्तिक पंचमी तिथि नाग की बरनन करैं।
गणपति चतुर्थी गौरि तीज द्वितीय अश्वनि उच्चरैं॥
है प्रतिपदा अद्यादि देवी पित्रऽमावस जानिये।
यहि भाँति "इष्ट" सबै तिथी उपवास हित परमानिये॥१५॥
दो०--सब काहुन याही लिख्यौ, करै न अन्न अहार!
तब जानहु सब मनुज को, है फल की आहार॥१८४॥
इन तिथियन में अन्न जो खावहिं। ता कहँ पापीजन बतरावहिं।
बहुरि सुज्योतिष अधुनिक देखहु। है विचित्र लीला जो पेखहु॥
कहुँ दशमी एकादशि कहहीं। कहुँ एकादशि द्वादशि लहहीं॥
अरु यह कहत सबहिं समुझाई। पाप यकादशि अन्न समाई॥
पूछहु इनसों केहिके पापा। हैं तुम्हार या तुम्हरे बापा॥
यदि यह बात सत्य है भाई। तेहिदिन काहुहि दुख न लखाई॥
अंड बंड बहु कथा बनाई। नारि पुरुष दीन्हे भरमाई॥

कथा एकादशि तुम्हहिं सुनावहुँ । व्रतफल कहत जौन बतरावहुँ ।।
सो०--ब्रह्मलोक के माहिं, वेश्या एक तहाँ रही ।
लखि अपराधी ताहि, शाप भयो तेहि स्वर्ग में ।।१६।।
दो०--आइ गिरी सो धरनि पर, मृत्युलोक के बीच ।
व्याकुल ह्वै स्तुति करी, लेहु नाथ मोहिं खींच ।।१८५।।
अरु कह नाथ बतावहु मोहीं । मम अपराध क्षमा कब होहीं ।।
स्वर्ग बहुरि हम कब लगि आउब । तव दर्शन धौं कबहुँक पाउब ।।
मिल्यो ताहि उत्तर यहि भाँती । देहि एकादशि फल कोउ जाती ।।
व्रत फल पुन्य प्रतापहि पाई । ब्रह्मलोक पुनि अइहहु धाई ।।
सहित विमान गिरी केहु ठाईं । नृपति चरित पूछेहु है जाई ।।
तेहि वृतान्त नृपसन सब कहेऊ । तव नृप दूत बोलावत भयेऊ ।।
खोजहु नगर माहिं तुम जाई । व्रती एकादशि है कोउ भाई ।।
दूतन खोज करेउ बहु तेरा । तहँ न व्रती कोउ मिलेउ बसेरा ।।
दो०--एक नारि पति सों लड़ी, तिथी एकादशि माहिं ।
रिस बस तेहि खायो तबै, अन्नदूध कछु नाहिं ।।१८६।।
दूत तहाँ पर पहुँचे जाई । तासन कहेउ बहुत समुझाई ।।
आइ छुयो तेहि तुरत विमाना । वेश्या कीन्हेउ स्वर्ग पयाना ।।
देखहु व्रतफल कहत बुझाई । बिन जाने फल होत सदाई ।।
जानि रहत व्रत जो नरनारी । परम एकादशि है हितकारी ।।
सो फल भोगत हैं बहु भाँती । व्रत राखत जो मानव जाती ।।
या विधि कथा बनाइ सुनावहिं । मूढ़नको बहु विधि समुझावहिं ।।
जो यह बात सत्य हो भाई । तो हमहूँ मानव अधिकाई ।।
हम यक ताम्बूल को बीरा । पठउब स्वर्ग माहिं केहुँ तीरा ।।
दो०—तहाँ पान नहिं होत हैं, हम पठउब अधिकाय ।
जो न पानहू पहुँचई, तो सब झूठ लखाय ।।१८७।।

धनदा सुतदा नाम धरि, धर्यो कामदा नाम ।
नाम निर्जला आदि बहु, कहेउ सुफल सुखधाम ॥ १८८ ॥
पर इनको कछु दया न आई । जेष्ठ मास निर्जला बताई ॥
बहुतक रोगी यामहँ होवें । निज बल अरु पुरुषारथ खोवें ॥
बालक वृद्ध गर्भिणी नारी । नहिं उपवास केर अधिकारी ॥
पर यह पोप पेट के साथी । निज स्वार्थी अरु अधिक प्रमाथी ॥
याते तुम नहिं मानहुँ बाता । पोप फंद फँसिये नहिं ताता ॥
सम्प्रदाय तिन बहुत बनाये । नाना भाँतिन मंत्र रचाये ॥
वेदन की शाखा बहुतेरी । कहत लुप्त हो गईं घनेरी ॥
तिन महँ रही मूर्ति की पूजा । लिखी रही हुइहै केहूजा ॥
दो०--ऋग यकइस शत मानिये, यजुः एकशत एक ।
सामवेद की है सहस, अथरव की नौ नेक ॥ १८९ ॥
बहुतक इनमहँ मिलत न भाई । लोप करीं यवनन समुदाई ॥
कहत स्वामि भ्रम अपनो जानहु । शाखा को तुम वेद प्रमानहु ॥
मूल होइ जस शाखा तैसहि । जस कारन हो कारज वैसहि ॥
वेद मूर्तिपूजा न लखाई । स्वार्थिन निज हित लीन बनाई ॥
मूर्तिन से निन्दा बहु होई । राम कृष्ण शिव कीरति खोई ॥
कहहु कहा यह है नहिं निन्दा । मूर्ति बनाइ मँगावहिं चन्दा ॥
राम कृष्ण वृषभानु दुलारी । सीता पतिव्रता सुकुमारी ॥
तिनकी धूर्त बनावत मूर्ती । भीख मँगावें करैं अकीर्ती ॥
दो०--होत राम यहि समय जो, तौ कस होत अनर्थ ।
रामकृष्ण को नाम धरि, माँगि करत निजअर्थ ॥ १९० ॥
मन्दिर टूटि गयो केहुँ ठामा । कहुं चोरन लीन्हों सब जामा ॥
कहुं चूहन लै आँख निकारी । केहु दीन्हें बहु बसतर फारी ॥
राम खड़े मन्दिर के माहीं । बैठि पुजारी हर्ष मनाहीं ॥
कहुँ कहुँ ताला देत लगाई । कहहु कहा यह कौन बड़ाई ॥

यदि कोउ मूरति तोड़न लागे । हाहा करि सब तहँ से भागे ॥
मेलन माहिं बिलोकहु जाई । मुकुट क्रीट धरि राम बनाई ॥
भीख मँगावत मग के माँई । घंट बजाइ शंख सहनाई ॥
कहहु कहा ये राम दरिद्री । करत सो या विधि कर्म अभद्री ॥
दो०--शिरी लगावत माथ में, अहैं दरिद्री लोग ।
कहहु शिरी को यहै गुन, रहै तहाँ दुख भोग ॥१६१॥
आर्यवर्त के देस में, भई हानि सब भाँति ।
जब से पाथर पूजने, लागी मानव जाति ॥१६२॥
यदि न छुटी पाषान की पूजा । तौ दुख बाढ़ै करे अपूजा ॥
वाममार्गि अपराध बढ़ायो । महा पखंडी धूर्त लखायो ॥
मंत्र देहिं नाना विधि चेलन । क्रिया बतावहि मारन मोहन ॥
द्वेषण वशीकरन उच्चाटन । करत तंत्र नानाविधि साधन ॥
सुनहु मंत्र सों कछु नहिं होई । करत उपाय और कछु सोई ॥
कोउ सिद्ध बगुला मुखि[१] करहीं । अरु चामुन्डा[२] कोउ हियधरहीं ॥
कोउ भैरव[३] के बनहिं उपासक । अरु कोउ दुर्गा[४] केहों ध्यावक ॥
कोऊ मंत्र एकाक्षर[५] जपहीं । कोऊ त्र्यअक्षर[६] को उच्चरहीं ॥
दो०--इन सों कछु नहिं होत है, जानि लेहु सब कोइ ।
करत औरही जाल कछु, सम्भव होइ न होइ ॥१६३॥
जपहिं मंत्र उच्चाटन[७] हेता । मद्य मांस बहु भखैं निकेता ॥
भैरवचक्र जाइ जो कोई । अवशि मांस तहँ खाउब होई ॥
जो न करै तहँ मद्य अहारा । ताकहँ मारि करैं सब छारा ॥

१—ह्रां ह्रीं हू् बगुलामुख्यै फट् स्वाहा॥ ३—ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥ ३—भं भैरवाय नमः॥ ४—दं दुर्गायै नमः॥ ५—ह्रीं श्रीं क्लीं॥ ६—हूं फट स्वाहा॥ ७—मारय२ उच्चाटय२ विद्वेषय२ छिन्धि२ भिन्धि२ वशीकुरु२ खादय२ भक्षय२ त्रोटय२ नाशय२ मम शत्रून् वशीकुरु२ हुं फट स्वाहा॥ कामतंत्र उच्चाटन प्रकरण मं० ५७

बहुतक मनुष माँस हू खावें। बहुतक विष्ठा मूत्र चढ़ावें॥
चोलीमार्ग एक पथ तहँवाँ। बीजमार्ग पथ लखिये जहँवाँ।
चोलीमार्गिन क्रिया सुनावहुँ। गुप्त स्थान भेद बतलावहुँ॥
सब एकान्त जगह पर जाई। भूमि मध्य एक चिह्न बनाई॥
करत सबै तहँ मांस अहारा। पियहिं मद्य हों भ्रष्ट अचारा॥

दो०--नग्न होत नारी पुरुष, पूजत इन्द्रिय गुप्त।
कहि दुर्गा देवी सबै, पियहिं मद्य उनमत्त ॥१६४॥

नग्न पुरुष करि पूजन नारी। करत अधर्म कर्म व्यभिचारी॥
स्तन पर जो चोलि सुहाई। नारि निकारि धरहिं यक जाई॥
पुनि सब मस्त होहिं जेहि काला। वृद्ध युवा अरु यौवन वाला॥
तब जाकी चोली जो पावे। तेहि सन संग करै मन भावे॥
कछु विचार तहँ पर यह नाहीं। कोउ न पुत्रि बधू बिलगाहीं॥
चोली जाकी हाथ में आवे। तेहिक्षण वह तेहि नारि कहावे॥
जासु भाँति मद्यपि की करणी। होत तहाँ पर जो जग वरणी॥
प्रातकाल जब सब घर जाहीं। तहँ पर मातु पुत्रि पुनि कहहीं॥

दो०--बीजमार्ग की रीति यह, करहिं समागम दोय।
वीर्य्यमिलावहिंवारिमहँ, पियतरहत हैं सोय ॥१६५॥

करहिं कुकर्म चहें सो मुक्ती। और विचारत कोउ न उक्ती॥
नहिं विद्या नहिं सज्जनताई। नहिं विचार नहिं है गरुआई॥
एक कहत सुनिए ऋषिराई। पंथ शैव मोहिं श्रेष्ठ लखाई॥
कह तब स्वामि श्रेष्ठ केहि हेता। जस हैं वे वैसेहि यह नेता॥
पंचाक्षरी[1] मंत्र ये देहीं। भस्म रुद्राक्ष सुतनु पर लेहीं॥
पूजत लिंग पषाण बनाई। हर हर बम् बम्[2] शब्द सुनाई॥

---

[1] ओं नमः शिवाय॥ [2] कहते हैं कि जब भस्मासुर के सन्मुख से महादेव भागे थे तब बं बं ठट्ठे की तालियाँ बजी थीं इससे पार्वतीजी प्रसन्न होती हैं और महादेव अप्रसन्न।

बड़ बड़[१] करहिं अजासम[२] अहहीं। होत प्रसन्न शम्भु यह कहहीं ॥
व्रत प्रदोष शिवरात्री मानहिं। इनहीं सों सो मुक्ती जानहिं ॥

दो०--वामी जिमि भूले फिरहिं, तिमि भूले हैं शैव।
इन महँ नाथ गिरी पुरी, अरुगृहस्थभी शैव ॥१९६॥

कोउ दोउ मारग फिरहिं भुलाने। बाम मार्ग अरु शैव सयाने ॥
अरु केतिक वैष्णवहू होहीं। देत प्रमान तंत्र[३] यक जोहीं ॥
भीतर बाममार्गी रहहीं। बाहर शैव सबन सों कहहीं ॥
सभा मध्य जब पहुँचैं धाई। तबहीं वह वैष्णव बनि जाई ॥
स्वामि कहहु तौ वैष्णव नीके। तब कहस्वामिकवन विधिनीके ॥
देखहु वैष्णव की यह लीला। मानहिं विष्णुदास गुन शीला ॥
उन महँ यक चक्रांकित होहीं। मानत सर्वमान्य निज कोहीं ॥
तब यक वैष्णव बोलन लागा। मत हमार किमि श्रेष्ठ न लागा ॥

दो०--हमललाट में तिलक को, देत विष्णु पद जानि।
बीच श्री कोलखत सब, श्री वैष्णव सुखदानि ॥१९७॥

हम दूसर मानत नहिं अंगा। कबहुँ न दरश करत शिवलिंगा ॥
कारण श्री मम माथ विराजत। देखि लिंग शिव वह है लाजत ॥
करि स्तोत्र पाठ हम तबहीं। मंत्र सहित नारायण जपहीं ॥
कबहुँ न मांस मद्य हम खाहीं। पुनि हम किमिनहिं श्रेष्ठकहाहीं ॥
स्वामि कहत हरिपद नहिं होई। जो तुम माथे तिलक खचोई ॥

---

[१] कहते हैं कि पार्वती (सती) के पिता दक्षप्रजापति का सिर वीरभद्र ने काटकर अग्नि में डाल दिया था तब देवतों ने बकरे का सिर उनके धड़ पर लगा दिया था उसी के तुल्य बकरे का-सा शब्द करते हैं, तब पार्वती नाराज़ होती हैं, महादेवजी प्रसन्न होते हैं।

[२] बकरी के समान।

[३] अन्तः शाक्ता बहिश्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः। नानारूप-धराः कौला विचरन्ति महीतले ॥

यह रेखा बिरथा श्री मानत। निज हाथन जो रेख बनावत॥
बीच ललाट शिरी जब राजत। तो काहे तुम घर घर माँगत॥
नाना भाँतिन कथा बनाई। भक्तमाल लिखि सकल भुलाई॥

दो०--एक भक्त वैष्णव रह्यो, नाम जासु परिकाल।
करत महा छल कपट नित, डाका चोरि कुचाल॥१९८॥
धन दूसर को छीनिकै, देत वैष्णवन धाइ।
हर्ष बढ़ावत हिय महा, वैष्णव के ढिग जाइ॥१९९॥

वैष्णव परिकाल की कथा

यक दिन तेहिनमिल्यो कछुचोरी। ना कहुँ लूट न कहुं घर फोरी॥
अतिव्याकुल सो फिरत भुलाना। कियेबहुत विधि हृदय निशाना॥
भगत जानि नारायन तेहिछिन। भये सेठ आभूषण धरि तन॥
रथ चढ़ि ताके सन्मुख आये। रहे जहाँ परिकाल सुहाये॥
तुरत सेठ ढिग पहुँचो जाई। कहत देहु सब जो प्रभुताई॥
नारायन भूपनहिं निहारी। देन लगे परिकाल सम्हारी॥
भयो विलम्ब मुद्रिका माहीं। निकसत सो काहू विधिनाहीं॥
मुँदरी अँगुठा काटि निकारी। धरेहु झोलि महँ ताहि संम्हारी॥

दो०--धारि चतुर्भुज रूप तब, नारायण तेहि काल।
दर्शन दै प्रिय भक्त कहँ, कीन्हों ताहि निहाल[1]॥२००॥

देखी नारायण की रीती। महा कुपन्थ भक्त सन प्रीती॥
चोरि लूट में जो धन पाई। देत सबै वैष्णव समुदाई॥
धन्यवाद नारायण दीन्हा। वैष्णव की सेवा चित चीन्हा॥
अरु यक साहूकार कहानी। जो परिकाल केर मनमानी॥
भरि जहाज पुन्गीफल[2] लादत। यक की आधी तहाँ मिलावत॥
अरु यह ताकहँ दीन्ह लिखाई। अर्ध सुपारि हमारिहु भाई॥
जब निज बन्दर[3] पहुँच जहाजा। आयो तहँ परिकाल समाजा॥

---

[1] प्रसन्न कर दिया। [2] सुपारी। [3] जहाज़ के ठहरने की जगह।

दीजै हमहिं हमार सुपारी । साह तुरत सोइ दीन निकारी ॥
दो० --तब झगड़ा परिकाल किय, अर्ध भाग लिय बाँट ।
लै लदाइ घर को चले, दीन्ह वैष्णवन डाँट ॥२०१॥
तब बैरागिन मूर्ति बनाई । निज निज मंदिर में रखवाई ॥
इनकी कथा कहाँ लगि कहहीं । डाकू चोर संग सब रहहीं ॥
यदि कछु साँच होय कोऊ नर । रहे संग होअज्ञ अधिकतर ॥
नाना भाँति तिलक अरु छापा । धारि करत हैं बहु परितापा ॥
भाँति भाँति के रूप बनावहिं । तनिकसोकतहूँनहिं शरमावहिं ॥
भक्तमाल यक कथा सुनावत । वृक्ष निकट कोउ आइ विराजत ॥
मृत्यु भई ताकी तेहि काला । काक बीट मस्तक पर डाला ॥
सोइ बनिगयो तिलक आकारा । मानहुँ वैष्णव चिन्ह प्रचारा ॥
तब यमदूत तहां पर आये । दूत वैष्णव हूँ नियराये ॥
दो--दोहुन में खटखट भई, कौन याहि लै जाइ ।
वैष्णवदल तेहि लैगयो, निजवैकुण्ठ सिधाइ ॥२०२॥
कहहु तिलक की यहै बड़ाई । समुझे बीट तिलक सुखदाई ॥
मस्तक श्री अरु मांगहिं भीखा । कहा कहहु याही है सीखा ॥
बगुला भगत बने सब डोलत । गाँजा भाँग चरस मद भोगत ॥
यदि कोउ पढ़न लगै मनलाई । तौ ताकहँ बहु विधि समुझाई ॥
जो कोउ पढ़त मरत सोऊ जन । दन्त कटाकट करहिसोकेहिसन ॥
धाम चारि फिरि सन्तन सेवा । भजहि राम नित खावहिं मेवा ॥
मूरख बुद्धिहीन जो चहहू । तो एक खाखी को तुम लहहू ॥
श्रीगणेश कहिबो नहिं आवै । सबको ऊटपटाग बतावै ॥
दो०--भंग धतूरा संखिया, पियहिं खूब छकि सोय ।
नंगे रहि धर्मी बनहिं, भीख माँगि के जोय ॥२०३॥

अस सुनि खाखी[1] बहुतरिसाना । चिमटा मारहि अस हिय ठाना ॥
अरु अस बोल्यो सबन सुनाई । सुनहु सकल संतन प्रभुताई ॥
तुम सब साधु कर्म का जानहु । सन्त स्वभाव अपूर्व प्रमानहु ॥
तुम काहू संग अटके नाहीं । नतु कपार फूटत सब ठाहीं ॥
जब अस मूरख भे जग आई । होय न किमि अधर्म अधिकाई ॥
दिन प्रति नसा पियहिं ये भाई । बनहिं प्रमादी करहिं लड़ाई ॥
घंटा शंख बजै घड़ियाला । धुनी रमाइ बिछावत जाला ॥
नाना भाँतिन भेष[1] बनाये । निज शिष्यन कहँ हैं अपनाये ।
दो०--तपत रहत निशि दिवस सब, सुनत सु अनहद शब्द ।
सुरति कहत मन वृत्ति को, सन्त कहत यह शब्द ॥ २०४॥
अरु तूंबे का मंत्र[2] पढ़ावहिं । होइ पवित्र सो विधि करवावहिं ॥
याते बढ़हि न आत्म विचार । जो यह है शिशु खेल प्रचार ॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । नानक मारग परम सुहाई ॥
मूरति पूजा ते नहिं गहहीं । होहिं न साधु गृहस्थी रहहीं ॥
यवनन ते बहु लोग बचाये । जाति भेद तजि सब अपनाये ॥

---

[1] —खाखियों का अड्डा-दर्शक आये और दण्डवत कर बैठ गये । एक कहता है-रामदासिये ! (उत्तर) हाँ, महाराज-तैंने विसुन सहसर नाम पढ़ा है ? अरे गोविन्ददासिये ! (उत्तर) हाँ, महराज । तैंने राम सतवराज पढ़ा है ? हाँ, महराज, अमुक खाखी जी के पास—

खाखी-अरे चलबे छोकरे, हम किसी को गुरू नहीं मानते । परागराज में रहते थे, आखर नहीं आता था । किसी लम्बी धोतीवाले पंडित को देखा तो पूछा कि यह कलंगीवाला अक्खर क्या है ? ऐसेही पूछता-पूछता अठारह अध्याय गीता रगड़ मारी ।

[2] —नाथों का मंत्र—नमः शिवाय । खाखियों का मंत्र—नृसिंहाय नमः । रामावतों का—रामचन्द्राय नमः, सीतारामाभ्यां नमः । कृष्ण +

देखहु तिन यह मंत्र[१] बनावा । अर्थ तासु मोहिं परम सुहावा ॥
करता पुरुष सत्य है नामा । नहिं आवत योनिन केहु ठामा ॥
है अकाल मूर्ती निर्वैरा । है सब जगत जो नानक हेरा ॥
तब स्वामी कह सुनिये भाई । नानक पन्थ पवित्र लखाई ॥

दो०--पर वे विद्या हीन हैं, अज्ञानी अभिमानि ।
जो भाषा ग्रामीण है, तेहिं जानत सुखखानि ॥२०५॥

जानत हैं संस्कृत कछु नाहीं । निर्भय को निर्भौ समझाहीं ॥
अरु अभिमान करत बहुतेरा । दम्भी बनि सब काहुन हेरा ॥
वेद विरुद्ध कही सब बाता । बनिगे जगत गुरू सुखदाता ॥
यदि नानक जी जानत भेदा । पढ़त शास्त्र जो मानत वेदा ॥
तौ कबहूँ या विधि जग आई । करत न ते ऐसी गुरुआई ॥
भये पंचाल देश के माहीं । नानक जन्म लीन्ह तेहि ठाहीं ।
तेहि क्षण यवन महा दुखदाई । पीड़ित करत आर्य्य समुदाई ॥
तब नानक यक पन्थ चलावा । यवनन सों तिन बहुत बचावा ॥

दो०--नानक चन्द्रोदय लिखी, तिन पीछे महराज ।
जन्म साखिहू लिखत भे, बहु कर्तब उपराज ॥२०६॥

नानक जी की झूठ कहानी । शिष्यन लिखी बहुत मनमानी ॥
या महँ नानक को नहिं दोषा । चेलत नाना विधि सों पोषा ॥

+ उपासकों का – श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः, नमो भगवते वासुदेवाय ।
बंगालियों का—गोविन्दाय नमः ।

जल पवित्तर थल पवित्तर और पवित्तर कुँआँ ।
शिव कहे सुन पारबती तूँबा पवित्तर किया ॥

[१] ओं सत्य नाम करता पुरुष निर्भौ निर्वैर अकालमूर्ति अजोनि सह भे गुरुप्रसाद जय आदि सच जगादि सच है भी नानक होसी भी सच । 'जपजी'

दूसर गुरु भे पुत्र उदासी । भये निर्मले तीसरे खासी ।।
और भये बहुतक तहँ आई । निज भाषा रचि ग्रन्थ मिलाई ।।
गुरु गोविन्द दशम गुरु भयेऊ । तिन सब ग्रन्थ कियो एक ठयऊ ।।
ताके बाद बढ़्यो कछु नाहीं । पुस्तक लेख ग्रन्थ के माहीं ।।
नाना भाँतिन कथा बनाई । है पुरान सम दी दरसाई ।।
यवनन अत्याचार विशाला । कियो बहुत विधिसोंतेहिकाला ।।
तब गुरु गोविन्द बानि सुनाई । है वरदान सुनहु सब भाई ।।
खड्ग एक देवी ने दीन्हा । हमहिं एक अधिकारी चीन्हा ।।
और कहा तुम करहु लड़ाई । जाय यवन दल करहु सफाई ।।
साथी बने बहुत तेहि काला । देखत यवनन केर हवाला ।।

सो०--वामिन पंच मकार, किय सकार चक्रांकितन ।
गुरु ने पँच ककार, कियो सबुन आदेश यह ।।१७।।

दो०--कंकन, केश, कड़ा सहित, कंघी, कच्छ विधान ।
अरु कटार बाँधत सबै, करहिं सुयुद्ध निदान ।।२०७।।

ये सब युद्ध केर सामाना । प्रतिक्षण शिष्य सोधारहिं बाना ।।
नहिं मूरति पूजक ये भाई । देत ग्रन्थ साहब शिरनाई ।।
ये भिन्नता प्रचारन वारे । तजहु पंथ सब जो हिय धारे ।।
अरु सब चलहु वेद अनुकूला । दुरभिमान त्यागहिं सब शूला ।।
कहत एक ऋषिवर सों आई । दादू पंथ हमहिं अति भाई ।।
स्वामि कहत अति परम सुहावन । वेद मार्ग ही है जग पावन ।।
यदि गहि सकहु गहहु हर्षाई । नाहिंन पंथन डूबहु जाई ।।
दादू जन्म भयेउ गुजराता । अरु अजमेर रहे सो ताता ।।
तहाँ तेल बेच्यो बहु भाँती । पुनिनिज पन्थ चलाइ सुहाती ।।

दो०--ईश त्यागि दादू भजहिं, देखहु देश की रीति ।
दादू पन्थ कहाइ कै, मानहिं मुक्ती नीति ।।२०८।।

राम सनेहिन सुनहु प्रमाना। खान-पान में रहत भुलाना ॥
ते नहिं करत मूर्ति की पूजा। आपनि करवावत नित पूजा ॥
नारिन महँ सो रहत भुलाने। बिना नारि नहिं आनन्द माने ॥
अब तिनको कछु सुनहु हवाला। भयो एक साधू तेहि काला ॥
नाम सु रामचरण सब कहहीं। जन्मेंउ शाहपुरा सो अहहीं ॥
राम राम ही मंत्र बतावत। सोइ सिद्धान्त आइ ठहरावत ॥
तिनहू को यक ग्रन्थ लखाई। सन्तदास की बानि सुहाई ॥
राम कहे ते छूटहिं पापा। कर्म जो बन्धन अरु सब तापा ॥

दो०--कर्मकेर फल कटत कब, यह सब लेहु विचारि।
पाप पुन्य जो करत जग, भोगत अवशिमझारि ॥२०६॥

पाप बढ़ावन की है रीती। जो गुरु लोगन की है नीती ॥
रामचरन जो बचन बनाये। सो हम तैसेहि तुमहिं सुनाये ॥
इन बचनन[1] के अर्थ बिंचारहु। अरु बुधि विद्या सकल निहारहु ॥

---

[1] —महिमा नाव प्रताप का, सुणौ सरबण चितलाइ।
रामचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड़ जाइ ॥ १ ॥
जिन-जिन सुमिरयां नामकूँ, सो सब उतरयां पार।
रामचरण जो बीसरयां, सो ही जम के द्वार ॥ २ ॥
राम बिना सब झूठ बताया ॥ ३ ॥
राम भजत छूट्या सब कम्मा। चन्द्र औ सूर देह परकम्मा ॥ ४ ॥
राम कहे तिनकूँ मैं नाहीं। तीन लोक में कीरति गाहीं ॥ ५ ॥
राम रटत जम जोर न लागा ॥ ६ ॥
राम नाम लिखि पत्थर तराहीं। भगत हेत औतारहि धरहीं ॥
ऊँच नीच कुल भेद विचारै। सो तो जन्म आपणो हारै ॥
संता के कुल दीसैं नाहीं। राम राम कहि राम सम्हाहीं ॥
ऐसो कुण जो कीरति गावे। हरिहर जनको पार न पावे ॥
राम संतों का अन्त न आवे। आप आपकी बुद्धि सम गावे ॥

रह्यो पुरुष सो अति ही सीधा। बिन विद्या मूरखता बींधा॥
राम नाम ते छूटत कर्मा। यह विश्वास मात्र है भर्मा॥
जन्म अकारथ आपन खोवत। अरु औरन दुखसागर बोरत॥
राज सिपाही डाकू चोरा। व्याघ्र सर्प बीछी घरफोरा॥
भय न छुटत जब राम उचारे। बिन आतम बल आप निहारे॥
निशि दिन राम राम रटिडारैं। नहिं हम कछु सारांश निहारैं॥
जिमि कोउ मुख से शकर उचारे। ना मुख मीठ न छुधा निवारे॥

दो०--रामसनेही नाम धरि, करत राँड़ सन नेह।
करि पाखण्ड सुदेश में, नाश करत निज देह॥२१०॥

राम चरित यदि धारत हिय बिच। तौविधिवतसबदल आवतखिच॥
साधुन की गति देखन चहहू। जाइ तीरथन कौतुक लहहू॥
पन्थ सु रामदेव है दूसर। चेला करत रहत वह खूसर॥
गुरु के नख अरु दाढ़ी बारा। करत नहैं कबहूँ तेहि न्यारा॥
इनहू अपनी साखि[1] बनाई। अरु सब शिष्यन दीन पढ़ाई॥
बहु पुस्तक यहि भाँति बनाये। नारि हेत यह कर्म गिनाये॥
निज पतिसेवा पाप बतावहिं। सेवा गुरू धर्म ठहरावहिं॥
ते वरणाश्रम कछु नहिं मानहिं। होत सनेही उत्तम जानहिं॥

दो०--कहत एक ऋषिवर सुनहु, ये भोगत सुख भोग।
गोकुलिये गोसाइँ जो, यशवन्ती सबलोग॥२११॥

स्वामि कहत जो इन ढिग आहीं। वह प्रभुता इनकी है नाहीं॥
यह सब गृहस्थन केरि कमाई। छल सों जो है इन अपनाई॥
कोउ गोलोक चरित बतरावहिं। कोउ गोकुल केकान्ह गनावहिं॥

---

[1] —साखी—पण्डिताइ पानें पड़ी ओ पर्बली पाप।
राम राम सुमिरयाँ बिना, रहि गये रीतें आप॥
वेद पुरान पढ़े पढ़ि गीता। राम भजन बिन रह गये रीता॥

यह मत तैलँग देश ते आयो। लछिमण भट्ट जाहि दर्शायो ॥
करि विवाह त्यागे पितु माता। त्यागि नारि त्यागे सब ताता ॥
काशी आइ लीन्ह संन्यासा। नहिं राखो कछु घर की आसा ॥
मात पिता नारी सुधि पाई। ढूंढ़्यो इनहिं तहाँ पर आई ॥
जेहि संन्यास दीन्ह तहँ जाई। नाना विधि सों रुदन मचाई ॥

दो०--कह्योनारि यहिभाँतिसों, दियो जो है संन्यास।
मो पति मोहिं मिलाइये, तनु दीजै संन्यास ॥२१२॥

तब गुरु ताको तुरत बुलावा। अरुबहुविधि सोंतेहि समुझावा ॥
मिथ्या बचन कहे जेहि भाँती। कियो दोष तुम जो गुरु घाती ॥
याते त्यागहु तुम संन्यासा। बनहु गृहस्थ तजहु ममआसा ॥
मानि लीन्ह गुरुके यह बचना। जानि दोष औगुन सब अपना ॥
नारि संग सो गृह को गयऊ। तहँ न जाति वालेन तेहि लयऊ ॥
काशी निकट चरणगढ़[1] अहई। तासु समीप अरण्य सुहाई ॥
तेहि बन पुत्र गयो कोउ त्यागी। गयो लगाइ चहूँदिशि आगी ॥
लछिमण भट्ट ताहि अपनायो। लै तेहि बालक पुत्र बनायो ॥

दो०--पुनि काशी में जा रहे, नारि पुत्र के साथ।
युवा भयो विद्या पढ़ी, सब छात्रन के साथ ॥२१३॥

विष्णु स्वामि के मन्दिर धाई। बनेउ शिष्य केहु स्थल जाई ॥
तहँ से पुनि काशी सो आवा। लीन्ह महा संन्यास सुहावा ॥
बीत्यो कछुक काल यहि भाँती। मिल्यो विप्र जो रह्यो कुजाती ॥
कह त्यागहु संन्यास उछाहू। मोर सुता सँग करहु विवाहू ॥

१—चरणाद्रिगढ़ जिसको इस समय चुनार कहते हैं किसी समय इसी को नैनागढ़ भी कहते थे। यह भर्तृहरि के समय का बताया जाता है। अब सरकार के अधीन है और लड़कों का जेलखाना है। इसमें भर्तृहरि की समाधि बनी है और सुनवां के विवाह का मंडप बना है।

तबतेहि ब्याह कीन्ह अनुरागी। नारि हेत संन्यासहिं त्यागी॥
जो पितु कियो कियोसुत सोई। बीज स्वभाव न त्यागन होई॥
नारि सहित तहँ रहन न पावा। गुरु मन्दिर जहँ पर्म सुहावा॥
गयो तवै व्रज भूमि पराई। तहाँ आपनी थाप जमाई॥
तहँ मूरख बहुतक अपनाये। अरु बैष्णव चौरासि बनाये॥
साधन मन्त्र[1] लिये द्वै मानी। एक समर्पण[2] यक है दानी॥
दो०–शिष्यन को करवावते, शिष्य समर्पण आय।
तंत्र क्लीं कृष्णेति यह, वल्लभ को समुदाय॥२१४॥
वाम मार्ग को भेद है, करत गोसाईं संग।
गोपी वल्लभ ऐति कहि करत नारि सत्संग॥२१५॥
कहा कृष्ण गोपिन के प्रेमी। नारि संग को करत अनेमी॥
हमरी जानि कृष्ण अस नाहीं। जो तुम कहत रहत सब ठाहीं॥
वर्ष सहस्र वियोग बतावहु। कृष्णकेरिकहि जो समुझावहु॥
यह है सकल गल्प की बाता। मानहु इनहिं न कोई ताता॥
औरहु इनकी बहुतक लीला। बहुतक कथा अहैं अशलीला॥
मूल तत्त्व देखहु यह भाई। है गोसांइ मत जहँ दरशाई॥
है सिद्धान्त रहस तेहि नामा। लिखा बहुत विधिहै तेहिठामा॥
श्रावण मास पक्ष एकादशि। दर्शन कृष्ण भयो ताही निशि॥
दो०–दरश कौनविधिसों भयो, कहहु सो वल्लभ काहिं।
सहस पंच बीत्यो समय, बीत्योकृष्णव्रताहिं॥२१६॥

---

[1] १—मंत्र-श्रीकृष्णः शरणं मम। क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा॥ (गोपाल-सहस्रनाम)

[2] २—श्रीकृष्णः शरणं मम, सहस्रपरिवत्सरमितकालजात कृष्णवियोगजनिततापक्लेशानन्ततिरोभावोऽहंभगवतेकृष्णायदेहेन्द्रियप्राणान्तः-करणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तिवित्तेहपरायणात्मना सह समर्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि।

अरु यह कहत दोष छुटि जावें । जो कोउ वल्लभ मत में आवें ॥
पर हम देखत हैं दिन राती । जात न है दारिद सुखघाती ॥
पाँच दोष मानत नहिं कोई । गोसांई अनुचर जो होई ॥
एक जो सहज स्वभाविक होई । दूसर केहू पाप करोई ।
तीसर भक्षाभक्ष की रीती । अरु मिथ्या भाषण जो नीती ॥
है चातुर्थ कुसंगति जानहु । चोरिआदि व्यभिचार प्रमानहु ॥
पंचम जो नहिं छुअन के योगा । तिनहिं छुअत हैं जो कहुँ लोगा ॥
मानत इनहिं कतहुँ ते नाहीं । है गोसांइ सिद्धान्त सदाहीं ॥
याते चेलन के उर भरहीं । गुरु अर्पन बिन भोग न करहीं ॥

दो०—वस्तु कोई संसार में, भोगि सकत वह नाहिं ।
जौलगिनहिंअर्पनकरै, गुरू हेत चितचाहि ॥२१७॥

जौ लगि करत न अर्पन भाई । तौ लगि रहत अशुद्ध सदाई ॥
केतिक अवगुन करै जो कोई । बनत गोसाइँ ब्रह्मवित होई ॥
अबहीं सुनहु हमारी बाता । त्यागहु पंथ जौन दुखदाता ॥
वेदविरुद्ध जो है जगमाहीं । सो है त्यागन योग सदाहीं ॥
अबलगि जो कछु कियो कुभाऊ । मिथ्या चार अधर्म सुभाऊ ॥
सुफल करहु अब मानुष को तन । धारहु चारि पदारथ को मन ॥
धर्म अर्थ कामादिक पाई । जाहु मोक्ष ढिग तुम नियराई ॥
पुष्ट मार्ग नहिं समुझहु याही । जो तुम भोगत रहत सदाहीं ॥

दो०--याविधि जाल रचाइकै, नरन भुलावा दीन ।
आइ फंसे भोले पुरुष, निजतन अर्पनकीन ॥२१८॥
कृष्ण मानते आपको, और कहत समुझाइ ।
नरन उबारन हेत ही, हम जन्मे हैं आइ ॥२१९॥

जौ लगि मम उपदेश न मानत । तौ लगि वह गोलोक न पावत ॥
पुरुष तहाँ यक कृष्णबिहारी । अरु सब नारि महा सुकुमारी ॥

जेतिक शिष्य गोसाइँ केरे। बनहिं जाइ गोपी तनु हेरे॥
सोचहु तनिक विचार दृढ़ाई। सुधरत कौन नारि ढिग जाई॥
जहँ दो नारि-पुरुष यक रहई। होहिं अधिक तो कस गति लहई॥
नारि डाह हिय रहत सदाई। भोगे बिपति पुरुष अधिकाई॥
जो यह कहत कृष्ण प्रभुताई। करत प्रसन्न सबन अपनाई॥
ताते नारि स्वामिनी होहीं। कहा समर्थन है तेहि कोहीं॥

दो०--कहहु कहा गो लोककी, कौन बड़ाई आइ।
जग तहँ नरनारी रहत, भोग करत सुखदाइ ॥२२०॥

जिमि यहिलोक माँहि बहुरोगा। ताही विधि गोलोक सुभोगा॥
सुनि के खेद होत मनमाहीं। कहत कहा गोलोक सराहीं॥
मृत्युलोक जो आवत भाई। लै अवतार मनुज सुखदाई॥
राग द्वेष दोऊ यहँ रहहीं। तेहि गोलोक कोउ नहिं कहहीं॥
जो यह कहहु तहाँ नहिं रोगा। यह किमि होत विचारहु लोगा॥
अविश रोग होवे जहँ भोगा। तौ केहिबिधि गोलोक न रोगा॥
बहुतक नारि कृष्ण की आहीं। कहहु कहा तिनके सुत नाहीं॥
जब गोलोक कृष्ण अरु नारी। तौ न होत किमि उत्पति जारी॥
यदि यह कहहु पुत्रही होई। अथवा पुत्रि जनत सब कोई॥
या दोनों उपजत तेहि ठामा। भये तहाँ पर नर अरु बामा॥

दो०--मृत्युलोक के सदृश तग, जानि लेहु गोलोक।
कौन बड़ाई लहत नर, जाइ गऊ के लोक ॥२२१॥

सबहिं गोसाइँ इमि अपनावहिं। तनमनधन अर्पन करवावहिं॥
नारिन को तन पुरुष अधीना। पुरुष शरीर नारि आधीना॥
मन अर्पन होवे केहि भाँती। तनसँग रहत इन्द्रिगन जाती॥
अरु धन की गति यहहै भाई। बिनमन किमि अर्पन हुइ जाई॥
इन लीला बहु भाँति रचाई। और कमावें खाहि गोसाई॥
विद्याहीन मूर्ख अधिकाई। चरन पुजाये घर घर जाई॥

तहँ पर बैठि मौन ह्वै रहहीं। पूछेहु पर सो कुछ ना कहहीं॥
यदि कछु बोलि देहिं तेहि काला। तौखुलि जाइ जो बाँध्यो जाला॥

दो०--मूरख को बल मौन है, कहत याहि बुधलोग।
सोइ रीति निज हियधरत, छुटै न कोऊ भोग॥२२२॥

आवहिं नारि करहिं पधरौनी। निर्खत तिनहिं विचारत होनी॥
जासु ओर देखहिं गोसाँई। जन्म सुफल ताकहँ ह्वै जाई॥
माता पिता बन्धु अरु भ्राता। देखि सिहात कहतनहिं बाता॥
और देत आज्ञा यहि भाँती। गुरु की सेवा करहु सुहाती॥
मृत्यु समय धारत पग छाती। जो कछु मिलहिरखावत थाती॥
समय विचारि गोसाँई आवत। नारिन सों पूजा करवावत॥
तैल लगाइ नारि नहवावहिं। पुनि पीताम्बर को पहिरावहिं॥
अरु धोती लै सकल निचोरहिं। करहिं आचमन पुनि करजोरहिं॥

दो०--बीड़ा पान लगाइकै, देत गोसाइँ जाइ।
पान खाइ बीरा चबत, थूकत पीक बनाइ॥२२३॥

मुख्य प्रसाद ताहि सब कहहीं। आचमनकरहिंशिष्य जो अहहीं॥
बहुतक अनाचार की रीती। पंथ गोसाइँ माँहिं जो नीती॥
बेचत भोग बजारन जाई। महा कुपन्थ सोहिं दर्शाई॥
डूबत आप डुबावत औरन। करत कुकर्म सदा सब ठोरन॥
पूछत एक ऋषी सों भाई। नारायण मत कस दर्शाई॥
तब स्वामी कह वैसेहि मानहु। जस देवी तस वाहन जानहु॥
धन हित करत गोसाँई लीला। वैसहि याही मत का हीला॥
सुनहु सुनावहि एक कहानी। सहजानन्द केर गुन मानी॥

दो०--नगर अयोध्या के निकट, एक ग्राम के बीच।
जन्मे सहजानन्द तहँ, अति स्वभाव के नीच॥२२४॥

बनि ब्रह्मचारी गयो बिदेशा। जहँ गुजरात कच्छ भुजदेशा॥

तेहि देखेउ तहँ मूरखताई । फैलाई अपनी प्रभुताई ॥
कछु चेला तहँ लीन्ह बनाई । ते सब कहन लगे गुरुराई ॥
श्री नारायण लिय अवतारा । सहजानन्द परम सुखसारा ॥
सो काठियावाड़ में जाई । चतुर्भुजी निज मूर्ति देखाई ॥
भूमिपती यक दादाचाखर । सहजानन्द कियो तेहि आदर ॥
था तम अधिक तहाँ लै जाई । बाँधि मुकुट निज मूर्ति देखाई ॥
बनेउ चतुर्भुज हाथ लगाई । तेहि लीला नृप तब लखिपाई ॥
दो०--नृपति फँसेउ अति जालमें, जाइ कोठरी बीच ।
चतुर्भुजी देखराइकै, पुनि बैठ्यो तन खींच ॥२२५॥
या विधि तेह जमाइ जड़ लीन्हीं । मूरख जनता को बस कीन्हीं ॥
कबहुँ काहु को मूर्छित करई । नस दबाइ कौतुक उर धरई ॥
है दृष्टान्त एक जग माहीं । कहत जो बुधजन सबनसराहीं ॥
करत चोरि पकरेउ यक चोरा । राज सभा लायहु बरजोरा ॥
राजा नाक कान तेहि काटी । अरुसमुझावहु बहुविधि डाटी ॥
राज त्यागि वह गयो पराई । सोचत करिये कौन उपाई ॥
यक दिन नाचन गावन लागा । ह्वैप्रसन्न कह मम बड़ भागा ॥
कह नारायण मोंहि देखाई । मोहिं आनन्द भयो अधिकाई ॥
यह कह हमहिं देखात न भाई । कारन नाक न तुम्हहिं देखाई ॥
तुमहूँ नाक कटावहु आई । प्रभु के दर्शन करहु सदाई ॥
दो०--ईश दरश की चाहहित, नाक कटावत जाय ।
जिमि चलनी में दूध दुहि, पुनिपाछे पछिताय ॥२२६॥
नाक काटि याविधि समुझावा । कहहु तुमहुँ दर्शन है पावा ॥
नतु तुम कहँ हँसिहैं सब लोगा । बने समाज होत सुख भोगा ॥
याविधि बहुतन नाक कटाई । मुख की शोभा सबन गवाँई ॥
नृप यक बसत रहेउ तेहि ठामा । विद्या रहित अविद्या धामा ॥
नारायण दर्शन सुधिपाई । नाक कटे देखत प्रभुताई ॥

सो उन साधुन के ढिग गयेऊ । कहत ईश दर्शन किमि भयेऊ ॥
राजहिं तिन समुझाइ सुनीती । नारायण दर्शन की रीती ॥
तब नृप मानि बात सो लीन्ही । मुहूर्त बिचारन आज्ञा दीन्ही ॥

दो०--मुहूर्त बिचारत ज्योतिषी, नाक कटन को काल ।
कस न होइ संसार में, बिप्रन को बेहाल ॥२२७॥

अहह पोपजी धनि जग माँहीं । नाक कटै सो मुहूर्त बताहीं ॥
प्रात काल दशमी तिथि आवे । आठ बजे जो नाक कटावे ॥
सो नारायण दर्शन पावहिं ; नारायण पंथी कहलावहिं ॥
वृद्ध सचिव यक रहेउ तहाँई । नाक कटन की तेहि सुधि पाई ॥
सोचत हृदय बहुत पछिताई । यह नृप के मन केहि विधि आई ॥
गयो सचिव तब नृप के पासा । कहेउ नाथ तुम्हरी का आसा ॥
तब कह नृपति दरश हम करिहैं । नारायण स्वरूप हिय धरिहैं ॥
आज मुहूर्त बनेउ है नीको । करि दर्शन त्यागहिं भय जीको ॥

दो०--तब मंत्री या भाँति सों, कहत नृपति समुझाय ।
पहिले हम दर्शन करहिं, ता पीछे नृपराय ॥२२८॥

दो०--नृपति कह्यो हे सचिवसुनु, करत कहा संकोच ।
हम डेरात नहिं नाककोे, हृदयन है मम पोच ॥२२९॥

तब मंत्री या विधि समुझाई । बिना परीक्षा करत जो भाई ॥
सो पाछे बहु विधि पछितावे । करिके कार्य दुःख अति पावे ॥
कह नृप सहस पुरुष का झूठे । जो तुम इनहीं सों हौ रूठे ॥
झूठसाँचहम कछु नहिं जानहिं । बिन परखेसो केहि बिधिमानहिं ॥
तब पुनिपरख होहि केहिभाँती । कहत मंत्रि यक बुद्धि सोहाती ॥
जो हो सृष्टि कर्म अनुकूला । अरु प्रत्यक्ष प्रमाण समूला ॥
तब नृप कहत मूर्ख जो अहहीं । सो केहि भाँति परीक्षा लहह ॥
कहत मंत्रि सुनिये नृपराई । जो अति मूर्ख हृदय कदराई ॥

सो मानहिं विद्वानन बाता। संग ते ज्ञान वृद्धि हो ताता ॥
दो०--नृपति कहेउ विद्वानवर, जो न मिलहि तेहिकाल।
कहत सचिवपुरुषार्थ सों, ढूंढ़िलेत सबजाल ॥२३०॥
नृपति कह्यो जो होय रजाई। करहुँ सोइ जो कहहु उपाई ॥
तब कह सचिव बूढ़ मैं भयऊ। घर बैठे थोड़े दिन जियऊँ ॥
प्रथम परीक्षा हम करि लेहीं। पाछे तुम्हहिं सीख हम देहीं ॥
तब पण्डित को पुनि बोलवाई। बहुरि मुहूरत तुरत देखाई
कह पण्डित शुभ लगन सुहाई। जो श्रीमान देत बतराई ॥
कह्यो सचिव सेना सँग लीजै। द्वै सहस्र को आज्ञा दीजै ॥
कह नृप सैन्य केर कह होई। सचिव कहत नहिं जानत सोई ॥
नियत समय सेना तहँ जाई। जहाँ रहे नकटा समुदाई ॥
देखि नृपति सब नाचन लागे। नारायण दर्शन अनुरागे ॥
दो०--सचिव कहेउ गुरुवर सुनहु, हमहिं देखावहु ईश।
महाराज पुनि दरश करि, सबन झुकावहिं शीश ॥२३१॥
ठीक मुहूरत के समय, थाल छुरी लै हाथ।
नाक काटि थाली धरी, कहत कान गहि माथ। २३२॥
अब तुम कहहु ईश हम देखा। नाक कटे की यहहि विशेखा ॥
तब नृप आइ सचिव सन पूछत। कहहु कहा नारायण सूझत ॥
कहत सचिव कछु नाहिं देखाई। यह सब इनकी मूरखताई ॥
अब प्रभु इनहिं दंड अस दीजै। पूरे जन्म कैद कर लीजै ॥
अरु जेहि ने यह रीति चलाई। ताकहँ गर्धभ देहु चढ़ाई ॥
कालो मुख करि नगर घुमाई। पुनि श्वानन सों देहु नोचाई ॥
ताते कोउ न करहि अस ढोंगा। बनहि न पंथ न हो कोउ पोंगा ॥
ऐसी ही पंथन की लीला। धन लीन्ह्यो नाना करि हीला ॥
दो०--याविधि बहुतक भे जगत, वेद बिरोधी लोग।
स्वामी नारायण भये, सहजानन्द अयोग ॥२३३॥

अरु बहुतक याविधि बहकावें। मृत्यु काल पर यह समुझावें॥
सहजानन्द लखहु ये आये। श्वेत अश्व पर परम सुहाये॥
नित प्रति मन्दिर में सो आवत। आजु तुम्हार मुक्तिहित धावत॥
ऐसी बहुतक कहत कहानी। हैं गढ़ि लीन्ह बहुत मनमानी॥
अपने को सत्संगि बतावहिं। अरु कुसंगि दूसर ठहरावहिं॥
सब वर्णन पर लिय कर बाँधी। रचि के पंथ जो माया साधी॥
कहत सदेह जात सब कोई। सहजानन्द संग जो होई॥
मरत समय तेहि देत छिपाई। कहत गयो लै सँग सो भाई॥

दो०--श्रीकृष्णः सुशरणं मम, मंत्र जपत सब कोय।
अर्थ अनर्थ न सोचहीं, उलट पलट चह होय॥२३४॥

विद्या विमुख चलत हैं धाई। जानत कछू नाहिं प्रभुताई॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई। माध्व पंथ तो हमहिं सुहाई॥
कहत स्वामि जस सब मत भाई। तैसेहि हैं जग माध्व सदाई॥
यहहू चक्रांकित ही होहीं। कछुक विशेष बात हिय जोहीं॥
चक्राकित यक बारहि होई। हैं रामानुज इन महँ जोई॥
माध्व वर्ष प्रति हों चक्रांकित। श्याम माथ रेखा करि अंकित॥
पण्डित एक मिल्यो यकबारा। अरु माध्वन सों करत उचारा॥
तिलक लगावत जो तुम भाई। अरु काली रेखा दर्शाई॥
याको फल कछु कहहु सुनाई। कहत शास्त्र याविधि समुझाई॥

दो०--तिलक लगावें माथ में, श्याम लगावें रेख।
वह जावे वैकुण्ठ को, यह शास्त्रन के लेख॥२३५॥
श्याम रंग हैं कृष्णजो, मम हिय सदा सनेह।
श्याम रेख मस्तक धारहुँ, श्याम तिलक सो नेह॥२३६॥

जस तुम्हारि इच्छा तस करहू। हमरी जानि श्याम तन करहू॥
जस पाछिल हम तुम्हहिं सुनाये। तैसेहि हैं यहहूँ मन भाये॥

एक कहत ऋषि सों अकुलाई। लिङ्गाङ्कित की कौन बड़ाई॥
कहत ऋषी जस हैं चक्रांकित। ताही विधि यहहू है अंकित॥
चक्र चिन्ह चक्रांकित धारत। लिंगांकित तन लिंग सम्हारत॥
महादेव को ईश्वर मानत। और काहु को कछु नहिं जानत॥
अरु पाषाण लिंग यक लेहीं। ताहि सुवर्ण माहिं मढ़ि लेहीं॥
अरु नित गले माहिंसो राखत। ताहि देखाइ भोग सब पावत॥
शैव समान मंत्र तिन केरा। जपत रहत सब कोइ सब बेरा॥

दो०--एक कहत अति श्रेष्ठ है, जगमें ब्रह्मसमाज।
नीक नियम संगठन अति है, प्रार्थना समाज॥२३७।

कह ऋषि कछुक बात है नीकी। अरु बहुतक मिथ्या अति फीकी॥
वेद विहीन सत्य किमि होई। जो कल्पना करै जग कोई॥
इन दोहुन कछु किय उपकारा। देश इसाइन ते निर्वारा॥
अरु पाथर पूजा कछु रोकी। तोड़े कछु कछु जाल विलोकी॥
तिनमहँ देश केरि नहिं प्रीती। चलन लगे विदेश की रीती॥
खान पान अरु व्याह की रीती। बदलत रहत करत निजनीती॥
अपने पूर्वज देश बड़ाई। करत न कबहुँ प्रेम मनलाई॥
अवशि करहिं निन्दा बहुतेरी। कहैं कीर्ति सरकार घनेरी॥
अरु यह कहत बृटिस जब आवा। तब से हम बुधि विद्या पावा॥

दो०--कहत सदाई मूर्ख थे, आर्य्यवर्त के लोग।
नहिं उन्नति कबहूँ रही, लह्यो नहीं कछु भोग।२३८॥

निन्दा वेद करहिं दिनराती। निज उद्देश बनाइ सुजाती॥
निज पुस्तक महँ साधु गनाए। ईसा अरु मूसा दर्शाए॥
और मुहम्मद नानक साँईं। लिख्यो तहां चैतन्य देखाई॥
लिख्यो न है केहु ऋषि को नामा। याते जानि परत का कामा॥
यह तुम सोचि लेहु मनमाहीं। केहि विधिसों यह जात सराहीं॥
पढ़ि विदेश भाषा मन बानी। बनि पंडित सब भे अभिमानी॥

कहहु कहा यह उत्तमताई । करत रहत बालकन कि नाईं ॥
अंत्यज यवन इसाइन के सँग । सबबिधि मेल कियोतिनके सँग ॥
खान पान कछु भेद न राख्यो । अंत्यज विप्र सबै यक भाख्यो ॥
दो०-खान पियन के भेद को, जाति पाँति को भेद ।
तोड़े उन्नति मानहीं, मिले सकल बिन खेद ॥२३९॥
यह सुधार की रीति न भाई । अवशि देश हित जात नशाई ॥
तब यक पंडित या विधि बोलत । जाति भेद यह जो जग होवत ॥
ईश्वर कृत या मनुज अधीना । कहहु स्वामि जोतव हियचीन्हा ॥
कह ऋषि ईश मनुज दोउ करता । जाति भेद संशय जग हरता ॥
पूछत कवन ईश कृत भाई । कवन मनुष कृत कहहु सुनाई ॥
कह ऋषि मनुज वृक्ष जल जाता । पशु पक्षी आदिक जो ताता ॥
हैं परमेश्वर कृत यह जाती । जे देखत प्रत्यक्ष सुहाती ॥
हस्ति अश्व गो पशुन के माहीं । तस वृक्षन बट पीपर आहीं ॥
मत्स्य मकर आदिक जे जीवा । जल जन्तू अवलोकहु जीवा ॥
दो०--लखहु ताहि विधिनरन मैं, विप्र क्षत्रि अरु वैश्य ।
अंत्यज शूद्र जो जातियाँ, ईश्वर करत अवश्य ॥२४०॥
हैं सामान्य जाति में नाहीं । किन्तु विशेषात्मक सब ठाहीं ॥
जा विधि पूर्व कहेउ हम भाई । देखहु हिए विचार दृढ़ाई ॥
गुन अरु कर्म स्वभाव बिचारो । बरन व्यवस्था लेहु निहारी ॥
मानुष कृत गुन कर्म स्वभावा । पाछिल कहेउ जौन है भावा ॥
ब्राह्मण क्षत्रि वैश्य शूद्रादिक । परखहु गुन अरु कर्म स्वभाविक ॥
बरण व्यवस्था करहिं विधाना । देश नृपति अरु जो विद्वाना ॥
याही विधि है भोजन भेदा । ईश मनुज दोउ करत अखेदा ॥
जिमि सिंहादिक जीव जोआहीं । खात मांस ते अन्न न खाहीं ॥
अरु गो आदिक पशू लखाहीं । घास खात ते मांस न खाहीं ॥
देश काल अरु वस्तु विभेदा । हैं मानुष-कृत भोजन-भेदा ॥

सो०--उठ्यो सो यूरुपदेश, एक कहत ऋषिराज सों ।
कोट बूट के भेश, होटल में भोजन करहिं ॥१८॥
दो०--सबके हाथन सों सदा, खात रहत दिन-रात ।
याते बहु वृद्धी भई, मम हिय यहै समात ॥२४१॥
कहत स्वामि यह भूल तुम्हारी । देखहु मुसलमान नर-नारी ॥
अरु अन्त्यज सब हाथन खावहिं । छुआछूत हिय बीच न लावहिं ॥
पर तिनकी उन्नति नहिं होई । याते जानि लेहु सब कोई ॥
तो हम मानत हृदय सराहीं । बाल विवाह करत ते नाहीं ॥
अरु पुत्रन बहु शिक्षा देहीं । ब्याह स्वयम्बर सों करिलेहीं ॥
जहँ अनुचित उपदेश न होई । तहँ पाखण्ड चलत नहिं कोई ॥
जो कछु करत समाज समेता । करि विचार निश्चय यकनेता ॥
उन्नति जाति होइ जेहि भाँती । तन मन धन कर्तव्य सुहाती ॥
दो०--देश-भक्ति अवलोकिये, है तिनकी यह रीति ।
वस्तु जो उनके देश की, करत ताहिसों प्रीति ॥२४२॥
देखहु यह प्रत्यक्ष प्रमाना । धारत नाहिं विदेशी बाना ॥
लगभग बीत्यो है शत वर्षा । प्रथा न त्यागत रहत सहर्षा ॥
बनै उपानत[1] जो निज देशा । होत सो दफ्तर[2] माँहिं प्रवेशा ॥
लखहु तुम्हार तहाँ नहिं जोई । पुष्ट उपानत परम सुहाई ॥
याही ते वे हैं बुधिवाले । नाना भाँतिन यंत्र निकाले ॥
करत अरम्भ कोइ जो कामा । करि पूजा जावहिं निज धामा ॥
है यहि कारन उन्नति भाई । नतरु बूटयुत होटल खाई ॥
हैं इनहूँ महँ बहुतक भेदा । जा विधि हैं सब पन्थ विभेदा ॥
दो०--करहिं बिदेशिन ब्याहजो, बड़ अधिकारी होय ।
ताहि खवावत संग नहिं, मिलैजातिनहिंसोय ॥२४३॥

---

[1] —जूता । [2] —न्यायालय, कचहरी आदि ।

करत विवाह न तिनमहँ कोई । कन्या सुत जो कोई होई ॥
जाति-भेद का वह नहिं होई । तुम्हहिं भुलावत हैं सब कोई ॥
अरु तुम मानि लेत सब बाता । बिन बिद्या नहिं समुझत तात
याते चलिये सोचि बिचारी । होय न पश्चात्ताप दुखारी ॥
रोगिन के हित औषधि अहई । कतहुँ निरोगि न औषधि लहई ॥
विद्यारहित सदा हैं रोगी । अरु विद्वान सुःख के भोगी ॥
इनका धर्म सबै बिलगाई । केवल भोजन माहिं देखाई ॥
यदि कोउ करन लगै कहुँ भोजन । भागत हैं तेहिते कई योजन ॥

दो०--अरु यह सब सों कहत हैं, धर्म भ्रष्ट बतराय ।
ताकी सुनै न बात कोइ, नहिं बैठत नगिचाय ॥२४४॥

तब वे जात दूसरेन के सँग । याविधिनिशिदिनकाटत हैं अँग ॥
तुम स्वारथ बस रहे भुलाने । परमारथ ढिग नहिं नगिचाने ॥
ताते भयो लाभ तिन केरा । जे अज्ञानि रहे सब बेरा ॥
यदि तुम करत प्रेम को नाता । तौ काहे त्यागत पितुमाता ॥
चाहिय हमहिं करहिं उपकारा । मूरखता को तजहिं बिचारा ॥
नितप्रति होय देश की उन्नति । करैं उपाय न होवे अवनति ॥
एक कहत ऋषिवर सुनि लीजै । मम विचार हिय में तनि दीजै ॥
पुस्तक कोउ जगत के माहीं । ईश्वरकृत हम मानत नाहीं ॥
अरु सर्वांश सत्य जो होई । हमरी जानि नाहिं है कोई ॥

सो०--है कोऊ अब नाहिं, भ्रान्ति-रहित या जगत में ।
हम मानत हैं ताहि, कहै जौन निर्भ्रान्त हो ॥१९॥
दो०–ताते हम निशिवासर, गहैं सत्य को पन्थ ।
असत सदा त्यागन करहिं, होय चहैजो ग्रन्थ ॥२४५॥

चहै बाइबिल होय कुराना । अरु चाहै कोउ होय पुराना ॥
हम नित ग्रहन सत्य ही करिहैं । असत कबहुँ ना हियमा धरिहैं ॥

कह तब स्वामि सुनहु चितलाई । तुम सतग्राही होत न भाई ॥
जब कोउ भ्रान्ति रहित जगनाहीं । कहहु कहा तुम तिन महँ नाहीं ॥
तब तुम्हारि कस मानहिं बाता । कोउ न भ्रम बिन जब है ताता ॥
अब तुम्हारि असगति भइ भाई । छब्बे बनन गयो कोउ धाई ॥
सोकि तहाँपर दुब्बे हि रहेऊ । चौबेपना वहाँ मिटि गयऊ ॥
जब सर्वज्ञ न मानब जाती । तब सत असत परख केहि भाँती ॥

दो०–अवशि जानि हम सत्यको, करहिं असत सनप्रेम ।
अल्पज्ञता प्रभाव ते, मानि लेहि जो नेम ॥२४६॥
याते हम अल्पज्ञ को, चाहिय ईश सहाय ।
जानि तासु सर्वज्ञ गुन, नेह करहिं चितलाय ॥२४७॥

जसजस लिख्यो वेद के माहीं । तेहि मानहु तुम अवशि सदाहीं ॥
नाहिंत भ्रष्ट होहु सब भाँती । भ्रष्टन संग करे दिन-राती ॥
वेद सत्य सब विधि जगमाहीं । तहाँ असत कबहूँ है नाहीं ॥
ताके ग्रहन करन में कोई । शंका करत रहत जन जोई ॥
ते दूसर अरु आपन हित को । खोवहिं सदा सहैं नित दुख को ॥
याही ते आपन नहिं मानत । भारतवासी तुम्हहिं दुरावत ॥
तुम उन्नति कारन भे नाहीं । जग महँ भिक्षुक रहे सदाहीं ॥
जिमि माता सब सुत अपनाई । पालन करन लगी सुखदाई ॥
बात असम्भव किमि अस होई । निज सुत हू उन्नति दी खोई ॥

दो०–वेद सत्यपथ त्यागिकै, अस गति भई तुम्हार ।
उन्नति कतहुँ न होवई, माने बिन सतसार ॥२४८॥

जासु रोग तुम रोगी रहेऊ । औषधि रोग कतहुँ ना लहेऊ ॥
यूरुप बारे कछु ना पूछहिं । तुम्हरे अर्थ उनहिं ना सूझहिं ॥
ताते सब मिल करिये कर्मा । गहहु वेद-पथ जो यक धर्मा ॥
जब लगि वेद पढ़त तुम नाहीं । ज्ञान न होत कबहुँ केहु ठाहीं ॥

जग रचना बिन कारन जानहु। और जीव की उतपति मानहु ॥
जा बिधि मुसलमान ईसाई। ता बिधि तुम्हहूँ मानत भाई ॥
सृष्टिवर्ग तुम देखहु जाई। तहाँ लिखा बहु बिधि समुझाई ॥
जीव ईश की व्याख्या देखहु। बिन कारण कारज नहिं पेखहु ॥
सो०--है तुम्हार यक दोष, पाप छुटहिं स्तुति करे।
यह मानत तजि रोष, हानि होत संसार को ॥२०॥
दो०--याते या संसार में, पाप बढ़े अधिकाय।
कछु उपाय निर्मित कियो, पोपन के समुदाय ॥२४९॥
एक बार तीरथ असनाना। पाप छुटैं अस लिख्यो पुराना ॥
मंत्र जाप से जैनी मानहिं। मुसलमान तोबा कहि टालहिं ॥
ईसाई यहि बिधि समुझावहिं। ईसा केर भरोस बतावहिं ॥
या विधि बढ़न पाप बहु लागे। निज स्वारथ बस सब अनुरागे ॥
बिन भोगे छूटत जब पापा। तौकस करहिं पाप हित दापा ॥
ब्रह्मसमाजी हू अस मानत। अरु समाज प्रारथना जानत ॥
यदि जग सुनत वेद की बानी। करहिं पाप भोगै अभिमानी ॥
तौ भय कछुक रहत उरमाहीं। बिन भय धरम होत कहुँ नाहीं ॥
दो०--जो मानत तुम जीव को, उन्नति होत अनन्त।
सो कबहूँ नहिं होवई, प्रकृति नियम बलवन्त ॥२५०॥
गुण अरु कर्म स्वभाव फल, होय जीव के साथ।
जबगुनकर्म अनन्तनहिं, फलअनन्तकिमितात॥ २५१॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। ईश दयालु हमहिं दर्शाई ॥
है समीप दे कर्म अनन्ता। जो कृपालु ईश्वर बलवन्ता ॥
तब ऋषिकहत ईश असकरई। न्याय नष्ट होवहि तेहि छएई ॥
कछुक कर्मफल होहिं अनन्ता। पाप छुटै दर्शन किए सन्ता ॥
करि प्रारथना पाप जो छूटत। तौ पुनि कर्मअवशिजगभूलत ॥

या विधि बढ़हिं पाप जगमाहीं । हानि धर्म की होत सदाही ॥
बहुरि कहत ऋषिसों समुझाई । हम स्वाभाविक ज्ञान सदाई ॥
मानत बड़ा वेद से सोई । नहिं मानत नैमित्तिक जोई ॥

दो०--स्वाभाविक मानत सदा, नैमित्तिक को नाहिं ।
ईश दयो यहि कारन, पढ़हिं वेद हम जाहिं ॥२५२॥

जो न होत स्वाभाविक ज्ञाना । दीन ईश मोहिं समरथजाना ॥
हम कस पढ़त वेद की बानी । कस समुझत अरुहोवें ज्ञानी ॥
स्वामि कहत यहबात तुम्हारी । अर्थरहित जस कहत अनारी ॥
वह स्वाभाविक ज्ञान न होई । देत काहु को दूसर कोई ॥
ना वह घटत न बढ़त कदाई । तौ उन्नति कस होत लखाई ॥
वनमानुषन माँहिं है ज्ञाना । स्वाभाविक जो कहत विधाना ॥
तदपि न वे उन्नति निज करहीं । उन्नति नैमित्तिक उच्चरहीं ॥
ज्ञान सहित पुरुषारथ करई । पावे सुख आलस तन हरई ॥

दो०--देखहु मनहिं विचारि सब, बाल काल को भेव ।
धर्माधर्म न जानहीं, जानत नाहिं कुटेव ॥२५३॥

जब विद्वानन सों पढ़ि लीन्हा । तब कर्तव्य कर्म हम चीन्हा ॥
जानेहु धर्म अधर्म का भावा । यह स्वाभाविक ज्ञान कहावा ॥
जो तुम पूर्व जन्म नहिं मानेहु । सो इसाय यवनन सों आनेहु ॥
समुझहु नित्य शाश्वत जीवा । कर्म सुनित्य प्रवाह अतीवा ॥
कर्ता कर्म नित्य सम्बन्धा । कहा जीव बैठत बिन धन्धा ॥
तुम्हरी जानि ईश अस होई । है निरउद्यम बैठत सोई ॥
यदि तुम पुनरजन्म नहिं मानत । पाप पुन्यफल केहि विधिपावत ॥
कर्म नाश नहिं बिन फल भोगे । बात तुम्हारी यहहु अयोगे ॥

दो०--बात तुम्हारी एक यह, हम मानहिं केहि भांति ।
विद्या धर्म स्वभावयुत, कहहिं न देव सुहाति ॥२५४॥

देव न होत जगत के माँहीं। ईशहिं महादेव किमि कहहीं॥
हवनादिक जो क्रिया विशेषा। जो कर्तव्य कर्म अवशेषा॥
तेहि उत्तम समुझत तुम नाहीं। मानत नहिं उपकार कदाहीं॥
यह न नीक सिद्धान्त तुम्हारा। और सुनहु जो तव व्यवहारा॥
ऋषी महर्षिन किय उपकारा। नहिं मानत तुम वह व्यवहारा॥
ईसादिक आधुनिक जौन नर। तिन पथ चलेहु कियो बहुआदर॥
और असम्भव कहहु सुनाई। बिना वेद विद्या करताई॥
शिखा जनेऊ विद्या अंगा। त्यागि देत तुम करत कुसंगा॥
यवन इसाइन के सम घूमत। धर्म-चिन्ह को सबबिधि भूलत॥
दो०--जब तुम धारत कोट को, अरु पतलून सम्हारि।
तब पवीत केतो बड़ो, डारत जासु निकारि॥२५५॥
मान अर्थ तमग़ा बहु डारत। बढ़त सुयशजेहिजो कछुआवत॥
तब किमि वैदिक चिन्ह बिहाई। करवावत तुम धर्म हँसाई॥
आर्यवर्त बहु ऋषि मुनि भयेऊ। तिनको कछू ध्यान ना दयेऊ॥
और बिदेशिन करत बड़ाई। करत खुशामद नित्य डराई॥
बीजांकुर सों उत्पति मानत। जीव केरि या विधि बतरावत॥
कहत होत जड़ चेतन योगा। उपजत जीव करत सब भोगा॥
यह विरुद्ध सब भाँति लखाई। उपज जीव की जो दर्शाई॥
उत्पति पूर्व कहा नहिं चेतन। का न रहेउ जड़ आवत है मन॥
दो०--जड़ चेतन दोउ ना रहे, भयो सो किमि संयोग।
यदि मानत हो आदि ते, कछुक ठीक हो योग॥२५६॥
पर यह मानत जो तुम भाई। सृष्टि पूर्व कछु नाहिं लखाई॥
ना कोइ तत्त्व न जीवविधाना। केवल ईश्वर को ही माना॥
पक्ष तुम्हार वृथा सब भाँती। मानहु बात जो चित्त समाती॥
तौ तुम आर्य समाज के साथा। चलहु सकल मिलि गहिके हाथा॥
तेहि अनुकूल करहु आचरना। पावहु सुःख जाइ नहिं बरना॥

नतरु हाथ लागै कछु भाई। ताते सब मिलि करहु उपाई॥
हम को उचित यहै निसिवासर। करहिं स्वदेश वस्तु सँग आदर॥
देश पदारथ बनेउ शरीरा। ताही सों पालित मति धीरा॥

दो०--ताकी उन्नति नेह सों, करहु सकल मिलि धाय।
उन्नति ही के कारने, आर्यसमाज लखाय॥२५७॥

दूसर कोउ न करत हित इतना। देश हेत उपकारी जितना॥
एक कहत ऋषि सों कर जोरी। आप करत खंडन बर जोरी॥
हमरी जानि जौन जेहि धर्मा। श्रेष्ठ लखत जो है निज धर्मा॥
याते काहु न करिये खंडन। यदि तुम करत बतावहु मंडन॥
तुव समान जगमें कोउ नाहीं। भयो, न है, का हुइहै नाहीं॥
तुम्हरे योग उचित अस नाहीं। करतजो तुम अभिमान सदाहीं॥
स्वामि कहत मोहिं कहहु बुझाई। होत धर्म सबका यक भाई॥
अथवा होत अनेक प्रकारा। जानि परम हित जो जेहिधारा॥

दो०--यदि यह कहहु अनेक हैं, तौ बतरावहु तात।
है विरुद्ध अथवा नहीं, एक से दूसर बात॥२५८॥

यदि अविरुद्ध विचारहु ओही। तो पृथकता व्यर्थ ही होही॥
या ते एकहि धर्म अधर्मा। नहिं अनेक हैं यामें कर्मा॥
यह ही बात हमारि विशेषा। देखहु खोजि रहत यक शेषा॥
सकल पंथ यक ठौर करीजै। एक सहस्र तिनहिं गनि लीजै॥
तिन महँ मुख्य भाग हैं चारी। लिख्यो बहुत बिधिहै बिस्तारी॥
जैनी और पुरानि किरानी। और कहत हैं जाहि कुरानी॥
इन महँ आइ जात सब पन्था। सबन बनाये निज निज ग्रन्था॥
यदि कोउ राजा करहि उपाई। करहि सभा इन सबन बोलाई॥

दो०--तो यह या विधि कहत सब, सुनहु सुनावहु भ्रात।
भई एक जिज्ञासु की, वाममार्गि सन बात॥२५९॥

सो०--कहहु मोहिं समुझाइ, कौन धर्म है श्रेष्ठ अति ।
धारहिं हम सुखदाइ, करैं गुरू हम नेह सों ॥२१॥
तबहीं बाममार्गि अस कहेऊ। सबसे श्रेष्ठ धर्म मम ठयऊ ॥
तब जिज्ञासु कहत गुरुराई। और जो केतिक धर्म लखाई ॥
नवशत निन्नानबे जे धर्मा। तुम्हरी जानि सबै बेधर्मा ॥
कहत बामि ते सब हैं झूठे। जाहिं नरक जो हमसों रूठे ॥
बचन[1] प्रमान सुनहु चितलाई। धर्म हमार परे कोउ नाहीं ॥
पूछत धर्म आपनो कहहू। कहत सुनहु जो जानन चहहू ॥
देवी इष्ट सदा हम मानहिं। मद्यमांस हम सब कुछ खावहिं ॥
दो०-सेवहिं पंचमकार[2] को, मानहिं चौसठ तंत्र ।
मुक्ति चहत जो कोउ नर, जपत हमारो मंत्र ॥२६०॥
तब जिज्ञासु कहत हम जाई। पूछहिं साधु सन्त मिलि साईं ॥
तौ जामें मम श्रद्धा होवै। धारन करहुँ जो मम दुखखोवै ॥
कहत बामि परिहहु भ्रमजाला। बिछे जाल बहुतक यहि काला ॥
अरु बहकाइ लेहिं सब लोगा। मिलहिं नतुमहिंकछुकउपभोगा ॥
तुम न जाहु काहू ढिग भाई। मम शरणागत रहहु सदाई ॥
नत पछितैहौ मोहिं बिहाई। मोक्ष भोग दोनों नहिं पाई ॥
हमरे निकट दुऔ सुख मिलहीं। चेला होत सो आनँद लहहीं ॥
कह जिज्ञासु देखि हम आवहिं। ढूँढ़त और कोउ मिलिजावहिं ॥
तौ लगि शैव मिल्यो एक आगे। तेहि पूछत हिय अति अनुरागे ॥
दो०-तेहि सन पूछत प्रेम सों, धर्म ग्रहन की बात ।
बाममार्गि सम सब कही, एक विशेष लखात ॥२६१॥

---

१ — कौलात्परतरं नहि ।

२—मद्यं[1], मांसं[2], च मीनं च[3] मुद्रा[4] मैथुन[5] मेव च ।
एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे-युगे ॥

बिन रुद्राक्ष भस्म हिय धारे। लिङ्गार्चन बिन जात न पारे॥
तहहूँ जग संतोष न भयऊ। तबहिं एक वेदान्ती मिलेऊ॥
ता सन पूछि उठेउ अकुलाई। धर्म तुम्हार कौन है भाई॥
कहत वेदान्ति सुनहु ममबाता। धर्माधर्म जो हैं जग ताता॥
हम तिनको कछु मानत नाहीं। हम साक्षात सुब्रह्म सदाहीं॥
हममें धर्माधर्म न भाई। यह जग मिथ्या परत लखाई॥
चेतन शुद्ध बनन जो चहहू। तौ सर्वत्र ब्रह्म ही लहहू॥
दो०--जीवभाव को त्यागि कै, नित्य मुक्त ह्वै जाय।
ब्रह्म मानिये आपको, करहु न और उपाय॥२६२॥
तब जिज्ञासू इमि कहत, नित्य मुक्ततुम ब्रह्म।
तौ गुनकर्मस्वभाव किमि, होत न तुम महँ ब्रह्म॥२६३॥
ब्रह्म रूप ह्वै बन्धन माँहीं। रहि किमि भोगत दुःख सदाहीं॥
तब वेदान्ति कहत यहि भाँती। दुख नहिं भोगत हमरी जाती॥
हम नहिं बन्धन माँहिं कदाई। हम देखत हैं ब्रह्म सदाई॥
तुमहिं देखात शरीर शरीरा। ताते भ्रमत सहत दुख पीरा॥
बहुरि कहत तुम देखत काको। तुम हौ कौन जो देखत जाको॥
उतर देत हम ब्रह्म को देखत। हमहैं ब्रह्म सकल ब्रह्म पेखत॥
तब जिज्ञासू कहत सुनाई। ब्रह्म कहा दुइ मानत भाई॥
कहत वेदान्ती हम इमि पेखत। दुइ न होहिं अपने को देखत॥
दो०--तब जिज्ञासू कहत इमि, उदाहरण दै भाय।
निज काँधे परपुरुष कोउ, बैठत आप सिहाय॥२६४॥
बात तुम्हारि कछू नहिं भावे। पागलपना हमहिं दिखरावे॥
पुनि जैनी ढिग पूछत जाई। तिनहूँ वैसिहि बात सुनाई॥
तनिक विशेष कही तिन बाता। जैन धर्म ही श्रेष्ठ लखाता॥
ईश अनादि न है जग कर्ता। ना कोइ याको है संहर्ता॥
आदि काल से जस चलि आवा। तैसहि रहै सदा यह भावा॥

याते होहु हमारे चेला। झेलत काहेक बहुत झमेला॥
वाद विवाद कियो बहुतेरा। पुनि आगे चलि दूसर हेरा॥
तौ लगि मिल्यो एक ईसाई। इनहूँ सों बहु बुद्धि लड़ाई॥
जो न करहि ईसा विश्वासा। सो तजि देहि मुक्ति की आसा॥
सबके पाप हरन के कारन। प्रान दिये किय भक्त उबारन॥
दो०—तब इसाइ या विधि कहत, पापी नर सब कोइ।
निज सामर्थ्य न छूटई, पाप कियो है जोइ॥२६५॥
दो०—आये तेहि छिन मौलवी, तिनहू सन भइ बात।
वैसी ही बातैं भई, जस पीछे दिखरात॥२६६॥
कही विशेष बात तिन एका। लाशरीक[1] है ईश विवेका॥
बिन पैग़म्बर[2] और कुराना। कोउ न पावत ईश समाना॥
जो इस्लाम धरम नहिं मानत। सो नर अवशि नरक को पावत॥
तिन कहँ हिन्दू काफिर कहहीं। हैं यह हनन योग दुख सहहीं॥
बहुरि गयो वैष्णव के पासा। कथा सुनत तहँ भयउ निरासा॥
कहत वैष्णव ताहि सुनाईं। तिलक देखि यम हमहिं डराईं॥
तब जिज्ञासू यह मन लावत। चोर न डरत न डाकू भागत॥
पुनि यमराज डरहिं कहु कैसे। या विधि भरमत फिरत अनैसे॥
दो०—बहुतक मतवादी जहाँ, गयो तहाँ जिज्ञासु।
अपनी-अपनी सब कहत, सबहिं बुलावत आसु॥२६७॥
कबिरा कहत हमारी मानहु। औरन को कछुहू ना जानहु॥
नानक दादू आदिक जेते। माधव वल्लभ गुरु हैं तेते॥
जानि परत सब किये दुकाना। रचत ढोंग विधिकरत महाना॥
आपन आपन करत बड़ाई। रहत विरोध महा अधिकाई॥
याते गुरु करिबे के योगा। नहिं जानहुँ हैं ये सब लोगा॥

---

[1] दूसरा शरीक न हों। [2] हज़रत मुहम्मद।

ताते गुरु-महिमा जस बरनी। मुण्डक उपनिषदहु हितकरनी॥
छं०-सतज्ञान अर्थ सो जाइ गुरु पहँ बाँधि कर बिनती करै।
हो ब्रह्मनिष्ठ अरु वेदज्ञाता भेंट कछु आगे धरै॥
जिज्ञासु जानि जितेन्द्रि गुरु उपदेश बहु विधि सों करै।
जेहि धर्म अर्थ सुकामनादिक मोक्ष पथ सहजहिं सरै॥१६॥
छं०—जब मिल्यो या विधि को गुरु तहँ जाइ तेहिं बिनती करी।
भ्रमि फिर्यो सारे जगत में नहिं कामना कछहू सरी॥
अवलोकि आपस में विरोध टिक्यो न मन एकौ घरी।
अब करहु किरपा "इष्ट" मोपर देहु पथ औगुन हरी॥१७॥

दो०-जासु बात सों एकमत, होत सहस एकबार।
सोई सत्य कहात जग, वेद--मार्ग सुखसार॥२६८॥
कहत कहहु परखेहु केहि भाँती। गुरु कहँ पूछहु बात सुहाती॥
तब पुनि गयो जहाँ सब अहहीं। करत प्रपंच दुसह दुख सहहीं॥
पूछत सुनहु हमारी बाता। उतरदेहु सब मिलि मोहिंताता॥
बोलन सत्य धर्म कस भाई। और असत का कहहु सुनाई॥
सत्य धर्म अरु असत अधर्मा। पढ़ि विद्या जानहिं सब मर्मा॥
ब्रह्मचर्य्य है धर्म सुहावा। अरु अधर्म व्यभिचार कहावा॥
तब सब कहन लगे हम मानत। जो तुम आजु सभामहँ भाखत॥
तब वह कहत चलत किमि नाहीं। उतर देत बहु भाँति कराहीं॥
सो०-कहत जो तुम समझाइ, करन लगैं तेहि भाँति हम।
तौ हमार सब जाइ, धन सम्पति जो निकटमम॥२२॥
दो०--अरु कोऊ संसार में, सुनहि न हमरी वात।
जो कछु ढोंग रचैं नहीं, नहिं आवहि कोउ तात॥२६९॥
हमरी सुनहु अनोखी रीती। राजा प्रजा करत सब प्रीती॥
याते राजा हू बस मोरे। फँसत ढोंग आवत सब नेरे॥

अबहिं करत आनन्द बधाई । जबजस होहि सहहुँ तस भाई ॥
बात तुम्हारी जो हम मानहिं । तो अपने सारे सुख त्यागहिं ॥
बालापन विद्या को पढ़हीं । पुनि उपदेश सबन को करहीं ॥
हम किमि करहिं महा पुरुषारथ । मिलहि हमहि धनबिनपुरुषारथ ॥
टका धरम अरु टका है कर्मा । टका परम पद जानहु मर्मा ॥
जा घर टका नाहिं देखराई । करत टकाहित टकटक धाई ॥
दो०--अंश कला सोलह कहीं, जो ईश्वर के माँहि ।
सो यह रुपया के विषे, हैं प्रत्यक्ष लखाहिं ॥२७०॥
खूब कमाइ खाहिं बहु भाँती । याही सुख मानत सब जाती ॥
बिना परिश्रम आनँद भोगत । सुखपूर्वक हमनिशिदिन सोवत ॥
जो जग मूढ़ बुद्धि धनवाना । तिनहिं देत उपदेश महाना ॥
हम कंठी तिन कहँ पहिराई । चेला तुरतहि लीन्ह बनाई ॥
फिर वह पशु समान मम बाता । मानत कहत जो हम हैं ताता ॥
मोहिं समुझावत जो तुम भाई । करहु नौकरी धनहित जाई ॥
सो हम वृथा मूड़ को मारहिं । धनहित किमि कारज उरधारहिं ॥
तब जिज्ञासू कहत सचेता । तुमहिं देत धन वह केहि हेता ॥
तब मतवादी कहत सुनाई । धर्म मुक्ति हित देत सदाई ॥
दो०--तब जिज्ञासू इमि कहत, तुम न मुक्ति को रूप ।
तो तुम्हारि सेवा किये, किमि हों मुक्तस्वरूप ॥२७१॥
पुनि मतवादी कहत बुझाई । मिलत न तेहि यहिलोक कदाई ॥
मोहिं देत जो धन हर्षाई । अरु मम सेवा करत बनाई ॥
मिलत सो है परलोक सदाई । कह जिज्ञासु सुनहु चितलाई ॥
जो यह देत अवशि सो पावत । अथवा जो कछु होय कहावत ॥
तुम्हहिं मिलत कह कहहु सुनाई । नरक मिले या अन्य जो भाई ॥
तब मतवादी कहत पुकारी । जो हम भजन करत सुखकारी ॥
सोई हम कहँ मिलहि सप्रीती । यह है धर्म शास्त्र की रीती ॥

हसि जिज्ञासू बहुरि सुनावत। तुम नित द्रव्य हेत ही धावत ॥
दो०--वह यहहीं रहि जात है, मिल्यो जो किये अनीत।
यदि तुम ईश्वर को भजत, आतम होत पुनीत ॥२७२॥
दो०--तब मतवादी कहत इमि, हम अशुद्ध केहि भाँति।
अरु जान्यो केहि रीतिसों, तुमको कहा देखाति ॥२७३॥
कह जिज्ञासु जो तब व्यवहारा। जानि लेत जाते संसारा ॥
अरु तुम भीतर महा अपावन। कह मतवादि सुनहु बड़े पावन ॥
साधुन को व्यवहार न जानहु। फिरि काहे बहु बात बखानहु ॥
हस्ति-दन्त सम मम व्यवहारा। और खात देखरावत न्यारा ॥
तस भीतर हम पावन रहहीं। बाहर लीला सबन देखाहीं ॥
कह जिज्ञासु जो अन्तर पावन। तो बाहर कस होत अपावन ॥
याते मलिन तुम्हारो अन्तर। कह मतवादि शुद्ध मम मन्तर ॥
हम चाहे जस होवें भाई। पावन शिष्य हमार सदाई ॥
कहत जिज्ञासु गुरू जमभेला। होवहि तैसेही वह चेला ॥
कह मतवादि एक मत नाहीं। होत पुरुष कबहूँ कोउ नाहीं ॥
दो०--है गुनकर्म स्वभाव नहिं, सकल जनन को एक।
भिन्न-भिन्न हुइ जात मत, याते लखहु अनेक ॥२७४॥
तब जिज्ञासु कहत समुझाई। बाल-काल की रीति बताई ॥
बाल अवस्था शिक्षा देई। सतवादी हो यतन करेई ॥
सत्य धर्म अरु झूठ अधर्मा। करत रहत जो कोउ जस कर्मा ॥
तस स्वभाव ताको बनि जाई। यह जग रीति सदा चलिआई ॥
जब धर्मी जग होत घनेरे। तब दुख कतहुँ न आवत नेरे ॥
यदि उपदेश करहि विद्वाना। होहिं एक सब तजि अभिमाना ॥
मतवादी कह कलियुग आही। तुम कहँ सतयुग बात सोहाही ॥
कलियुग में सतयुग कस होई। दीन्हो धर्म कर्म सब खोई ॥

दो०–दोष नहीं जिज्ञासु कह, कलियुग को है भाय ।
कालसदानिष्क्रिय रहत, समय गती अधिकाय॥२७५॥

काल करत नहिं धर्म अधर्मा । नहिं साधक नहिं बाधक कर्मा ॥
तुमहिं बने कलिकाल कि मूरति । करि सुसंग खोई सब कीरति ॥
यह सतसंग दोष जग माँहीं । नहिं स्वाभाविक परत लखाहीं ॥
यह कहि गयो आप्त[1] के पासा । जिज्ञासू मन भयो हुलासा[2] ॥
नाथ कियो है मम उद्धारा । केवल हमहिं तुम्हार सहारा ॥
नतरु जात पाखंडिन में फँसि । धर्म कर्म सब जात तहाँधँसि ॥
अब हम खंडन करहिं सदाई । अरु सत मंडन प्रेम बढ़ाई ॥
आप्त पुरुष कह मानुष धर्मा । विद्यावित संन्यासिन कर्मा ॥
करहिं सदा सत को उपदेशा । नहिं जगरहहिं असत लवलेशा ॥

दो०--एक कहत ऋषिराजसों, नाथ कहहु समुझाय ।
जो ब्रह्मचारिलखात जग, अरुसँन्यासिसमुदाय ॥२७६॥

ये हैं ठीक कहहु ऋषिराई । अथवा कस यह परत लखाई ॥
स्वामि कहत आश्रम तौ ठीका । पर यह करम करत हैं फीका ॥
कोऊ जटा बढ़ावत रहहीं । अरु निज मुख ब्रह्मचारी कहहीं ॥
कोउ लघुव्यय होत संन्यासी । निबहत नाँहि परत गल फाँसी ॥
इनमहँ वेद व्रती जो होई । तेहि ब्रह्मचारि कहत सब कोई ॥
झूठ मूठ त्यागी बनि डोलत । हम हैं ब्रह्म यहै वह बोलत ॥
यह तो डरत पाप ते नाहीं । मानत ब्रह्म सदा सब ठाहीं ॥
देखहु कैसी उलटी रीती । ईश सामुहे करत कुरीती ॥

दो०--अस संन्यासी जगत में, घृथा करत हैं बास ।
जो न चहत हित और को, करत रहत निज आस॥२७७॥

---

[1] वेद-धर्म का ज्ञाता, ईश्वर-विश्वासी । [2] प्रसन्न ।

दो०--तब पूछत गिरि भारती, पुरी गोसाइँ सन्त ।
अहहिं श्रेष्ठ यह जगत में, कहहु कहा भगवन्त ॥२७८॥

यह मंडली बाँधिकर डोलत । देत अनन्द आप बहु भोगत ॥
अरु अद्वैत करत उपदेसा । अरु कछुपढ़तरहत निशिद्योसा ॥
याते जानि परत मोहिं नीके । भाव न जानहुँ इनके जीके ॥
तब ऋषि कहत सुनहु मन लाई । इन दश नामन की प्रभुताई ॥
कल्पित करि पीछे को लीन्हे । महामूर्ख बहु विद्या हीने ॥
भोजन हेत बनावत मंडल । करत दम्भ ते घूमत जंगल ॥
सब मह एक महन्त बनावहिं । हाथ जोड़ि सब पुष्प चढ़ावहिं ॥
भाँति भाँति श्लोक[1] रचाई । पढ़हिं सकल मिलि प्रेम बढ़ाई ॥

दो०--हरहर अस भाषन करहिं, अरु बरसावत फूल ।
साष्टाङ्ग परनाम करि, जानि गुरू एक मूल ॥२७९॥

जो रहि संग असकरहिं न भाई । ताकहँ तहाँ रहब दुखदाई ॥
जग दिखरावन हित अस करहीं । श्रद्धा कछू नाहिं उर धरहीं ॥
केतिक मठधारी जग माहीं । बनि गृहस्थ संन्यास लजाहीं ॥
संन्यासिन गुन कर्म स्वभाऊ । कहेउजो पाछिल[2] है सब भाऊ ॥
भस्म करत धारन हैं केतिक । अरु रुद्राक्ष भरत अंग जेतिक ॥
हों चक्रांकित फिरत भुलाने । खंडन-मंडन कछु नहिं जाने ॥
याही ते बहु वेद विरोधी । भये जगत बिच अधिक कुरोधी ॥
मुसलमान जैनी ईसाई । बढ़े जगत बिच अधिक मुसाई ॥

दो०--यह सब तुम्हरे अंग हैं, त्यागि दीन्ह निज धर्म ।
करत रहत संसार में, जो मन भावे कर्म ॥२८०॥

---

[1] नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्ति च तत्पुत्रपराशरं । च व्यासं शुकं गौडपदं महान्तम् ॥ आदि । [2] सत्य-सागर के ९ वें तरंग में देखो ।

डूबे लालच गुरु संन्यासी । कछु न कह्यो ते रहे उदासी ॥
लोक वित्त अरु पुत्र ईषणा । करतरहत निशिदिनअन्वेषणा[1] ॥
यह ईषणा छूटत नहिं जौ लगि । नहिं संन्यासि होत है तौ लगि ॥
जिमि गृहस्थ सब हों व्यवहारी । ताही विधि साधू आचारी ॥
सन्मुख बढ़त पखंड जमाना । होत यवन ईसाई नाना ॥
तनिक न गृह की रक्षा कीनी । मिलन रीति सबही तजि दीनी ॥
स्वारथ त्यागि देश-हित करिये । वेद-धर्म-शिक्षा हिय धरिये ॥
त्यागहु धूर्तपने की बातैं । करत रहत हौ जो तुम घातैं ॥

दो०-यदि चाहहु उन्नति जगत, गहहु वेद को पन्थ ।
आश्रम विधि प्रचलित करहु, पढ़हुसदासदग्रंथ ॥२८१॥

बहुत कहैं पाखंड की बाता । लखि मानत साँची बहु ताता ॥
जिमि धनसारी[2] ठगन कहानी । सुनहु जो करत रहत मनमानी ॥
पाँच सात मिलि जात विदेसा । साधक सिद्ध सरूप विशेसा ॥
लखत जहाँ धनिकन को ग्रामा । तहाँ बनावत अपनो ठामा ॥
बन उपबन बाटिका सुहाई । देत सिद्ध को तहाँ टिकाई ॥
अरु साधक सब ग्रामन जाई । करत बहुत विधि तासु बड़ाई ॥
पूछत कोउ सिद्ध की बाता । कहत बतावत हित की बाता ॥
सब विधि लै अन्तर को भावा । सँगलै गृहस्थ सिद्ध ढिगआवा ॥

दो०-लीला साधक सिद्ध की, जानि बचहु सब लोग ।
फँसहि जो इनके जालमें, सोपावत दुखभोग ॥२८२॥

लिय संकेत[1] मछुक निर्धारी । लावत ताको नियम बिचारी ॥
बैठत ही बोलत करि क्रोधा । जीतहु शत्रु बिनाबनि जोधा ॥

---

[1] ढूँढ़ते रहना । [2] यह एक प्रकार के ठगी करनेवाले होते हैं ।

[1] जिसको धन की इच्छा हो उसको दाहिनी ओर, जिसको पुत्र की इच्छा हो उसे सन्मुख, जिसको रोग-निवारण की इच्छा हो ❀

का हम वैद्य जो रोग बतावहिं । अरुधन दैकर तुम्हहिं रिझावहिं ॥
सिद्ध कही जब मन की बाता । जानि लीन्ह याही फलदाता ॥
तब साधक या विधि समुझावत । मनगामी गुरुवर तुम जानत ॥
करन चहहु जो कछु तुम सेवा । भेंट देहु जो कछु धन मेवा ॥
सो तुम करहु प्रेमयुत भाई । ना जानहि यह कब रमिजाई ॥
जब बहुतक मेला लगि जावे । तब साधक तेहि मौन सधावे ॥
कोउ साधकन देत बतराई । ताकहँ ताही बिधि लै जाई ॥

दो०--कोउ सेवा मिष्टानयुत, धरत सिद्ध के पास ।
धन सम्पति अर्पनकरहिं करिकेबहु विश्वास ॥२८३॥

पुत्र हेत केहु आशिष देहीं । काहुहि दै राखी ठगि लेहीं ॥
जब तक चढ़त भेंट अरु पूजा । तब तक करत उपाय न दूजा ॥
या विधि धन लै लीन्ह विशेषा । गये बहुरि वह अपने देशा ॥
जब नर ठगे जात यहि भाँती । तबहिं परीक्षा रीति सुहाती ॥
बिन विद्या नहिं होत परीक्षा । अरु नहिं होत धरम धन रक्षा ॥
होत अविद्या बढ़त कुसंगा । तहाँ न रहत धरम के अंगा ॥
याते बालकाल से भाई । देहु सदा शिक्षा सुखदाई ॥
विद्या पढ़हिं धर्म को जानहिं । ज्ञानी ह्वै सन असत विचारहिं ॥
मुनि चाणक्य[1] कह्यो यहि भाँती । सुत पावत मानत जो जाती ॥

❀ उसको बाँईं ओर, जिसको शत्रु जीतने की इच्छा हो उन सबों को उसी उसी भाँति लाकर बैठाते हैं। जो पिता रोगी हो तो साधक अँगूठा, माता हो, तो तर्जनी, जो भाई हो, तो मध्यमा, स्त्री हो, तो अनामिका, कन्या हो तो कनिष्ठिका साधक दिखा देता है।

[1] —न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं, स तस्य निन्दां सततं करोति ।
यथा किराती करिकुम्भजातां, मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुंजाम् ॥
चा० नी०, अ० ११, श्लोक १२.

छंद—जानत न कोऊ जासु गुन निन्दा सदा ताकी करैं।
जा भाँति मुक्ता त्यागि भिल्लिनि जाइ गुंजाहियधरैं॥
तेहि भाँति वेद न जानि महिमा अन्य ग्रंथन को गहैं।
सो "इष्ट" कछु पावैं नहीं संसार में भरमत रहैं॥ १८॥

दो०—जो धार्मिक सत्पुरुष हैं, पुरुषार्थी विद्वान।
अरु सुशील योगी महा, इन्द्रियजित बलवान॥२८४॥

दो०—धर्म अर्थ अरु काम को, पावत मोक्ष निदान।
जन्म और परजन्म में, भोगत सुःखमहान॥२८५॥

बसत जो आर्यवर्त के माँहीं। मत तिन महँ जो कछु दर्शाहीं॥
कह्यो तिनहिं संक्षेप बिधाना। नाहिं त बाढ़त ग्रन्थ महाना॥
अब कछु आर्यवर्त के राजा। रहे आर्य जहँ लगि महराजा॥
स्वायंभुव से पांडवताई। है भारत इतिहास लखाई॥
धर्मराज से जहँ लगि भाई। है यशपाल केरि प्रभुताई॥
सो सब समय सुनहु चितलाई। लिखा जो हम यक स्थलपाई[1]॥
ताको तुम्हरे सन्मुख लाई। कहिहौं प्रेम सहित समुझाई॥
आर्यवर्त राजधानि सुहाई। इन्द्रप्रस्थ (देहली) सुखदाई॥
तहाँ युधिष्ठिर से यश पाला। बरणन करहुँ राज्य को काला॥

दो०—वर्ष मास दिन जो कियो, राजपुरुष ने राज।
जानि लेहु सब भाँति सों, भे जो यहँ महराज॥२८६॥

---

[1] विद्यार्थियों की समिति से 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' और 'मोहन-चन्द्रिका' यह पाक्षिक पत्र श्रीनाथद्वार से निकलता था जो राजपूताना, चित्तौड़ में सबको विदित है। उसी से हमने अनुवाद किया है। उस पत्र सम्पादक ने एक लेख प्राचीन पुस्तक संवत् १७८२ की लिखी हुई में से संवत् १९३९ वि० मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष १९—२० किरण अर्थात् दो पाक्षिक-पत्रों में छपा है।

दो०--पांडव लों राजा रहे, चक्रवर्ति सरताज।
सर्वदेश पर हम रहे, शासकसहितसमाज॥२८७॥

नृपति युधिष्ठिर से यहि भाँती। एक शत चौबिस पीढ़ि सुहाती॥
चारि सहस्र एक शत वर्षा। पुनि सत्तावन तक उत्कर्षा॥
अरु नवमास चतुर्दश राती। आर्य राज्यतहँ[1] रहा सुहाती॥
सुनहु 'युधिष्ठिर'-वंश कहानी। पीढ़ी तीस जो हैं अनुमानी॥
एक सहस शत सात प्रमाना। सत्तर वर्ष राज अनुमाना॥
मास एकादश दश दिनताईं। कियो राज्य तेहि वंश सुहाईं॥
छत्तिस वर्ष 'युधिष्ठिर' कीन्हा। मासआठ पचिसदिन चीन्हा॥
तिनके बाद 'परीक्षित' राजा। वर्ष साठ लग भे महराजा॥
राजा 'जन्मेजय' पुनि भयऊ। चौरासी सम्बत तहँ ठयऊ॥
सात मास तेइस दिन औरा। कह जन्मेजय राज्यको व्यौरा॥

दो०--'अश्वमेध' ने राज्य किय, वर्ष बयासी माँहि।
आठ मास बाइस दिवस, राज स्वतंत्र सराहिं॥२८८॥

'द्वितिय राम' अट्ठासी जानौ। युग्म मास दिन आठ प्रमानौ॥
राज 'छत्रमल' किय हर्षाई। इक्कासी सम्बत लों भाई॥
मास एकादस दिन सत्ताइस। बहुरि'चित्ररथ' तेहि अपनाइस॥
किय पचहत्तर वर्ष प्रमाना। तीन मास अष्टादश अहना॥
'दुष्टशैल्य' पुनि भे युवराजा। वर्ष पछत्तर कीन्हो राजा॥
मास सुदश चौबिस दिन औरा। आगे 'उग्रसेन' को व्यौरा॥
तिन अठहत्तर वर्ष समाना। सात मास इकइस दिन जाना॥
इतनेहिं 'सूरसेन' ने कीन्हा। पीछे 'भुवनपती' ने लीन्हा॥
तिन उनहत्तर वर्ष प्रभाऊ। मास पाँच दिन पाँच उछाहू॥

---

[1] १२४ पीढ़ी ४१५७, ९ मास, १४ दिन महाभारत के पश्चात आर्य-राज्य रहा।

दो०–बहुरि भयो 'रणजीत' नृप, पैंसठ वर्ष प्रमान ।
दशमहिनाअरुचारिदिन, राजकियोअनुमान ॥२८९॥

बहुरि भये 'ऋत्तक' तहँ राजा । कियो राज तिनसहित समाजा ॥
सप्त मास अरु चौंसठ वर्षा । चारि दिवस लौं कीन सहर्षा ॥
पुनि 'सुखदेव' राजतहँ कीन्हा । बासठ वर्ष प्रजा हित चीन्हा ॥
वर्ष इकावन 'नरहरि' देवा । मास सुदशाद्वि दिन की सेवा ॥
'सुचिरथ' वर्ष बयालिस लहेऊ । ग्यारह मास दिवसद्वि रहेऊ ॥
'दूसर सूरसेन' सहहर्षा । दस महिना अट्ठावन वर्षा ॥
और आठ दिन कीन्ह सप्रीती । ता पुनि 'पर्वतसेन' की रीती ॥
पचपन वर्ष अरु अष्ट महीना । दश दिन और राज्य तिन कीना ॥

दो०–'मेधावी' राजा भयो, बावन वर्ष प्रमान ।
मास सुदश दशदिवसलौं, कियो राज सनमान॥२९०॥

'सोनचीर' राजा पुनि भयेऊ । वर्ष पचास यहाँ पर रहेऊ ॥
आठ मास अरु एकइस वासर । तेहिं नृपकीन्ह प्रजा को आदर ॥
'भीमदेव' सैंतालिस वर्षा । नव महिना विंशति दिन हर्षा ॥
'नृहरिदेव' रहे पैंतालिस । ग्यारह मास दिवस हैं तेइस ॥
पुनि 'पूरनमल' भये भुआला । वर्ष चवालिस राज सँभाला ॥
आठ मास अरु सप्त सुवासर । पूरनमल तहँ भये उजागर ॥
इतनेहि वर्ष 'करदवी दादा' । आठमास कम एक दिन ज्यादा ॥
वर्ष पचास 'अलेमिक' राजा । मास एकादश सहित समाजा ॥
आठ दिवस तेहि और बिताये । तबपुनि 'उदयपाल' तहँ आये ॥

दो०–नौ महिना अड़तिस बरस, कीन्हो बहुबिधि राज।
बहुरि 'दुवनमल' तहाँ पर, कियोराजसुखसाज ॥२९१॥

चालिस बरस मास दस भाई । छब्बिस दिवस गये नियराई ॥
'श्रीदमात' राजा तहँ भयऊ । बत्तिस बरस सुशासन कियेऊ ॥

'भीमपाल' अट्ठावन वर्षा । पाँच माह नव दिन अति हर्षा ॥
'क्षेमक' कीन राज अड़तालिस । ग्यारहमास दिवस तहँ एकइस ॥
क्षेमक को जो रह्यो प्रधाना । नाम 'विश्रवा' प्रवल महाना ॥
क्षेमक वध करि लिय अधिकारा । राज काज सब तुरत सम्हारा ॥
पीढ़ि चतुर्दश ताके वंशा । वर्ष पाँच शत ताको अंशा ॥
मास तीन सत्रह दिन ताई । विवरण सुनहु सकल मनलाईं ॥

दो०–'विश्वश्रवा' राजा रहे, सत्रह वर्ष प्रमान ।
तीनमास उन्तिस दिवस, कियोसहितअभिमान॥ २९२॥

'पुरसेनी' तहँ भे महराजा । वर्ष बयालिस कीन्हो राजा ॥
आठ मास अरु यकइस बासर । पाल्यो प्रजा कियो अति आदर ॥
भये 'बीरसेनी' पुनि राजा । बावन वर्ष राज्य तिन साजा ॥
मास सुदस अरु सातहिं वासर । भये 'अनँगशाही' तहँ नागर ॥
वर्ष सैंतालिस आठ महीना । तेइस दिवस परम सुख चीन्हा ॥
पुनि 'हरिजित' राजा तहँ भयऊ । पैंतिस वर्ष राज-पद लहेऊ ॥
नौ महिना सत्रह दिन ताईं । प्रजापालि बहुबिधि चितलाईं ॥
बहुरि 'परमसेनी' तहँ आये । बर्ष चवालिस रहे सुहाये ॥
युग्म मास अरु दिन भे तेइस । पुनि 'सुखपाल' रहेदिन यकइस ॥

दो०–युग्म मास तेइस दिवस, सुख पायो महिपाल ।
पुनि तहँ पर राजा भये, आये 'सुखपाताल' ॥२९३॥
तीस बरस द्विमास लगि, अरु इकइस दिनरात ।
कियो राज आनन्द सों, कहत न हृदय सिहात ॥२९४॥

'कद्रुत' भये बयालिस वर्षा । नौ महिना चौबिस दिन हर्षा ॥
तैंतिस बर्ष 'सज्ज' तहँ राजा । द्विमहिना चौदह दिन साजा ॥
'अमरचूड़' किय राज विशेषा । वर्ष सताइस रहे अशेषा ॥
मास तीनि सोरह दिन भाई । कियो राज अतिही सुख पाई ॥

'अमीपाल' भे वर्ष सुबाइस। ग्यारह मास दिवस तहँपच्चिस॥
'दशरथ' पच्चिस वर्ष देखाने। चारि मास बारह दिन माने॥
'बीरसाल' भे इकतिस वर्षा। आठ मास ग्यारह दिन हर्षा॥
सेन सहित सैंतालिस भोगा। चौदह दिवस कीन्ह उपभोगा॥

दो०--'वीरमहाँ' ने तेहि समय, मरि कियो है राज।
वंश चलेउ सोलह तहाँ, प्रथम रहेउ युवराज॥ २९५॥
वर्ष पैंतालिस चारिशत, मास पाँच दिन तीन।
वीर 'महोक' सुवंश की, लिखी कथा प्रचीन॥२९६॥

पैंतिस वर्ष राज तेहि कीन्हा। दस महिना दिन आठप्रवीना॥
'अजितसिंह' सत्ताइस भोगा। सात मास उनइस दिनयोगा॥
'सर्वदत्त' अट्ठाइस रहेऊ। तीनमास दश दिन तहँ ठयऊ॥
'भुवनपती' जो पंद्रह वर्षा। चारि मास दस दिन उत्कर्षा॥
पुनि तहँ 'वीरसेन' जी आये। यकइस वर्ष परम सुख पाये॥
द्विमहिना तेरह दिन पीछे। महीपाल आये सु तिरीछे॥
पुनि भे शत्रुपाल तहँ राजा। छब्बिस बर्ष राज तिन साजा॥
चारिमास दिन तीन बिराजा। पुनि भे 'संघराज' महराजा॥
सत्रह बरस मास द्विजानो। अरु दसबासर राज प्रमानो॥
'तेजपाल' अट्ठाइस वर्षा। ग्यारह मास दिवस दस हर्षा॥

दो०--'मणिकचन्द्र सैंतिसबरस, सात मास किय राज।
दिवस सुइकइस प्रेम सों, नीतिनिपुणमहराज॥२९७॥

भये 'कामसेनी' पुनि राजा। बर्ष बयालिस सहित समाजा॥
पाँच मासदस दिवस सुनीती। सकल चलाई अपनी रीती॥
बहुरि 'शत्रुमर्दन' सुख आसा। आठ वर्ष एकादश मासा॥
अरु तेरह दिन राज्य अशोका। बहुरि भये नृप 'जीवनलोका'॥
वर्ष अठाइस अरु नव मासा। सत्रह दिवस राज्य कियखासा॥

पुनि 'हरिराव' बरस छब्बीसा । मास सुदस बासर उन्तीसा ॥
दूसर 'वीरसेन' भे राजा । पैंतिस वर्ष मास द्विसाजा ॥
दिवस बीस लौं जन सुखहेतू । बहुरि भये नृप 'अदित्य केतू' ॥

दो--तिन सम्बत तेइस कियो, मास एकादश भाय ।
दिवस त्रयोदश और किय, राजकाज सुखदाय ॥२९८॥
मगधदेश में यह नृपति, रहें अधिक बलवान ।
'धुन्धर'नृपति प्रयाग को, मारेउ ताहि निदान ॥२९९॥

पुनि नवपीढ़ि राज्य तिन कीन्हा । वर्ष तीनशत लौं सुखचीन्हा ॥
अरु चौहत्तर ग्यारह मासा । छब्बिसदिवसरहेउ सुखआशा ॥
सुनहु जो राज 'धुन्धर' कीन्हा । वर्ष बयालिस जन सुख दीन्हा ॥
सात मास अरु चौबिस बासर । कीन्ह प्रजाको बहु विधि आदर ॥
पुनि यकतालिस वर्ष 'महर्षी' । मास युग्म उन्तिस दिन हर्षी ॥
ता पुनि 'सनरखी' भे राजा । वर्ष पचास राज को साजा ॥
मास सुदस अरु उनइस बासर । पूरिरह्यो यश लोक उजागर ॥
'महायुद्ध' नृप तीस सुबर्षा । तीन मास दिन आठ सहर्षा ॥

दो०--'दूरनाथ' पुनि नृपति भे, वर्ष अट्ठाइस जान ।
पाँच मास पच्चिस दिवस, राज्यकियो सुखदान ॥३००॥

वर्ष पैंतालिस 'जीवन राजा' । युग्ममास दिन पाँच सुकाजा ॥
'रुद्रसेन' छैंतालिस वर्षा । मास चारि लौं अति उत्कर्षा ॥
दिन अट्ठाइस सहित समाजा । कीन्ह प्रबन्ध परम सुख साजा ॥
'आरीलक' बावन लौं रहेऊ । मास सुदस दिन आठहु ठहेऊ ॥
'राजपाल' पुनि छब्बिस वर्षा । कियो संगठन आपु सहर्षा ॥
तेहि सामन्त नृपति ने मार्‍यो । 'महानपाल' जेहिनाम उचार्‍यो ॥
एक वर्ष अरु चौदह मासा । पीढ़ी एक रहे सुख आसा ॥
महानपाल पर कीन्ह चढ़ाई । नृपति 'विक्रमादित्य' सुहाई ॥

सो०--हैंउज्जैन-नरेश, कहत अवन्तिक जासु सब ।
छीन लियो वह देश, बसत रह्यो महिपाल जहँ ॥२३॥
दो०--राज कियो तीरानबे, वर्ष सु पीढ़ी एक ।
इनको कुछ बिस्तार नहिं, रह्यो वंश नहिं नेक ॥३०१॥
'समुद्रपाल' उमराउ सुहाई । राजा 'शालिवाहन' दर्शाई ॥
तिन विक्रमादित्य को मारी । राज्य कियो अतिही सुखकारी ॥
सोलह पीढ़ि तीनि शत वर्षा । और बहत्तर वर्ष सहर्षा ॥
मास चारि सत्ताइस बासर । राज रह्यो तेहि वंश उजागर ॥
'समुद्रपाल' किय चौवन वर्षा । मास युग्म विंशति दिन हर्षा ॥
राज कियो अति नेह बढ़ाई । आगे 'चन्द्रपाल' सुखदाई ॥
तिन किय छत्तिस वर्ष स्वराजू । पाँच मास दिन चारिहु राजू ॥
'सहायपाल' राजा पुनि आई । ग्यारह बरस राज अपनाई ॥
दो०--चारि मास ग्यारह दिवस, राज कियो अति नेह ।
'देवपाल' आये बहुरि, जानहिं नीति सनेह ॥३०२॥
वर्ष सत्ताइस मास सु एका । दिवस अठाइस सहित विवेका ॥
कियो राज बहु नीति बिचारी । पुनि 'नरसिंहपाल' बलधारी ॥
वर्ष अठारह विंशति राती । राज कियो पालीं सब जाती ॥
पुनि 'रघुपाल' भये तहँ राजा । बरस सु बाइस सहित समाजा ॥
मास तीन अरु दिन पचीसा । कीन्ह राजहर्षित नरकीसा ॥
पुनि 'गोबिन्दपाल' तहँ आये । वर्ष सत्ताइस लौं सुखपाये ॥
एक मास अरु सत्रह बासर । राज कियो पायो बहु आदर ॥
वर्ष सु छत्तिस 'अमृतपाला' । दश महिना तेरह दिन काला ॥
दो०-'बलीपाल' पुनि नृपति भे, द्वादश वर्ष प्रमान ।
पाँच मास तहँ राज किय, दिवस सताइस जान ॥३०३॥
महीपाल पुनि भे युवराजा । वर्ष त्रयोदश लौं महराजा ॥

आठ मास अरु चारिहु बासर । कियो राज बहु भाँति गुणाकर ।।
'हरीपाल' पुनि चौदह वर्षा । आठ मास दिन चारि सहर्षा ।।
राज कियो सब बिधि चितलाई । 'सीसपाल'[1] पुनि कियतहँ आई ।।
ग्यारह बरस और दस मासा । तेरह दिन किय राज सु पासा ।।
पुनि भे 'मदनपाल' महराजा । सत्रह बरस राज तिन साजा ।।
दस महिना अरु उनइस बासर । पाली प्रजा कीन्ह बहु आदर ।।
'कर्मपाल' पुनि भये नरेशा । सोलह बरस सम्हार्‍यो देशा ।।

दो०--युग्म मास द्विदिवस लगि, रहे तहाँ 'महिपाल' ।
पुनि कीन्ह्यो यहि देश पर, अधिपति 'विक्रमपाल' ३०४।।

चौबिस बरस व ग्यारह मासा । दिवस त्रयोदस लह्यो सुपासा ।।
पश्चिम दिशा एक महराजा । 'मलुखचन्द' बोहरा बिराजा ।।
तासु लरन हित कीन्ह चढ़ाई । विक्रम तहाँ वीर गति पाई ।।
मलुखचन्द सेना युत आवा । इन्द्रप्रस्थ को तेहि अपनावा ।।
तासु वंश दश पीढ़ी ताईं । यकशत इकानवे सुहाई ।।
एक मास दिन सोरह जानहु । मलुखचन्द को वंश प्रमानहु ।।
चौवन वर्ष कियो अधिकारा । मास युग्मदिन दश उजियारा ।।
'विक्रमचन्द' सुद्वादश वर्षा । सात दिवस बारह दिनहर्षा ।।

दो०–'अमीनचन्द'[2] दश वर्ष लगि, पाँच दिवस किय राज ।
'रामचन्द' पुनि आइकर, कीन्ह्यो सहितसमाज ।।३०५।।

तेरह बरस औ ग्यारह मासा । आठ दिवस किय राजसुपासा ।।
'हरीचन्द' पुनि चौदह वर्षा । नव महिना दिन चौबिस हर्षा ।।
राज कियो अति ही सुखदाई । पुनि 'कल्याणचन्द' लिय आई ।।
तिन दश वर्ष प्रजहि सुखदीना । पाँच मास दिन चार अदीना ।।

---

[1] किसी-किसी इतिहास में भीमपाल भी लिखा है ।

[2] कहीं-कहीं इसका नाम मानकचन्द भी लिखा है ।

पुनिक्रिय 'भीमचन्द' अधिकारा । सोलह बरस सहित परिवारा ॥
अरु द्वि मास दिवस नव जानो । राज कीन्ह यह काल प्रमानो ॥
पुनि भे 'लोपचन्द' तहँ राजा । छब्बिस वर्ष ठाठ तिन साजा ॥
तीनि मास अरु बाइस बासर । रहे तहाँ आनन्द उजागर ॥
सो०—बहुरि सु इकतिस वर्ष, 'गोविन्दचन्द' राजा भये ।
सात मास सह हर्ष, और दिवस बारह गये ॥२४॥

दो०—पुनि रानी 'पद्मावती', एक वर्ष परमान ।
बैठि सिंहासनराजकिय, अरु पायो बहु मान ।३०६॥
जब पद्मावति[2] स्वर्ग सिधारी । रह्यो न कोउ सुत राज्यधिकारी ॥
तब मंत्रिन मिलि कीन्ह विचारा । बिनराजा केहि विधि निस्तारा ॥
'हरि-प्रेम' बैरागि जो रहेऊ । ताकहँ राज सिंहासन दयेऊ ॥
करन लगे सब राज के काजा । मंत्रीगन जो सहित समाजा ॥
पीढ़ि चारि अरु वर्ष पचासा । इकइस दिवस परयोबहु पाँसा ॥
'हरि-प्रेम' विस्तार सुनाऊँ । सात वर्ष पँच मास गनाऊँ ॥
अरु सोलह दिन राज सम्हारा । ता पीछे बैकुण्ठ सिधारा ॥
पुनि 'गोविन्द-प्रेम' भये राजा । बीस बरस तेहि कीन्ह स्वराजा ॥
दो०—मासयुग्म अरु आठ दिन, राजकियो अतिनेह ।
पुनि 'गोपाल-प्रेम' तहँ, आये सहित सनेह ॥३०७॥
वर्ष एक अरु सप्त महीना । दिन अट्ठाइस लौं सुख दीना ॥
बहुरि 'महाबाहू' तहँ राजा । रहे छै बरस सहित समाजा ॥
आठ मास अरु उन्तिस बासर । कियो राज अति नीति उजागर ॥
राज त्यागि सो वनहि सिधावा । तपहित प्रेम हृदय में आवा ॥
तब बङ्गाल देश को राजा । 'आधीसेन' जो भो महराजा ॥
इन्द्रप्रस्थ सो तुरतहि धावा । सून सिंहासन जब सुनि पावा ॥

---

[2] रानी पद्मावती गोविन्दचन्द की स्त्री थी ।

राज्य कियो तेहि औसर पाई। बारह पीढ़ि रही प्रभुताई॥
यकशत अरु इक्वान वर्षा। मास यकादश दिन द्वि हर्षा॥

दो०--राजा आधीसेन भे, रहे अष्टदश वर्ष।
पाँच मास यकइस दिवस, कीन्ह्यो राजसहर्ष॥३०८॥

बहुरि 'बिलावल सेन' समाजा। द्वादश वर्ष रहे तहँ राजा॥
चारि मास अरु द्विदिन बीते। आये 'केशवसेन' सप्रीते॥
पन्द्रह वर्ष अरु सात महीना। बारह दिवस राज्य तिन कीना॥
'माधसेन' पुनि नृप तहँ भयेऊ। द्वादश वर्ष तहाँ पर रहेऊ॥
चारि मास द्वि दिवस बिताई। गयो नृपति सो स्वर्ग सिधाई॥
भयो 'मयूरसेन' तब राजा। बीस वर्ष लगि कीन्हेहु काजा॥
और यकादश मास सुहाई। दिय सत्ताइस दिवस बिताई॥
'भीमसेन' पुनि भे युवराजा। पाँच वर्ष कीन्हों तिन काजा॥
मास सुदश अरु नव दिन भाई। प्रेम प्रजासँग किय अधिकाई॥

दो०--पुनि 'कल्याणसेन' तहँ, चारि बरस कियराज।
आठमासइकइसदिवस, भोग्यो सहित समाज॥३०९॥

'हरीसेन' किय द्वादश वर्षा। दिवस पचीस महा उत्कर्षा॥
'क्षेमसेन' पुनि भये नरेशा। वर्ष आठ राजा निज देशा॥
मास यकादश पन्द्रह बासर। कियो प्रजाकोबहुविधि आदर॥
पुनि 'नारायणसेन' सप्रीती। छब्बिस बरस चलायो नीती॥
अरु दशमास राज तिन कीन्हा। बहुरि 'दमोदरसेन' अधीना॥
वर्ष यकादश पाँच महीना। उनइस दिवस राज तिनकीना॥
'दीपसिंह' उमराव सुहाई। तेहि दुखदीन नृपतिअधिकाई॥
तब तेहि लीन्ही सैन्य मिलाई। अरु राजा सँग रारि बढ़ाई॥

दो०--मारि दमोदर सेन को, विजय कियो बहु भाँति।
'दीपसिंह' उमराव जो, अपनाई सब जाति॥३१०॥

द्वादश तरङ्ग (स० प्र० १२ स०)

चर्वाक्, जैन और बौद्धमत-वर्णन

सो०--ऋषिवर मो हित जान, कह्यो जो ग्रंथनकी कथा ।
मोर गयो अभिमान, रह्यो अविद्यायुक्त जो ।।१।।

दो०--कही पुरानिन[1] की कथा, सुनत हृदय अकुलात ।
अब न फँसहु यहिजालमें, जा महँ रह्यो भुलात ।।१।।
जैनधर्म की कथा को, कहहु मोहि समुझाय ।
तीर्थ देवता ग्रन्थ सब, सूक्षम देहु सुनाय ।।२।।
जौ लगि धर्मन की कथा, नहिं जानत नर कोय ।
तौ लगि जग भ्रमजाल से, छूटत नहिं सोय ।।३।।

कहगुरु सुनहु शिष्य करि ध्याना । नाहिं उपाय और है आना ।।
ऋषिवर दयानन्द जग आई । जैनधर्म कछु बात सुनाई ।।
सोई सुनहु सकल मन लाई । ऋषिवर कह्यो जौन समुझाई ।।
जानहु सकल धर्म की बाता । तौ न पड़हु भ्रमजाल सुताता ।।
ऋषिवर दयानन्द सों आई । पूछत एक शिष्य हर्षाई ।।
नाथ कहहु जिनधर्म[2] कहानी । करी जौन जैनिन मनमानी ।।
तब ऋषि कहत सुनहु मम बाता । कहिहौं जैनधर्म कछु ताता ।।
और बौध की कछु कछु बातैं । धर्म नाम धरि करी जो घातैं ।।

सो०--प्रकट्यो का विधि आय, जैन बौध यहि ठौर पर ।
स्वामि कहत समुझाय, फँसे अविद्या में जबहिं ।।२।।

---

[1] पुराणों के अनुकूल धर्म मानने वाले । [2] जैनधर्म ।

दो०--सत्यासत्य विचार जग, नष्ट भयो जेहि काल ।
त्यागी विद्या वेद की, तब से भयो बेहाल ।।४।।
प्रकटे जैन बौध बहु पन्था । और बनाये नाना ग्रन्था ।।
जो है बालमीक रामायन । और महाभारत सुखदायन ।।
तिन महँ जैन बौध नहिं नामा । नहिं तहँ चारवाक सुखधामा ।।
जब हम ग्रन्थ जैन के देखत । तो तहँ रामकृष्ण अवरेखत ।।
रामकृष्ण की सकल कहानी । लिखी जैन बौधन हितमानी ।।
तौ केहि भाँति पुरान बतावहिं । जैनधर्म जो सबहिं सुनावहिं ।।
यदि यह सबसे होत पुराने । तौ काहे न महभारत आने ।।
जब पुरान इतिहासन माहीं । जैन बौध कहुँ नाहिं लखाहीं ।।
दो०--धर्म पुरानो जैन है, हम मानहिं केहि भाँति ।
कबहूँ सुत के सामने, निज पितु जन्म लखाति ।।५।।
याते सब यह बात विचारहु । जैन अरु बौद्ध नवीन निहारहु ।।
यह द्वादश प्रसंग हम कहहीं । जैनधर्म जो मानत रहहीं ।।
जैन ग्रन्थ के सहित प्रमाना । कहिहौं कछुक नाहिं मनमाना ।।
कोऊ जैनी मेरी बाता । सुनके दुखित होय नहिं ताता ।।
सत्य असत्य विचारन हेता । जो हम कहब प्रमाण समेता ।।
हम न चहहिं काहू की हानी । निर्णय करहिं सत्य सुखदानी ।।
जैन बौध द्वौ सुनहिं सुनावहिं । अंधकार भ्रम सब नशिजावहिं ।।
त्यागहिं असत मार्ग सब कोई । धारहिं सत्य पन्थ हित होई ।।
दो०--यदि मानव सत असत को, करहिं न कबहुँ विचार ।
वृथा जन्म संसार में, ताको लेहु निहार ।।६।।
जो सत असत विचार न होई । होइ न उन्नति केहु विधि सोई ।।
लाभ होइ बहु जनसमुदाई । देखि जैनमत की प्रभुताई ।।
ग्रन्थ न कतहुँ देखावहिं काहू । राखहिं गुप्त करहिं उत्साहू ।।

अधिक परिश्रम जब हम कीन्हा । कछु बम्बई प्रेस मोहिं दीन्हा ॥
जो कछु पोल न परत लखाई । तौ काहे निज ग्रन्थ छिपाई ॥
अरु काहुहि नहिं देखन देहीं । हिय डरपैं कोउ जानि न लेहीं ॥
पहिले अपने दोष विचारी । चलहिं सुदूसर दोष निहारी ॥
ताते सुनहु हमारी बाता । और विचारि लेहु तुम ताता ॥

दो०--पुरुष घृहस्पति नाम को, भयो रह्यो कयहु काल ।
तेहिं मान्यो नहिं वेदको, सो नास्तिक विकराल ॥७॥
और न मानत यज्ञ को, नहिं ईश्वर चित देय ।
याविधि सबसन कहतभो, निज बुद्धी का धेय ॥८॥

सकल मरत जग के बिच आई । कोउ न जीवित रहत सदाई ॥
याते जौ लगि रहै शरीरा । सुख सों रहै सहै नहिं पीरा ॥
चारवाक इमि कहत बखानी । बहुरि न कोउ आवत अभिमानी ॥
जीव नशे यह नशत शरीरा । भस्म करत सब जनतजिपीरा ॥
जो धन सुख हित हम लै खायो । सो शरीर सँग स्वर्ग सिधायो ॥
जेहि खायो सो बहुरि न आवै । फिर कासों वह जन धन पावै ॥
ताते रहहु चैन से भाई । भोग करहु धन जाविधि पाई ॥
निज ऐश्वर्य बढ़हिं जेहि भाँती । करहु नीति सोई सुखमाती ॥

दो०--मन इच्छित फल भोगई, यहीं लोक के माहिं ।
है परलोक कछू नहीं, यह समझहु हिय माहिं ॥९॥
क्षितिजल पावक वायु सों, यह शरीर दिखराय ।
चारि भूत के योग से, चेतन उपजत आय ॥१०॥

जिमि जग मादक द्रव्य सदाई । पियहि नशा होवै अधिकाई ॥
तिमि शरीर सँग जीव विराजत । नष्ट भये सोऊ सँग जावत ॥
पुनि केहि पाप पुन्य जग होई । धारहु हिय यह बचन सँजोई ॥

भूत सँयोग सु तन के माहीं । उपजत जीव रहत तेहि ठाहीं ॥
होत वियोग नष्ट सो होई । यह प्रतक्ष जानहिं सब कोई ॥
मृत्यु भये पर नाहिं दिखाई । बिन प्रतक्ष अनुमान न भाई ॥
ग्राह्य सदा प्रत्यक्ष लखाई । अरु अनुमान गौण दर्शाई ॥
सुन्दर नारि रमै आनँद हित । है पुरुषारथ फल धारहु चित ॥

दो०--यह सिधान्त ऋषिवर सुन्यो, तबै कहत समुझाय ।
सुनहु चित्त दै सकल जन, हम जो कहत सुनाय ॥११॥

यह जड़ भूत सकल जग जानत । तिनसोंचेतन केहि विधि आवत ॥
उपजत देह मातु पितु योगा । वैसेहि आदि सृष्टि उपभोगा ॥
बिना ईश यह मनुजशरीरा । होत न कतहुँ परम बलवीरा ॥
नशा समान न चेतन होई । इष्ट विनाशवान नहिं सोई ॥
यह जग रीति सदा चलिआई । होत नशा चेतन समुदाई ॥
जेहि न विलोकै कहै अभावा । जो न जीव महँ आवत भावा ॥
नष्ट शरीर होत सब भाँती । नशत न जीव परम सुख माती ॥
जस पूरब तस आगिल रहई । तेहिउपनिषदयाहि विधि कहई ॥

दो०--याज्ञवल्क ऋषि इमिकहत, मैत्रेयी समुझाय ।
मैं न मोह सों कहत हौं, सुनिये चित्तलगाय ॥१२॥
है अविनाशी आतमा, योग करत जब देह ।
तबहिं चेष्टा तनु करत, जीव शरीर सनेह ॥१३॥

जीव शरीर पृथक जब होई । रहत ज्ञान नहिं तबतनु कोई ॥
है सँयोग चेतनता भाई । अरु वियोग जड़ मूर्ति लखाई ॥
बात प्रतक्ष सुनहु यहि भाँती । आँख न देखत अपनी पाँती ॥
अरु सब काहुहि नित प्रति देखै । या विधि जग प्रत्यक्ष विलोकै ॥
जो द्रष्टा वह द्रष्टा रहई । होय न दृश्य कतहुसोइ अहई ॥
बिन अधार आधेय न होई । नहिं कारन बिन कारज सोई ॥

विना अवयवी अवयव नाहीं। कर्ता बिन नहिं कर्म लखाहीं।।
तिमि प्रतक्ष करता बिन कैसे। इमि मनमानी कहत अनैसे।।

दो०--नारि संग पुरुषार्थ फल, जो तुम मानत भाय।
क्षणिक सुःख के हेत ही, कर्म करत दुख दाय।।१४।।

सम्भव होय दुःख अधिकाई। सोउफल पुरुषारथ का भाई।।
यदि दुखहू पुरुषारथ मानहु। तौ आदर करि का अपनावहु।।
अवशि स्वर्ग हानी दुख भोगहु। मुक्ति अर्थ सुखहानिविलोकहु।।
तबहीं चारवाक इमि भाखत। दुख संयुत सुख को जोत्यागत।।
वे मूरख जग मोहिं लखाहीं। अन्न त्यागि भुसलेत सराहीं।।
जे बुधिवन्त जगत के माहीं। लहत सुखदुःख त्यागत जाहीं।।
जो सन्मुख सुख ताकहँ त्यागी। इच्छा करहिं स्वर्ग सुख लागी।।
धूर्तन कथित वेद की बानी। है सब भाँतिन परम असानी।।

दो०--अनुष्ठान परलोक हित, कर्म करत जो कोय।
ते अज्ञानी जग महा, लहत मूर्खता सोय।। १५ ।।

कबहुँ न जव परलोक लखाई। तब आशा बड़ि मूरखताई।।
गुरू बृहस्पति या विधि कहई। चारवाक जिन रीति जो अहई।।
अग्निहोत्र अरु तीनहु वेदा। तीनि दण्ड अरु भस्म अखेदा।।
बुद्धिहीन पुरुषार्थ रहित नर। लिय बनाइ जीविका निरन्तर।।
काँटे लगे होत दुख जोई। नाम नरक हम मानत सोई।।
लोक सिद्ध राजा परमेश्वर। देह नाश स्वइ मोक्ष नरेश्वर।।
है यह जगत और कछु नाहीं। हयमानत यहि भाँति सदाहीं।।
तब ऋषि कहत सुनहु हम कहहीं। लघ सुखविषय सुःखजो अहहीं।।

दो०--तेहि मानत पुरुषार्थ फल, औरन कहत अज्ञान।
अबुध मूर्खता है महा, मोक्ष न लहत अयान।।१६।।

अग्निहोत्र अरु यज्ञ प्रभावा । होय वृष्टि शुचिपवन सोहावा ॥
होत निरोग सकल जन तेई । धर्म अर्थ कामादिक लेई ॥
सोहैं धूर्त अधम अभिमानी । मानत जो न वेद सुखदानी ॥
दण्ड भस्म खंडन जो कीन्हा । सत्य सो बात चतुर्थी चीन्हा ॥
नरकनाम कंटक दुख मानत । महारोग किमि नरक न भाषत ॥
पालहि प्रजा जगत हित करहीं । अस राजा सुनीति हियधरई ॥
यदि ताकहँ तुम आदर करहू । तौ यह साँच वचन उर धरहू ॥
अरु यदि हो अन्यायी राजा । निरत पापमय सहित समाजा ॥
ऐसेहु नृपति ईशयुत मानहु । तुम समान मूरख को आनहु ॥
दो०--देह नाश ही को यदा, मानहु मोक्ष समान ।
स्वान गर्द्धभा और तुम, भेद कवन अनुमान ॥१७॥
केवल है आकार विभिन्ना । कहत हृदय लागत अतिखिन्ना ॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । जो हम कहत सुनहु चितलाई ॥
जग उत्पत्ति स्वभाविक मानत । जैन बौध आभणक बखानत ॥
गुन स्वभाव से जग बनिजाई । और पदारथ जौन लखाई ॥
जिमि उष्णता अग्नि गुन रहई । जलमहँ शीतलता नित अहई ॥
शीत स्पर्श वायु बिच जानहु । याही भाँति जगत परमानहु ॥
जग कर्ता कोउ दूसर नाहीं । केवल है स्वभाव दर्शाहीं ॥
स्वामि कहत यह झूठ ग्रसाना । जो न करहिं चेतन निर्माना ॥
तौ स्वभाव ते कछु नहिं बनहीं । चाहे किते पदारथ मिलहीं ।
दो०--जो स्वभाव हम मानहीं, तौ काहे नहिं होत ।
द्वितिय सूर्य अरु चंद्रगन, काहे न होत उदोत ॥१८॥
तब यक चारवाक इमि कहई । स्वर्ग अपवर्ग कछू ना अहई ॥
नहिं आत्मा और परलोका । नहिं वर्णाश्रम क्रिया न लोका ॥
स्वर्ग मिलत यदि पशुके मारे । तौ निज पितु काहे न हनिडारे ॥
श्राद्ध सों मृतक जो तृप्ती लहहीं । तौकिमि पथिकदुःख को सहहीं ॥

दान से तृप्त होत सुरवासी । भोगभोगि सब बनहिं बिलासी ॥
तौ परदेशी किमि दुख भरहीं । दैकर दान दुःख सब हरहीं ॥
जौलगि जियहि सुःख सों रहई । खाइ दूध घृत आनँद लहई ॥
ऋण लैकर निशिवासर खावहिं । भस्मभये पुनिको यहँ आवहिं ॥

दो०--देह दशा को त्यागि के, जीव जात परलोक ।
कहहु सो किमि आवै नहीं, गृह सनेह अवलोक ॥१९॥

सो०--याते विप्र समाज, विविधि बनाईं जीविका ।
करवावत महराज, मृतक श्राद्ध गात्रादि जो ॥३॥

तीन वेद करता जगमाहीं । भाँड धूर्त हैं तुम्हहि लखाहीं ॥
जानहु सकल निशाचर करनी । वेदन में जो कछु है बरनी ॥
अरु जरफरी तुर्फरी भासा । स्वार्थिनरची बहुतकरि आसा ॥
देखहु वेदन की है रचना । किमिन कहहिं हमधूर्तन वचना ॥
नारी ग्रहण करहिं सब भाँती । अश्वशिश्नु धारै सुखमाती ॥
नारी अश्व समागम रीती । निन्दित है यह वेद की नीती ॥
माँस अहार जहाँ दर्शाई । सो करतूत निशाचर भाई ॥
पुनि कह स्वामि सुनहु चितलाई । हिय धारहु जो तुमहिं सुहाई ॥

दो०--स्वर्ग महासुख भोग है, अहै नरक दुख भोग ।
जीव न होवै कहहु को, भोगै सारे भोग ॥२०॥

भोगत सुख दुख जो यहि बेरा । ताहि भाँति पर जन्म बसेरा ॥
जो उपकार करहि दिन राती । बोलहि सत्य सदा सब भाँती ॥
यह कृतकर्म नशहि नहिं कतहूँ । मानि लेहिं कैसेहि कोउ कबहूँ ॥
पशुबध यज्ञ वेद नहिं भाषत । अरु नहिं मृतक श्राद्ध बतरावत ॥
यह कपोल कलपित बहु गाथा । लिखे पुरानिन अपने हाथा ॥
या विधि तुम्हहू खण्डन करहू । पुरान आदि नहिं हिय महँ धरहू ॥
जो तुम कहत कर्मनहिं भोगहिं । अरु ऋण लेइ ऋणी नहिं होवहिं ॥

यह तुम्हारि बहु भूल लखाई। जो तुम मानत भोग न भाई॥

दो०--जीव अभाव न होवई, यह शरीर नशिजात।
कर्म शुभाशुभ जो कछू, जन्म दूसरे जात॥२१॥
याते ऋण लै जगत में, जो भोगत है भोग।
ह्वै पापी दूसर जनम, तेहि पावत उपभोग॥२२॥

अरु जो कहत बहुरि नहिं आवत। प्रीति कुटुम्बी सकल भुलावत॥
तनु से निकसि जीव जब जाई। कर्मनुकूल और तनु पाई॥
याते बहुरि न आवत तहवाँ। पूर्व जन्म सुख पायहु जहवाँ॥
जो जग प्रेतकर्म दिखराई। वह स्वार्थिन यक रीति चलाई॥
लिय बनाइ जीविका अनूठी। वेद माहिं सब विधि है झूठी॥
खण्डन करन योग यह बाता। है हमार हू सम्मत ताता॥
समुझि लेहु यह हृदय बिचारी। पढ़ि विद्या नहिं होत अनारी॥
चारवाक यदि कछु अवलोकत। तौ अस बातें कतहु ना बोलत॥

दो०--समुझि सके नहिं अर्थ को, वेद सत्य जो ज्ञान।
लौकिक विधि टीकाकरी, मानि महा अभिमान॥२३॥

बहु अश्लील अर्थ दर्शायो। करि धूर्तता जगत अपनायो॥
यामें दोष वेद को नाहीं। लिख्योमहीधर निज मतिचाहीं॥
करि धूर्तता जगत भरमायो। जैनिन वेद देखि नहिं पायो॥
जो हैं चारवाक अरु बौद्धा। वेद न देख्यो है करि श्रद्धा॥
याते बुद्धि नशी सब केरी। निन्दा करत वेद बहुतेरी॥
वाम मार्गिन टीका देखी। कीन्ह विरोध[1] वेद को पेखी॥
रहित प्रमाण कल्पना कीन्ही। बहु मूर्खता जौन लिख दीन्ही॥
ख होवे लखिके चतुराई। देखहु तुमहु विचार दढ़ाई॥

---

[1] त्रयो वेदस्य कर्तारः भांडधूर्तनिशाचराः।

दो०--वेद अर्थ बहु भाँति सो, भ्रष्ट कियो है आय ।
वाममार्गी भ्रष्ट ह्वै, भखत मांस हर्षाय ॥२४॥
अरु जो कछु तुम कह्यो बखानी । है नहिं वेदन की यह बानी ॥
वाम मार्गिन भ्रष्ट अचारा । किये सकल लै वेद सहारा ॥
नास्तिक भये देखिके अर्था । मूल ज्ञान में नाहिं समर्था ॥
जैन बौद्धमत धारन कीन्हों । वेदन निन्दा में चित दीन्हों ॥
बहु मत बढ़े अनीश्वरवादी । चारवाक सम भये विवादी ॥
मूल अर्थ यदि कछुक विचारत । तौ पुनि असत बात नहिं भाषत ॥
जो न होत अस बुधि नर केरी । तौ किमि पावत विपति घनेरी ॥
तात विनाश समय जब आवै । बुधि विपरीत होत दुखपावै ॥
दो०--चारवाक के भेद अब, सुनहु सुनावहिं ताहि ।
बहुतक समता है नहीं, चारवाक के माँहि ॥२५॥
पर विशेष यक मानत बाता । तनु उत्पन्न जीव सँग ताता ॥
देह नशे सोऊ नशि जावे । पुर्नजन्म कबहूँ नहिं पावे ॥
अरु परलोक नाहिं हैं मानत । यक प्रत्यक्ष प्रमान बतावत ॥
और प्रमान कोऊ नहिं मानत । चारवाक को अर्थ सुनावत ॥
चारवाक जो शब्द लखावहिं । तेहिं विशेष अर्थी बतरावहिं ॥
बोलन माहिं प्रगल्भ कहाई । वैतण्डिक बहु अर्थ जनाई ॥
बौध जैन चारहू प्रमाना । पुर्नजन्म परलोकहु माना ॥
ते नित मानत जीव अनादी । मुक्तिहु मानत द्वौ मतवादी ॥
दो०--चारवाक अरु बौध में, और जैन के बीच ।
भेद जो है ऊपर कह्यो, धरहु हिये बिच खींच ॥२६॥
निंदा ईश्वर वेद की, और नास्तिक-वाद ।
करता जगत ना मानहीं, पर मत द्वेष, विवाद ॥२७॥
सुनहु बौद्धमत की कछु शिक्षा । भेद बनाइ दीन्ह, जो शिक्षा ॥

कार्य देखि जो कारण मानत । कारण सो कारज दर्शावत ॥
अरु अवशेष कहत अनुमाना । और प्रमान नाहिं कोउ माना ॥
चारि प्रकार बौद्धमत माहीं । चारवाक से पृथक लखाहीं ॥
एक प्रकार "माध्यमिक" जानो । दूसर "योगाचार" बखानो ॥
तीसर है "सौत्रान्तिक" भाई । "वैभाषिक" चतुर्थ दर्शाई ॥
बुद्धि से सिद्ध होत जो बाता । निज बुधिमानि लेहि तेहि ताता ॥
निज बुधि में जो नाहिं समाई । ताको कतहुँ न मानत भाई ॥

दो०--बौद्ध केर है अर्थ यह, समुझहु हिये विचार ।
नेत्र खोलि देखहु जगत, का यह करत अचार ॥२८॥

सर्व शून्यता माध्यम मानत । अर्थ करतयहिविधिसमुझावत ॥
आदि न होहिं अन्त नहिं रहहीं । प्रकट अवस्था मध्य लखाहीं ॥
जिमि घट उत्पति पूर्व न रहेऊ । अन्त समयसोपुनि नशिगयेऊ ॥
मध्य समय घट परत लखाई । भये नाश घट नाम नशाई ॥
याते शून्य तत्त्व एक अहई । बौद्ध माध्यमिकया विधि कहई ॥
बाह्य शून्य मानत व्यवहारा । कहत बौद्ध जो योगाचारा ॥
भीतर ज्ञान पदारथ भासत[1] । बाहर कछू नाहिं है भावत ॥
जिमि घटज्ञान आत्मबिच रहई । देखि पदार्थ जो मानव लहई ॥
यदि न होहिं भीतरतेहि ज्ञाना । तौ सब भाँतिन पुरुष अयाना[2] ॥

दो०--तीसर "सौत्रान्तिक" करत, बाह्यअर्थ अनुमान ।
बाह्य वस्तु प्रत्यक्ष नहिं, अंग उपांग समान ॥२९॥

सो०--शेष होत अनुमान, एक देश प्रत्यक्ष जब ।
मानत यहै प्रमान, सौत्रान्तिक सब भाँतिसों ॥४॥

"वैभाषिक" यहि भाँति बतावहिं । बाह्य वस्तु प्रत्यक्ष सुनावहिं ॥
जिमि घट नीलबरन है देख्यो । बाह्य प्रतीत वरण जो पेख्यो ॥

---

[1] दिखाई देते । [2] अज्ञानी (नासमझ) ।

यद्यपि आचारी है एका। बुद्धि तपस्वी नीति विवेका ॥
शिष्यन बुद्धिभेद से भाई। चारि भेद करि लीन्ह बनाई ॥
जिमि बहु पुरुष करत व्यवहारा। कर्मकरत निज बुधि अनुसारा ॥
दूसर बात सुनहु चितलाई। सबहि क्षणिकमाध्यमिकबताई ॥
क्षण क्षण बदलत बुधि परिणामा। बीत्यो क्षण नहिं आवत कामा ॥
यक क्षण जासु लख्यो जेहिभाँती। दूसर क्षण तस नाहिं सुहाती ॥
अरु उपदेश सबन अस करहीं। जासोक्षणिक मानि हिय धरहीं ॥

दो०--"योगाचार" प्रवृत्ति को, मानत दुख को रूप।
तुष्ट न कोऊ होत है, इच्छा रहत अनूप ॥ ३० ॥

सो०--मानत लक्षण देखि, सौत्रान्तिक यहि भाँतिसों।
गऊ अश्व को पेखि, लक्षमाहिं लक्षणकरत ॥ ५ ॥

या विधि सदा लक्ष के माहीं। लक्षण रहत जो पंडित कहहीं ॥
"वैभाषिक" यहि भाँति बखानत। शून्यहि एक पदारथ मानत ॥
वैभाषिक अरु माध्यम दोऊ। मानत शून्य पदारथ सोऊ ॥
बहुत विवाद वौद्ध के माहीं। मानत चारि भावना आहीं ॥
पुनि समुझाइ कहत ऋषिराई। या महँ बहु संदेह लखाई ॥
जो सब शून्य होइँ जग माहीं। शून्य न होत जो जानत ताहीं ॥
होय शून्य सब तौ किमि जानै। शून्य शून्य केहि भाँति प्रमानै ॥
शून्य के सिद्ध भये द्वै साधन। ज्ञाता[1] ज्ञेय[2] पदारथ पावन ॥

दो०--योगाचारी मानहीं, बाह्य शून्य को भाव।
महा असम्भव बात यह, जानहु सहज स्वभाव ॥ ३१ ॥

तो चाहिय परवत उरमाहीं। हृदय बीच अस अस्थल नाहीं ॥
परबत ज्ञान अभ्यन्तर[3] रहही। परबत बाहर स्थित अहही ॥
"सौत्रान्तिक" प्रत्यक्ष न मानत। जिते पदारथ जग में भासत ॥

---

[1] जाननेवाला। [2] जो जाना जाय। [3] भीतर।

तौ केहि विधि वह स्वतः प्रत्यक्षा। और न तासु बचन प्रत्यक्षा॥
यदि प्रत्यक्ष न होवे भाई। तौ यह घट कस कहत सुनाई॥
ज्ञाता[1] ज्ञान[2] जहाँ पर होई। होत प्रत्यक्ष तहाँ पर सोई॥
यदपि प्रत्यक्ष विषय जो अहई। सो निशिवासर बाहर रहई॥
तासु ज्ञान आतम बिच होई। तदाकार भावत हिय सोई॥

दो०--क्षणिकवाद[3] को मानहीं, तो प्रतिभिज्ञा[4] दोष।
कही बात भूलै सदा, सुनहु याहि तजि रोष॥३२॥

पर जो कुछ हम देखहिं सुनहीं। वह स्मरण सदा ही रहहीं॥
याते क्षणिकवाद नहिं ठीका। यह भ्रम सकल निकारहु जीका॥
जो दुख होइ सुःख नहिं होई। अथवा सुख हो दुख नहिं होई॥
तो कस दुख सुख होय प्रतीती। रात्रि बिना दिन हो कस रीती॥
बौद्ध जाहि तीर्थङ्कर मानत। सकल जैन ताकहँ अपनावत॥
याते दोनों एक समाना। भाव चतुष्टय करत विधाना॥
जासु वासना सब नशि जाहीं। जात शून्य निर्वाण सराही॥
याको ही मुक्ती वह मानत। शिष्यन योगाचार सिखावत॥
और कहत जो गुरु के बचना। मानहु तिनहिं जानिहित अपना॥

दो०--अनादि बुद्धि में वासना, होय जासु व्यवहार।
भासत ताकी बुद्धि में, बुद्धि अनेकाकार॥३३॥

प्रथमस्कन्द लिखा यहि भाँती। मानहि ताकहँ बौद्धजमाती[5]॥
रूप[6], विज्ञान, वेदना, जानहु। संज्ञा, संसकार पहिचानहु॥
इनके अर्थ सुनहु यहि भाँती। प्रथम कहत जो लोक सुहाती॥

---

[1] जाननेवाला। [2] जिससे जाना जाय। [3] पदार्थ क्षणिक और उसका ज्ञाता क्षणिक। [4] मैंने वह बात की थी ऐसा स्मरण न होना चाहिये।

[5] समूह (समाज)। [6] रूपस्कन्दादि।

इन्द्रिन सों रूपादि विकारा । ग्रहन करत मानत अति प्यारा ॥
ताकहँ रूप-स्कंन्ध बतावहिं । दूसरविधि याविधि समुझावहिं ॥
घर विज्ञान प्रवृत्ती जानत । रूप आदि व्यवहार सम्हारत ॥
तेहि विज्ञान-स्कन्ध बतावत । दूसर जैन बौध को भावत ॥
उपजत इन दोहुन से तीसर । सुख दुख ज्ञान होत उरभीतर ॥
दो०--स्कन्धवेदना तीसरी, कहत सबै समुझाय ।
संज्ञास्कन्ध चतुर्थ है, सुनिये चित्त लगाय ॥३४॥
गौ आदिक जो नाम लखाहीं । संज्ञानाम सो मानत ताहीं ॥
पंचम होत राग अरु दोषा । क्लेश क्षुधा तृष्णा मदरोषा ॥
धर्म प्रमाद और अभिमाना । अरु अधर्म उपक्लेश गुमाना ॥
ये उपजत वेदनास्कन्धा । मानत है संस्कारस्कन्धा ॥
जग दुखरूप दुःख को धामा । दुख साधन करि भावसकामा ॥
याही विधि जग दुख को मानै । मुक्ति सरूप यहै हिय ठानै ॥
एतो अधिक बौध मत मानत । चार वाक से अधिक बखानत ॥
जो विरक्त ज्ञानी जग माहीं । जीवनमुक्त लोक पतिआहीं ॥
दो०--बुद्ध आदि तीर्थङ्कर, तासु पदार्थ स्वरूप ।
जानि करत उपदेश नित, भिन्न भिन्न जो रूप ॥३५॥
जानहि क्रिया उपाय विभेदा । मानत तासु सकल तजि खेदा ॥
बड़ गम्भीर भाव हिय धारी । गुप्त प्रकट उपदेश सँभारी ॥
अलग अलग गुरुअन उपदेशा । जस पूरब कीन्हो आदेशा ॥
द्वादश अयतन पूजा कोही । मोक्ष करनि मानत हैं सोही ॥
ताहिहि धन सञ्चय करि लेही । करि पूजा बनि जात सनेही ॥
अरु द्वादश स्थान बनाई । बहु प्रकार सब भाँति सजाई ॥
पूजा करहिं प्रेम मन लावैं । दूसर की पूजा न सुहावैं ॥
ज्ञानइन्दिरी पाँच विधाना । जिह्वा नैन नाक त्वक काना ॥
करमइन्दिरी पाँच सुहाई । हस्तपाद शुभ वाणि लखाई ॥

गुदा उपस्थ इन्द्रियुत जानो। दश इन्द्री यहिभाँति बखानो ॥
दो०--मन बुधि मिलि द्वादश भये, करहिं सदा सत्कार।
आनँद में राखहु सदा, है यह बौद्ध विचार ॥३६॥
या बिधि कछु सिद्धान्त बताई। करत समीक्षा बहु समुझाई ॥
जो दुखरूप जगत यह कहहीं। तौ पुनि जीवन इच्छा लहहीं ॥
देखियत प्रगट चाह सब माहीं। याते दुखमय यह जग नाहीं ॥
हैं सुख दुख दोनों जग माहीं। प्रगट जगत के बींच लखाहीं ॥
मानत बौद्ध जो यहि विधिभाई। तौ किमि औषधि करत बनाई ॥
तनरक्षा किमि करत उपाई। किमि सुख मानत व्यथा नशाई ॥
जो यह कहहिं करत सब कामा। मानत दुःख सदा सब ठामा ॥
तो यह कथन न सम्भव होई। सुख हो जासु कर्म कर सोई ॥
सो०--सुःख जानि नित जीव, करत प्रवृती कर्म में।
जानि दुःख बलसीव, मनहि निवृत्ती धारिये ॥६॥
दो०--धर्म, क्रिया, विद्या जगत, सत्संगादिक कर्म।
सुख कारक व्यवहार शुभ, जानत बुधिवरमर्म ॥३७॥
दुःख लिंग नहिं मानत कोई। बौद्ध विहाय बुद्धिवर जोई ॥
अहैं अपूरण पंच स्कन्धा। बौद्धन हिय धारेहु जो धन्धा ॥
जो यहि भाँति विचारन लागे। भेद अनेक होत हैं आगे ॥
जो तीर्थङ्कर इनके माहीं। तिन उपदेशक कहत सराहीं ॥
जगतपती तिनही कहँ जानहिं। परमेश्वर को कछु नहिं मानहिं ॥
तीर्थङ्करन कहाँ ते पायो। बिन कारन कारज कस आयो ॥
यदि हम मानहिं उनकी बाता। होत न किमियहि औसरताता ॥
बिन सत्संग कर्म बिन चीन्हें। ज्ञानवान होवें बिन कीन्हें ॥
दो०--जो न होत यहि भाँतिसों, तौ सब है निर्मूल।
रोगी सम बड़रात सब, युक्ति शून्य प्रतिकूल ॥३८॥

बौद्ध शून्य अद्वैत जो मानत। निर्मित यह उपदेश बखानत।
देखहु शून्य प्रकट ना होई। कारणरूप सूक्ष्म तौ होई॥
पर भ्रम रूप याहु को जानहु। और जो पूजा द्वादश मानहु॥
अरु तेहि मुक्ती साधन कहहू। तौ किन बात हमारी गहहू॥
तो दश प्राण एकादश जीवा। पूजा करहु जो हैं बलसीवा॥
अन्तःकरण इन्द्रगण पूजा। मानत मोक्षदायिनी पूजा॥
तौ इन बौद्धन औ विषयीजन। अन्तर कहा जो आवहिमोमन॥
इन्द्रिय विषय जहाँ पर होई। तहाँ मुक्ति का काम न कोई॥

दो०--करी अविद्या उन्नती, समता है कोउ नाहि।
घटहि न दूसर में कतहुँ, निश्चय मानहु याहि॥३६॥

वेद त्यागि जो दुख को भोगत। नाना भाँतिन पूजा जोवत॥
पुनि फल मिलत कछू है नाहीं। भरमत आँखि मीचि सब ठाहीं॥
बात हमारि मानि यह लेहीं। तौ सब त्यागि वेद चितदेहीं॥
करि भरोस ईश्वर दिन राती। करहिं सुफल जीवन सब भाँती॥
एक कहत सुनिये ऋषिराई। देखहु बौद्ध ग्रन्थ प्रभुताई॥
ग्रन्थ विवेकबिलास[1] लखाई। लिखो बौद्धमत जो दर्शाई॥

---

[1] वौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम्।
आर्यसत्त्वाख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात्॥ १॥
दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः॥ २॥
दुःख संसारिणःस्कन्दास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्करो रूपमेव च॥ ३॥
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दा वा विषयाः पञ्च मानसम्।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु॥ ४॥
रागादीनां गणो यः स्यात्समुदेति नृणां हृदिं।
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात्समुदयः पुनः॥ ५॥ †

मानत बौद्ध "सुगत" भगवाना। पूजनीय जो देवसमाना ॥
क्षणभंगुर जग को ते मानत। आर्य्या आर्य्य नारि नरभाषत ॥
चार तत्त्व आख्या संज्ञादिक। मानत बौद्ध चहत अणिमादिक ॥

सो०--दुखगृह मानहिं विश्व, ता पीछे उन्नति चहहिं।
अब आगे सर्वस्व, सहित प्रेमव्याख्या सुनहु ॥७॥

दो०--यह जग दुख को मूल है, जानि लेहु सब भाँति।
पंच स्कन्ध विलोकिये, पूर्व कह्यो बहु भाँति ॥४०॥

ज्ञानइन्द्रि जो पाँच लखाहीं। पाँच विषय ताके दर्शाहीं ॥
अरु मन बुधियुत द्वादश जानहु। धर्मस्थान बौद्ध पहिचानहु ॥
राग द्वेष मानुष हिय माहीं। उपजत "समुदय" ताहिबताहीं ॥
आतम को आतम सम्बन्धा। जोस्वभाव वह "आख्या" धंधा ॥
मानत क्षणिक सबै सँस्कारा। स्थिर होति वासना धारा ॥
शून्य तत्त्व अरु रूप शून्य हो। मारग बौद्ध लखहु स्थिर हो ॥
जो प्रतक्ष अनुमान प्रमाना। मानत दो ही प्रबल प्रमाना ॥
तिनके चारि भेद इमि कहहीं। वैभाषिक सौत्रान्तिक अहहीं ॥
और माध्यमिक योगाचारा। मानत ये ही चारि प्रकारा ॥

सो०--ज्ञान माहिं जो अर्थ, विद्यमान मानत सदा।
'वैभाषिक' सामर्थ, कहत ज्ञान बिन और नहिं ॥८॥

---

† क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा।
समार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥ ६ ॥
प्रत्यक्षानुमानं च प्रमाणं द्वितयं तथा।
चतुःप्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥ ७ ॥
अथो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहुमन्यते।
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षं ग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥ ८ ॥ इत्यादि ॥

दो०--"सौत्रान्तिक" मानत सदा, है भीतर प्रत्यक्ष ।
बाहर कछु मानत नहीं, जो कछु पक्ष विपक्ष ॥४१॥
सहित अकार ज्ञानयुत बुद्धी । मानत "योगाचार" समृद्धी ॥
कहत"माध्यमिक" हैं यहि भाँती । है कोउ नाहिं पदारथ जाती ॥
केवल ज्ञानमात्र निज माहीं । सकल पदारथ जो जग आहीं ॥
रागादिक जो ज्ञान प्रवाहा । होत वासना जो जग चाहा ॥
तासु नशे मुक्ती उपराजै । चारौ बौद्ध हृदय बिच छाजै ॥
मूड़ मुड़ाय कमंडलधारी । लै मृगचर्म बनहिं आचारी ॥
बलकल वस्त्र लाल रंग होई । रहहि अकेल न कतहूँ कोई ॥
प्रथम प्रहर भोजन नित करहीं । बौद्ध साधु यह उर बिच धरहीं ॥
स्वामि उत्तर दीन्हो हर्षाई । सुनहु कह्यो जो चित्त लगाई ॥
दो०--सुगत बुद्ध ही देव है, बौद्धन के समुदाय ।
तौ गुरु इनको कौन है, कहहु हमहिं समुझाय ॥४२॥
सो०--विश्व होय क्षणभंग, तौ काको स्मरण हो ।
जो कहि करत उमंग, याहि पूर्व हमने लख्यो ॥६॥
या बिधि हो स्मरण न भाई । तो क्षणभंग सो नाहिं लखाई ॥
है क्षणभंग पदार्थ नशाई । पुनि स्मरण होय कस भाई ॥
इनका क्षणिकवाद पथ जोई । तो क्षणभंग मोक्षहू होई ॥
ज्ञान सहित द्रव्यर्थ जो भाई । तौ जड़ द्रव्यहु ज्ञान लखाई ॥
कहहु क्रिया सो केहि पर करई । चालनादि जो हिय बिच धरई ॥
बाहर जो कछु प्रकट लखाई । वह मिथ्या केहि विधि दर्शाई ॥
जो आकार सहित बुधि होवै । तौ तेहि प्रकट रूप अवलोकै ॥
जो हो केवल ज्ञान बिचारा । हृदय आतमा बिच है धारा ॥
दो०--बाह्य पदारथ ज्ञान ही, केवल मानो जाय ।
तौ पदार्थ के ज्ञेय बिन, ज्ञान न होवे भाय ॥४३॥

नाश वासना मुक्ति यदि, मानि लेहिं जो तात ।
तौ मुक्ती सूषुप्ति में, किमि नहिं मानी जा ॥४४॥
जो हम अस मानहिं जग माहीं । हो विरोध विद्या सब ठाहीं ॥
अब बुधिमान विचारहिं लोगू । बौध धर्म विद्या कस योगू ॥
अबतनि सुनहु जैन व्यवहारा । लिख्योजोग्रंथन[1] बिचविस्तारा ॥
मानत बौद्ध "गगन" अरुकाला । "जीव"और "पुद्गल" कोहाला ॥
जिमि यह चारि द्रव्य हैं मानत । तिमि जैनी षट[2] द्रव्य बखानत ॥

---

[1] प्रकरणरत्नाकर भाग १ नयचक्रसार में यह प्रकरण मिलता है ।

[2] (१) धर्मास्तिकाय—जो गति परिणामीपन से परिणाम को प्राप्त हुआ, पुद्गल इसकी गती के समीप से स्तम्भन करने का हेतु है, वह धर्मास्तिकाय और वह असंख्य प्रदेश परिमाण और लोक में व्यापक है ।

(२) अधर्मास्तिकाय—यह है जो स्थिरता से परिमाणी हुए जीव तथा पुद्गल को स्थिति के आश्रय का हेतु है ।

(३) आकाशास्तिकाय—उसको कहते हैं कि जो सब द्रव्यों का आधार जिसमें अवगाहन, प्रवेश, निर्णय आदि क्रिया करने वाले जीव तथा पुद्गलों को अवगाहन का हेतु और सर्वव्यापी है ।

(४) पुद्गलास्तिकाय—यह है जो कारणरूप सूक्ष्म, नित्य, एकरस, वर्ण गंध, स्पर्श, कार्य का लिंग पूरने और गलने के स्वभाववाला होता है ।

(५) जीवास्तिकाय - जो चेतनालक्षण ज्ञानदर्शन में उपयुक्त अनन्त पर्यायों से परिणामी होनेवाला कर्ता ·भोक्ता है ।

(६) काल—यह है जो पूर्वोक्त पंचास्तिकायों का परत्व अपरत्व नवीन प्राचीनता का चिह्नरूप प्रसिद्ध वर्तमानरूप पर्यायों से युक्त है । परंतु इसमें काल को अस्तिकाय नहीं मानते

या विधि इनकी सुनहु समीक्षा । दीन्ह जौन विधि जैनिन दीक्षा ।।
चारि द्रव्य प्रति समय नवीना । जो मानत है बौद्ध प्रवीना ।।
वे हैं झूठ सदा सब भाँती । जानहिं बुद्धिमान जो जाती ।।
गगन, काल अरु जीव, प्रमानू । होत नवीन न कतहु पुरानू ।।
दो०--ये अविनाशिअनादिहैं, लखिये कारण रूप ।
नवपुरानकिमिघटिसकै, नहिं कोइ युक्ति अनूप ।।४५।।
सो०--जैनि जो मानत बात, सोऊ है नहिं ठीक विधि ।
गुण हीं प्रकट देखात, धर्माधर्म न द्रव्य है ।।१०।।
धर्म अधर्म जो गुन जग माहीं । आवत जीवास्तिकाय के माहीं ।।
जीव, काल, परमाणु अकासा । चारहि मानत जो करि आसा ।।
तौ कछु ठीक होत विधि नीकी । मिटत वासना अनुचित हीकी ।।
वैशेषिक नव द्रव्य जो मानें । ते सब भाँति ठीक ही जानें ।।
क्षिति जल पावक गगन समीरा । जानहु पंच तत्त्व धरि धीरा ।।
काल दिशा मन आतम ये नव । निश्चय पृथक पदारथ हैं सब ।।
चेतन जीव एक ही जानत । जैन बौद्ध ईश्वर नहिं मानत ।।
यह इनकर है झूठ प्रलापा । मिथ्या पक्षपात हिय तापा ।।
दो०--सप्तभंगि[1] जो मानहीं, जैन बौद्ध समुदाय ।
स्याद्वाद[2] मानत बहुरि, सुनहु कहौं समुझाय ।।४६।।

---

१. (१) "सन् घटः" इसको प्रथम भंग कहते हैं; क्योंकि घट अपने वर्तमानता से युक्त, अर्थात् घड़ा है । इसने अभाव का विरोध किया है ।

(२) "असन् घटः" घड़ा नहीं है । प्रथम घट के भाव से यह घड़े के असद्भाव से दूसरा भंग है ।

(३) "सन्नसन्न घटः", अर्थात् वह घड़ा तो है परन्तु पट नहीं, क्योंकि उन दोनों से पृथक् हो गया । ❀

या विधि नित्यानित्य लखाई। सप्तभंगि सब विधि दर्शाई
तैसेहि धर्म समान विशेषा। सप्तभंग विन नाहिं अशेषा॥

---

(४) "घटोऽघटः"-जैसे "सघटः-पटः।" दूसरे पट के अभाव की अपेक्षा अपने में होने से घट अघट कहाता है। युगपत् उसकी दो संज्ञा अर्थात् घट और अघट भी है।

(५) यह है कि घट को पट कहना अयोग्य अर्थात् उसमें घटपन वक्तव्य है और पटपन अवक्तव्य है।

(६) यह है कि जो घट नहीं वह कहने योग्य भी नहीं और जो है वह है और कहने योग्य भी है।

(७) जो कहने को इष्ट है परन्तु वह नहीं है और कहने के योग्य भी घट नहीं।

२. "स्यादस्ति जीवोऽयं प्रथमो भंगः" ॥ १ ॥

अर्थ—जीव ऐसा कथन होवे तो जीव के विरोधी जड़ पदार्थों का जीव में अभावरूप भंग प्रथम कहाता है।

"स्यान्नास्तिजीवो द्वितींयो भंगः'. ॥ २ ॥

अर्थ—दूसरा भंग यह है कि नहीं है जीव जड़ में ऐसा कथन भी होता है—इससे यह दूसरा भंग कहाता है।

"स्यादवक्तव्यो जीवस्तृतीयो भंगः" ॥ ३ ॥

अर्थ—जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं यह तीसरा भंग कहाता है।

"स्यादस्ति नास्ति नास्ति रूपो जीवश्चतुर्थो भंगः" ॥ ४ ॥

अर्थ—जब जीव शरीर धारण करता है तब प्रसिद्ध और जब शरीर से पृथक् होता है, तब अप्रसिद्ध रहता है, ऐसा कथन होवे उसको चतुर्थ भंग कहते हैं।

"स्यादस्ति अवक्तव्यो जीवः पञ्चमो भंगः" ॥ ५ ॥

अर्थ—जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं, जो ऐसा कथन है उसको पञ्चम भंग कहते हैं।

"स्यान्नास्ति अवक्तव्यो जीवः षष्ठो भंगः" ॥ ६ ॥ ❀

द्रव्य स्वभाव और गुँण योगा। अहैं अनन्त जो जानत लोगा॥
तौ अनन्त सप्तभंगिहु होहीं। बौद्ध जैन सम्मत कह जोहीं॥
अब इनकी तनि सुनहु समीक्षा। इनके गुरुन दीन्ह जो दीक्षा॥
दूसर भाव होत यहि भाँती। लखहु ताहि साधर्म सुहाती॥
अरु वैधर्म होहिं जग माहीं। सरल सुभाव विलोकहु ताहीं॥
याते सरल पन्थ जो त्यागत। निज स्वारथ हित पन्थ बनावक्ष॥

दो–तिनमहँ फँसि हैं अबुधजन, जिनहिं न तनिक विवेक।
जिमि परिछाहीं निजलखे, सिंह फँसै करि टेक ॥४७॥

जीव अभाव सदा जड़ माहीं। है अभाव जड़ जीव लखाहीं॥
करि विचारि देखहु सब लोगू। जड़ चेतन को है जो योगू॥
वर्तमान है जीव सदाई। तैसेहि जड़ प्रकृती दर्शाई॥
यह सहधर्म मिलावहि जोई। द्वौ सत समता देकर सोई॥
पुनि वैधर्म लखहु यहि भाँती। जड़ में चेतन नाहिं सुहाती॥
नहिं चेतन बिच है जड़ताई। तौ केहि विधिसमभाव लखाई॥
मिलहिं न जब गुन कर्म स्वभावा। धर्मविरुद्ध होत तहँ भावा॥
जवहिं मिलत स्वभाव गुन कर्मा। जानहु ताहि सकल मिलिधर्मा॥

दो०–स्याद्वाद इनको सदा, सहजहि समुझो जाय।
तौ प्रपंच ये करत किमि, जैन बौद्ध समुदाय ॥४८॥

❀अर्थ—जीव प्रत्यक्ष प्रमाण से कहने में नहीं आता इसलिये चक्षु प्रत्यक्ष नहीं है, ऐसा व्यवहार है, उसको छठा भंग कहते हैं।

"स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यो जीव इति सप्तमो भंगः" ॥ ७ ॥

अर्थ—एक काल में जीव का अनुमान से होना और अदृश्यपन में न होना और एकसा ना रहना किन्तु क्षण क्षण में परिणाम को प्राप्त होना अस्ति नास्ति न होवे और नास्ति अस्ति व्यवहार भी न होवे यह सातवाँ भंग कहाता है।

अब केवल जैनिन को सारा। सुनहुजो हैं तिनकेर विचारा[1] ॥
चित चेतन जड़ अचित बतावें। भाव दोऊ परत्व ठहरावें ॥
जो विवेचना जड़ चेतन की। करत जोन नर वहै विवेकी ॥
त्याग करहि जो त्यागन योगू। ग्रहन करहि जो गहिबे जोगू ॥
राग मोह जग रचना सारी। रचत सदा ईश्वर बलकारी ॥
जो यह कहत सो है अविवेकी। त्यागहि कर्म सकल अविवेकी ॥
ज्योति रूप जो संयुत योगा। जीव एक सबविधि सुख भोगा ॥
लहहु सदा यक जीव बड़ाई। यह जैनिन की उत्तम ताई ॥

दो०--जीव बिना दूसर कोऊ, चेतन मानत नाहिं।
अरु ईश्वर नहिं मानहीं, कहत अनादी नाहिं ॥४६॥

शिव प्रसाद यहि भाँति बखानत। ग्रन्थ तिमिर नाशक[2] दर्शावत ॥
जैन बौध दोउ एकहि नामा। एकहि अर्थ लखात ललामा ॥

१—चिदचिद् द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम्।
उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः ॥ १ ॥
हेयं हि कर्तृ रागादि तत्कार्यमविवेकिनः।
उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणम् ॥ २ ॥

२. इतिहासतिमिरनाशक ग्रन्थ के तीसरे खंड में यह भी लिखा है, स्वामी शंकराचार्य के पहिले जैनधर्म को केवल एक सहस्र वर्ष के लगभग गुज़रे हैं। सारे भारतवर्ष में बौद्ध अथवा जैनधर्म फैला हुआ था। इस पर नोट यह है कि बौद्ध कहने से हमारा आशय उस मत से है जो महावीर के गणधर गौतम स्वामी के समय से शंकर स्वामी के समय तक वेदविरुद्ध सारे भारतवर्ष में फैला रहा जिसको अशोक और सम्प्रति महाराज ने माना, उससे जैन बाहर नहीं निकल सकते। जिन जिससे जैन निकला और बुध जिससे बौद्ध निकला दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। कोष में दोनों का एक ही अर्थ लिखा है। गौतम को दोनों मानते हैं, पस उनके समय उनका एक मत रहा होगा। ❀

वाममार्गि बौधन बिच पंथा। मांसाहार लिख्यो निज ग्रंथा ॥
अरु सब भखन मांस को लागे। कीन्ह विचार न तनिकौ आगे ॥
तब विरोध जैनिन ने कीन्हा। ह्वै कर विलगइनहिंत जिदीन्हा ॥
पर दो एक लिख्यो बहु ठाईं। जैन बौद्ध जो पृथक लखाईं ॥
भूले अमरसिंह क्या भाई। अमर कोशजिन लिख्योबनाई ॥
जो बुधिवान सदा ते जानत। जे अज्ञान ते अटपट भाखत ॥

दो०--यामें कछु सन्देह नहिं, जैन बौद्ध द्वौ एक।
एकार्थी द्वौ शब्द हैं, जानि धरहु हिय टेक ॥५०॥

जीवहि ईश्वरता को लहई। जैन धर्म याही विधि कहई ॥
तीर्थकरन को ईश्वर मानत। मुक्तिभाव या विधि दर्शावत।
इनहिं को मिलत परम जो मुक्ती। इनबिन कोइ और नहिंशक्ती ॥
कोउ अनादि नाहीं है ईशा। हैं षटदेव[1] नास्तिकन[2] ईशा ॥
औरहु स्थल लिखा प्रमाना। सुनहु जो मानत ईश महाना ॥
राग दोष से रहित जो होई। पूजित तीनहु लोकन जोई ॥
जस होवे तस बरनन वारो। तेहि अर्हिन परमेश उचारो ॥
जब प्रतत्त हम देखत नाहीं। परमेश्वर नहिं है केहु ठाहीं ॥
तब अनुमान करहिं केहिं हेता। हैं परमेश्वर ही यक नेता ॥

दो०--एक देश प्रत्यत्त बिन, होत नहीं अनुमान।
जब प्रतत्त अनुमान नहिं, आगम[3] कौन प्रमान ॥५१॥

❀ गौतम और महावीर कई स्थलों पर एक ही नाम से पाये जाते हैं (अमरकोष कांड १ वर्ग १ श्लोक ८ से १०)।

१. सर्बज्ञ,[1] वीतराग,[2] अर्हिन,[3] केवली,[4] तीर्थंकृत,[5] जिम[6]।
२. जो ईश्वर और वेद को नहीं मानता वह नास्तिक है।
३. अर्थात नित्य, अनादि, सर्वज्ञ परमात्मा का बोधकशब्द प्रमान।

दो०--याविधि शब्द प्रमाण से, सिद्ध होत नहिं ईश।
अर्थवाद किमि घटिसकत, जो इतिहास अनीश ॥५२॥

अरु अन्यार्थ प्रधान[1] समाना। परोक्ष ईश नहिं सिद्ध विधाना॥
तव उपदेश सुने विन भाई। करि अनुवाद कौन दर्शाई॥
तब स्वामी कह सुनिये खण्डन। जो तुम करत रहे हौ मण्डन॥
होत न जो अनादि जगदीशा। तौ किमि होते अरहन ईशा॥
कौन बनावत मातु शरीरा। पिता आदि जो है मतिधीरा॥
बिन सँयोगकर्ता[2] के कोऊ। बनत न नर तन जग में सोऊ॥
जौन पदार्थन देह रचाई। जे जड़रूप न शक्ति लखाई॥
नहिं अस ज्ञान स्वतः बनिजाई। यथायोग्य सब भाँति सुहाई॥

दो०--रागद्वेष के सहित जो, दोषरहित पुनि होय।
वह ईश्वर ह्वै सकत नहिं, कबहुँ बिचारहि कोय॥५३॥
छुटहि राग आदिकन सों, तो मुक्ती दर्शात।
कार्य निमित के हेत सों, मुक्ति अनित्य लखात॥५४॥

अल्प न सर्वव्यापक होई। कबहुँ न अल्पज्ञ सर्वज्ञ होई॥
परिमित जीव स्वरूप सदाई। और एकदेशी दर्शाई॥
ऐसहि गुन अरु कर्म स्वभावा। जानत नहिं सब विद्यन भावा॥
तौ यह तीर्थंकरहु तुम्हारे। हुइ न सकत ईश्वर के प्यारे॥
तौ तुम्हार यहहू तीर्थंकर। केहु विधिहुइ न सकत परमेश्वर॥
और जो तुम प्रत्यक्षहि[3] मानहु। अप्रतक्ष[4] कबहूँ नहिं जानहु॥
जिमि जगरूप न कान लखावे। नहिं चक्षू कछु बात सुनावे॥
वैसेहि देखन चहहु जो ईश्वर। जो अनादि अनुपम जगदीश्वर॥

---

[1] बहुव्रीहि समास के समान। [2] बनानेवाला। [3] दिखाई देनेवाला। [4] न दिखाई देनेवाला।

दो०--अन्तःकरन पवित्र करि, करिये योगाभ्यास।
विद्यावित योगी बनहिं, देखहिं ईश्वर भास॥५५॥

छंद—जा विधि पढ़े बिन कोउ जानत नाहिं विद्या सार है।
तेहि भाँति योगाभ्यास बिन नहिं ईश निरखनहार है॥
जिमि रूप आदिक जानि गुन प्रत्यक्ष भूमि लखात है।
तेहि भाँति जगरचना निरखि जगदीश जानो जात है॥ १॥

पाप करत भय शंका होई। अरु लज्जा हिय प्रगटत सोई॥
यह ईश्वर करनी तुम जानहु। है अन्तरयामी पहिंचानहु॥
या विधि सों प्रत्यक्ष सदाई। घट घट व्यापक ईश लखाई॥
किमि नहिं होत कहहु अनुमाना। मानहु बिन संदेह प्रमाना॥
जब यह दोउ प्रमान घटि जाहीं। पुनि आगम सब भाँति सराहीं॥
ईश्वर नित्य अनादि अनन्ता। शब्द प्रमान लखहु भगवन्ता॥
ईश्वर को जब जानत जीवा। स्तुति करहु ईशबल सीवा॥
जाको गुण अरु कर्म स्वभावा। जबहै नित्य परम सुख भावा॥

दो०--जिमि कर्ता बिन जगत में, होत न कोऊ काज।
तिमि बिन कर्ता होत नहिं, महाकार्य सुखसाज॥५६॥

या विधि कोउ न करत सन्देहा। महामूढ़ जानत करि नेहा॥
याते जैन पन्थ से भाई। खंडन होत ईश है नाईं॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। जब सर्वज्ञ ईश दर्शाई॥
शास्त्र अनादि[1] अर्थ नहिं होई। सर्वज्ञता बीच जब होई॥

---

[1] अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान्।
कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते॥ १॥

अर्थ—बीच में सर्वज्ञ हुआ अनादि शास्त्र का अर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि किये हुए असत्य वचन से उसका प्रतिपादन किस प्रकार से हो सके॥ १॥

असत वचन सों केहिविधि कहहू । ईश वचन नहिं ईश्वर लहहू ॥
यदि ईश्वर सिद्धी यहि भाँती । ईश्वर वचन मानि सुख माती ॥
एक से एक सिद्धि यदि भाई । यह अन्याऽन्य[1] दोष दर्शाई ॥
वेद सत्य तुम मानत जबहीं । ईश्वर वचन मानि लें तबहीं ॥
मानहिं देश वेद के वचना । हुइ न सकत जो करत कल्पना ॥
सिद्धि हेत दोहुन परमाना । मानहु तीसर कोइ समाना ॥

दो०--तब अनवस्था[2] दोष हो, लगहि ईश के साथ ।
मोहिं स्वामी समुझाइये, चरण नवाऊँ माथ ॥५७॥

तब स्वामी यहि विधि समुझावा । जो मानत है ईश्वर भावा ॥
परमेश्वर गुन कर्म स्वभावा । हम मानत अनादि जो भावा ॥
जो पदार्थ है नित्य अनादी । तिन में दोष न हो अन्यादी ॥
कारज से कारन को ज्ञाना । कारन सों कारज पहिचाना ॥
तैसेहि ईश्वर को पहिंचानहु । है अनन्त गुण ईश्वर जानहु ॥
जिमि अनन्त गुण नित्यलखाहीं । ईश्वर में सब भाँति सुहाहीं ॥

---

[1] अथ तद्वचने नैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रदीयते ।
प्रकल्पेत कथं सिद्धिरन्योऽन्याश्रययोस्तयोः ॥ २ ॥

अर्थ—और जो परमेश्वर ही के वचन से परमेश्वर सिद्ध होता है तो अनादि ईश्वर से अनादि शास्त्र की सिद्धि अनादि शास्त्र से अनादि ईश्वर की सिद्धि अन्योऽन्याश्रय दोष आता है ॥ २ ॥

[2] सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता ।
कथं तदुभयं सिद्धेत सिद्धमूलान्तराद्वते ॥ ३ ॥

अर्थ—क्योंकि सर्वज्ञ के कथन से वह वेदवाक्य सत्य और उसी वेद-वचन से ईश्वर की सिद्धि करते हो यह कैसे सिद्ध हो सकता है ? उस शास्त्र और परमेश्वर की सिद्धि के लिये तीसरा कोई प्रमाण जो ऐसा मानोगे तो अनवस्था दोष आवेगा ॥ ३ ॥

तासु ज्ञान में वेद अनंता। है निर्दोष लखत हैं सन्ता॥
तेहि अनवस्था दोष न लागहि। कर्मनिष्ठ नर के हियभावहि॥

दो०--तुम ईश्वर तीर्थंकरन, मानत हौ जो तात।
सो काहू विधि नहिं बनत, नहिं हिय आवत बात॥५८॥

है अनादि ईश्वर जगकर्ता। परमातम सुजनन दुखहर्ता॥
और सुनहु यक ग्रन्थ[1] हवाला। भाग दूसरे में जो हाला॥
है आस्तिक नास्तिक सम्बादा। सुनहु सोइ जो लिख्यो विवादा॥
होत ईश इच्छा कछु नाहीं। कर्महिं सों सब होत लखाहीं॥
जो सब होत कर्म सों भाई। उपजेहु कर्म कहा ते आई॥
आदि जीव कर्ता यदि मानहु। तौबिन इन्द्रिन केहि विधिजानहु॥
श्रोत्रादिक जो साधन अहहीं। जिन बिन जीवकछू न लहहीं॥
अरु काते ये भये बताबहु। यदि तुमकालअनादिलखावहु॥

दो०--अरु यह कहहु स्वभावते, करत कर्म सब कोय।
इन्द्रि आदिसमुदाय सब, होतस्वभावज सोय॥५९॥

तौ अनादि छूटै केहि भाँती। मुक्ति असंभव हमहिं लखाती॥
कर्म निवृत्त होत नहिं कबहूँ। मानहु सान्त अनादी जबहूँ॥
तौ बिन यत्न कर्म छुटि जाहीं। तव यह मुक्ति अर्थ हैं नाहीं॥
यदि न होय ईश्वर फलदाता। पाप कर्म फल दुःख प्रदाता॥
तौ निज इच्छा जीव न भोगत। करत पाप अरुसुखसों सोवत॥
जिमि जग चोरचोरिफल जानत। निज इच्छा न दण्ड अपनावत॥
भोगत राजसभा डर सोऊ। तिमि ईश्वर फल दे सब कोऊ॥
भोगत पाप पुन्य फल जीवा। भोगवावत ईश्वर बलसीवा॥

---

[1] प्रकरण रत्नाकर (जिसको जैनियों ने माना है और सम्मतियाँ दी हैं और बम्बई में छपवाया है)।

दो०--नतु होवहिं संकर करम, भोगहि अन्य को अन्य ।
पुन्य करहि फल पापहो, पाप करहि फल पुन्य ।।६०।।
ईश्वर अक्रिय[1] है लखहु, लगै न ताको कर्म ।
याते जो हम मानते[2], तुमहु लहहु सो धर्म ।।६१।।
छंद—आस्तिक कहत ईश्वर न अक्रिय, ताहि सक्रिय जातिये ।
चैतन्य गुण जा महँ बिराजत तासु कर्ता मानिये ।।
कर्ता लखहु जाको क्रिया सों वह बिलग कबहूँ नहीं ।
ईश्वर[3] बखानत जाहि तुम बुधवर न ताको मानहीं ।।२।।
जो निमित्त से ईश्वर बनई । तौ स्वाधीन ईश किमि गनई ।।
ईश अनित्य होत तब भाई । पराधीन ईश्वर दर्शाई ।।
प्रथम रहेउ अल्पज्ञ सो जीवा । पुनि बनि गयो ईश बलसीवा ।।
रह्यो सदा है सोई जीवा । छुटत न जीवस्वभाव अतीवा ।।
जीव अनन्त काल से आई । रहहि अनन्त काल लौं भाई ।।
याते ईश अनन्त विचारहु । स्वतःसिद्ध ईश्वर पहिंचानहु ।।
जिमि जग जीव करत है पापा । भोगत दुःखकरत परितापा ।।
करत पुन्य सुख भोगत नीके । परम स्वतंत्र भावते जीके ।।
दो०--तिमि ईश्वर कबहूँ नहीं, जीव जौन विधि होय ।
क्रियावानयदिईशनहिं, रचत जगत किमि सोय ।।६२।।
मानत क्रिया जो मुक्ती माहीं । तिनहिं ज्ञान होवे या नाहीं ।।
जो यह कहहु होत है ज्ञाना । तौ है अन्तःकरन महाना ।।
अन्तःकरन क्रिया सब होई । अहंकार मन चित बुधि जोई ।।

---

[1] नास्तिक कहता है यदि ईश्वर कर्ता कर्म का होता तो उसको कर्म-फल भी भोगना पड़ता, अतः फल नहीं भोगता इससे अक्रिय है ।।

[2] जैसे हम केवली प्राप्त मुक्तों को अक्रिय मानते हैं ।

[3] जैनसमुदाय अपने तीर्थंकरों को ही ईश्वर मानता है ।

यदि पखानवत जड़ है रहहीं। रहि यक ठौर कष्ट को सहहीं॥
जब कछु चेष्टा करत न भाई। कहहु मुक्ति यह कवन लखाई॥
यह तो अन्धकार अति अहई। मुक्ति न है यह बन्धन लहई॥
तब नास्तिक यहि भाँति बखानत। हम ईश्वर व्यापक नहिं मानत॥
यदि ईश्वर व्यापक जग माहीं। वस्तु सबै चेतन किमि नाहीं॥
ब्राह्मण क्षत्रि वैश्य व्यवहारू। शूद्र सहित जो वरण विचारू॥

दो०--उत्तम मध्यम नीच लघु, किमि होवें व्यवहार।
जब ईश्वर सब में रहत, चहिय न यह व्यवहार॥६३॥

आस्तिक कहत तनिक चितदीजै। जो हम कहत ताहि सुनि लीजै॥
व्यापक व्याप्य एक नहिं होहीं। किन्तु पृथक द्वौ चेतन होहीं॥
व्याप्य एकदेशी सब काला। व्यापक प्रभू अखण्ड निराला॥
और सर्वदेशी तेहि जानहु। व्यापक गगन समान प्रमानहु॥
घट अकाश अरु पट आकाशा। अरु भूगोल केर परकाशा॥
एकदेशि जो व्याप्य सदाई। अरु व्यापक आकाश लखाई॥
जिमि पृथिवी आकाश न एका। जगत ब्रह्म तिमि नाहीं एका॥
जिमि घट पट आकाश न भाई। व्यापि रहेउ सब ठौर लखाई॥

दो०--ताविधि चेतन सकल में, व्यापि रह्यो सिरमौर।
सब चेतन नहिं होत हैं, लखहु नेम सब ठौर॥६४॥

सो०--जिमि सम कतहु न होत, धर्मी और अधर्मि जन।
श्रेष्ठ कर्म उद्योत, विद्याशील स्वभाव युत॥११॥

श्रेष्ठ कर्म जब वृद्धी पावैं। तबहीं तेहि ब्राह्मण ठहरावैं॥
न्यूनाधिक कर्मन ते भाई। ऊँच नीच जग महँ दर्शाई॥
वर्णाश्रम व्याख्या जो चहहू। कथा चतुर्थ विलोकत रहहू॥
तब यक नास्तिक कहत सुनाई। यदि ईश्वर रचना दर्शाई॥
तौ पितु मातु केर का कामू। जो दर्शावत हैं निज नामू॥

तब आस्तिक या विधि समुझाई । ईश्वर सृष्टि ईश उपजाई ।।
जीव सृष्टि नहिं ईश बनावे । निज कर्तव्य जीव अपनावे ।।
जिमि रचि दीन्ह ईश फल फूला । अन्न औषधी वृक्ष समूला ।।
दो०- लै ताको निशि दिवस जन, खात सकल हर्षाय ।
पीसि कूटि सब भाँति सों, अग्नी माहिं पकाय ।।६५।।
ताको लै कछु करै नहिं, संसकार गृहयोग ।
कूटै पीसै ना कछू, नाहिं करहि उपभोग ।।६६।।
कहहु कहा ईश्वर करै, यहहु तुम्हारे काम ।
निज कर्तब जो ना करहु, तो जीवन बेकाम ।।६७।।
याते आदि सृष्टि के माहीं । नरतनु साँचा ईश बनाहीं ।।
पुनि पुत्रादिक उत्पति करई । कर्तब जीव हृदय बिच धरई ।।
आस्तिक कहत ईश प्रभुताई । जो अनादि शाश्वत दर्शाई ।।
चिदानन्द ज्ञानी जगदीशा । परमातम सत व्यापक ईशा ।।
तौ किमि परत प्रपंचन माहीं । दुख भोगत सुखत्यागि सदाहीं ।।
असनकरत कोउ लघुजन कामा । तौ किमि कीन्ह ईशसुखधामा ।।
आस्तिक कहत सुनहु चितलाई । ईश प्रपंच न परत कदाई ।।
ना दुख सहै न आनँद त्यागै । यह सब एक देशि में लागै ।।
दो०--सर्वदेशि को लगत नहिं, कर्म जीव अल्पज्ञ ।
जो अनादि परमात्मा, चिदानन्द सर्वज्ञ ।।६८।।
ताहि बिना कोऊ नहीं, जगत बनावत जोय ।
जगरचना में हूँ कबहुँ, जीव न समरथ होय ।।६९।।
नहिं समर्थ जड़ जो बनि जाई । बिन प्रभु कोई नाहिं लखाई ।।
ताते सिद्ध भई यह बाता । जगतरचत ईश्वर सुखदाता ।।
जिमि सृष्टी परमाणु से बनई । तिमि पितुमातु जगतजगगनई ।।

पर यह नियम ईश ने बाँध्यो । सोइ जीव निज हाथन साध्यो ॥
कह नास्तिक ईश्वर सुख त्यागी । सोचत रहत सृष्टिहित लागी ॥
धारण करै प्रलय पुनि करई । किमियहझंझट उर बिचधरई ॥
कहत आस्तिक तुम नहिं जानत । मुक्त जीव को ईश्वर मानत ॥
एकदेशि नहिं हुइ सक ईशा । सर्वदेशि प्रभु है जगदीशा ॥
वह करता धरता जग केरा । प्रलय करत जब आवहिबेरा ॥
दो०--अवशि करत इच्छासफल, मुक्त जीव दिन रात ।
ज्ञान युक्त साधन करहिं, योग महा सुखदात ॥७०॥
बन्ध मुक्त में रहत सदाई । जीव एकदेशी जो भाई ॥
ईश्वर बन्धचक्र नहिं आवत । जस तुम तीर्थंकरन बतावत ॥
परमात्मा मुक्त सब काला । परत न कबहुँ कोउ भ्रम जाला ॥
नास्तिक कहत सुनहु ऋषिराई । जीव कर्मफल लहत सदाई ॥
जिमि मद भंग केर तन माहीं । भोगत स्वतःताहि दुख नाहीं ॥
या में ईश्वर को कह कामूँ । है न कोउ ईश्वर केहु ठामूँ ॥
कहत आस्तिक तब भयत्यागी । जो जन चौर करम अनुरागी ॥
अरु नित डाका डारति रहहीं । दंड न निज इच्छा ते लहहीं ॥
दो०--बिन राजा कोउ जगत में, नहिं चाहत है दंड ।
जो न देहि नृपकर्मफल, तौ जन होत उदंड ॥७१॥
जिमि राजा परजा सुखलागी । करत उपाय न्याय पथपागी ॥
तिमि ईश्वर सब प्रानिन हेता । कर्म अनुकूल जो सुखदुखदेता ॥
कबहुँ न जीव चहत मनमाहीं । भोगहि अधरम फल सब ठाहीं ॥
जग करता कोऊ है नाहीं । स्वयंसिद्ध नास्तिक इमि कहहीं ॥
भूलत हैं जैनी निशिवासर । समुझत नाहिं बहुत हैं कादर ॥
कह आस्तिक कारज कस होई । बिन करताकिमि जगतलखाई ॥
भोजन वस्त्रादिक शृंगारा । बनत न बिन करता व्यापारा ॥
राग द्वेष ईश्वर में नाहीं । जो तुम समुझत हौ मनमाहीं ॥

दो०--तब ईश्वर बिन जगत कस, स्वयंसिद्ध है जात ।
बुधवर कोउ न मानहीं, बिन प्रमान तव बात ॥७२॥
ईश करत नाना विधि कर्मा । अरु फल देत देखि जन धर्मा ॥
ईश्वर में सामर्थ अनन्ता । दुख न होत सो परम महन्ता ॥
निज अज्ञता ईश में मानत । घोर अविद्या यह दरशावत ॥
तब यक जैन कहत यहि भाँती । सुनहु ऋषीश्वर शास्त्र सुहाती ॥
मूल प्रमान[1] हमारे सुनहू । अरु पुनिअर्थ तासु को गुनहू ॥
तब न रहै तुम्हार सन्देहा । होवै जैन धर्म सों नेहा ॥
है यह जगत अनादि अनन्ता । आदि न है नहिं है कहुँ अन्ता ॥
नाश न याको कबहूँ होई । याहि बनायो है नहिं कोई ॥
सो०--कहत स्वामिसमुझाइ, तनि विचार हिय बिच धरहु ।
बहुत लियो भरमाइ, अबनचलहि बुधहीन मत ॥१२॥
दो०--उत्पति जो संयोग से, वह न अनादि अनन्त ।
बिनउत्पतिबिन नाश के, कबहुँ रहतिनहिंशान्त ॥७३॥
जो उत्पत्ति जगत के माँहीं । सब संयोग रूप देखराहीं ॥
है संयोग नाश को भावा । तव सृष्टी कस नाश न पावा ॥
जस तुम्हार गुरुअन जग माहीं । कहि अनहोनी सबन सिखाहीं ॥
जानि परत भूगोल न जानत । अरु खगोल विद्या नहिं आवत ॥
मानत सृष्टिभेद[2] जेहि भाँती । ता विधि मानत कोउ नजाती ॥
एक ग्रन्थ की कछु ही बातैं । सुनहुकरी हैं जो कछु घातैं ॥

---

[1] सामि अणाइ अणन्ते च नूगइ संसार घोर कान्तरे ।
मोहाइ कम्म गुरु ठिइ बिवाग बस नुभमइ जीवरो ॥
(प्रकरणरत्नाकर भाग २ षष्ठी शतक ६० सूत्र २ गौतम-महाबीर-संवाद)

[2] सृष्टि में पृथ्वीकाय अर्थात् पृथ्वी भी जीव का शरीर है और जलकायादि जीव भी मानते हैं ।

रत्नसार है भाग सोहावा। नानकचन्द जती छपवावा॥
जैन भास्कर प्रेस के माहीं। छप्यो बनारस बीच लखाहीं॥
तेहि निर्माणकाल[1] लखि लेहू। अरु पुनि जैनधर्म चित देहू॥
समय विभाग कह्यो यहि भाँती। लिखी ग्रन्थ[2] बिच हैं कछु पाँती॥
लिखब ग्रन्थ मन में जब आवा। अन्धाधुन्ध लिख्यो जो पावा॥

दो०--जैनिन जस सृष्टी लिखी, केहु न लखी केहु ठाम।
महाअसम्भव लिखि दियो, नहिं आवत केहु काम॥७४॥

---

[1] रत्नसारभाग—निर्माणकाल २८ अप्रैल, १८७९ ई०

[2] रत्नसारभाग पृष्ठ १४५—समय का नाम सूक्ष्म काल है। असंख्यात समयों (अवलि) की एक करोड़ सरसठ लाख सत्तर हजार दो सौ सोलह अवलियों का एक मुहूत वैसे तीस मुहूर्तों का एक दिवस और १५ दिवसों का (पक्ष); दो पक्षों का एक माह ; बारह महीनों का वर्ष वैसे सत्तर लाख करोड़, छप्पन सहस्र करोड़ वर्षों का पूर्व ऐसे असंख्यात पूर्वों का पल्योपम (काल) कहते हैं।

असंख्यात का अर्थ करते हैं—एक चार कोस का उतना ही गहरा कुआँ खोदकर उसको जुगुलिये मनुष्यों के बालों में इस प्रकार भरे। जुगुलिये मनुष्य के चार सहस्र छान्नवे बालों को इकट्ठा करे, तब इस समय के मनुष्य का एक बाल होता है। ऐसे जुगुलिये मनुष्य के एक बाल के एक अंगुल भाग के सात बार आठ आठ टुकड़े करने से २०९७१५२ टुकड़े हैं ऐसे टुकड़ों में से पूर्वोक्त कुआँ को भरना पुनः उसमें से सौ बरस में एक एक टुकड़ा निकालना जब सब टुकड़े निकल जावें और कुआँ ख़ाली हो जावे तभी वह संख्यात काल है और जब उनमें से एक टुकड़े के असंख्यात टुकड़े किये जावें और उसी कुआँ को भरा जावे जिसके ऊपर से फ़ौज सहित राजा की सवारी निकल जावे तो भी न दब सके। उन टुकड़ों में से सौ सौ बरस बाद एक एक टुकड़ा निकाला जावे। जब कुआँ ख़ाली हो जावे तब उसमें असंख्यात पूर्व पेड़ तक एक एक पल्यो- ※

मत्स्य आदि जल जन्तु लखाहीं । तनु यक कोटि कोस बतलाहीं ॥
उतनिहि आयु बतावत रहहीं । जलचर आदि जन्तु जो अहहीं ॥
या विधि हस्तिन देह[1] बतावहिं । और आयु[2] तिनकी ठहरावहिं ॥
अस अद्भुत लीला इन केरी । निज ग्रंथन[3] बिच लिखी घनेरी ॥

❀पम काल होता है। यह पल्योपम काल इस कुआँ के दृष्टांत से जानना। जब दश करोड़ानकरोड़ पल्योपम काल बीते तब एक सागरोपम काल होता है। जब दश करोड़ सागरोपम काल बीते तब उत्सर्पिणी काल होता है। जब एक उत्सर्पिणी काल और एक अवसर्पिणी काल बीत जाय तो कालचक्र होता है। जब अनंत कालचक्र बीत जाय तब एक पुद्गल परावृत काल होता है। काल की संख्या इस प्रकार की है, जो नव दृष्टांतों में संख्या की गई है। अनन्त उससे उपरान्त अन्तकाल कहाता है। वैसे पुद्गल परावृत-काल जीव को भ्रमते हुए बीते हैं इत्यादि। इसी प्रकार रत्नसारभाग पृ० १३३ से लेकर जैनियों के सिद्धान्तग्रन्थ जो कि उनके तीर्थंकर अर्थात् ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्य्यन्त चौबीस हुए हैं, उनके वचनों का सारसंग्रह है। ऐसा रत्नसारभाग पृ० १४८ में लिखा है कि पृथ्वी-काय के जीव यही पाषाणादि पृथ्वी के भेद जानना। उसमें रहनेवाले जीवों के शरीर का परिमाण एक अंगुल का असंख्यातवाँ समझना अर्थात् अतीव सूक्ष्म होते हैं। उनका आयुमान अर्थात् वे अधिक से अधिक २२ सहस्र वर्ष पर्यंत जीते हैं। रत्नसारभाग पृ० १४९ वनस्पति के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं। वे साधारण वनस्पति कहाते हैं जो कि कन्द-मूलप्रमुख और अनन्तकायप्रमुख होते हैं। उनको +

[1] चतुष्पाद हाथी आदि का देहमान २ कोस से ९ कोस पर्य्यन्त।

[2] आयुमान ८४ सहस्र वर्षों का।

[3] रत्नसार भाग पृ० १५१। जलचर गर्भज जीवों का देहमान उत्कृष्ट १ सहस्र योजन अर्थात् १००००००० कोसों का और आयुमान एक करोड़ वर्षों का होता है।

असजग बृहतजीव तनु धारहिं। जैन अचारज तिनहिंनिहारहिं॥
कहहु कहा यह होवहि साँची। जस जैनिन निज ग्रन्थन बाँची॥
होत असम्भव जो जग माहीं। सो कस सम्भव परत लखाहीं॥
अब तनि सुनहु भूमि परिमानू। लिख्योग्रन्थ[1]बिचजो अनुमानू॥

दो०--सुनहु सकल जन चित्त दै, जो जानत भूगोल।
तुम भूले या जैन सब, गणित जौन भूगोल ॥७५॥

+ साधारण वनस्पति के जीव कहने चाहिये। उनका आयुमान अन्तर मुहूर्त होता है। यहाँ पूर्वोक्त उनका मुहूर्त समझना चाहिये और एक शरीर में जो एकेन्द्रिय अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय इनमें है और उसमें एक जीव रहता है उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। उसका देहमान एक सहस्र योजन अर्थात् पुराणियों का योजन ४ कोस लम्बा होता है परन्तु जैनियों का योजन १०००० कोसों का होता है। ऐसे ४ सहस्र कोस का शरीर होता है। उसका आयुमान अधिक से अधिक दस सहस्र वर्ष होता है। अब दो इन्द्रियवाले जीव अर्थात् एक उनका शरीर और एक मुख जो शंख, कौड़ी और जूं आदि होते हैं। उनका देहमान अधिक से अधिक अड़तालिस कोस का स्थूल शरीर होता है। और उनका आयुमान अधिक से अधिक १२ वर्ष का होता है। (यहाँ बहुत भूल गया, इतने बड़े शरीर की आयु अधिक होनी चाहिये थी। अड़तालिस कोस का जूं जैनियों के शरीर में पड़ता होगा और उन्हीं ने देखा भी होगा और भाग्य ऐसा कहाँ जो इतने बड़े जूं को देखे !!!) रत्नसार पृष्ठ १५० और देखो, इनका अन्धाधुन्ध बिच्छू (गिजाई वगाई), कसारी (कंसेराई), मक्खी एक योजन शरीरवाले होते हैं। इनका आयुमान अधिक से अधिक छः महीने का है।

[1] रत्नसारभाग पृ० १४२। इस तिरछे लोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। इन असंख्यात का परिमाण अर्थात् जो अढ़ाई सागरोपम काल में जितना समय हो, उतने द्वीप तथा समुद्र *

जो भूल्यो वह समुझै हितसों। करि विचार देखहिंवह हियसों ॥
भूविद्या जैनी नहिं जानत। जो जानत अस कबहुँन भाषत ॥
जो लिख दई असम्भव बातैं। ना जानै इनकी को घातैं ॥
जो यह मानत ईश्वर नाहीं। तो आश्चर्य तनिक है नाहीं ॥
जसबुधिहीन कहत दिनराती। तैसेहि जैनिन रीति लखाती ॥
देत न बुधिवर को निज पोथी। जो गुनहीन अपूरब थोथी ॥

दो०--जगतअनादीकहनहित, जो प्रपंच थिर कीन्ह।
सोअसत्यसबभाँति सों, ग्रन्थ प्रमाणजो दीन्ह ।.७६॥

धारण जगत अनादि सदाई। तत्त्व प्रमानु अकर्तृ लखाई ॥
स्वतः समर्थवान ये नाहीं। पृथक स्वभाव रूप जड़ आहीं ॥
ताते अवशि बनावन वारो। चेतन रूप ईश उचारो ॥
पृथिवी सूर्य आदि जे लोका। राखत नियम माहिं सबलोका ॥
अनन्त अनादि जो चेतनताई। परमेश्वर यह काम लखाई ॥
रचना अधिक सँयोग लखाई। जग स्थूल अनादि न भाई ॥
जगत कार्य तुम नित्य जोमानहु। तो तेहि कारनकवन बखानहु ॥

---

* जानना अब इस पृथ्वी में जम्बूद्वीप प्रथम सब द्वीपों के बीच में है। इसका प्रमाण एक लाख योजन अर्थात् एक अरब कोस का है। इसके चारों ओर लवण-समुद्र है, उसका प्रमाण दो लाख योजन अर्थात् २ अरब कोस का है। इस द्वीप के चारों ओर धातकीखण्ड नाम का द्वीप है। जो ४ लाख योजन अर्थात् ४ अरब कोस का है। उसके पीछे कालोदधि समुद्र है। उसका आठ लाख योजन अर्थात् ८ अरब कोस का प्रमाण है। उसके पीछे पुष्करावर्त द्वीप है। उसका प्रमाण १६ कोस का है। उस द्वीप के आधे में मनुष्य बसते हैं। उसके उपरांत असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं, उनमें तिर्यग् योनि के जीव बसते हैं। रत्नसारभाग पृ० १५३। जम्बूद्वीप में एक हिमवन्त, एक ऐरण्डवन्त, एक हरिवर्ष, एक रम्यक, एक देवगुर, एक उत्तर कुरु यह ६ क्षेत्र हैं।

यदि सोइ कारज कारनरूपा। जो होवै तो दोष[1] सरूपा॥
दो०--जिमिनचढ़तनिजकंधकोउ, बिनपितुपुत्रनहोय।
तिमिजगकरताकेबिना, कारज लखहु न कोय॥७७॥
तब यक जैनी बोलन लागा। परम चतुरतागुन में पागा॥
जग करता जो ईश्वर मानहु। तो ईश्वर कर्ता बतरावहु॥
स्वामि कहत सुनिये सब कोई। कर्ता का कर्ता नहिं होई॥
अरु नहिं कारण कारण कोई। कर्ता कारण कारज होई॥
जस अस मोटी बातन समुझत। तो अति सूक्ष्महृदय कसपहुँचत॥
सृष्टि विषय हम जो समुझावा। ताहिविचारि लहहु मनभावा॥
जीव अजीव भेद यहि भाँती। वचन[2] कहेउ जिनदत्त सुहाती॥
याको भेद[3] सुनहु मन लाई। पाप पुण्य जो रीति लखाई॥

---

१. अन्योन्याश्रय और आत्माश्रय दोष ईश्वर पर घटता है।

२. यह जिनदत्त सूरि का वचन है। और यही प्रकरण रत्नाकर भाग १ में नवचक्रसार में भी लिखा है।

चेतनालक्षण जीव और चेतनारहित अजीव, अर्थात् जड़ है। सत्कर्म रूप पुद्गल पुण्य और पापकर्मरूप पुद्गल पाप कहे जाते हैं।

३. (समीक्षा) जीव और जड़ का लक्षण तो ठीक है, परंतु जो जड़रूप पुद्गल हैं, वे पाप-पुण्य युक्त कभी नहीं हो सकते, क्योंकि पाप-पुण्य करने का स्वभाव चेतन में होता है। देखो, ये जितने जड़पदार्थ हैं वे सब पाप-पुण्य से रहित हैं। जो जीवों को अनादि मानते हैं, यह तो ठीक है, परंतु उसी अल्प और अल्पज्ञ जीव को मुक्ति-दशा में सर्वज्ञ मानना झूठ है। क्योंकि जो अल्प और अल्पज्ञ है उसका सामर्थ्य भी सदा ससीप रहेगा। जैनी लोग जगत् जीव के कर्म और बन्ध अनादि मानते हैं। यहाँ भी जैनी लोग भूल गए हैं, क्योंकि संयुक्त जगत् का कार्य कारण प्रवाह से कार्य और जीव के कर्मबंध भी अनादि नहीं हो सकते—जब ऐसा मानते तो कर्म और बंध का छूटना *

दो०--कर्म त्याग को मुक्ति जब, मानत हो तुम लोग ।
मुक्ती केर निमित्त यह, छुटहिं कर्म के भोग ॥७८॥

[*]नैमित्तिक मुक्ती जब होई । सदा सकत है रहि नहिं सोई ॥
कर्ता कर्म नित्य सम्बन्धा । यदि होवे तौ छुटे न फंदा ॥
तब वह पुनि ऋषिसों यहि भाँतीं । अपनी युक्ति निकारि सुहाती ॥
जिमि चावल भूसी को त्यागी । पुनिन जमत कोउयतनन लागी ॥
ताही विधि जो मुक्ती पावत । जन्मत मरत न या जगआवत ॥
तब कह स्वामि सुनहु चितलाई । जो तुम कहत न ठीक लखाई ॥
जीव कर्म अस नहिं संबंधा । जस चावल भूसी को धंधा ।
जीव कर्म कर्तव्य को संगा । आदि काल से रहेउ असंगा ॥

दो०--कर्म जीव के साथ ही, बनो रहत सब काल ।
होत सो अपने कर्म सों, धनी, रंक, भूपाल ॥७९॥

कहत कतहुँ नहिं निर्मल जीवा । रहत सदा मल सहित अतीवा ॥
कहत स्वामि निर्मल जब नाहीं । तौ न कबहुँ यह अमल लखाहीं ॥
स्वेत वस्त्र जिमि मल लगि जाई । धोवत ही वह छुटत सदाई ॥
बहुरि लगत मल ताके माहीं । धोयहु स्वेत नसत है नाहीं ॥
यहि प्रकार मुक्ती बिच जानहु । जन्म मरन द्वौ संग बखानहु ॥
पुनि कह पाछिल कर्म सहारा । चेतन जीव परम तनु धारा ॥
कहत स्वामि सुनिए चितलाई । कही जौन तुम बात बनाई ॥
तनु धारन हित कर्महि एका । होय निमित्त लखहु धरि टेका ॥
कारन ईश्वर यदि नहिं होई । तो नहिं जन्म दुःखमय कोई ॥

---

[*] क्यों मानते हो ? क्योंकि जब अनादि पदार्थ है वह कभी नहीं छूट सकता । जो अनादि का नाश मानोगे, तो तुम्हारे सब अनादि पदार्थों के नाश का प्रसंग होगा, और जब अनादि मानोगे, तो कर्म और बंध भी नित्य होगा ।

दो०--किंतु सदा सुखवंत सब, धारत जीव शरीर।
कर्मबंध काहे लगै, रहै न कोऊ पीर ॥८०॥
देत दंड नृप चोर को, बिन इच्छा ततकाल।
ईश्वर ताही बिधि सबै, फल देवै सब काल ॥८१॥
कह्यो बहुरि ऋषिवर सुनिलीजै। तनिक हमारि बात चितदीजै॥
जासु स्वभाव होहि जेहि भाँती। वैसेहि फल होवें सुखमाती॥
ईश्वर को यामें का काजा। बिन ईश्वर सब बनत समाजा॥
स्वामि कहा स्वभाव फल होई। तौ किमि मिलतकौनविधिसोई॥
ताते झूठ तुम्हारी बाता। मानहु मम उपदेश सु ताता॥
बहुरि कहत ऋषिवर सुनिलीजै। प्रश्न हमार माँहिं चित दीजै॥
बिन संयोग कर्म परिणामा। होत कबहुँ नहिं कोउ सकामा॥
जिमि काँजी अरु दूध सँयोगा। बिना कियेदधि मिलनअयोगा॥
दो०-जब तीसर कोऊ नहीं, कहहु मिलावै कौन।
बिनामिलायेमिलतकस, पराधीन है जौन ॥८२॥
या विधि जीव कर्म कर योगा। पावत है वह सब बिधि भोगा॥
स्वामि कहत तनि लेहु विचारी। दूध माहिं काँजी को डारी॥
जब तीसर एक देत मिलाई। तब दधि होत रीति यह भाई॥
ताते जीव कर्म-फल संगा। रहत मिलावत ईश असंगा॥
याते सिद्ध भई यह बाता। बिना ईश सृष्टी नहिं ताता॥
पुनि कह मुक्त कर्म से होई। ईश्वर मानि लेहु है सोई॥
कहत स्वामि यह बालकताई। केहि विधि हुइसककहहुसुनाई॥
कर्म अनादि काल से संगा। जीवसे केहिविधि होत असंगा॥
दो०-पुनि कह बन्धन कर्मको, अहै सादि ऋषिराज।
हम मानत हैं जौन विधि, सोइ कहेउ महराज ॥८३॥
तब कह स्वामि सादि जो होई। तौ अनादि फल कर्म न कोई॥

जीव सँयोग जवै नहिं भयऊ। तव ही सों निष्कर्मी रहेऊ ॥
ताते यह भ्रम छोड़हु ताता। देख: नवम तरंग सुहाता ॥
मानहु ईश्वर को चित लाई। हिय धरि वेदन की प्रभुताई ॥
तुम्हरे ईश सकल दिशि राजत। अणुअणु में सब ठौर विराजत ॥
तब यक आइ ऋषी सों भाषत। धर्मग्रंथ के सूत्र[1] सुनावत ॥
सुनहु सुनावहि तिनको भावा। जो ग्रन्थन बिच है लखिपावा ॥
वीतराग तीर्थंकर केरी। आज्ञाभंग पाप कहि टेरी ॥
सोई है तहँ दुख को हेता। आज्ञा मानहु सब धरि चेता ॥

दो०–तातजिनेश्वरकोकथन, धर्म समान जो भाय।
ताको धारण है कठिन, तजै न कोउ अकुलाय ॥८४॥
कहऋषिवरनिजमुखबहुत, करहु बड़ाई तात।
मूरखता की बात यह, जानत हैं सब भ्रात ॥८५॥

छंद–निज धर्म को ऊँचो कहत अपनी बड़ाई नित करैं।
अरु दूसरे की करत निन्दा मूर्खता हिय बिच धरैं ॥
जाकी बड़ाई करत बुधजन तेहि बड़ो सब कोई कहै।
का चोर अपने मुख बड़ाई करि कहूँ कीरति लहै ॥ ३ ॥

पुनि कह सुनहु हमारी बाता। पण्डित कोउ होवै बुधिदाता ॥
जैन धर्म जौ लगि नहिं मानत। ताको हमसब विधि सों त्यागत ॥
करत विरोध जैनमत जोई। ताको दर्शन करहि न कोई ॥

---

[1] जिणवर आणा भंगं उमग्ग उस्सुत्तले सदेसणउ।
आणाभंगे पावंता जिणमय दुक्वरंधम्मम् ॥
(प्रकरण रत्नाकर भाग २, शतक ६. सूत्र ११)

नोट—इसी प्रकार आगे बहुत प्रमाण इसी ग्रन्थ के दिये हैं जिनका भावमात्र आपको पुस्तक में मिलेगा, मूलपाठ देखना हो, तो मूल सत्यार्थ प्रकाश के १२ वें समुल्लास में देख लो।

जैन धर्म से विरुध जो धर्मा । ते सब पाप करावत कर्मा ॥
ताते दूसर धर्म न मानहु । जैन धर्म हितकारी जानहु ॥
त्यागहु सर्प समान सदाई । अन्य पन्थ बिच जो हो भाई ॥
सर्प डसे पर एकहि बारा । मरत जीव तजि के संसारा ॥
अन्य मार्ग सँग करहि जो कोई । जन्म-जन्म दुख भोगत सोई ॥

दो०-सुगुरु सुदेव सुधर्म सब, पन्थ हमारेहि होहि ।
अन्य पन्थ के कुगुरु हों, और कुधर्म लखोहि ॥८६॥

कहत स्वामि तनि देखहु रीती । इन बिच भूल कहहु है केती ॥
जब इनके चेला ह्वै जाते । तब विद्वान विज्ञ कहलाते ॥
यह तौ रीति सदा चलि आई । जो जस होत चहत तस भाई ॥
तीर्थंकर इनके बुधि हीना । चहत सोइ सबको अस कीना ॥
बुधिवर हिय बिचारि असलेहीं । पामरता लखि चित कस देहीं ॥
जाको सत्य धर्म जग होई । सो न डरहि हिय तनिकहु कोई ॥
जाके बिच है पोल महाना । डरत रहत अरु मिलत न आना ॥
दूसर निन्दानित प्रति करहीं । ग्रन्थ देखावत सब कहँ डरहीं ॥

दो०-याते जानहु जैन सब, डूबहिं सागर बीच ।
निन्दा वैर विरोध जब, दुष्ट कर्म की कीच ॥८७॥

जिमि निन्दक जग जैन लखाहीं । तिमि दूसर कोऊ है नाहीं ॥
जब लगि यह सत्संग न करहीं । तौ लगि भरम जाल बिच परहीं ॥
विद्या विरुद्ध धर्म जब त्यागहिं । तबहीं यह उत्तम सुख पावहिं ॥
अपने को पावन बतलावहिं । दूसर को पापी गोहरावहिं ॥
बनत अहिंसक[१] हैं सब भाँती । निज देवतन लखत नहिं जाती ॥

---

[१] जब यह अपने के सिवा दूसरों को ज़िन्दा रहना ही नहीं चाहते, तो भला यह अहिंसक कैसे हो सकते हैं ? ❀

अरु कह जैनी मूरति पूजन। है अति सार करहु सारे जन॥
अन्य मार्ग की मूर्तिन माहीं। सार कछू नहिं कहत सदाहीं॥
भला तनिक इनसों यह पूछहु। करि विचार हिय नैनन देखहु॥

दो०--वैष्णव आदिक जौन विधि, थापति मूर्ति लखात।
ताही विधि पाषाण की, मूर्ती जैन सुहात॥८८॥

जस वैष्णवन केर जड़ पूजा। है असार कछु फल नहिं दूजा॥
मूर्तीपूजा वैसेहि तुम्हरी। मिथ्या करत आँख है अँधरी॥
याते कछु नहिं सार लखाई। जो फँसि जात अन्त पछिताई॥
तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। जैनधर्म मोहिं परम सुहाई॥
जैनधर्मि जगपूजन जोगू। अन्य अपूज्य अधर्मि अयोगू॥
सहहिं दुःख यह उर बिच धरहीं। कृषिव्यापार[1] कतहुँ ना करहीं॥
अन्य ते होइ जो कोई कारज। तदपि जैनतजि करै न कारज॥
जैनधर्म समता जो करई। वह जन घोर नरक में परई॥

दो०--यदि कछुहू ना बनि सकै, तौ केवल यह बात।
कहै जैन उत्तम अधिक, सबसे मोहिं देखात॥८९॥

तब ऋषि कहत सुनहु मम बाता। कहहु जौन कछु तुमहिं सुहाता॥
कहहु करत पुनि किमि व्यापारा। जब ग्रन्थन बिच अस उच्चारा॥

❀ यह दूसरे के देवतों को बुरा बताते हैं और अपने को तथा अपने देवतों को अहिंसक बताते हैं, परन्तु श्राद्धदिनकृत पृष्ठ ४६ में लिखा है कि शासन देवी ने रात्रि में भोजन करने के कारण एक पुरुष के थपेड़ा मारा। उसकी आँख निकाल डाली। बदले में बकरे की आँख लगाई। इस देवी को हिंसक क्यों नहीं मानते?

[1] तिहु अण जणं मरंतं दट्ठुण निअन्तिजेन अप्पाणं।
विरमेतिन पावा उधिद्धी धिठत्तणं ताणम्॥ प्र० भा० २ षष्ठीसू० १०६

नोट—अब जैनियों से कहो इसके अनुसार व्यापार, कृषि त्याग देवें।

और विचारहु हिय के माहीं । स्वार्थ सिद्धिहित करत कि नाहीं ॥
तबयह कहिकिमि जालबिछावत । औरन को मिथ्या समुझावत ॥
याते इनकी बहुत कहानी । अंड बंड जो हैं मनमानी ॥
धर्म विरोध जैन सौं आयो । पुनि सबहुँन याको अपनायो ॥
तैसेहि मूर्तीपूजन झगड़ा । जनिन सों आयो यह रगड़ा ॥
इन पाखंड बहुत फैलायो । झूठ धर्म अति स्वर सों गायो ॥

दो०--मूरति पूजन के विषय, लिख्यो जो ग्रंथन[1] बीच ।
पूजन को फल लिखि दयो, ग्रंथ अनेकन बीच ॥६०॥

---

[1] श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ १ में मूर्तिपूजा के प्रमाण—

नवकारेण विवाहो (श्रावकों को पहिले द्वार में नवकार जप कर जाना) १, अनुमरणं साडव (दूसरा नवकार जपे पीछे, मैं श्रावक हूँ स्मरण करना) २, वपाइं इमे (अणुव्रतादिक हमारे कितने हैं) ३, जोगे चौथे द्वारे (चार वर्ष में अग्रगामी मोक्ष है उस कारण ज्ञानादिक है सो योग उसका अब अतीचार निर्मल करने से छः आवश्यक कारण सो भी उपचार से योग कहाता है) ४, चियवन्दणगे (पाँचवें चैत्यवन्द अर्थात मूर्ति को नमस्कार द्रव्यभाव पूजा कहेंगे) ५, चचरखाणं तु विहि पुच्छम (छठा प्रत्याख्यान द्वारा नवकार प्रमुख विधिपूर्वक कहूँगा) और इसी ग्रन्थ में आगे बहुत सी विधि लिखी हैं अर्थात संध्या के भोजन समय जिनबिम्ब अर्थात् तीर्थंकरों की मूर्ति पूजना और द्वारपूजना जिसमें बहुत से बखेड़े भरे हैं। इसी प्रकार रत्नसारभाग के पृष्ठ १२ तथा पृष्ठ ३ इत्यादि बहुत स्थलों पर लिखा है। मूर्ति पूजन से राज्य मिलता, पर आज तक एक बीघा भी न मिला। पृष्ठ १३ में गौतम के अँगूठे में अमृत है। इच्छा से प्राप्त होता है, तो जैनियों को अमर हो जाना चाहिये। ऐसी मूर्खता की अनेक बातें भरी हैं जो मूर्खों को ही समझाने की हैं।

पृष्ठ ५२ में—जलचन्दनधूपदीपैरक्षतनैवेद्यवस्त्रैः ।
उपचारवरैर्जिनेन्द्रान् रुचिरैरद्य यजाममहे ॥

दो०-मूर्ति हमारी नग्न ही, रहत सबै सब काल ।
वस्त्र न धारण करत है, कहत जैन जो हाल ॥६१॥
तनिक बिचारि लेहु मनमाहीं । यह पशुतावत है की नाहीं ॥
जो तुम कहत हृदय गुन आवत । मूर्ती देखि देव यश गावत ॥
सो जड़ताइहु हिय में आवै । मूरखता ताको गुन पावै ॥
याते यह सब झूठ कोलाहल । रचिके जैन कियौ बहुहलचल ॥
जैनिन को गुरुमंत्र[1] लखायो । रत्नसार में यह लखि पायो ॥
औरहु बहुतक अकथ कहानी[2] । लिखी अनेक भाँति मनमानी ॥
अब इनकी मुक्ती को हाला । सुनहु रही कस बुद्धि विशाला ॥
महावीर गौतम सम्बादा । रत्नसार बिच लिख्यो विवादा ॥
दो०--ऊर्ध्वलोक सिद्धी शिला, स्वर्गपुरी से ऊँच ।
लक्ष पैंतालीस योजन, लम्बाई है सूक्ष ॥६२॥

अर्थात् जल, चन्दन, चावल, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र और अति श्रेष्ठ उपचारों से जिनेन्द्र अर्थात् तीर्थंकरों की पूजा करें । इसी से हम कहते हैं कि मूर्तिपूजा जैनियों से चली है ।

[1] नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्वसाहुणं एसो पञ्च नमुक कारो सव्व पावप्पणा सणो मंगलाचरणं च सव्वे सिपठमं पवइ मङ्गलम्, इत्यादि ।

अर्थात् नमो अरिहंताणं (सर्व तीर्थंकरों को नमस्कार), नमो सिद्धाणं (जैन मत के सब सिद्धों को नमस्कार), नमो आयरियाणं (जैनमत के सब आचार्यों को नमस्कार), नमो उवज्झायाणं (जैनमत के सब उपाध्यायों को नमस्कार), नमो लोए हव्व साहुणं (जितने जैनमत के साधू इस लोक में हैं, सबको नमस्कार ।

यद्यपि मंत्र में जैनमत नहीं है तथापि जैनियों के अनेक ग्रन्थों में जैनमत से अन्य को नमस्कार नहीं लिखा इसलिए यही अर्थ किया ।

[2] मूल सत्यार्थप्रकाश बारहवें समुल्लास में आप देख सकते हैं ।

योजन आठ मोटाई जानहु । श्वेत वरण मोती सम मानहु ॥
लोक चतुर्दश ऊपर रहई । सिद्ध शिला शिव पुर तहँ ठहई ॥
जन्म मर्ण को दोप न जहवाँ । मुक्त पुरुष पहुंचत हैं तहवाँ ॥
कर्मन से छूटत सब कोई । मुक्त जैन पथ जानहु सोई ॥
पुनि कह ऋषिवर हिये बिचारहु । इनमहँ अन्तर कहा निहारहु ॥
जिमि वैष्णव वैकुण्ठ बतावहिं । शैव सकल कैलास सुनावहिं ॥
अरु गोसाईं गोलोक लखावहिं । श्री पुर आदि अनेक सुनावहिं ॥
पौराणिक यहि भाँतिन कहहीं । पड़ि भ्रमजाल महा दुख सहहीं ॥

दो०-आसमान चौथो कहत, ईसाई हर्षाय ।
यवन सातवों हैं भखत, मुक्ती ठौर बताय ॥६३॥

याते इन केहुन की बाता । सत्य न है यह जानहु भ्राता ॥
यदि स्थान शिला कहुँ मानहिं । तौ मुक्ती नहिं बंधन जानहिं ॥
देखहु मुक्तिविषय जो भाई । नवम तरंग विलोकहु जाई ॥
फँसे सकल मुक्ती भ्रम माहीं । अबुध जैन पथ रहे सदाहीं ॥
जैन पंथ मुक्ती भ्रम माहीं । फँसिके सहत दुःख तेहि ठाहीं ॥
जब यह वेद यथार्थ न जानै । तौ नहिं हिय मुक्ती परमानै ॥
कहत असम्भव बात घनेरी । दै प्रमान ग्रंथन[1] बहुतेरी ॥
जैन साधुलक्षण यहि भाँती । जिन सूरी लिख दीं कछु पाँती ॥

---

[1] (विवेकसार पृष्ठ ७८) एक करोड़ साठ लाख कलशों से महावीर का जन्म-समय स्नान। (विवेकसार पृष्ठ १२६) दशार्ण राजा महावीर के दर्शन को गया। उसने अभिमान किया तो उसको १६ अरब ७७ करोड़ ७२ लाख १६ हजार इन्द्रों के दर्शन कराए और १३ पदम ३७ नील ५ खरब ७२ अरब ८० करोड़ इन्द्राणियों के। दर्शन कराये राजा आश्चर्य में हो गया। (न जाने यह सब बखेड़े कहाँ हुए होंगे, इस गप्प का कहीं ठिकाना है ?) ❀

दो०-भीख माँगि भोजन करहिं, कमरी राखहिं तीर ।
लुञ्चित केश बनावहीं, श्वेत धरहिं तनु चीर ॥६४॥
संग न काहू को करहिं, क्षमायुक्त जो होहिं ।
श्वेताम्बर यति कहत जिन, साधुचिह्न यह होहिं ॥६५॥
दूसर वस्त्र धरहिं तनु नाहीं । केश उखाड़े रहत सदाहीं ॥

❀ श्राद्धदिन कृत्य आत्मनिन्दा पृष्ठ ३१ में लिखा है कि बावड़ी, कुआँ, तालाब न बनवाना चाहिए; क्योंकि उसमें जीव पड़ते हैं और मरते हैं, तो वह पाप बनानेवाले को लगता है। इसलिए जैनी ऐसा नहीं करते (भला अब यह न जाने क्यों बनवाते हैं और न बनवाते तो पानी कहाँ से पीते) न जाने बुद्धि कहाँ चली गई! जब छोटे छोटे जंतुओं के मरने से पाप होता है, तो गाय, मनुष्य आदि बड़े-बड़े हितकर जीवों के पालने से पुण्य नहीं होता, इसको क्यों नहीं मानते? (तत्त्वविवेक पृष्ठ १९६) नन्दमणिक सेठ ने बावड़ी बनवाई थी। उसका धर्मभ्रष्ट होकर १६ महारोग हुए। मरकर उसी बावड़ी में मेढुका हुआ। महावीर के दर्शन से उसको जातिस्मरण हो गया। कहते हैं कि मेरा आना-जाना जान वह दर्शन को आने लगा, तब श्रेणिकके घोड़े की टापमें दबकर मर गया। मेरे ध्यान से शुद्ध दर्दुरांक नाम महर्द्धिक देवता हुआ। (श्राद्धदिन कृत्य पृ० २६) मृतक वस्त्र साधू ले लेवे। (रत्नसार पृ० १०५) भूजने, फूटने, पीसने, अन्न पकाने आदि में पाप होता है। (रत्नसार पृ० १०४) बगीचा लगाने से एक लक्ष पाप माली को लगता है। (तत्त्वविवेक २०२). एक दिन लब्धि साधू भूले से वेश्या के घर चला गया और धर्म से भिक्षा माँगी। वेश्या बोली—यहाँ धर्म का काम नहीं, किन्तु अर्थ का काम है, तो उस साधू ने साढ़े बारह लाख अशर्फियाँ उसके घर में बरसा दीं। (रत्नसार पृ० ६७) पाषाण की मूर्ति घोड़े पर चढ़ी, उसको जहाँ स्मरण करें वहाँ उपस्थित होती थी और देवतों की रक्षा करती थी। (इस प्रकार की असम्भव बातें हैं, कौन विश्वास करे।)

ऊन वस्त्र यक सँग में राखहिं । तेहिते अवनि बोहारिबिराजहिं ॥
इनहिं जो भिक्षा देवहि कोई । धरिके हाथ खाइ लें सोई ॥
इनहिं दिगम्बर साधू कहहीं । तीसर सुनहु जौन विधि रहहीं ॥
जब गृहस्थ भोजन करि चुकहीं । तब यह साधू भोजन करहीं ॥
अब इनके कर्तव्य विचारहु । बनत अहिंसक जस उर धारहु ॥
केश उखाड़े कहा न पीरा । होत कहहु तनि धरिके धीरा ॥
चाहे निज हाथ उखारहि कोई । चाहे गुरू उखारहि सोई ॥
कष्ट होत बहु बार उखारे । कष्टहि हिंसा शास्त्र उचारे ॥

दो०--तब यक जैनी इमि कहत, सुनहु ऋषी महराज ।
रहत अहिंसक हम सदा, अरु सब जैनसमाज ॥६६॥

मुख पर पट्टी अवशि चढ़ावहिं । वायुकाय सब जीव बचावहिं ॥
मुख से भाप जो निकसत रहहीं । जीव मरत अरु दुख को लहहीं ॥
स्वामि कहत यह मूरखताई । एकहु युक्ति नाहिं ठहराई ॥
भाप से कतहुँ जीव नहिं मरहीं । कहत अमर जबकेहिबिधिमरहीं ॥
पुनि कह अवशि जीव नहिं मरई । पर पीरा मुख करे न धरई ॥
जो पहुँचावत जीवहिं पीरा । पाप होत ता कहँ गम्भीरा ॥
स्वामि कहत यह सम्भव नाहीं । बिना जीव दुख काज लखाहीं ॥
मुख सों पीड़ा जीवन होई । तब कह चलत फिरत नहिं होई ॥
याते बिलग न तुमहू भाई । पहुँचावत पीड़ा सब काई ॥

दो०--पुनि कह जहँ तक बनि सकै, काहुहि दुःख न देय ।
तेहि कारन हमरो सदा, मुख बाँधन को धेय ॥६७॥

स्वामि कहत यह कथन तुम्हारा । युक्ति शून्य दुख देवनहारा ॥
जो मुख बाँधि रहहु दिन राती । तौ श्वासा मुख में रुकिजाती ॥
अरु बहु वेग नासिका द्वारा । निकरत श्वास जगत व्यवहारा ॥
बाँधे मुख बोलत है जोई । शुद्ध शब्द निकसत नहिं कोई ॥

काहु अंग ते वायु को वेगा। रोग बढ़ै जो रोकत वेगा॥
जिमि विशूचिका आदिक रोगा। मल रोके पावत दुख भोगा॥
तिमि भोगहु दुख सुख के बाँधे। दोष धरहु तीर्थङ्कर काँधे॥
फूँकत अग्नि कहत जो बाता। हाथ लगाये रहत सुताता॥
दो०--याते भूलत हौ सदा, नहिं जानत कछु भाव।
इन्द्रिय विषय विकारको, दुख सुख होत स्वभाव॥९८॥
बधिर सुनै नहिं कानसों, अन्ध न देखहिं रूप।
पीनस नासा गन्ध नहिं, इन्द्रिन लखहु सरूप॥९९॥
ता विधि जीव सुसृप्ती माहीं। संज्ञाशून्य रहत सब ठाहीं॥
जिमि जग वैद्य सुँघाइ दवाई। काटत अंग परम निपुणाई॥
कष्ट न होत जीव तेहि काला। है सुषुप्ति बिच जीव बहाला॥
तिमि यह जन्तु जो तुम बतलाये। वायुकाय जो कहि जतलाये॥
तिनहिं न है दुख सुख को ज्ञाना। स्थावर शरीर जे आना॥
जब प्रत्यक्ष सुख दुख नहिं होहीं। तब अनुमान कौन विधि जोहीं॥
पूछत बहुरि जीव जब अहई। तब किमिदुखसुखसो नहिंलहई॥
कह ऋषि काल सुषुप्ती जानहु। तबदुखसुखकिमि नहिंपरमानहु॥
दुख सुख प्राप्ति प्रगट सम्बन्धा। मूर्च्छित जीवन दुखसुख धन्धा॥
सो०--है प्रसिद्ध सम्बन्ध, दुख सुख प्राप्ती को सदा।
जिमि सुषुप्ति को बन्ध, ज्ञात होत कछु हू नहीं॥१३॥
दो०--अति मूर्च्छित में ज्ञान कछु, दुख सुख को नहिं होय।
साधन ज्ञान कछू नहीं, कारन जानहु सोय॥१००॥
कहत जैनि हम शाक न खाहीं। कन्द मूल आदिक जो आहीं॥
इन महँ जीव बसत बहुतेरे। पाप लगै यहि जात न नेरे॥
स्वामि कहत विद्या ते हीना। जो मानत यह बात नवीना॥
पीड़ा होत न प्रगट लखाई। जो देखाति तो देहु देखाई॥

सम्भव यह नहिं हुइ सक भाई । और न कोउ प्रमान देखराई ॥
ताते जो मूर्च्छामय होई । महा सुषुप्ति पड़ो है जोई ॥
ताको सुख दुख कबहुँ न व्यापत । भूल करत जो सुख दुख मानत ॥
जब है घर को अन्त लखाई । तेहि वासी अनन्त किमि भाई ॥
कन्द अन्त जब निश्चय होई । कहहु कौन विधि बचिहैं सोई ॥

दो०-जो हिंसा तुम मानते, वह हिंसा नहिं होय ।
ताते हिये विचारि कै, करहु कर्म सब कोय ॥१०१॥

अब चौबिस तीर्थंकर केरी । आयु बतावत लगत न देरी ॥
अरु तिनकी केतिक लम्बाई । रत्नसार[1] बिच लिखी सोहाई ॥
"ऋषभ देव" को लखहु शरीरा । पाँच सहस्र धनुष[2] गम्भीरा ॥
लख चौरासी वर्ष सुहाये । पूर्व वर्ष जो जैनिन गाये ॥
एती आयु ऋषभ परिमाना । "अजितनाथ" को हालबखाना ॥
धनुष पचास चारिशत जानहु । लम्बाई तनु की परिमानहु ॥
लाख बहत्तर आयु बखानत । "सम्भवनाथ" कोहालसुनावत ॥
धनुष चारिशत को परिमाना । साठ लाख आयू का माना ॥
"अभिनन्दन" तनु की लम्बाई । जो शत तीन पचास लखाई ॥
और बतावत आयु प्रमाना । लाख पचास वर्ष अनुमाना ॥

दो०-"सुमितनाथ" की तीनसौ, लम्बाई दिखराइ ।
आयू चालिस लाख की, सग्रन कहत समुझाइ ॥१०२॥

आयु "पद्मप्रभ" लाख सुतोसा । है शरीर एकशत चालीसा ॥
"पार्श्वनाथ" तनु दोसो कहहीं । बीस लाख आयु को लहहीं ॥
धनुष डेढ़सो को परिमाना । लम्ब शरीर "चन्द्रप्रभ" माना ।
अरु दश लाख आयु तिन केरी । लिखी ग्रथ बिच है जो हेरी ॥

---

[1] रत्नसार भाग १ पृ० १६६ व १६७ । [2] धनुष का प्रमाण पीछे लिख आये हैं ।

“सुविधिनाथ” सौधनुष शरीरा । युग्म लाख आयू गम्भीरा ॥
“शीतलनाथ” शरीर लखावहिं । नब्बे धनुष ताहि बतलावहिं ॥
लक्ष एक आयू परिमाना । पूर्व वर्ष जो जैन प्रमाना ॥
“श्रेयांसनाथ” अस्सी धनुजानहु । लख चौरासी आयु प्रमानहु ॥

सो०-सत्तर धनुष शरीर, “वासु पूज्य स्वामी” लखहु ।
अति है आयु गँभीर, लक्ष बहत्तर वर्ष की ॥१४॥

दो०-“विमलनाथ” तनु जानहू, साठधनुष परिमान ।
साठ लाख की आयु है, पूर्व वर्ष सुखदान ॥१०३॥

“अनन्तनाथ” का धनुष पचासा । लम्बशरीर करत सब आसा ॥
तीस लाख की आयू जानहिं । “धर्मनाथ” कोहाल बखानहिं ॥
पैंतालिस धनु कहत शरीरा । अरु दशलक्ष आयु गम्भीरा ॥
“शान्तिनाथ”चालिस धनुजानहु । एक लाख की आयु प्रमानहु ॥
“कुंथुनाथ” तनु पैंतिस होई । सहस पचानवे आयु लखोई ॥
“अमरनाथ” तनु तीस बताई । सहस चौरासी आयु सुहाई ॥
पच्चिस “मल्लीनाथ” शरीरा । पचपन सहस आयु गम्भीरा ॥
“मुनिसुव्रत्त” तनुधनु है बीसा । लखिए आयु सहस है तीसा ॥

दो०--धनुष चतुर्दशको लखहु, है “नमिनाथ” शरीर ।
एक सहस की आयु है, पूरब वर्ष गँभीर ॥१०४॥

“नेमिनाथ” दशधनुष शरीरा । एक सहस की आयु गँभीरा ॥
अरु नव हाथ शरीर लखावहिं । “पार्श्वनाथ”शतआयुबतावहिं ॥
“महावीर” अन्तिम तीर्थङ्कर । सात हाथ तनुलखहु भयंकर ॥
वर्ष बहत्तर आयु बताई । महावीर सब गुन सुखदाई ॥
चौबिस तीर्थङ्कर जग आई । जैन धर्म पथ दीन चलाई ॥
स्वामि कहत हियलेहु बिचारी । बसहिं कहाँ भूगोल सम्हारी ॥

महा असम्भव[१] इनकी बातैं। कहँ तक बरणों इनकी घातैं॥
याही विधि है द्वीप कहानी। लिखीं ग्रन्थ बिच है मनमानी॥
दो०--जम्बूद्वीप बतावहीं, योजन लाख प्रमान।
चन्द्र सूर्य दुइ दुइ कहत, द्वीप न कोउ समान॥१०५॥

---

१. कल्पभाष्य पृ० ४ : नागकेत ने ग्राम के बराबर एक शिला अंगुली पर धर ली। कल्पभाष्य पृ० ३५ : महाबीर ने अँगूठे से पृथ्वी दबाई तो शेषनाग कँप गये। कल्पभाष्य पृ० ४६ : महाबीर को सर्प ने काटा, रुधिर की जगह दूध निकला और वह सर्प आठवें स्वर्ग को गया। कल्पभाष्य पृ० ४७ : महबीर के पग पर खीर पकाई, पग न जला। कल्पभाष्य पृ० १६ : छोटे से पात्र में ऊँट को बुलाया। रत्नसारभाग पृ० १४ : शरीर के मैल को न उतारे न खुजलावे। विवेकसार भाग १ पृ० १५ : जैनियों के दमशार साधू ने क्रोधित होकर उद्वेगजनक सूत्र पढ़कर एक शहर में आग लगा दी। विवेकसार भाग १ पृ० १२७ : एक कोशा वेश्या सुई और सरसों के ढेर पर नाची। विवेकसार भाग १ पृ० १२७ : राजा की आज्ञा अवश्य माननी चाहिये।

तत्त्वविवेक भाग १ पृ० २२८ : इसी कोशा वेश्या के साथ एक स्थूल मुनि ने १२ वर्ष तक भोग किया, फिर दीक्षा लेकर स्वर्ग को चले गये।

विवेकसार भाग १ पृ० १८५ : एक सिद्धि की कन्था को गले में बाँधने से एक वैश्य को ५०० अशर्फ़ी नित्य मिलती रही।

विवेकसार भाग १ पृ० २२८ : बलवान् पुरुष की आज्ञा, देव की आज्ञा, घोर वन में कष्ट से निर्वाह, गुरु के रोकने, माता, पिता, कुलाचार्य, जातीय लोग और धर्मोपदेष्टा इन ६ के रोकने से धर्म में न्यूनता होने से धर्म की हानि नहीं होती।

(अब देखिये इनकी मिथ्या बातें तो हैं और क्या ऊटपटाँग लिख मारीं। ऐसी असम्भव बातों से भला कहीं कोई पन्थ उन्नत हुआ है।)

छंद—हैं चारि रवि अरु चारि शशि जहँ लौंन सिंधु बतावहीं।
अरु खंड घातकि रहत द्वादश सूर्यचन्द्र लखावहीं॥
हैं द्वीप पुष्कर सूर्य शशि यकशत चवालिस जानिये।
अरु हैं अनेकन चन्द्र रवि तहँ खंड केतिक मानिये॥ ४॥

या विधि ये भूगोल[1] के ज्ञाता। कहहु कौन विधि धर्म सोहाता॥
अरु मानत चौदह हैं लोका। सिद्धशिला तेहि उपर अशोका॥
अरु उत्पतिद्वि विधि सों मानहिं। गर्भ अगर्भ उपज बतरावहिं॥
अरु शरीर रचना सब जाती। कहि आये पाछिल बहुभाँती॥
ना जानहि केहि ठौर समाहीं। इन निमित्तघर कस बनवाहीं॥
यह सब मिथ्या अकथ कहानी। लिखिलीन्ही बहुतक मनमानी॥
कछु कछु ग्रन्थ प्रमान बताई। जैनपन्थ को दीन्ह बड़ाई॥
सिद्धशिला आदिक स्थाना। गोलमाल बहु किये बयाना॥
तीन बात मानन के योगू। जो जिय चहै करहु सब लोगू॥

---

[1] इनके हिसाब से ४९२ सूर्य तथा इतने ही चन्द्रमा हैं और दूसरे प्रकार अनेकन सूर्य चन्द्रमा हैं।

सूत्र - दो शशि दो रवि पंती एगंतरियाछू सठि संखाया। मेरुं-पयाहिणंता। माणु सखित्तेपरि अडंति॥ प्रकरण भा० ४ संग्रह सूत्र ७६

अर्थ—मनुष्य-लोक में चन्द्र सूर्य की पंक्ति की संख्या कहते हैं, दो चन्द्रमा, दो सूर्य की पंक्ति हैं, एक-एक लाख योजन के अन्तर से चलते हैं। सूर्य की पंक्ति के अन्तर चन्द्रमा की पंक्ति इस प्रकार छियासठ २ पंक्ति हैं। यदि दोनों दिशा के सूर्य मिलाये जावें तो १३२ हो जाते हैं और १३२ चन्द्रमा मनुष्य-लोक में चाल चलते हैं।

(समीक्षा) इसकी माया अवलोकिये, यह सब सूर्य चन्द्रमा जैनियों के घर में तपते होंगे। भला कुछ अविद्या का ठिकाना है। ऐसी असम्भव बातों में भूगोल-खगोल के न जाननेवाले फँसते हैं। जब तक यह जैनी इस मत में रहेंगे तब किसी तरह बोध न हो सकेगा।

दो०--जल पीवत हैं छानिके, निशा न भोजन खाहि।
नाम मात्र ही सों दया, जीवन पर दिखराहिं ॥१०६॥
याते इतनेहि में सकल, परखहु जैनिन पन्थ।
कथाजानि केलखहु तुम, जैन पन्थ के ग्रन्थ ॥१०७॥
जिमि जगचावलएकही, परखत हाँडी बीच।
ताहि भाँति परखहु सदा, सत्यधर्महिय खींच ॥१०८॥

सत्य-सागर द्वादश तरंग स० प्र० १२ स० समाप्तम्

श्री स्वामी इष्टानन्द लिखित अन्य पुस्तकें

संस्कारों पर गाने योग्य संस्कार संगीत मूल्य |||)
स्त्री शिक्षा की पुस्तक गृहदीपक अर्थ सहित मूल्य |-)
कन्याओं के लिये गृह-सुधार मूल्य ≡)
ईश्वर प्रार्थना सहित संध्या का पद्यानुवाद मूल्य =)
ईश्वर प्रार्थना भजन प्रातःगान मूल्य =)

आर्य आदर्श ग्रन्थमाला
मकबूलगञ्ज, लखनऊ.

अथ त्रयोदश तरङ्ग (स० प्र० १३ स०)

क्रिश्चियन-मत-विषय-समीक्षा-वर्णन

सो०--जैनधरम की बात, सुनि हिय बोध भयो महा ।
भ्रम न होहि अब तात, जैन नास्तिक सकल विधि ॥१॥
कहहु बाइबिल धर्म, ईसाई जेहि पर चलत ।
हमहिं बतावहु मर्म, सत्या सत्य बिचार को ॥२॥
दो०--और यहूदी आदि हैं, पन्थ भये अधिकाय ।
तिनको सब ब्योरा कहहु, नाथ मोहिं समुझाय ॥१॥
सुनहु शिष्य हम कहिहैं सोई । ऋषिवर कह्यो देशहित जोई ॥
सब ग्रन्थन को सार सुनावा । बाइबिल अरु तौरेत को भावा ॥
कछु कछु सब इंजीलन केरी । बुधि बिचार सों आयत हेरी ॥
अरु तिनकी करि दीन्ह समीक्षा । भ्रम न होहिं दीन्ही सो दीक्षा ॥
सोइ कथा सुनि हृदय बिचारहु । भेद इसाइन केर निहारहु ॥
जो कछु सत्य असत्य विचारा । सृष्टिनेम विपरीत निहारा ॥
सोइ कथा कहिकै समुझाई । समुल्लास तेरह सुखदाई ॥
हमहु कहब ताही को भावा । रह्यो हिये विच "इष्ट" सुहावा ॥
सो०--कथा परम सुखदात, प्रेम सहित सुनि हिय धरहु ।
सुनि के सब की बात, करहु सोइ बुधि सहित जो ॥३॥
स्वामि कहत हैं मुख्य इसाई । गौण यहूदी परत लखाई ॥
बाइबिल धर्म ग्रन्थ ही मानत । ताहि यहूदी हू अपनावत ॥
सत्य असत्य विचारन हेता । समुझावत यह धरम सचेता ॥
सत्य बिचारि करहु शुभ कर्मा । धारहु हिये उचित जो धर्मा ॥
अब कछु सुनहु इसाइन केरी । धर्म कथा जो कहत घनेरी ॥

जासु बाइबिल को यह मानत । अरु ईश्वर कृत सबहि सुनावत ॥
तेहि तौरेत पर्व यक माहीं । आयत प्रथम द्वितीय लखाहीं ॥
लिख्यो जौन विधी सुनहु हवाला । कहहु अरंभ केर जो हाला ॥

दो०--✻ईश्वर ने आरम्भ में, प्रकट्यो भूमि अकाश ।
पृथिवि तहाँ बडौल थी, अरु सूनी अविकाश ॥ २ ॥
अँधियारा गहिराव पर, रह्यो महाबिकराल ।
ईश आत्मा वारि पर, डोलत थी तेहि काल[1]✻ ॥ ३ ॥

† स्वामि कहत अरम्भ सुनावहु । कहत काहि विधिसों समुझावहु ॥
यक इसाइ तब बोलन लागा । जिन ग्रन्थनबिचजेहि अनुरागा ॥
सृष्टि प्रथम उत्पति जो होई । तेहि आरम्भ कहत सब कोई ॥
स्वामि कहत यह कहहु बुझाई । सृष्टि प्रथम यह है सुखदाई ॥
कहहु कबहु नहिं याते पूरब । प्रगट भई यह सृष्टि अपूरब ॥
कह इसाइ हम जानत नाहीं । प्रथम सृष्टि यह है की नाहीं ॥
याको भेद प्रभू ही जानें । स्वामिकहत तब हम किमि मानें ॥

दो०--जब तुमजानत कछुनहीं, किमिराखतविश्वास ।
और फँसावत सकलको, दै के सुख की आस ॥४॥

किमी न धरहु तुम उरकेमाहीं । शंका रहित वेद मत काही ॥
जब जानत नहिं सृष्टि हवाला । तब जानहु किमि ईश्वर हाला ॥
तुम आकाश कौन को मानत । कहत पोल जो ऊपर भावत ॥
उत्पति पोल कौन विधि होई । स्वामि कहत समुझावहु सोई ॥
यह विभु सूक्ष्म एक रस रहई । ऊपर नीचे जो कछु अहई ॥
जब आकाश बनायो नाहीं । रहेउ पोल तबही या नाहीं ॥
तेहि क्षण रहेउ जौन आकाशा । कारन जीव कियो कहँ वासा ॥

✻ इस चिह्न से प्रत्येक आयत का प्रारम्भ समझो । १. तौरेत पर्व १ आयन १, २ । † समीक्षा १ ।

ताते बिन आकाश कदाई। स्थित रहत पदार्थ न भाई॥
याते सत्य न तुम्हरी बाता। बहुरि कहहु जो तुमहिं सोहाता॥
दो०--कहहु ईश बेडौल है, ज्ञान कर्म बेडौल।
अथवा सकल सुडौल हैं, ईश्वर परम सुडौल॥५॥
तब कह ईश्वर नहिं बेडौला। है ईश्वर सब भाँति सुडौला॥
कह तब स्वामि कथन यह कैसा। भूमि बेडौल लिखा है जैसा॥
जो करि अर्थ मोहिं समुझावहु। ऊँच नीच के अर्थ बतावहु॥
सो अब ऊँच नीच का नाहीं। करि बिचारि देखहु मनमाहीं॥
नहिं ईश्वर बेडौल कदाई। वस्तु कोई बेडौल न भाई॥
कहहुसो केहि समानकरि दीन्ही। का अब ऊँच नीच नहिं चीन्ही॥
ईश्वरकार्य न हो बेडौला। जो सर्वज्ञ सुबोध सुडौला॥
ताके काम भूल नहिं होई। ना कबहूँ चूकत है सोई॥
दो०--ईशसृष्टि बेडौल है, लिखा बाइबिल माहिं।
ताते ईश्वरकृत नहीं, बाइबिल ग्रन्थ लखाहिं॥६॥
ईश आत्मा कौन लखाई। कहहु बेगि तुम मोहिं सुनाई॥
तब इसाइ कह चेतन जानत। स्वामिकहत केहि भाँति बखानत॥
कहहु सो निराकार है ईशा। अथवा है सकार जगदीशा॥
अरु व्यापक सब ठौर लखाई। अथवा यकदेशी दर्शाई॥
यहि प्रकार सों कहत इसाई। निराकार व्यापक सब ठाँई॥
काहुहि सों नहिं देत देखाई। जो स्थान विशेष बताई॥
दो०--निराकार जब ईश है, केहि प्रकार दिखरात।
अरु जल पर डोलत रहत, यह सम्भव नहिं बात॥७॥
यहि विधि सिद्धि होत यह नाहीं। ईश शरीर रहत केहु ठाहीं॥
निज आत्मा डोलावत जल पर। बात न आवत है मम हिय पर॥
विभु सर्वज्ञ जगत को पालक। न्याय सहित जगकर्म सुधारक॥

यह सामर्थ रहत है नाहीं। प्रलय आदि पुनि करिसक नाहीं॥
जाके गुण अरु कर्म स्वभावा। एकदेशि जब होवैं भावा॥
तब ईश्वर सो हुइ सक नाहीं। लक्षण लखहु हिये के माहीं॥
हैं अनन्त गुण कर्म स्वभावा। नित्य शुद्ध बुध मुक्त स्वभावा॥
सर्वव्यापक ईश अनूपा। सतचित आनँद परम स्वरूपा॥
यहि विधि ईश्वर मानहु भाई। मिटहिं सकल जंजाल सदाई॥

दो०--❀तब इसाइ या विधि कहत, नहिं जानत तुम भाव।
ईश्वर के गुन कर्म को, लखिये तनिक प्रभाव॥८॥
ईश्वर ने यहि भाँति सों, कह प्रकाश हुइ जाय।
भा प्रकाश ताही समय, श्रेष्ठ कह्यो हर्षाय॥९॥

मम ईश्वर की बात अनोखी। जानिलेहु सबविधिसोंचोखी❀[1]॥
†स्वामि कहत ईश्वर की बाता। सुनत भयो प्रकाश जड़ जाता॥
यदि सुनि लेत प्रकाश सदाई। तौ अब किमि न सुनत है भाई॥
है प्रकाश जड़रूप सदाई। सुनि न सकत है बात कदाई॥
देखि प्रकाश ईश हर्षाना। अरु ताकहँ अति श्रेष्ठ बखाना॥
कहहु कहा वह प्रथम न जानत। देखत ही जो श्रेष्ठ बखानत॥
होत प्रथम यदि ताकहँ ज्ञाना। तो याविधि नहिं बनत अज्ञाना॥
जब नहिं ज्ञान ईश केहि भाँती। मानत बाइबिल ग्रन्थ सुहाती॥
मानहु ईश्वरवर्णित वेदा। त्यागहु सकल हिये को खेदा॥

दो०--❀पुनि कह ईश्वर ने कह्यो, गगन मध्य हुइ जाय।
जलविभाग को पृथक करि, दीन्हों सकल बनाय॥१०॥
जलविभाग आकाश सब, ऊपर तले बनाइ।
स्वर्ग कह्यो आकाश को, साँझ प्रात बतलाइ[2]❀॥११॥

†स्वामि कहत यह मोहिं बतावहु। सुनतगगनजलकेहिविधिमानहु॥

---

[1] तौ० प० १ आ० ३, ४। †स० २। [2] तौ० प० १ आ० ६ से ८ तक। †स० ३।

जब आकाश प्रथम उपजायो । पुनि आकाशहिं वृथा वनायो ॥
जबहि गगन को स्वर्ग बतावत । तब वह हू व्यापक दर्शावत ॥
तौ पुनि वृथा स्वर्ग को जानहु । ऊपर कहत झूठ तेहि मानहु ॥
जब उत्पत्ति सूर्य्य की नाहीं । तब दिन रात लखत केहि ठाहीं ॥
महा असम्भव बात तुम्हारी । सुनि सुनि होत दुःख है भारी ॥
ईश्वर की कछु ईश्वरताई । यदि जानत समुझावहु भाई ॥
तब पुनि कहत सुनहु ऋषिराई । तम्हहिं सुनावहिं प्रभु प्रभुताई ॥

दो०—❀तब परमेश्वर ने कह्यो, आदम लेहुँ बनाय ।
अपनेहिं समनिज रूपमें, कहतहि लियोबनाय[1] ❀॥१२॥

† स्वामि कहत आदम को रूपा । ईश बनायो निज अनुरूपा ॥
तब ईश्वर के गुनअनुसारा । भयो न किमि आदम परिवारा ॥
यदि न भयो तो असत कहानी । ईशस्वरूप न आदम आनी ॥
कहहु कवन विधि आदम रचना । रचीस्व विधि सौ जगकी रचना ॥
तब कह प्रभु आदमहि रचावा । लै माटी तेहि बदन वनावा ॥
स्वामि कहत माटी कहँ पाई । कौन समय केहि ठौर वनाई ॥
कहत प्रभू समर्थ सब काला । तासुप्रकृति सब भाँति विशाला ॥

दो०—कहत स्वामि सामर्थ तेहि, है अनादि वा सादि ।
वह कहि उठ्यो अनादि है, नहिं नवीन नहिं सादि॥१३॥

जब अनादि है तो जग कारन । कारन ही सो भयो सनातन ॥
फिरि किमि मानत हौ तुम भावा । रहेउ सदाजो "इष्ट" अभावा ॥
पुनि कह जग के पूरब सोई । बिन ईश्वर कछु और न होई ॥
कहत स्वामि पुनि जगको रचना । भई कौन विधि गुन लै अपना ॥
ईश समर्थ द्रव्य का भाई । अथवा है गुनरूप लखाई
यदि है द्रव्य तो दूसर औरा । ईश से पृथक रहत सब ठौरा ॥

---

[1] तौ० प० १ आ० २६ से २८ तक । † स० ४ ।

यदि यह कहहु कि गुण है आदी । तौ नहिं बनत द्रव्य गुनसादी ॥
जिमि न रूप सों अग्नि लखाई । रस सों जल प्रगटत है नाँई ॥

दो०-यदि ईश्वर सों बनत जग, होत तासु सम भाव ।
तेहि समान गुन कर्म सब, बनतो जगत स्वभाव ॥१४॥

ताते सृष्ट्युत्पत्ति जो रीती । कही सकल विधि जो अनरीती ॥
नहिं आदम है ईश सरूपा । नहिं ईश्वर आदम के रूपा ॥
किन्तु बन्यो परमाणु शरीरा । जो जड़ तत्त्व समूह समीरा ॥
याते सुनहु सकल चितलाई । वेदरीति जो परम सुहाई ॥
जग उत्पति तुम मानहु सोई । वेद अनुकूल परम हितजोई ॥
अरु जब आदम ईश सरूपा । प्रगटत जग में मानुष रूपा ॥
कस न होहि वह मनुज समाना । करहु जो तुम ईश्वर अनुमाना ॥
तब यक ऋषि सों कहत रिसाई । नहिं जानत ईश्वर प्रभुताई ॥
आदम को जेहि भाँति बनावा । सुनहु बाइबिल को जो भावा ॥

दो०-*भूमि धूलिसों ईश ने, आदम लियो बनाय ।
जीवन स्वाँसा नाक में, फूँकत ईश्वर धाय ॥१५॥
पूर्व ओर यक वाटिका, अदन शान्त स्थान ।
जीवन तरु तहँ पर रहेउ, किय आदम प्रस्थान ॥१६॥

भलो बुरो को होवे ज्ञाना । खाइ लेय फल जो बुधिमाना[1]* ॥
†स्वामि कहत तेहि ज्ञान न रहेऊ । जो ईश्वर महिमा उर ठयऊ ॥
प्रथम आदमहिं तहँ उपजावा । अदन वाटिका परम सुहावा ॥
बहुरि दीन तेहि तुरत निकारी । कोउ अपराधहिये बिचधारी ॥
और आदमहिं जब उपजावा । बन्यों धूलि सों परम सुहावा
तब वह ईश्वर रूप न होई । अथवा धूलिरूप प्रभु सोई ॥
आदम नासा फूँकत स्वाँसा । ईश्वर चहत सो जीवन आसा ॥

---

[1] तौ० प० २ आ० ७, ९ । † स० ५ ।

कहहु सो स्वाँस ईस की माना । अथवा है काहू की आना ॥
यदि तुम भिन्न स्वाँस बतरावहु । ईश रूप तौ किमि कहि पावहु ॥
यदि दोनों हैं एक सरूपा । तौ ईश्वर हू मानुषरूपा ॥
दो०--क्षुधा तृषा क्षय वृद्धि सब, जन्ममरण को दोष ।
सोउ लगत ईश्वर विषय, रहत न है निर्दोष ॥१७॥
याते झूँठ तुम्हारी बाता । नहिं तौरेत ईशकृत ताता ॥
तब पुनि कह सुनिये ऋषिराई । कहहु जौन विधि नारि बनाई ॥
❀ प्रभु आदम बिचनींद बढ़ाई । सोयो अधिक परम सुख पाई ॥
तब पसली यक तुरत निकारी । भरेउ माँसतेहि छिद्र सम्हारी ॥
तेहि पसली के करि चतुराई । परमेश्वर यक नारि बनाई ॥
लैकर तेहि आदम ढिग आये । सौंपिगयेनिज धामसुहाये[1] ❀ ॥
+ स्वामि कहत यहनीति निराली । काईश्वर की अस बुधिखाली ॥
देखहु यह ईश्वर की नीती । केहि विधि जगत करहि परतीती
दो०--जब आदम को धूलि सों, कियो ईष निर्मान ।
किमि न बनायो नारिको, लै धूली सामान ॥१८॥
यदि पसली की अस्थि सों, ईश बनाई नारि ।
काहे न आदम निर्मयो, अस्थी एक निकारि ॥१९॥
यदि यह सत्य मानि सब लेहीं । तौ निश्चय अवलोकिय तेहीं ॥
एकहि पसुलि नारि के होई । एक न्यून सब नरन लखोई ॥
का अदभुत रचना इन गाई । प्रकृति विरुद्ध कहत ईसाई ॥
जासु पदारथ जगत बनावा । नर अरु नारि बनाइ न पावा ॥
याते सृष्टी नेम विरुद्धा । करत न कोउ धरम- सों श्रद्धा ॥
* तब पुनि कहत सुनहु ऋषिराई । ईश्वर की गति परम लखाई ॥
जग रचना नाना विधि कीन्ही । जो तौरेत माहिं लिखि दीन्ही ॥

---

[1] तौ० प० २ आ० २१-२२ । + स० ६ ।

उत्पति पर्व तीन में देखहु। ईश्वर की ईश्वरता पेखहु॥
तहहुँ धूर्त एक जन्मत भयऊ। सर्प (स्तेन[१]) नामतेहिठयऊ॥
तेहि समुझायहु हौआ नारी। नगन रही तहँ अति सुकुमारी॥
अवशि ज्ञान तरु को फल खावहु। नैन खुलहिं डर तनिकनलावहु॥

दो०--हैं समुझायहु जो तुम्हें, फल खाये मरि जाहु।
ज्ञान वृक्ष जो मध्य मैं, ता ढिग कबहुँ न जाहु॥२०॥

यह कहि तुम्हहिं दीन्ह बहकाई। जानत है सो फल प्रभुताई॥
जो कहुँ खाय लीन्ह फल ज्ञाना। खुलहिं नयन होवैं बुधिमाना॥
भले बुरे को होवे ज्ञाना। तब हुइ जाय हमार समाना॥
यहि डर से तुम कहँ डर पायो। ताते हम तुम कहँ अपनायो॥
सर्प बैन सुनि हौआ नारी। फल खायो पुनि अंग निहारी॥
नगन देखि अति ही सकुचाई। अंग ढाँक्यो पल्लवन[२] बनाई॥
अरुफल सोई आदमहि खवाई। उघरे नयन हर्ष अधिकाई॥
जब ईश्वर ने यह सुधिपाई। कहेउ सबनसों निकट बोलाई॥

दो०--दियो सर्प को श्राप अस, चलहु पेट बल जाइ।
धूलि खाहु जीवन सकल, करहु बैर सबकाइ॥२१॥

तुम नित काटहु नरन शरीरा। वे कुचिलहिं तब मस्तक वीरा॥
कहेउ नारि सन तुम जो माना। ताते श्राप सुनहु निज काना॥
पीड़ा गर्भ तुम्हारि बढ़ावहुँ। पति इच्छा सुप्रेम अधिकावहुं॥
प्रभुता पति तब ऊपर होई। बालक जनत लहे दुख सोई॥
अरु आदम सन कहेउ सुनाई। नारि कहे पर गये अतुराई॥
केहु पर तुमने फल खाया। होवहि भूमि तुमहि दुखदाया॥
पुरुषारथ करहु निरंतर। तबहु मिलहि नहिं सुख उरअन्तर॥

---

[१] शैतान। [२] अंजीर के पत्तों से अंग ढाँपा।

कंटकारि भूमी उपजावहिं। सागपात नरनारी खावहिं[1]❀ ॥
दो०--† स्वामि कहत प्रभुता कहाँ, सर्वज्ञता नशात।
प्रथम बतायो ईश ने, बहुरि देखि अकुलात ॥२२॥
यदि सर्वज्ञ होत तब ईशा। तौ न बनावत दुष्टन शीशा ॥
अरु जब पूर्व जन्म नहिं मानत। तौ पापी केहि भाँति बनावत ॥
सुनहु जो सतबादी जगमाहीं। कहहिं सत्य दूसर हित चाहीं ॥
सो शैतान कहहु केहि भाँती। सत्य प्रचारक है दिन राती ॥
ईश तुम्हार महा अन्याई। ज्ञान वृक्षफल देत न काई ॥
और बतावहु जो शैताना। सर्परूप या मानुष बाना ॥
यदि है सर्प तो मानुष भाषा। बोलि सकत कस कहहु खुलासा ॥
यदि बोलत नहिं नरकी बानी। तौ कस सुनेहु साँप की बानी ॥
दो०--ईश्वर झूँठ कह्यो महा खावै सो मरि जात।
आदम को फल खान से, रोकि दयो सतरात ॥२३॥
जबहि कह्यो शैतान सुनाई। खाउ ज्ञान फल मरहु न भाई ॥
जब फल खायो नयन उघारे। भले बुरे सब काज निहारे ॥
कहु केहि काज वृक्ष उपजावा। जानि परत निज हित अपनावा ॥
अरु यहि समय नदेखियत कोई। तेहि समान कोउ वृक्ष न होई ॥
तुम्हरे ईश्वर की ईश्वरता। देखी सबबिधि है चतुरता ॥
सतबादी को दीन्हो शापा। किय अन्याय और कछु पापा ॥
शापहु सुनि लागत है हाँसी। मनहु दीन्ह तीनहुको फँसी ॥
बिना गर्भ किमि उपजै बालक। बिनश्रम कोउ है भोजन साधक ॥
शाक पात यदि खावै नाहीं। तौ का खावहि मांस सराहीं ॥
तोफिरि बाइबिल में केहि भाँती। मांस विधान लिखा बहुभाँती ॥
दो०--पुनि आदम केहि भाँतिसों, अपराधी दिखरात।
इष्ट बाइबिल कवन विधि, ईश्वरकृत दर्शात ॥२४॥

---

[1] तौ० उत्पत्ति प० ३ आ० १ से ७, १४ से १८ तक। † स० ७।

❀तब पुनिकह सुनिये ऋषिराई। परमेश्वर बानी चितलाई॥
जस हम तस आदम जग अहई। भली बुरी सब जानत रहई॥
अमृतफल वह जो भखि लीहैं। तौ अमरत्व प्राप्त करि लीहै॥
ताते अब आदमहि निकारी। राखेहु जाय अदन की बारी॥
कर दीन्ही ताकी रखवाली। जहँ जीवन तरु छटा निराली॥
लैकर नग्न खड्ग रखवारे। रहत सदा तहँ मार्ग निहारे॥
ताते कोउ जीवन तरु तीरा। आइ सकत नहिं भरमत बीरा[१]*॥
†स्वामिकहतअसभ्रमकिमिभयेऊ। ईश्वर हिय बिच ईर्षा ठयेऊ॥

दो०—कहहु कहा यह बात जग, नाहिं बिचारैं लोग।
जाके बिच है डाह भ्रम, सो कस ईश्वर योग ॥२५॥

ताते सिद्ध भई यह बाता। वह न ईश है मानुष ताता॥
बाइबिल जो केहु स्थल देखहु। ईश्वरगति मानुषसम पेखहु॥
ईश्वर को दुख भयो अपारा। ज्ञानवान आदमहि निहारा॥
अरु ईर्षा सों दियो निकारी। अमर न होहि भविष्य बिचारी॥
पुनि तेहि वृक्ष कीन्ह रखवारी। मानुष सम भय हिये बिचारी॥
ताते मानुषसम सब बाता। करै तुम्हार ईश नित ताता॥
❀तब पुनि कहत सुनहु ऋषिराई। ईश्वर की गति जानि न जाई॥
कछु दिन पीछे काइन[२] आवा। बहु फल फूल ईशहित लावा॥
अरु हाबील[३] भेड़ लै सुन्दर। पहिलौठी तनुपुष्ट अधिकतर॥

दो०—दोनों ईश्वर ढिग गये, लै लै अपनी भेंट।
परमेश्वर हाबील की, करि आदर ली भेंट ॥२६॥

काइन केर अनादर कीन्हा। तासु भेंटहित चित नहिं दीन्हा॥
काइन कुपित भयो तेहि काला। मुँह फुलाइ बैठ्यो बेहाला॥
तब परमेश्वर तासों पूछत। मुँहफुलाइकिमिरिसह्वै बोलत[४]❀॥

---

१ तौरत पर्व ३ आ० २२,२४। † स० ८; २-३. एक पुरुष का नाम ४. तौ० प० ४ आ० ३, से ६ तक।

† स्वामि कहत यह ईश्वरताई । मानुषसम जो नित बतराई ॥
ईश तुम्हार मांस आहारी । भेंट भेड़ ताकहँ अति प्यारी ॥
भेड़ भेंट हाबील जो लायो । तेहि सतकार अधिकतर पायो ॥
अरु काइन को भयो अनादर । तासु भेंट को कियो न आदर ॥
याते विदित भई यह बाता । बाइबिल ईश रचित नहिं ताता ॥
दो०--❀बहुरि कहत ऋषिराज सों, परमेश्वर की बात ।
काइन सों पूछत भयो, कहाँ तुम्हारो तात ॥२७॥
तब काइन बोलन लग्यो, रखवालों हौं नाहिं ।
पुनि ईश्वर ने असकह्यो, दोष तुम्हार लखाहिं ॥२८॥
सो०--मोहिं टेरत दिन रात, रक्त तुम्हारे तात को ।
पृथिवी से सतरात, ताते तू श्रापित भयो[1] ❀॥४॥
† स्वामि कहत काइन बिन पूछे । सकत न जानि हिये के छूछे ॥
रक्त पुकारत केहि बिधि भाई । यह सब अबुधन बात लखाई ॥
❀ पुनि कह वर्ष तीन सौ ताईं । रहेऊ ईश सँग चलत सिहाईं ॥
मतूसिलह[2] हनूक मन चीते । उतपतिकाल बहुत दिनबीते[3] ❀ ॥
† कह ऋषि मानुषसम तबईशा । चलत रहेउ सँग मनुष अनीशा ॥
याते वेदन जो कछु भाषा । निराकार ईश्वर परिभाषा ॥
यदि कल्यान चहहु दिन राती । बात धरहु हिय वेदसुहाती ॥
❀ तब यक दूसर बोलन लागा । परम चतुर ईसामत पागा ॥
आदम की पुत्री बहुतेरी । उत्पति भईं चतुर चितचेरी ॥
दो०--ईश्वर सुवनन देखि तेहि, हैं सुन्दरि सुकुमारि ।
जाको जो भाईं तहाँ, ब्याहि लीन्ह स्वइनारि ॥२९॥

---

† स० ९ । १. तौ० प० ४ आ० ९,१०,११ । † स० १० । २. मतूसिलह, हनूक किसी का नाम है । ३. तौ० प० ५ आ० २२ । † स० ११ ।

तेहि अवसर भूमी के माहीं। बसत रह्यो दानव तेहिठाहीं॥
आदमसुता ईशसुत दोऊ। मिले जबै सुत उपजे सोऊ॥
बीर बली अतिचतुर सुहावन। पूर्व रहे नामी अति पावन॥
जब ईश्वर ने आँख उघारी। दुष्ट भाव आदम उर धारी॥
व्यापि रही चिन्ता निशिबासर। असत भावहिय भरिग आगर॥
तब परमेश्वर बहु पछितावा। नाहक भूमि मनुज उपजावा॥
शोक भयो ईश्वर अधिकाई। कहत भयो हिय क्रोध बढ़ाई॥

दो०--मानुष पशु कीरादि सब, पक्षि आदि जे जीव।
अवशि नशावहुँ अवनि से, होहिं जितेबलसीव॥३०॥

हौं पछितात रहत दिन राती। करिके निर्मित नाना जाती[1]*॥
† स्वामि कहत ईसाइन जाई। पूछहु सब कोइ भय बिसराई॥
को है ईश पुत्र बतलावहु। सासु ससुर सालादि गिनावहु॥
आदम सुता ईश सुत व्याहा। भयो विवाह महा उत्साहा॥
तब तौ पुत्र पौत्र बहुतेरे। भे नाती जामात्र घनेरे॥
कहहु कहा अस हुइसक ईशा। करत मनुज सन कर्तब ईशा॥
अरु जेहि पुस्तक मैं असहोई। वह ईश्वर कृत केहि बिधि होई॥
याते सिद्ध भई यह बाता। हैं वनचर याके निर्माता॥

दो०--अरु वह ईश्वर है नहीं, जो सर्वज्ञ न होय।
भूत भविष्य न जानहीं, करि पछितावे सोय॥३१॥

तुम्हरो ईश्वर नहिं विद्वाना। नहिंयोगी नहिंहिय कछु ज्ञाना॥
ज्ञान होत तो अस न सुनावत। पशु पक्षी दोषी ठहरावत॥
याते मम बिचार तुम मानहु। सतचित आनँद ईश्वर जानहु॥
झूठ पंथ अरु झूठ कहानी। छोड़हु जौन लिखी मन मानी॥
मानहु सत्य बेद की बानी। बुधि विद्या बल सों है सानी॥

---

[1] तौ० प० ६ आ० १ से ७ तक। † स० १२।

तातें जन्म सुफल ह्वै जाई । चलहु वेद आज्ञा अपनाई ॥
❀ कहत सुनहु ईश्वर की बानी । नूह केरि है जौन कहानी ॥
नाव एक जाकी लम्बाई । हाथ तीन सौ कहत सुनाई ॥
और पचास हाथ चौड़ाई । हाथ तीस की अहै उँचाई ॥

दो०--निज परिवार समेत तुम, बैठहु नौका बीच ।
संग जिते जीवित पशू, पच्छी कीट सहीच । ३२॥
दुइ दुइ सब जन साथ लै, भोजनादि सामान ।
नूह केरि नौका बनी, ईश्वर आज्ञा मान[1] ❀ ॥३३॥

* स्वामि कहत कैसे कोउ मानै । बात असम्भव बिना प्रमानै ॥
कोटिन जीव गजादिक नाना । भोजन सहित चढ़े निजबाना ॥
कौन भाँति बैठहिं तहँ जाई । केहि बिधि नौकामाहिं समाई ॥
याते समुझि लेहु सब लोगू । नहिं विद्वान न कोऊ योगू ॥
ईश्वर कतहुँ कहत असबानी । कही जौन तौरेत कहानी ॥
तातें मानुषकृत यह पोथी । अज्ञ महा बुधि ताकी थोथी ॥
❀तब कह सुनहु नूह की करनी । है तौरेत माहिं जो बरनी ॥
ईश्वर हित यक वेदि बनाई । अरु पावन पशु पच्छी लाई ॥
होम कियो अरु भेंट चढ़ाई । ईश प्रसन्न कियो अधिकाई ॥
सूंघि सुगंध ईश पछिताना । नाहक नरन शाप दिय नाना ॥

दो०--अब कबहूँ दीहौं नहीं, पृथवी तल को शाप ।
और जीव नहिं मारिहौं, होय न जेहि संताप ॥३४॥

नरन भावना है लड़िकाई । तासोंकछु नहिं हानि लखाई❀[2]॥
†कहत स्वामि तब ईश्वर कैसा । जस मानुष लखात है वैसा ॥
बिन समुझे जो देवै शापा । समुझे महा करत संतापा ॥
लरिकाईं सम यह सब घातैं । नहिं विद्वान केरि अस बातैं ॥

---

१. तौ० प० ६ आ० १५, १८ से २२ तक । * स० १३ । ❀ २

जग विद्वान प्रतिज्ञक होवहिं। ईश तुम्हार प्रतिज्ञा खोवहिं।
वेदि बनावन होम की नीती। आई वेद शास्त्र की रीती॥
*कह्यो बहोरि सुनहु ऋषिराई। ईश्वर नूहहि कह्यो बुझाई॥
मम आशीष सुनहु चितलाई। सब परिवार सहित मिलिआई॥
चलत फिरत जे जन्तु देखाहीं। ते तुम्हार भोजन सब ठाहीं॥
दो--वस्तु सकल हम शाकवत, तुम्हैं दई हैं आय।
केवल मांसहि खाइये, लोहू जीव बराय*[1] ॥३५॥
†कहत स्वामि यह दया देखाई। प्राण कष्ट दे भोग बताई॥
का अस ईश दयालू होई। अथवा हीन दया है सोई॥
मात पिता सम हुइ कर जोई। हनत न पुत्र कहूँ जग कोई॥
पर तुम्हार ईश्वर की रीती। जगत सोहात कौन की नीती॥
यक सुत मारि खवावहिं एका। है वह पापी अरु अविवेका॥
ताते कहहु न ताकहँ ईश्वर। है कसाइवत हिंसक वह नर॥
नर हिंसक बनिगे यहि भाँती। आये अस पापी जन घाती॥
दया बिना वह ईश न होई। बुद्धि सहित समुझे नर कोई॥
*पुनि इसाइ बोलत यक बैना। हिये धरहु मम बात सुखेना॥
दो०--सम्पूरन संसार में, रही सु भाषा एक।
यक बोली बोलत रहे, करिके एकहि टेक॥३६॥
यह विचार सबने कियो, नगर बनावहिं एक।
गुम्मट एक बनावहीं, रहहिं सदा सब एक॥३७॥
नाम करहिं अपनो जग माहीं। हमन काहु को बिलग लखाहीं॥
तब ईश्वर ने नगर निहारी। गुम्मट देखि चतुरता भारी॥
देखेउ सब यक बानी बोलहिं। करहिं कछू सोई करि डोलहिं॥

---

* तौ० पर्व ८ आ० २०,२१। † स० १४। [1] तौ० प० ९ आ० १,३,४। †स० १५।

अब हम उतरि तहाँ पर जाई। गड़बड़ करहिं सकल समुदाई॥
भाषा भिन्न करहुँ सब केरी। भेद न समुझत है हिय हेरी॥
अस बिचारि ईश्वर तहँ आई। छिन्न भिन्न करिदिय सब काईं॥
निज निज नगर बनावन लागे। निज प्रकृती निज भाषा पागे॥
नगर बनाइ सके नहिं एका। राखिसकेनहिं अपनीटेका ❀[1] ॥
दो०--†स्वामिकहत जबभूमिपर, हती सुभाषा एक।
अरु बोली सबकी रही, रही एक ही टेक॥३८॥
तब कस आनँद रहेउ तहाँ पर। जहाँ बहत है आनँद सागर॥
पर तुम्हार ईश्वर करि ईर्षा। गड़बड़ भाषा करि उत्कर्षा॥
यह शैतानहु ते है खोटा। काम कियो जो ईश्वर छोटा॥
काहू विधि नहिं मानन योगू। सब विधि ईश तुम्हार अयोगू॥
अस पुस्तक ईश्वर कृत नाहीं। बात असंगत बहुत लखाहीं॥
❀ अद्भुत बात और सुनि लेहू। बात हमारि तनिक चितदेहू॥
अपनी[1] सरी नाम की नारी। कह्यो तासुसों वचन उचारी॥
हम जानत तुम अति सुकुमारी। मिश्री[3] देखहिं तुमहिं निहारी॥
मोहिं मारि हैं जान समेता। बलकरि राखहिंतुम्हहिं निकेता॥
जो तुम कहहु बहिन मैं इनकी। प्राण बचहिं दीन्हें असभवकी॥
तुम्हरे हेतु जियत हम रहहीं। और सुःख जीवन को लहहीं[4] ❀॥
दो०--† पैगम्बर जिनके लखहु, अबिरहाम से धूर्त।
ईसाई यवनन विषे, यह हैं गुण की मूर्त॥३९॥
झूठ कहत नहिं चूकहीं, झूठहिं कर्म महान।
अस तुम्हार पैगम्बर, करत महा अभिमान॥४०॥

---

१. तो० पर्व ११ आ० १, ४ से ८ तक। † स० १६।

२. अबिरहाम। ३. मिश्रदेशवासी पुरुष। ४. तौ प० १२ आ० ११ से १३ तक। † स० १७।

❀ कहत एक सुनिये ऋषिराई । मम ईश्वर की जो प्रभुताई ॥
अबिरहाम सों ईश्वर कहेऊ । नियम एक हम निर्मित करेऊ ॥
तुम्हरे वंश बीच सो आई । चलत रहहि यह चिह्न सदाई ॥
एक नियम हम दोउ बिच रहई । तेहि ख़तना[1] सब कोई कहई ॥
ताते यक बालक को लावहु । आठ दिवस उपजो जहँ पावहु ॥
सुत तुम्हार या वंशज होई । अथवा धन दै लावहु कोई ॥
ताको ख़तना करहु बनाई । नियम हमार सदा रहिजाई
जेहि बालक ख़तना नहिं होई । बिलग करहु ताकहँ सबकोई ॥

दो०--नियम हमारो यह सदा, चलै मांस के साथ ।
तोड़ि देइ जोनियमको, ताहिनलीजै साथ[2] ❀॥४१॥

† कहत स्वामि ईश्वर चतुराई । देखहु यह अन्यथा सदाई ॥
यदि ईश्वर यह नेम सुहाता । तौ असपूर्व हिकिमि नवनाता ॥
गुप्तेन्द्री अति कोमल ताई । तेहि रक्षाहित खाल बढ़ाई ॥
जिमि नेत्रन पर पलक बनाये । तैसेहि कोमल अंग छिपाये ॥
लघुशंका[3] करने पर कोई । बिन्दु रहै तौ प्रकट न होई ॥
तेहि काटे कछु नहिं चतुराई । ईश नियम तोड़न हौं भाई ॥
अरु इसाह अब किमिनहिं मानत । जब यह नियमईश को जानत ॥
अब बहुतक ख़तना नहिं करहीं । कहहु कहा ते नहिं आदरहीं ॥
* और सुनहुयक बात अनोखी । ईसाइन ईश्वर गति चोखी ॥

दो०--अबिरहाम सों ईश जब, करि लीन्हीं सब बात ।
चलो गयो ऊपर तबै, जानि लेहु यह तात[4] ❀॥४२॥

† याते ईश्वर पक्षी जानहिं । अथवा मानुष ताहि बखानहिं ॥

---

१. गुप्तइन्द्रिय (मूत्र इन्द्रिय) के ऊपर की खाल काट डालने को ख़तना कहते हैं। २. तौ० प० १७ आ० ६ से १४ तक। † स० १८। ३. पेशाब करना। ४. तौ० पर्व १७ आ० २२। † स० १६।

जो नीचे ऊपर को जावै। जिमि जग इन्द्रजाल देखरावै॥
❀तब पुनि कहत सुनहु ऋषिराई। मायावश जग रहेउ भुलाई॥
यक दिन निज तम्बू के द्वारे। अबिरहाम नर तीन निहारे॥
तब वह चलेउ भेंट के काजा। किय दंडवत भागबड़ आजा॥
कह प्रभु कृपा तनिक यह कीजै। मम सत्कार तुच्छ सों लीजै॥
कछु जल अरु यक रोटी लाऊँ। तृप्त होहु हौं पीछे खाऊँ॥
यह कहि निज पत्नी ढिग गयेऊ। अतिथि तीन भोजन हित ठयेऊ॥
नपुआ तीनि पिसान उठावहु। ताहि गूँधि फुलुकान पकावहु॥
अरु पुनि दौड़ि गयो यक ओरा। बछड़न झुंड जहाँ पर जोरा॥
यक कोमल बछड़ा लै आवा। दास तासु को तुरत बनावा॥

दो०--दूध अरु मक्खन मांसको, धरयो अगारू लाय।
खड़ो रह्यो वह वृक्ष तर, लियोसबननेखाय[1]❀॥४३॥

†स्वामि कहत तनि लेहु बिचारी। ईश्वर इनको मांस अहारी॥
कहहु उपासक कब ये त्यागत। केहि बिधितेहि ईश्वर गोहरावत॥
हमरी जानि रहे बनबासी। एक रह्यौ तिन महँ सुखवासी॥
ताहि बाइबिल ईश्वर कहेऊ। और न कोऊ ईश्वर ठयेऊ॥
ईश्वरकृत यह पुस्तक नाहीं। तुम मानहु जेहि अधिक सराहीं॥
और सुनहु ईश्वर की दाया। अबिरहाम नारी अपनाया॥
❀कह्यो[2] सराक्यों असमुसुकानी। बुढ़िया कहि वहकिमि सकुचानी॥
अरु यह सोचत पुत्र न होई। ईश समर्थ चहै हो सोई[3]❀॥
†नारि पुरुष सम है व्यवहारू। कौन भाँति ईश्वर उच्चारू॥

दो०--❀तव ईश्वर ने असकह्यो, वर्षावहु बहु आग।
नगर निवासी अरुनगर, बचे न कोऊ भाग॥४४॥

---

१. तौ० पर्व १८ आ० १ से ८ तक। † स० २०। २. सरा अबिरहाम की स्त्री है। ३. तौ० पर्व १८ आ० १३, १४। † स० २१।

जो कछु बीज उग्यो महि ऊपर । ताहिउलटिदीन्होंतेरिऔसर[1] ❀ ॥
†ईश्वर को कछु दया न आई । कहत भये अस तब ऋषिराई ॥
बालकहुन को दीन्ह दवाई । का अपराध कीन्ह उन भाई ॥
न्याय दया का यह ही नामू । है विरुद्ध का ईश्वर कामू ॥
जब ईश्वर तुम्हार यहि भाँती । तब तुम कस न होहु उत्पाती ॥
*तब पुनि कह तुम समुझे नाहीं । लिख्यो बाइबिल में एकठाहीं ॥
दो पुत्रिन बहु प्रेम बढ़ावा । निज पितु सन उन नेह दृढ़ावा ॥
पितु को उत्तम मद्य पिलाई । कह्यो दाखरस तेहि गोहराई ॥
अरु पितु पास जाइ सो सोई । दिय उपदेश दूसरिहु वोई ॥
ताहू ने वैसेहि किय जाई । गर्भवती दोउ बहिन सुहाई ॥

दो०--सुता दोऊ सोलूत की, पितुसन संगम कीन्ह ।
गर्भवती दोऊ भईं, नहिंकलंकचितदीन्ह[2] ❀ ॥४५॥

†कहत स्वामि देखहु प्रभुताई । मद्य पियन कस गति है भाई ॥
जब भे पुत्रि पिता मदहारी । पिता न अपनी पुत्रि बिचारी ॥
बचि न सके कुकर्मकिय भारी । कहहु कौन जनलेइ सम्हारी ॥
ताते मद्य प्रियहु नहिं कोई । हिय धारहु मम बात सँजोई ॥
❀ पुनि कह ईश्वर सरा से भेंटा । कियो विषय ताको अस मेटा ॥
सरा गर्भिणी भई सुहाई । परमेश्वर करतूत देखाई[1] ❀ ॥
†स्वामि कहत हियमाहिं विचारहु । परमेश्वर के काम निहारहु ॥
सरा गर्भ परमेश्वर कारन । तीसर कोउ न गर्भकिय धारन ॥

दो०--❀अबिरहाम उठि प्रात ही, लै रोटी जल हाथ ।
तुरत हाजिरा कंध धरि, पुत्र कियो तेहि साथ ॥४६॥

---

१. तौ० प० १६ आ० २४, २५ । † स० २२ । २. तौ० पर्व १६ आ० ३२, ३३, ३४, ३६ । † स० २३ ।

दो०--विदा भई सो पुत्र लै, पहुँची झाड़ी पास ।
पुत्र छिपायो तहाँ पै, रोवन लगी निरास ॥४७॥
तब परमेश्वर शिशु की बानी । सुनी जौन क्षण रोदन ठानी[1] ❁॥
† देखहु इनके ईश्वर ज्ञाना । रोवै नारि पुत्र अनुमाना ॥
जब ईश्वर भ्रम होहि अपारा । कहि न सकत ईश्वर संसारा ॥
❁ पुनियक कहत सुनहु सय लोगू । करत परीक्षा ईश्वर योगू ॥
अबिरहाम से कहत पुकारी । प्यार करत तुमजेहि अतिभारी ॥
तेहि इज्जहाक होम के हेता । भेंट चढ़ावहु परम निकेता ॥
अबिरहाम प्रभु आज्ञा मानी । खड्ग निकारि चलावन ठानी ॥
तेहि क्षण ईश्वर दूत पुकारी । मत मारहु सुत खड्ग सम्हारी ॥
मानि लियो तुम ईश्वर जानत । आज्ञाताकोसबविधिमानत[2] ❁ ॥
दो०--† स्वामि कहत अब सत्य है, ईश महा अल्पज्ञ ।
जासु बड़ाई तुम करत, और कहत सर्वज्ञ ॥ ४८ ॥
बाइबिल बीच लिखी प्रभुताई । वह असत्य सब ठौर जनाई ॥
❁ बहुरि कहत असरीति चलाई । मुरदा गाड़न विधी बताई ॥
अरु यह कह्यो समाधि हमारी । गाड़हु एकमाहिं चितधारी[3] ❁॥
† जग मुर्दा गाड़े बहु हानी । वायु बिगाड़हिं करि मनमानी ॥
प्रश्न करन यक ऋषिसों लागा । मनहु रहेउ सोवत अब जागा ॥
जापर प्रीति होय अधिकाई । ताहि जलाये अति विकलाई ॥
जिमि नर सोवत रहत सदाई । गाड़े मृतक रहत तस भाई ॥
स्वामि उतर दै कह समुझाई । समुझि बात हियं धरहु सदाई ॥
प्रीति मृतक सन जो अति भारी । तौ घर से किमि देत निकारी ॥

(३५२ पृष्ठ का नोट —१. तौ० उत्पत्ति पर्व २१ आ० १, २ । † स० २४ ।) १. तौ० उ० पर्व २१ आ० १४ से १७ । † स० २५ । २. तौ० उ० पर्व २२ आ० १, २, ६, से १२ । † स० २६ । ३. तौ० उत्पत्ति पर्व २३ आ० ६ । † स० २७ ।

जीवात्मा सन प्रीति सदाई। तनुसों प्रीति रही न कदाई॥
दो०--जीव पृथक तनु ते जबै, भयो काल को पाय।
तव शरीर बेकार है, राखहु तहाँ गँधाय॥ ४९॥
माटी से कस होवै प्रीती। जीव बिना कछु नहिं परतीती॥
तीन हाथ भूमी को खोदत। राखि सु तामहँ माटी तोपत॥
कहहु प्रीति कस लेखे माहीं। जो तुम गाड़ब कहत सराहीं॥
अरु संदूक माहिं जो राखत। ताकहँ गाड़ि जो कबर बनावत॥
सड़िके वायु बिगाड़त रहहीं। जासों मनुजअधिक दुखलहहीं॥
अरु जो कोऊ जल बिच ढीलहिं। जल जन्तू तेहि तुरतहि लीलहिं॥
तदपि कछुक परमाणू जल में। रहत करत हैं हानी जग में॥
अरु जो बन बिच फेकत धाई। ताहू को वनचर लै खाई॥
अस्थी रहत पड़ी तेहि ठाहीं। करि दुर्गन्धी अधिक बसाहीं॥
दो०--ताते फूकब ही सदा, है उपकार की बात।
अणु अणु में मिलि जातहै, जब शरीर जरिजात॥५०॥
गन्धि हेत परमाणु न रहहीं। जाते कोउ न दुख को सहहीं॥
सुनहु स्वामि जब मृतक जलावहिं। तौदुर्गन्ध सकल दिशि जावहिं॥
स्वामि कहत जोविधिको त्यागत। तहाँ अवशि कछुवायु बिगारत॥
अरु जस वेदरीति बतराई। करत कोई जो रीति सोहाई॥
उत्तर दक्खिन दिशि की ओरा। करि स्मशानभूमी यक ठौरा॥
खनहु तहाँ पर कुंड सुहाई। तीनि हाथ की हो गहिराई।
होवे पाँच हाथ लम्बाई। साढ़े तीनि हाथ चौड़ाई।
डेढ़ बलिस्त तले रहि जाई। खोदहु सिरा उतार बनाई।
तब लकड़ी चुनि मृतक सुलावहु। चन्दन आमअरु काष्ठ लगावहु।
दो०--अरु शरीर की तौल भरि, है घी को परिमान।
ता घी के यक सेर में, केसर मासा मान॥५१।

यक रत्ती कस्तूरी लेई। घृत बिच डालि मिलान करेई ।।
चन्दन बीस सेर ले तेई। अगर तगर मनमाना लेई ।।
कपूरादि जो द्रव्य सुगन्धित। वस्तु न डालहु कोउ असुगंधित ।।
मंत्र सहित पुनि आहुति दीजै। संस्कार विधि कर्म[1] करीजै ।।
याही को नरमेध बखानत। अन्त्येष्टी बुधवर गोहरावत ।।
जो दरिद्र होवै नर कोई। बीस सेर घृत लेवै सोई ।।
माँगहि भीख देइ चहु राजा। अथवा चन्दा करहि समाजा ।।
पर बिधि को कबहूँ नहिं त्यागहिं। तब कबहूँ दुर्गन्ध न आवहिं ।।

दो०--घृत कपूर आदिक कतहुँ, मिलैन केहु बिधि काय।
तऊ फूंकिबो ही भलो, गाड़ब अति दुखदाय ।।५२।।

गाड़ब है सब भाँति निषिद्धा। और रीति यह वेद विरुद्धा ।।
❀सुनिये ईसा की बहु करनी। पूर्व जनन की बिधिसों बरनी ।।
ताकहँ धन्य दया जो करई। मार्ग दिखावत भ्रातन फिरई ।।
अबिरहाम मम स्वामी अहहीं। तिनकहँईश्वरबहुबिधिचहहीं[2]* ।।
†कहहु कहा तिन ही कर ईशा। अबिरहाम यक पुरुष मुनीशा ।।
अब न ईश केहु मार्ग दिखावत। ना केहू सन है बतरावत ।।
यह ईश्वर गुन है दिखरावा। करत सदा बनचर को भावा ।।
❀दासि हाजिरा अविरहाम की। द्वादशसुत उपजाय कौतुकी[3]* ।।
❀अरु याकूब कहत निज पितुसौं। मैं तुम्हार सुत जिमि है ऐसौ ।।

दो०--मम अहेर उठिके भखहु, प्राण देहिं आसीस।
अरुरिवक़ःबहुभाँतिसों, खालपिन्हायउतीस[4] ❀।।५३।।

---

[1] अन्त्येष्टि संस्कार जो संस्कार-विधि में सोलहवाँ संस्कार है।
[2] तौ० उ० प० २३ आयत २७। † स० २८। [3] तौ० उ० पर्व २५ आ० १३, से १५। [4] तौ० उ० पर्व २७ आ० १५, १६, १६।

†याविधि झूठ असीस जो लेहीं। पैगम्बर बनि का जग देहीं॥
अस इसाइ अगुआ तुम देखहु। गड़बड़ बहुत तहाँ पर पेखहु॥
❁और सुनहुयक अकथ कहानी। जो याकूब कीन्ह मनमानी॥
जो पत्थर शिर नीचे धारी। सोयो है बहु पाँव पसारी॥
प्रात गाड़ि तेहि तेल चढ़ावा। 'बैतएल' कहि नाम सुनावा॥
अरु कह यह गाड़्यो जो खम्भा। ईश्वर घर जानहु आरम्भा❁[1]॥
†स्वामि कहत देखहु प्रभुताई। यह जंगलिन केरि निपुणाई॥
पत्थर पूजे अरु पुजवाए। ईश्वर घर ताकहँ ठहराए॥
मुसलमान तेहि बैतएल[2] कहहीं। मानि पवित्र जो चूमत रहहीं॥
याते बहु विधि हैं ईसाई। पत्थर पूजक परम सुहाई॥

दो०--❁अरु ईश्वर ने यादकिय, नारी राखिल चोखि।
तासु श्रवण करि खोलदी, बन्दरहीजो कोखि॥५४॥

भई गर्भिणी सुत उपजावा। कहेउ ईश सन निज सुखभावा॥
निन्दा दूरि भई मम सारी। ईश अनुग्रह सकल तुम्हारी[3]❁॥
†सुनी इसाइन केरि बड़ाई। जानि परी अब ईश्वरताई॥
ईश तुम्हार डाक्टर भारी। खोलत कोखि बाँझ जो नारी॥
कौन शस्त्र औषधि बतलावहु। अन्धाधुन्ध न बात सुनावहु॥
❁तब यक कहत सुनहु ममबाता। ईश्वर मिलत स्वप्न में ताता॥
आयो स्वप्न माहिं एक बारा। चौकस रह अस बैन उचारा॥
तुम न करहु याकूब बुराई। पितु गृह तासु चाह अधिकाई॥

---

† स० २९, ३०। [1] तौ० उ० प० २८ आ० १८, १९, २२। † स० ३१। [2] यह मक्के के मन्दिर में संग असवद है इसी को बतएल मुक़द्दस कहते हैं। [3] तौ० उ० पर्व ३० आ० २२, २३। † स० ३२।

दो०--और कहत केहि कारने, तुम चोरी मम कीन्ह ।
देवन को सब भाँति से, बिन शंका लै लीन्ह*[1] ॥५५

†स्वामि कहत यह लखहु नमूना । ईश्वर दीखत अब कबहूना ॥
बहुतन स्वप्न अरु जागृत माहीं । ईश्वर देखि परेउ सब ठाहीं ॥
बातैं करि बहुतन फल पाया । बहुतन संग ईश के खाया ॥
लिख्यो बाइबिल में बहु ठाहीं । अब कबहूँ कोउ देखत नाहीं ॥
जानि परत यह बन के बासी । पूजे पाथर देव उपासी ॥
ईश तुम्हारे पाथर भाये । नतरु कहत ममदेव चुराये ॥
*कहत बहुरि याकूब कहानी । जात रह्यो अपने मन ठानी ॥
ईश्वर दूत मिले तेहि आई । दूतन देखि बहुत हर्षाई ॥
अरु यह कह्यो सैन्य यह आई । परमेश्वर निज हाथ बनाई[2] *॥

दो०--†कहत स्वामि अब सोचिये, ईसाइन को ईश ।
करत मनुज सम काम जब, तब किमि मानहि ईश ॥५६

जब राखत वह सैन्य सोहाई । तब वह करत अवश्य लड़ाई ॥
*तब यह कहत सुनहु ऋषिराई । नहिं देखी तुम इश्वरताई ॥
ईश्वर युद्ध कियो निसि सारी । जब देख्यो मम ह्वैहै हारी ॥
मलयुद्ध कीन्हों निसि वेला । रह्यो जहाँ याकूब अकेला ॥
जब न चल्यो कोउ और उपाई । जाँघ केरि नस दीन्ह चढ़ाई ॥
पर याकूब तबहुँ नहिं छोड़त । लरन माहिं नाहीं मुख मोरत ॥
तब अस कह्यो जानमोहिं दीजै । प्रात भयो अब पुनि लरि लीजै ॥
कह याक़ूब जान नहिं देऊँ । जबलगिनहिं कछुआशिषलेऊँ ॥

दो०--तब पूछेउ निज नाम कहु, दिय याक़ूब बताय ।
दै दीन्हों आशीष इमि, सुनिये चित्त लगाय ॥५७॥

---

१. तौ० उ० प० ३१ आ० २४, ३० । †स० ३३ । २. तौ० उ० पर्व ३२ आ० १,२ । † स० ३४ ।

छं०—अब नाम जग याक़ूब तुम्हरो होहि नहिं चित धारिये।
इसराईल कहि टेरैं सबै आशीष यह उर राखिये॥
कीन्हीं लड़ाई नृपति सम अरु युद्ध बहु बिधि सों कियो।
निज "इष्ट" जीत्यो प्रबल ह्वै हर्षित भयो मेरो हियो॥१॥

नाम "कनूएल" तेहि थल केरा। जहँ प्रत्यक्ष ईश को हेरा॥
पुनि लँगड़ात चलेउ सो भाई। सूर्य किरण तब परीं देखाई॥
ताते नस न जाँघ की खाहीं। इसराइल के वंश सदाहीं॥
परमेश्वर नस दीन्ह चढ़ाई। जाँघ छुई याक़ूब लराई[1] ❀॥
†स्वामि कहत धनिईश तुम्हारो। मल्लयुद्ध करि रचत अखारो॥
ऐसेहि कृपा करी बहुतेरी। रायल[2] सरा[3] पुत्र हित हेरी॥
हुइसक कबहुँ कहहु असईश्वर। अस अनभिज्ञ न हो परमेश्वर॥
पूँछत नाम अजान की नाईं। यह लखि लीन्ही ईश्वरताईं॥

दो०—नस चढ़ाइ दी जाँघ की, पुनि न करी तेहि ठीक।
यह ही है प्रत्यक्षता, राखत ईश अनीक[4] ॥५८॥

सो०—मानुष को यह काम, नहिं ईश्वर कोऊ कहै।
लरिकाई सम काम, करत रहत जो है सदा ॥५॥

सुनहु ईश की और कहानी। लिखी जो ईसाइन मनमानी॥
❀प्रथमहिं पुत्र यहूदा जायो। दुष्ट समुझि तेहि ईश नशायो॥
एहूदा ओनान बोलावा। और बहुत विधि सों समुझावा॥
तुम अपने भाई की नारी। कीजै ब्याह महा सुखकारी॥
जासों वंश चलै अधिकाई। भ्रात नाम नहिं जाइ बिलाई॥
तब औनान विचारन लागे। वंश न चलै मोर यह आगे॥
भ्रात नारि ढिग जाकर कीन्हों। वीर्य गिराइ भूमि पर दीन्हों॥

---

[1] तौ० उ० पर्व २३, आ० २४ से ३२ तक। † स० ३५। [2] रायल यह भी एक स्त्री थी। [3] सरा अविरहाम की स्त्री थी। [4] सेना (फ़ौज)।

परमेश्वर यह अनुचित मानी। ताहिमारिकरि दीन्हीहानी[1]❀॥
सो०—†अबदेखहु यह काम, मानुष को या ईश को।
है मारयो बेकाम, किमिनसुधारी बुद्धितेहि ॥६॥
दो०—जानहु प्रथा नियोग की, चलत रही सब देश।
बेदन की मर्याद अब, रही न तनिकौ लेश ॥५९॥
❀बहुरि कहत यात्रा की पोथी। सुनहु सुनावहु नहिं है थोथी॥
मूसा भयो सयानो जबहीं। देख्यो निज भ्राता को तबहीं॥
मारत रह्यो ताहि यक मिश्री। मूसा हनि डारयो तब मिश्री॥
रेत बीच तेहि दीन्ह छिहाई। कीन्ह तहाँ पर अति चंतुराई॥
अरु दूसर दिन बाहर गयेऊ। तहँ इब्रानिन झगड़ा भयेऊ॥
तहँ मूसा यह कह्यो बुझाई। काह पड़ोसि सतावत भाई॥
उतर दीन्ह तुमको अध्यच्छा। बनि न्यायी चाहत हो रच्छा॥
जौन भाँति मिश्रिहि हनिडारो। का सोई मन माहिं बिचारो॥
दो०—अससुनि मूसा तुरतही, भागिचल्यो तेहिकाल।
हियभयभीत भयो महा, जानिगतीबिकराल[2]❀॥६०॥
†स्वामि कहत तनिनयन उघारहु। मूसा को कर्तव्य विचारहु॥
दुर्गुण भरे चरित्र लखाहीं। क्रोधादिक सब गुन उर माहीं॥
हिंसा करै राज्य डर भागे। बात छिपावत हे सब आगे॥
अवशि असतवादी जग आई। हम कहँ मूसा परत लखाई॥
सोउ मिल्यो ईश्वर सँग जाई। बनि पैगम्बर लीन्ह पुजाई॥
जेहि यहूदिमत दीन चलाई। सो मूसा समान दर्शाई॥
जिनके आदि पुरुष अस होहीं। विद्यारहित जंगली सोहीं॥
मूसा सम भे तहँ पर जोऊ। रहे न बुधिवर मानुष कोऊ॥

---

[1] तौ० उत्पत्ति प० ३८ आ० ७ स १० तक। † स० ३६।
[2] तौ० यात्रा पर्व २ आ० ११ से १५ तक। † स० ३७।

❀ और कहत लोहू सब द्वारे। पोतहु यहि सब लखहिं निहारे॥
यक मूठी जूफा को लीजै। लोहू में तेहि तर कर दीजै॥
बासन माहिं धरो है लोहू। तेहि लैकर तुम तत्पर होहू॥
दो०–परमेश्वर यहि राह सों, जाइ मिश्र के हेत।
सकल निवासिन मारि है, तुम तौ रहहु सचेत ॥६१॥
या उपाय तुम सब बचि जैहौ। मानहु बहुरि जन्म तुम पैहौ[1]❀॥
†अब इनके देखे कस टोना। जानत नहिं हुइहै जो होना॥
कहि न सकत ईश्वर सर्वज्ञा। है देखात सब विधि सों अज्ञा॥
क्षुद्र बुद्धि सम इनके कारज। कहि न सकत कोऊ है आरज॥
❀ और सुनहु जो मिश्र कहानी। परमेश्वर ने जो मन ठानी॥
पहलौठी जितने सुत पाये। पक्षी पशु जो कोउ चौपाये॥
मार्‍यो सबन भयो अति शोरा। मृत्यु बिना घर बच्यो न कोरा॥
फिराऊन सुत तहँ को राजा। मारो गयो जौन युवराजा❀[2]॥
दो०–†देखहु मारन जात है, अर्धनिशा के बीच।
है डाकुन को काम यह, महा क्रूर अति नीच ॥६२॥
दयारहित मारे सब बालक। है ईश्वर या यह कुल घालक॥
अस कारज जग में नर कोई। कबहुँ न साधारण सों होई॥
का आश्चर्य करत जो ऐसा। मांस अहारिन दया न लेसा॥
इनका ईश्वर मांस अहारी। ताही ते दी दया बिसारी॥
❀ याही बिधि बातैं बहुतेरी। लिखी बाइबिल माहिं घनेरी॥
ईश्वर युद्ध करहिं तव हेता। मूसा या विधि करत सचेता॥
इसराइल सुतसों यहि भाँती। कही बढ़हु आगे सब जाती❀[3]॥

---

[1] तौ० या० प० १२ आ० २१ से २३ तक। † स० ३८।
[2] तौ० या० प० १२ आ० २९, ३०। † स० ३९।
[3] तौ० या० प० १४ आ० १४ से १६ तक।

दो०-†अब ईश्वर कहँ को गयो, और छिप्यो केहि ठाँव।
किमि न ईश को सौंपि सब, बैठत अपने गाँव ॥६३॥
सो०-जानि परी यह बात, जस सेवक तस स्वामि है।
रहत लगावत घात, ईसाई संसार नित ॥७॥
❀सुनहु ईश की अस प्रभुताई। कहत सबन सों भुजा उठाई॥
मैं परमेश्वर ईश तुम्हारा। सर्वशक्तिमन जगत पियारा॥
पितु अपराध दण्ड जो होई। देहुँ सुतन मम वैरी जोई॥
पीढ़ि चारि सो भोगत रहहीं। अथवातीसरिलौं दुख सहहीं[1]❀॥
† कह तबस्वासिन्याय का अहही। पितु अपराध दण्ड सुत लहही॥
पीढ़ी चारि दण्ड को भोगत। करै कोउ कोऊ है भोगत॥
यदि सन्तान करै शुभ कर्मा। तऊ दंड भोगै कस धर्मा॥
बिन अपराध दंड जो देई। न्यायी कहत कोऊ नहिं तेई।
दो०--❀अरु ईश्वर सब सों कहत, छ दिन करहु पुरुषार्थ।
दिवस सातवें को सदा, लखुविश्राम के अर्थ ॥६४॥
ताहि पवित्र करहु सब भाँती। तेहि रविवारविलोक्वोजाती[2]*॥
† कहहु कहा रविवारहि पावन। और दिवस सब महा अपावन।
ईश्वर छ दिन करत नहिं कामा। रहत कहहु का सोउ अकामा॥
जो आसीस देत रविवारहिं। शाप देत का औरन वारहिं॥
यक रविवार कौन गुन अहई। जाहि पवित्र पादरी कहई॥
*और कहत नहि लालच कीजै। वस्तु पड़ोसी मति चित दीजै॥
मिथ्या साक्षि न ताकी कीजै। कछु अन्याय सहित ना लीजै॥
या विधि जो कछु साँची बानी। मानततिनहिं नकरिमनमानी[3]*॥

---

† स० ४०। १. तौ० या० प० २० आ० ५। † स० ४१। २. तौ० या० प० २० आ० ८, ९। † स० ४२। ३. तौ० या० प० २० आ० १६, १७।

दो०--†मतलब सिन्धु सकल विधि, पक्षपात की मूर्त ।
परदेशिन को देत दुख[1], कर्म करत अति धूर्त ॥६५॥
लखि लीन्हीं इनकी जो नीती । फँसिगे जिन कीन्हीं परतीती ॥
* और सुनहु दोहुन की करनी । ईश्वर अरु मूसा मिलि बरनी ॥
सब पुत्रन अरु नारि सयानी । जो सोई पति सँग सुखमानी ॥
मारहु तिनको प्राण समेता । बचहिं गईं नहिंपुरुष निकेता[2] ॥
अक्षत योनि बालिका जोई । अपने अर्थ राखिये सोई[3]* ॥
† धनि तुम्हार पैगम्बर मूसा । अरु धनि ईश्वर है जो ईशा ॥
हत्या करवावत है सबकी । बाल वृद्ध नारी है जिनकी ॥
और सुने यह मन में आवत । विषयी मूसा सब विधि भावत ॥

दो०- जो विषयी मूसा नहीं, कहहु कही केहि भाँति ।
राखहु अपने हेत सब, बाल कुमारि सुहाति ॥ ६६॥
* और सुनहु यक बात अनोखी । नीति निपुण कहि दीन्हीं चोखी ॥
यदि कोऊ काहू को मारै । निश्चय मरत तासु संहारै ॥
मारनवारो फाँसी पावै । यदि काहू विधिसो बचिजावै ॥
पर ईश्वर कारन तेहि राखी । सौंपत है देखत निज आँखी ॥
जा विधि बचहुसो मार्ग बतैहौं । भागि जाहु सो पथ दर्शैहौं[4]* ॥
†स्वामि कहत सुनिये चितलाई । सत्य असत्य जौन दर्शाई ॥
न्याय सत्य यदि ईश्वर करई । किमि न दोष मूसा उर धरई ॥
जब मूसा यक नर को मारी । खोदि भूमि दीन्हों तहँ डारी ॥
अरु सो भागि गयो भयमानी । दंड न दीन ईश तेहि जानी ॥
यदि सौंप्यो मारन के हेता । तौ करि पक्ष सो सुखदुख देता ॥

---

† स० ४३ । १. परदेशियों के माल पर ऐसे टूटते हैं जैसे प्यासा जल पर भूखा अन्न पर टूटता है । २. नज़दीक । ३. तौ० गिनती पर्व ३१ आ० १७,१८ । स०४४ । ४. तौ या० पर्व २१ आ० १२, १३ । †स० ४५ ।

दो०—पक्षपात जाके विषे, हुइ न सकत सो ईश ।
न्याय न मूसा को भयो, कस मानहिं जगदीश ॥६७॥

सो०—एक कहत समुझाय, ऋषिवर मेरी मानिये ।
पावत सो सुख भाय, करत जो ईश्वर प्रेम नित ॥८॥

छं०—*शुभ कामना हित बैलको बलिदान बहुविधिसों कियो ।
अरु रक्त बहि निकस्यो तहाँ पर सकल सो मूसा लियो ॥
तेहि अर्ध राख्यो पात्र बिच अरु अर्ध वेदी छिड़कियो ।
पुनि पात्र में से सवन ऊपर छिड़क तव लोहू दियो ॥ २ ॥

और कह्यो यह ईश्वर प्रेमा । रहै सदा सँग तुम्हरे नेमा ॥
तब ईश्वर मूसहि गोहरावा । ऊपर अपने पास बोलावा ॥
पत्थर की पट्टी लै जाहू । लिखी व्यवस्था जो सब काहू ॥
अरु आज्ञा जो कछु लिखिराखी । सो लैजाहु चहहु निज साखी*[1] ॥
†स्वामि कहत देखहु चतुराई । कस पूजा भक्ती देखराई ॥
अब देखहु ईश्वर प्रभुताई । करवावत बलिदान सोहाई ॥
छिड़कत रक्त सबन के ऊपर । इन सम अज्ञ और को दूसर ॥
जब इनके ईश्वर यह रीती । भक्त भखत का करत अनीती ॥
ईशप्रसाद समुझि ते खाहीं । गाय बैल बकरी जो चाहीं ॥

दो०—याही विधि बहु भाँति की, लिखी बाइबिल बात ।
सोई यह वेदन विषे, दोष लगावत जात ॥६८॥

छं०—यह जानि निश्चय परत हम कहँ ईश को जे मानते ।
सो बसत परवत शिखर पर मन जंगलीपन ठानते ॥
नहिं लेखनी तेहि पास कागज देत लिखि पत्थर शिला ।
बनि गयो सो ईश्वर तहाँ अरु आइ कछु डाकुन मिला ॥ ३ ॥

---

[1] तौ० या० प० २४ आ० ५, ६, ८, १२ । † स० ४६ ।

❀एक कहत ऋषिवर सुनि लीजै । मम ईश्वर करनी चित दीजै ॥
कह ईश्वर मम रूप न देखहिं । मरत तुरत जो मोकहँ पेखहिं ॥
कह्यो ईश यक ठौर सोहाई । तहाँ रहहु जिय नहिं घबराई ॥
जब मम विभव प्रकाशित होई । तबहिं छिपावहु खोह सँजोई ॥
अरु अपने कर तुम्हहिं छिपाऊँ । कर उठाइ पुनि तुमहिं देखाऊँ ॥
रूप हमार न तुम लखि पावहु । पीछे चहै उपाय चलावहु❀[1] ॥
†कहत स्वामि देखी प्रभुताई । मायावी सब भाँति लखाई ॥
रचि प्रपंच ईश्वर बनि गयऊ । मिलि मूसा सँग कौतुक रचेऊ ॥

दो०--जब मूसा को हाथ सों, अंग छिपायो ईश ।
तब केहि विधि देख्यो नहीं, रूपवान है ईश ॥६९॥

पुनि दूसर पुस्तक लै हाथा । कहन लगे बहुतक यक साथा ॥
❀ईश बड़ाइ कहा तुम जानहु । है सामर्थ सकल विधि मानहु ॥
यक दिन मूसा को बुलवाया । तम्बू से ताकहँ समुझाया ॥
इसराईल सुतन सों कहहू । जो मम हेत भेंट तुम चहहू ॥
तौ तुम गाय बैल अरु बकरी । लै आवहु भेंड़न को पकरी❀[2] ॥
+कहत स्वामि ईश्वर की करनी । जानी जो तुम निजमुख बरनी ॥
ईश्वर भेंट पशुन की लेई । करि उपदेश जो आज्ञा देई ॥
ताते हिंसक मनुज समाना । खात मांस धरि ईश्वर बाना ॥
ईश्वर कोटि न सो कहि जाई । तेहि न अहिंसा धर्म लखाई ॥

दो०--❀बैल लाइ बलि को करै, ईश्वर सन्मुख आय ।
अरु याजक हारून सुत, लीजै तिन्हैं बोलाय ॥७०॥

सो लै रक्त चहूँ दिशि छिरिकै । वेदी द्वार सकल दिशि भरिकै ॥
खाल निकारि खंड करि ताको । धारहु वेदी ऊपर वाको ॥

---

[1] तौ० या० पर्व ३३ आ० २० से २३ तक । † स० ४७ ।
[2] तौ० लय व्यवस्था प० १ आ० १, २ । स० ४८

चुनि लकड़ी अग्नी सो देई। याजक विधि सों भेंट धरेई ॥
तासु सुगन्ध ईश ढिग जाई। जरैमांस अरु जो चिकनाई ❁[1] ॥
+अब विचारि देखहु मन माहीं। करहिं भक्त करतव्य सराहीं ॥
परमेश्वर आगे पशु मारें। लोहू छिड़कत सबन दुआरे ॥
होमैं ताहि अग्नि बिच सोई। मिलहि सुगन्ध ईश कहँ जोई ॥
का कसाइ घर यह है नाहीं। करत क्रिया सब लोग सराहीं ॥

दो०--असपुस्तककेहिभाँतिसों, लखहु ईशकृत होय।
निन्दित कर्मनसों भरी, नर लीला युत सोय ॥७१॥

और सुनेहु केतिक यहि भाँती। कहत मोहिं लज्जा है आती ॥
❁परमेश्वर मूसा सों कहेऊ। यह याजक अभिषेकी ठयेऊ ॥
यदि औरत सम पाप सो करई। तो यह दंड हृदय विच धरई ॥
यक बछिया ईश्वर हित लावे। ताके मस्तक हाथ लगावे ॥
अरु अपने कर सों बलि करई। ईश्वर सन्मुख लै सो धरई ❁[2]॥
❁अरु अध्यक्ष पाप कोउ करई। भेंट अजासुत[3], सो लै धरई ॥
बली करै ईश्वर के आगे। पाप भेंट यह सब से लागे❁[4] ॥
❁अरु यदि हो पूँजी नहिं पासा। "इष्ट"भेंटहित करत सो आसा ॥

दो०--दो कपोत[5] दो पिंडुकिया[6], भेंट धरै सो लाय।
गला घोंटि बलि देवई, शिर न पृथक होइजाय ॥७२॥

प्रायश्चित्त करहिं यहि भाँतीं। क्षमाहोहिं अपराध सोहाती ॥
❁यदि इतनिहु सामर्थ्य न होई। तौ यक सेर, पिसान सँजोई ॥
लावहिं भेंट तेल बिन ताहीं। क्षमाहोहिं अपराध नशाहीं[7]❁ ॥

---

[1] तौ० लय० व्य० प० १ आ० ५ से ६ तक। + स० ४६।
[2] तौ० लय व्य० प० ४ आ० १ से ४ तक। [3] बकरी का बच्चा।
[4] तौ० लय० पर्व ४ आ० २२ से २४। [5] कबूतर। [6] पड़खुली।
[7] तौ० लय० प० ५ आ० ७ से १३ तक।

❋प्रायश्चित हित हों बलिदाना। खाल और कोउ लेइ न आना॥
खाल होइ सोइ याजक केरी। मारि चढ़ायो ईश्वर नेरी॥
अरु भोजन की भेंट जो होई। चहै पकावे केहु थल[1] कोई॥
सोउ होय तेहि याजक केरा। जो सबभाँति बन्योतेहिबेरा[2]❋॥
+स्वामि कहत यह अद्भुत रीती। पाप छुड़ावन की जो नीती॥

दो०--एक गाय को मारहीं, परमेश्वर ढिग जाय।
भेंट लेइं परसन्न ह्वै, देवै पाप नशाय॥७३॥

पुनि किमि पापन सों कोउ डरई। न्यायधीश अध्यक्ष जो करई॥
अस ईश्वर तुम्हार हत्यारो। जो अस प्रायश्चित्त प्रचारो॥
जब ईश्वरहित ये पशु मारें। कहहु सो काहे कबहुँ विचारें॥
शंका हृदय तनिक नहिं होई। प्राण लेत पशु पक्षिन जोई॥
और सुनत जो हो धनवाना। करै बली सो गाइ महाना॥
अरु निर्धनी कपोतहि लावे। बहु छोटे पक्षी जहँ पावे॥
अति दरिद्र जो दीन महाना। सो बलि करे बनाइ पिसाना॥
कहहु कर्मफल का यह होई। देत ईसाइन ईश्वर सोई॥

दो०--गला घोंटि पक्षीन को, करत बली यह जोय।
तड़पत है बहु देर तक, इनहिं दुःख नहिं होय॥७४॥

पोप पुजारी हमरी जानी। करत अहैं अपने मनमानी॥
पर जब देखि ईसाइन रीती। महा अनर्गल अधिक कुरीती॥
माँस खाइ चमड़ा लै दामू। मौज उड़ावहिं करिके कामू॥
कोउ पितु जगमहँ यक सुतमारी। दुसरे काहिं खवावहिं भारी॥
यह अन्याय रीति सब भाँती। है सब भाँतिन बहु कुलघाती॥
परमेश्वर के सुत सब कोई। पशु पक्षी मानुष हैं जोई॥

---

१. तंदूर में अथवा कड़ाही में या तवे पर। २. तौ० लय० प० ७ आ० ८-९। + स० ५० से ५२।

चाहिय तेहि सब ऊपर दाया। जीव शरीर जगत निर्माया॥
करहिं न्याय कर्मन को देखी। विरुद्ध करै ईश्वर नहिं लेखी॥
दो०--ताते अबहूँ त्यागिये, पाखंडिन को संग।
ईश्वर[1] हू में धरत हैं, हिंसा दोष कुसंग ॥७५॥
ताते ईश्वरकृत नहिं पोथी। स्वारथ हेत बनाई थोथी॥
याही विधि या महँ बहुतेरी। महा असंभव लिखी घनेरी॥
✽कहत एक ऋषि सों यहि भाँती। पुस्तक गिनती की कछु पाँती॥
कह गदही देखेउ एक बारा। ईशदूत कर खड़ग निहारा॥
भागि चली सो मार्ग बराई। तब बलआम[2] दौरि अगुआई॥
अरु ताके एक लाठी मारी। वह परमेश्वर तुरत पुकारी॥
दीन्ह ईश तब तेहि मुख खोली। वहयहि विधिबलआम सोंबोली॥
तीनि बार तुम ह मारा। कौनकियो अपराध तुम्हारा[3]✽॥

---

[1] ऐसे ईश्वर की ईश्वरताई पर धन्य है कि जिसने बछड़ा, भेड़ी और बकरी का बच्चा कबूतर और पिसान (आटा) तक लेने का नियम किया। अद्भुत बात तो यह है कि कपोत के बच्चे गर्दन मरोड़वा के लेता था ताकि परिश्रम न करना पड़े। इन सब बातों से ज्ञात होता है कि जंगलियों में कोई चतुर पुरुष था, वह पहाड़ पर जा बैठा और अपने को ईश्वर प्रसिद्ध किया। जंगलियों ने अज्ञानवश स्वीकार कर लिया। अपनी युक्ति से पहाड़ पर ही वह खाने की वस्तुएँ, मांसादिक तथा अन्न मँगा लिया करता था और मौज करता था। उसके दूत (फ़रिश्ते) काम करते थे। अब सज्जन विचार लीजिये कि बाइबिल में बछड़ा, गाय, बकरी, भेड़, कपोत, पिंड़कियाँ, पिसान आदि खानेवाला ईश्वर और कहाँ सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी इत्यादि गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर है।

[2] एक पुरुष का नाम। [3] तौ० गिन्ती की पुस्तक पर्व २२ आ० २३ व २८।

दो०--†स्वामि कहत इनकी कथा, मनमानी दिखराइ।
जिमि बहुरूपी छलहिं नित, नाना रूप बनाइ ।।७६।।

देख्यो गदही ईश्वर दूता। अवनलखत कोउ पुरुष सपूता।।
का सब दूत गये हैं सोई। अथवा रोगग्रस्त सब कोई।।
या भूगोल अन्य को गयेऊ। तहँ सब धन्धन में रत रहेऊ।।
अथवा मौत भई तिन केरी। जो न देखात सबै बिधि हेरी।।
याते यह सब मूरखताई। फँसे आप अरु सबन फँसाई।।
❀ तब यक दूसर ग्रन्थ[1] उठावा। कहि करनी चाहत अपनावा।।
कहत भयो ईश्वर की बानी। सुनि पाईतेहि निशि सुखदानी।।
कह्यो ईश सेवक ढिग जाई। बात कहहु दाऊद सुनाई।।

दो०--अवशि बनावहु एक घर, कह ईश्वर मम हेत।
दुखपावहु बहु दिवसबासि, छाइबितानन[2] खेत ।।७७।।

इसराइल सुत मिश्र निवासी। जबसे लायों तिनहिं निकासी।।
तब से घर बिचनहिं रहिपावा। नाकहुँ अपनो भवन बनावा[3] ❀।।
† स्वामि कहत अब नहिं संदेहा। नर समान ईश्वर को गेहा।।
नर समान सब कछु इतिहासा। करत सोउ है नर की आसा।।
हुइ न सकत ईश्वर केहु भाँती। ना ईश्वरकृत पुस्तक भाती।।
तुम्हहिं लाज लागत है नाहीं। या विधि ईश्वर मानत ताहीं।।
पुनि दूसर पुस्तक लै हाथा। कहन लग्यो सो अपनो गाथा[4]।।
❀ यूरूसलेम नबूसर आवा। तेहि परमेश्वर भवन जलावा।।

---

†स० ५४ [1] समूएल की दूसरी पुस्तक। [2] तम्बू आदि डेरा।

[3] एससूएल की दूसरी पुस्तक प० ७ आ० ४ से ६ तक। † स० ५५।

[4] बाबुल के राजा नवखुदनज़र के राज्य के उन्नीसवें वर्ष के पाँचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसर प्रदान जो निज सेना का प्रधान अध्यक्ष था।

दो०--भवन जिते तहँ पर रहे, दीन्हें सकल जलाय।
पुनि सेनापति सैन्य लै, बचे सो दियेढहाय[1]❀॥७८॥
छन्द—† कह स्वामि तुम्हरे ईश पै पुनि विपति आई है नई।
दुख सहे बहुतक दिन बिताये तानि तम्बू सुखमई॥
दाऊद सों जब बिनय कीन्हीं तेहि हवेली निर्मई।
अब पुनि नबूसर जारि डारी शक्ति जो थी छिन गई॥४॥
बिपति समय कोउ काम न आवे। समय पाय तेहि कोउ सतावे॥
मिश्र केरि शक्ती कहँ खोई। मारे बालवृद्ध सब कोई॥
किमि चुप बैठि रहे मन मारे। रहे कौन को तकत सहारे॥
कस तुम्हार ईश्वर जग आई। रहित प्रतिष्ठा निन्दा पाई॥
ऐसहि बहुतक लिखी कहानी। बीच बाइबिल में मनमानी॥
पुनि जबूर तेहि लीन्ह उठाई। भाग दूसरो लै सुखदाई॥
कहन लगा सुनिये ऋषिराई। ईश्वर की जो ईश्वरताई॥
❀ इसरायल ढिग मौत पठाई। कह्यो तुरत मारहु तुम धाई॥
सत्तर सहस मरे यक बारा। कियो मौत ने सबन सँहारा[2]❀॥
दो०†--स्वामि कहत केहि भाँति सों, ईश पुकारो जाय।
ह्वै प्रसन्न रक्षा करत, क्रोध से देत नशाय॥७९॥
कवि ने वचन कहे अति साँचे। जो तुम्हार ईश्वर मन राँचे॥
जिमि कोउ नर क्षण हर्षित होई। क्षणमहँ क्रोधवंत हो सोई॥
अस मानुष भयदायक होई। घटत ईश तुम्हरे महँ सोई॥
ताते त्यागि सकल जंजाला। देखहु वैदिक धर्म विशाला॥
❀पुनि बोला झुँझलाय इसाई। और सुनहु दूसर प्रभुताई॥
यक दिन ईश्वर पुत्र घनेरे। आइ गये हैं ईश्वर नेरे॥

---

[1] तौ० राजा की पुस्तक प० २५ आ० ८ से १० तक। स० ५६।

[2] काल सुसमाचार दूसरी पुस्तक प० २१ आ १४। † स० ५७।

तहँ शैतानहु आइ बिराजा । महाप्रबल निज मन का राजा ॥
पूछेहु तब शैतान बोलाई । कहहु कहाँ ते आये भाई ॥
दो०--तुमजाँच्यो एयूब को, करि पूरन विश्वास ।
डरत सदा वह पापते, जात न ताके पास ॥८०॥
निज सचाइ अपने महँ राखत । तेहिमारन हित तुमकिमिभाषत ॥
कह शैतान हाथ फैलाई । परखहु तुम ताकी प्रभुताई ॥
ईश्वर कहत सुनहु चितलाई । प्राण बचावहु ताके भाई ॥
तब शैतान चल्यो तेहि ओरा । बसत एयूब रह्यो जेहि ठौरा ॥
फोड़ा दिय उपजाइ शरीरा । गयेप्रान सहिसका न पीरा[1]❀ ॥
†स्वामिकहत सामर्थ्य विलोकहु । जो है इनको ईश्वर देखहु ॥
जो एयूब निज भक्त बतावा । रक्षा ताकी नहिं करि पावा ॥
ना कोइ दूत जो होत सहाई । भा शैतान सबन दुखदाई ॥
दो०--होत ईश सर्वज्ञ जो, तौ जानत सब बात ।
पूछत किमि शैतानसों, कस एयूब है तात ॥८१॥
❀ बोल्यो एक नवाय के मस्तक । हाथ लई उपदेश की पुस्तक ॥
कह ईश्वर बुद्धी अरु ज्ञाना । दोउ देखे हम करिके ध्याना ॥
है झंझट मन के यह दोऊ । बुद्धि सों शोक लहत है सोऊ ॥
ज्ञान बढ़ेजग दुख बढ़ि जाई [2]❀ । असन होइ यह कह ऋषिराई ॥
†इन दोहुन को एकहि भावा । शब्द विभिन्न जगत दर्शावा ॥
बुधि में शोक ज्ञान दुख मानहिं । कहहु कौन तेहि ईश्वर जानहिं ॥
बात असंगत जहँ पर होई । नाहिं ईशकृत पोथी सोई ॥
अब आगे कछु और सुनाअहु । लै इंजील ताहि समुझावहु ॥

---

१. जबूर एयूब पर्ब २ आ० १ से ७ तक । † स० ५८ । प० १ आ० १६ से १८ । २. ज़बूर उप० प० १ आ० १६ से १८ । † स० ५९ ।

दो०--✱तब ईशू के जन्म को, हाल कहत यहि भाँति ।
जेहि अपनायो सकल दिशि, बहुतक मानवजाति ।।८२

यक बाला सुन्दर अति प्यारी । मरियम नाम महा सुकुमारी ।।
मगनी[1] यूसुफ संग बिचारी । भई सकल गुन रूप निहारी ।।
संग भयो नहिं गर्भ देखानो । तब परमेश्वर गर्भ प्रमानो ।।
मरियम चिन्ता करि अकुलानी । सपने दूत कही यक बानी ।
दर्शन दै इमि कह्यो सुनाई । यूसुफ हिय यह बात जनाई ।।
तुम दाऊद सुवन बलवाना । होय न मरियम से अपमाना ।।
डरहु न तेहि घर लावहु वेगी । शुभ अवसर ताकत जेहि नेगी ।।
गर्भ पवित्र आत्मा केरा । रक्षा हेतु तुमहिं है हेरा✱[2] ।।

दो०--या विधि ईसा जन्म की, कथा परम बिख्यात ।
सुख दीन्हों बतराइ पथ, मुक्तिमार्ग सुखदात ।।८३।।

†कहतस्वामि बुधिवरनहिंमानहिं । प्रगटप्रमान न तामहँ लावहिं ।।
यह सब मूर्ख जनन की बातैं । करत रहत नित अपनी घातैं ।।
नियम विरुद्ध न ईश्वर करई । पुनि नर कौन भाँति उर धरई ।।
याविधि बहुत कुमारिन बालक । होत जगत महँकुल यश घालक ।।
अस महाभारत माहिं कहानी । करन केरि उत्पत्ति बखानी ।।
केहु सँग भई होइ कहुँ प्रीती । गर्भ रह्यो तब सोची नीती ।।
ईश्वर सुत कहि स्वप्न सुनावा । गर्भ माहिं ईश्वर को भावा ।।
नहिं प्रमान कछु सृष्टि विरुद्धा । तामहँ करहु नाहिं कोउ श्रद्धा ।।

---

[1] जिस प्रकार इस देश में डोले, का रिवाज है वैसे ही ईसाइयों के यहाँ मगनी का रिवाज है। लड़की पति के पास रहा करती और सब व्यवहारों से परिचित होने पर दोनों ओर की स्वीकृति पर विवाह होता है। [2] मत्तीरचित इंजील प० १ आ० १८, २० । † स० ६० ।

दो०--❀लीन्हपरीक्षाजौनविधि, परमेश्वर तेहिकाल ।
सुनहुस्वामिहैंजगविदित, ईशकार्य बिकराल ॥८४॥

यक दिन ईशुहि लै तहँ गयेऊ । कठिन घोर उपवन जहँ रहेऊ ॥
तहँ शैतानहिं लीन्ह बोलाई । कह्यो परीक्षा करिये भाई ॥
चालिस दिवस राति उपवासा । करवायो परखन की आसा ॥
भूख जासु उर जबहिं सताई । तब शैतान कहत गोहराई ॥
जो तुम ईश्वर के सुत होहू । तो पाथर रोटी करि लेहू[1] ❀ ॥
†याते बिदित भई यह बाता । नहिं सर्वज्ञ तुम्हार विधाता ॥
जो सर्वज्ञ तो किमि नहिं जाना । रह्यो मनुषवत सो अज्ञाना ॥
परख हेत शैतान बोलाई । निज सुत की पारख करवाई ॥
पाथर की रोटी न बनाई । ना तेहि निज प्रभुता देखराई ॥

दो--बुद्धि असंगत वार्ता, लिखि मारी बेकार ।
नामबाइबिलतेहिधरयो, कीन्ह्यो अधिक प्रचार ॥८५॥

यह सब झूठ निरर्थ कहानी । लिखि डारी बहुतक मनमानी ॥
❀और सुनहु ईश्वरसुत करनी । जो इंजील माहिं है बरनी ॥
जाल बनाइ फँसावन ठानी । तिमिईसा यहबोल्यो[2] बानी❀[3] ॥
†अबुधसकलतिन लीन्ह फँसाई । करिके बहुतेरी चतुराई ॥
याते करि बिचार मन माहीं । करहु उपाय फँसै कोउनाहीं ॥
❀सुनहु स्वामि ईसा उपकारा । देश विदेशन कियो प्रचारा ॥
जो कोउ रोगी इन ढिग आवे । रोग दूरि करि तेहि अपनावे ॥
मृगी आदि अर्धंग के रोगा । फँस्यो जौन है प्रेत प्रयोगा ॥
दुःख दूरि सबके करि दीन्हे । फिरत सबनको सँगमें लीन्हे❀[4] ॥

---

१. मत्ती इंजील प० ४ आ० १, ३ † स० ६१ । २. आओ तुमको मनुष्यों के मछुए बनाऊँगा। ३. इं० मत्ती प० ४ आ० १६ से २१ स० ६२ । ४. इं० म० प० ४ आ० २३ से२५ ।

सो०--❀जो नर दीन महान, स्वर्गराज्य तिनको लखत ।
टलि न सकत यक आन, भूमि गगन जौलग रहत[1]❀॥६॥
❀अरु प्रारथना करहु वहोरी । रोटी देहु दिवस की मोरी ॥
याते धरहु न धन को जोरी । कहईसा निजहित बरजोरी ❀[2] ॥
†स्वामि कहत वैसेहि यह लीला । करत पोपगन जैसी लीला ॥
जिमि जग भूतचाल भरमावै । धन ले सारो तेहि अपनावै ॥
ता बिधि तुम्हरो ईश लखाई । ईशपुत्र जा कहँ ठहराई ॥
अब न फँसहि भ्रम तुम्हरे कोऊ । जानि गये तुम्हरो भ्रम सोऊ ॥
और कह्यो जो स्वर्ग कहानी । दीनन राज्य महा सुखदानी ॥
सो वह एक विराजत राजा । अथवा सबकोउ सहित समाजा ॥
दो०--दीन कबहुँ नहिं होवई, अधिकारी केहु राज ।
जिमि माँगे कबहूँ मिलत, चाहत जौन स्वराज ॥८६॥
यह सब लोभ प्रलोभन केरी । बात बनाइ कही सब हेरी ॥
जानहु तेहि क्षण सब बनवासी । महामूर्ख चित रहे उदासी ॥
इन महँ एक गयो बनि राजा । जोरि लियो तेहि कछुक समाजा ॥
या बिधि औरहु बहुत कहानी । लिखी बाइबिल में मनमानी ॥
याते छोड़ि सकल जंजाला । गहहु धर्म जो महा विशाला ॥
कहत एक ईश्वर की बानी । बचन कहे जो जग हित जानी ॥
❀जो निशिबासर ममहित लागी । हे प्रभु हे प्रभु भाखत रागी ॥
स्वर्ग राज्य वह धसन न पावे । नहिं ईश्वरता कहँ अपनावे[3]❀ ॥
दो०--†स्वामि कह्यो यह लखि परत, रहे दीन तेहि काल ।
बनमानुष की भाँति सब, ओढ़त निशिदिन खाल ॥८७॥
जो बनि ईश्वर रोटी माँगत । ताहि कहब ईश्वर कस भावत ॥

---

१. इं० म० प० ५ । आ० १८,१६ । २. इं० म० प० ६ आ० ११-१६ । स० ६३–६५ । ३. इं० म० प० ७ आ० २१ † स० ६६ ।

किमि धन जारत आज इसाई। मानत ईश्वर बचन न भाई॥
ईसा बचन सत्य जो मानत। विषप[1] पादरी जो यहँ आवत॥
तौ न करत ईसा प्रभुताई। मानत जा विधि आज इसाई॥
ईश कबहुँ अस बचन न कहई। निशिदिन कर्म तुम्हारे लहई॥
❀समय पाय कहिहैं बहुतेरे। जो कछु कहैं आइके नेरे॥
तब कह हम जानत हैं नाहीं। विलग कुकर्मी रहहु सदाहीं❀[2]॥

दो०--†याबिधि निशिवासर कहत, सदा जंगलिन भाँति।
देत प्रलोभन सकल बिधि, बहकावैं सब जाति॥८८॥

❀एक कहत सुनिये ऋषिराई। ईसू की सुनि लेहु बड़ाई॥
एक समय यक कोढ़ी आवा। ईसा सम्मुख बचन सुनावा॥
शुद्ध करहु प्रभु मोहिं अपनावहु। कृपा आपनी को दर्शावहु॥
कर गहि निज इच्छा दर्शाई। होहु शुद्ध यह कह्यो सुनाई॥
कहतहिं तुरत भयो सो चंगा। गयो कोढ़ पावन भो अंगा❀[3]॥
❀अरु जो भूतग्रस्त नर नारी। रहे जो कबरस्थान मझारी॥
निकरि तहाँ से आइ पुकारा। ईश पुत्र मम सुनहु विचारा॥
जो तुम हमहिं निकारहु स्वामी। तौ मम विनय सुनहु अनुगामी॥

दो०--सुअरन पंक्ती बीच मोहिं, बैठन स्थल देहु।
जाहु तुरत ईसा कह्यो, जहाँ तुम्हारो नेहु॥८९॥

तब सब सुअरन बिच पगुधारी। चले झुंड बनि सिन्धु करारी॥
गिरि समुद्र सब स्वर्ग सिधारे। रहे तहाँ जो सुअर बिचारे❀[4]॥
†कह ऋषि कही जौन तुम बातैं। अबुध फँसावन की है घातैं॥
सृष्टिविरुद्ध असत्य कहानी। मानत जो इसाइ मनमानी॥

---

[1] पादरियों की प्रबन्धकारिणी सभा। [2] इं० म० प० ७ आ० २२, २३। † ६७। [3] इं० म० प० ८ आ० २, ३। [4] इं० म० प० ८ आ० २८ से ३३ तक। † स० ६८–६९।

याही भाँति पुरानन माहीं। नाना कथा[1] लिखी तेहि ठाहीं ॥
तब तुम उन्हहिंअसतकिमिकहहू। अपनी सत्य बतावत रहहू ॥
तनि विचार युत सोचहु भाई। मुर्दा निकसत कबर कढ़ाई ॥
झूठ असङ्गत सबन सुनाई। मूरखता जग में फैलाई ॥
दो०- ❀बहुरि कहत अच्छा कियो, पक्षाघाती एक।
उठि न सकत जो काहु बिधि, यतनहु कियेअनेक ।९०॥
ताके ईसा पाप निवारे। लखि विश्वास भये तेहि प्यारे ॥
दै संतोष कहत इमि भयेऊ। अब नहिं पाप तुम्हारे रहेऊ ॥
धर्मिन को कछु नाहिं प्रयोजन। पापी रहत सदा हैं मों मन ॥
तिनहिं बोलावन के हित आयो। जो पछिताव करहिं मन भायो[2] ❀
† कहतस्वामि यह वैसिहि बाता। जैसिहि पूर्व कही तुम ताता ॥
जो अज्ञानि अंध मति होहीं। सोमानहिं तुम्हारि मति कोढ़ीं ॥
न्यायाधीश ईश जगकर्ता। जगपालक न्यायी दुखहर्ता ॥
बिना कर्म भोगे जगमाहीं। पाप छुटत काहू को नाहीं ॥
❀ तब पुनि कहत सुनहु ऋषिराई। ईसा की जग बहुत बड़ाई ॥
दो०--शिष्य बोलाये एक दिन, श्री ईसू महराज।
द्वादश शिष्य सुयोगवर, आये सहित समाज ।।९१।।

---

[1] शुक्राचार्य, धन्वन्तरि, कश्यपादि की बातें जो अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दीं। बृहस्पति के पुत्र कच को टुकड़ा-टुकड़ा कर जानवरों और मछलियों को खिला दिया। और फिर शुक्राचार्य ने जिला दिया। पश्चात् कच को मारकर, शुक्राचार्य को खिला दिया और पेट से ज़िन्दा निकाला। आप मर गया और उसको कच ने ज़िन्दा किया। इसी प्रकार कश्यप ने तक्षक के जलाये हुए वृक्षादि और मनुष्यादि सब ज़िन्दा किये। धन्वन्तरि ने सैकड़ों मुर्दे जिलाये। (गप्पों में भी ईसाई पुराणों से न जीत सकेंगे) [2] इ० म० प० ९ आ० २,१३। † स०७०।

कह्यो बनहु अधिकारी जाई। भूत अशुद्ध जौन जगमाईं॥
रोगन ते सब काहु बचावहु। अरु व्याधिन कोजाइ नशावहु॥
काम आपनो यह हिय धरहू। खड्ग चलै सो कारज करहू॥
सुत पितु मातु बिलगजेहि भाँती। सास बहू अरु बाबा नाती॥
सोइ उपाय करहु तुम जाई। जासों जावै मेल नसाई[1] ❁॥
†कह्यो स्वामि यह नीति न भाई। कही जो तुम ईश्वर प्रभुताई॥
सोखा और नाउतन केरी। रीति सिखाइ दीन्ह बहुतेरी॥
फूट बढ़ावन हित उपदेशा। कीन्ह होय जेहि भाँति कलेशा॥
दो०–जाके बिच कर्तव्य अस, फूट करावत नित्त।
सो ईश्वर केहि भाँतिसों, आवहिं बुधवर चित्त॥९२॥

श्रेष्ठ पुरुष जगके विषे, करत न अस व्यवहार।

जस तुम्हार ईश्वर करत, केहु दुख काहु पियार॥९३॥

❁कहत बहुरि ईसा प्रभुताई। कछु रोटिन सों सैन्य जेंवाई॥
पूछत ईशु कहहु कै रोटी। उतर दीन्ह तेहिं सात हैं रोटी॥
अरु कछु छोटि मछलियाँ पासा। लै आयों भोजन की आसा॥
लाइ धरीं ईसा ढिग आई। ईसा तुरतहि सैन्य बोलाई॥
शिष्य समूह सकल चलि आये। तिन रोटिन सों सकल जेंवाये॥
चारि सहस मानुष तहँ रहेऊ। बालक नारि न संख्या करेऊ॥
सात टोकरा रोटिन टूका। बचिगे रह्यो न कोई भूका[2] ❁॥
†स्वामि कहत यह गप्प निराली। इन्द्रजाल से तनिक न खाली॥
दो –उनरोटिन में कौनविधि, आय मिलीं अधिकाय।
यदि ईसा सामर्थ सों, दीन्हीं तिनहिं बढ़ाय॥९४॥

---

[1] इं० म० प० १० आ० ३, २४ से ३६ तक। † स० ७१।
[2] इं० म० प० १५ आ० ३४ से ३९ तक। † स० ७२।

तौ ईसा केहि भाँति सों, भूखसमय अकुलाय।
गूलर के फल खाइ के, भटक्यो जंगल जाय ।।९५।।
काहेन मोहन भोग मिठाई। तेहि क्षण लीन्हीं तुरत मँगाई ॥
बाल खेल सम कहत कहानी। जिमिबहु साधु कहतमनमानी ॥
भोले पुरुषन लेत फँसाई। सोई तुमहू रीति चलाई ॥
❀एक कहत सुनिये ऋषिराई। जस कोइ कर्म करै जग आई ॥
फल भोगै ताके अनुसारा। देवै ईश जो सिर्जन हारा[1] ❀ ॥
†स्वामि कहत उपदेश निरन्तर। भरत ईसाइ सकल उर अन्तर ॥
सो सब व्यर्थ होत आडम्बर। मूर्खन हेत रच्यो आडम्बर ॥
अब यह मानत नाहिं इसाई। कर्म अनुकूलमिलत फल भाई ॥
दो०--❀बहुरि कहत ऋषिराज सों, सुनहु हमारी बात।
यक विश्वासहि जगत में, कर्तब्र रूप दिखात ।।९६।।
कहत ईश सब सों यहि भाँती। मानत याहि इसाई जाती ॥
हे अविश्वासी और हठीले। सुनहु सकल तुम हो गर्वीले ॥
जो तनिकौ राखत विश्वासा। राई भरि जो होती आसा ॥
तौ पहाड़ सों जो कहि देते। सुनतहि सो आगे चलि देते ॥
नहिं असाध्य तेहि कैसेउ कामा। जो करतेहित सोंनिशियामा❀[2] ॥
†स्वामि कहत सच बात तुम्हारी। मानहिं हम तुम्हारि अनुहारी ॥
तौ यह कहहु जो बहु उपदेसा। करत इसाई देत भरोसा ॥
पाप क्षमा अपने करवावहु। तौ तुम सहजहि मुक्ती पावहु ॥
झूठ होहिं यह सब विश्वासा। पाप छुटन की रहत न आसा ॥
दो०--ईसा में सामर्थ जो, पाप छोड़ावन होत।
तौ किमि भरमत शिष्य सब, ज्ञान न होत उदोत ।।९७।।

---

[1] इं० म० प० १६ आ० २७। † स० ७३।
[2] इं० म० प० १७ आ० १७, २०। † स० ७४।

छं०—करि सक न काहू को कबहुं निष्पाप पावन सुखमना।
ताते लखहु सब भाँति सों मूर्खन विषे ईश्वर बना॥
तेहि हृदय पावन स्वतः नहिं है अज्ञताई में सना।
निज"इष्ट" की गति को विचारहु जो कुमारी सों जना॥५॥
ताते हिये विचारहु नीती। करहु कोउ बाइबिल परतीती॥
नहिं ईश्वर कृत केहु विधि पोथी। रही सदा वह कोरी थोथी॥
होत न कोउ तरु जाके देसा। आदर करत अरण्ड बिशेसा॥
तैसेहिं तेहि अवसर के माहीं। ईसा ईश्वर कहत सराहीं॥
चतुराई करि सबन रिझावा। मनमाना जो कछु समुझावा॥
अब विद्या को प्रकट्या भानू। तिमिर अविद्या सकलमिटानू॥
यहि अवसर ईसा की बानी। है सब भाँतिन लोक अमानी॥
❀ कहत बहुरि है यह नहिं बाता। ईशवचन सब भाँति सुहाता॥
दो०--कह ईश्वर फेरहु नहीं, जो मन को विश्वास।
स्वर्ग राज्य में जाइहौ, करके मेरी आस❀[1] ॥६८॥
❀ और सुनहु मेरी सतबानी। जो धनवान जगत अभिमानी॥
स्वर्ग राज्य ते पहुँचत नाहीं। करतयतन केतिकमन चाहीं❀[2] ॥
❀ अरु ईशू यहि भाँति पुकारी। कहत सुनहु सारे नरनारी॥
जगत माहिं जब नर सुत आई। सिंहासन बैठहिं सुखदाई॥
तो तुम हू जो करि अनुरागा। मेरे हेत मोह सब त्यागा॥
सो बैठहु द्वादश सिंहासन। द्वादश कुलन करहु तुम शासन॥
न्याय करहु नित न्यायी बनिके। कर्तब इसराईलन गुनके॥
करहु दान जो कछु मम हेता। पावहु सहस गुनो है जेता ❀[3] ॥
दो०--†स्वामि कहत यह बालपन, बालबुद्धि की भाँति।
समुझायो विश्वास फल, जो बालकन सुहाति॥६९॥

---

१. इं० म० प० १८ आ० ३। २. इं० म० प० १९ आ० २४।
३. इं० म० प० १९ आ० २३, २४। † स० ७५ से ७७।

अरु यह समुझि परत है बाता। ईसा महा दरिद्र लखाता॥
धनिक प्रतिष्ठा करत न होहीं। लिखिमारेउ असमन करिकोहीं॥
भले बुरे दोहुन महँ होंहीं। जग धनवान दरिद्री जोंहीं॥
ईशराज्य यक स्थल माहीं। मानत ईसा रह्यो सदाहीं॥
तब ईश्वर सर्वज्ञ न होई। अरु सर्वत्र लखै नहिं कोई॥
एकदेशि कस ईश्वर मानहु। परमेश्वर सर्वत्र प्रमानहु॥
रंक जाहिं सब स्वर्ग सिधाई। धनी न पहुँचहिं केहु विधि भाई॥
जो धनवान धर्महित करहीं। तौ न कोऊ जग में दुखभरहीं॥

दो०--लोभ देत केहि भाँति सों, बिलग न कोऊ होय।
बिलग भये ते खुलत है, जाल रच्यो है जोय ॥१००॥

जेहिनिजगुरुहिं लोभ[1] सोंमार्‌यो। तनिकन मन महँ पाप विचार्‌यो॥
ताहि सिंहासन दै निज पासा। बैठावत सब देत सुपासा॥
देखहु इनके न्याय कि रीती। मनमानी जो चाहत नीती॥
केहु अपराध क्षमा सब करहीं। बिन अपराध दंड केहु धरहीं॥
जस गोरा कोउ कर अपराधू। छोड़ि देत लखिके तेहि साधू[2]॥
ऐसेहि इनको ईश्वर न्याई। करत रहत अन्याय सदाई॥
यक अपराध करै दिन राती। धर्म करत यक नाना भाँती॥
राति क़यामत[3] की जब आवे। तब परमेश्वर न्याय चुकावे॥

दो०--एक नरक ही में रहत, एक स्वर्ग में वास।
यक आशा को नित करत, चहतस्वर्गकीआस ॥१०१॥

कहहु कौन विधि ईश्वर न्यायी। भाव जासु सब विधि अन्यायी॥
जेहि पुस्तक महँ अस व्यवहारा। सो न काहु विधि ईश उचारा॥
यह बाइबिल केहु भाँती। ईश्वरकृत बुधि में नहिं आती॥

---

[1] तीस रुपये के लोभ से अपने गुरु को पकड़कर मरवाया।
[2] बेअपराधी। [3] इनके सिद्धान्त से प्रलयकाल कयामत की रात है।

ईशपुत्र ईशा नहिं होई। क्वाँरीगर्भ जन्यो है जोई॥
❀एक कहत ईसा की करनी। सुनहु जौन बाइबिल बिचबरनी॥
आत जात घर वहम[1] सदाहीं। यक दिन भूख लगी मग माहीं॥
तहँ अंजीर तरु पर्यो लखाई। गयो तासु ढिग में सो धाई॥
कोउ फलमिल्यो न तेहि तरुमाहीं। केवल पत्रहिं पत्र लखाहीं॥

दो०--शाप दियो तेहि वृक्ष को, लगहिं न फल केहु काल।
सोतरु सूख्यो तुरतही, देखिक्रोधविकराल ❀[2]॥१०२

सो०--†कहत स्वामि यह बात, झूठ तुम्हारी सकल विधि।
प्रभु ईसा सुखदात, शान्त रहत सब काल में ॥१०॥

छंद—ऋतुज्ञान रहित लखात ईसा क्रोध तेहि उर बसि रह्यो॥
जड़ वृक्ष को अपराध कौन जो शाप ईसा ने दयो॥
जग शाप से नहिं वृक्ष सूखत बात यह झूठी महाँ।
कोउ यत्न करि नाशन चहै नशि जात तरुसोई तहाँ॥६॥

तामहँ कछु आश्चर्य न भाई। यत्न केर फल होत सदाई॥
❀कह यक तुरत होहि अँधियारा। केवल चाँद केर उजियारा॥
तेहि पीछे न रहै उजियारा। सूर्य माहिं होवै अँधियारा॥
चन्द्र प्रकाश देइ तेहि काला। नखतगिरहिं जगहोत ब्यहाला॥
गगन सैन्य सबही ढिग जाई। और सुनहु ईसा प्रभुताई ❀[3]॥
❀ईसा कहत टरै आकाशा। भूमि टरै अरु जाइ प्रकाशा॥
पर मम बात टरै न टारे। हियबसिक्योंनहिंकहतनिकारे❀[4]
❀बाईं ढिग ममशापित जो जन। कहहु जाय तिन सों ममबयनन॥
अग्नि बीच जो जाहिं सिधाई। जो शैतान हेतु सुलगाई ❀[5]॥

---

१. ईसा का नाम। २. इं० म० प० २१ आ० १८, १९। † स० ७८। ३. इं० म० प० २४ आ० २९। ४. इं० म० प० २४ आ० २५। ५. इं० म० प० २५ आ० ४१।

दो०--†स्वामि कहत तुम्हरी कथा, विद्याहीन लखाइ ।
बुधिवरफँसतनकोउजन, कहहुजितोसमुझाइ ॥१०३॥

ईसा केरि धन्य प्रभुताई । नखत सकल तिन दीन्ह गिराई ॥
ईसा पढ़त कछू यदि विद्या । तौ न भुलावत सबन अविद्या ॥
उपज्यो बढ़ई कुल के माहीं । करत रह्यो कर्तव्य सदाही ॥
जग आकाश शून्य दर्शाई । सो केहि भाँति कहहु डिगजाई ॥
अरु निज मुखसों आपनि करनी । अपने मुख सों है जो बरनी ॥
देखहु पक्षपात की बाता । शिष्यन देवै स्वर्ग सुहाता ॥
किमि शैतानहिं प्रथम बनावा । जोतिन के हित अग्नि जलावा ॥
अरु पुनि नरक बनायो तिनहित । करि नसक्योनाहीं कछुअनहित ॥

दो०--जबशैतानहु नहिं भयो, ईश्वर से भयभीत ।
अरु ईश्वर ताको कछू, करिनहिंसक्योसभीत ॥१०४॥

❀एक इसाइ कहत यहि भाँती । सुनहु कहहुँ जो समय सुहाती ॥
शिष्य यहूदी याजक तीरा । जाइ कह्यो यक बचन गँभीरा ॥
ईशुहि हम देहैं पकराई । देहु कहा यह कहहु सुनाई ॥
मुद्रा तीस सु निश्चित भयऊ । पकरन हेत तासु के ठयऊ ❀[1]॥
†स्वामि कहत यह है करतूती । देखी सब तुम्हार मजबूती ॥
जबनिज शिष्यहिकरेउ नपावन । होत कौन विधि दूसर पावन ॥
और सुनहु यक दिवस कहानी । रोटी माँगि खात अभिमानी ॥
और सबन को रक्त पियावत । नियम नया सबको बतरावत ॥

दो०--जामें है सामर्थ नहिं, करै कौन विश्वास ।
बात असम्भव जानि के, रहत न काहुइ आस॥१०५॥

❀ सुनहुस्वामि यकदिन कीबाता । ठाढ़ भयो ईशू सुखदाता ॥
तब अध्यक्ष तहाँ चलि आवा । पूछत ईसा सों मन भावा ॥

---

† स० ७९ से ८१ । १. इं० म० प० २६ आ० १४,१५ । † स० ८२ से ८६ तक ।

कहा यहूदिन के तुम राजा। उतर दीन्ह सब कहत समाजा॥
अरु तुमहूँ भाषत यहि भाँती। केहि विधि करतद्वेषसब जाती॥
पुनि प्रधान याजकन बोलावा। अरु प्राचीनजनन गोहरावा॥
दोषी ईसा सबन बतायो। तेहि उत्तर नहिं कछु बतरायो॥
तब पिलात[1] ईसा सन कहेऊ। सुनत न कछु मौनी ह्वै रहेऊ॥
विरुद्ध साक्षि सब देत तुम्हारे। का यह शत्रू नाहिं निहारे॥

दो०--तबहुँ न उत्तर दीन कछु, संशय करत प्रधान।
पुनि पिलातसबसों कहत, करहुव्यवस्थाजान॥१०६॥

सबन व्यवस्था दीन्ह सुनाई। क्रूश[2] चढ़ावहु इनको जाई॥
तब अध्यक्ष भवन लै जाई। रक्षाहित सब सैन्य बिठाई॥
वस्त्र सकल लीन्हें उतराई। बागा[3] लाल दीन्ह पहिराई॥
कंटक मुकुट शीश पहिराई। नर्कट[4] दीन्हों हाथ थँभाई॥
करि प्रणाम यह कहत सुनाई। बने यहूदिन नृप कस भाई॥
अरु थूक्यो सबहिन बहु भाँती। रहीं तहाँ पर जेतिक जाती॥
लै नर्कट तेहि सिर पर मारा। अरु अपमानित शब्द उचारा॥
करि बहु हँसी तहाँ लै गयऊ। जीवन हरन क्रूश जहँ ठयऊ॥

दो०--बागा लाल उतारिकै, मसीवस्त्र पहिराय।
क्रूश चढ़ावन हेत जो, बाना दीन्ह बनाय॥१०७॥

पुनि सिर का महँ पित्त मिलाई। कहा पियहु या कहँ मन लाई॥
तेहि न पियो बरजोरिहु कीन्हा। मुख अरु नैन मूँदि तेहिलीन्हा॥
अरु दो डाकुन हू को साथा। क्रूश चढ़ायो गहिके हाथा॥
शूली तीनहु दीन्ह चढ़ाई। दोष पत्र दिय शीश बँधाई॥
जो कोउ आवत जात निहारै। थूकै अरु कटु वचन उचारै॥

---

१. एक पुरुष का नाम पिलातुस। २. सूली। ३. चोग़ा की शक्ल में एक वस्त्र। ४. कोई हथियार का नाम।

कहत बहुत विश्वास की बानी। समुझायहु इन जो मन मानी॥
जानि परहि अब जब बचि जाहीं। जो ईश्वर सुत कह्यो सराहीं॥
पहर तीसरे सारे देशा। सहि न सक्यो सोक्रूशक्लेशा॥

दो०--अंधकारमय जगत सब, सुनहु भयो तेहि काल।
तेहि क्षण ईसा ने कहे, शब्द [1] महाविकराल॥१०८॥

सुनेहु सकल जन ईसा बानी। सहित दीनता दुख में सानी॥
दौड़ि एक सिरका लै आवा। तामहँ लै इसपंज भिलावा॥
नल पर धारि पियावन लागा। पियोनतेहिनिजप्राणहिं त्यागा॥
तजत प्राण पुनि कह्यो पुकारी। हे ईश्वर करिये रखवारी[2]❀॥
†कह ऋषि करी दुष्टता भारी। दुष्टन पाछिल बैर निकारी॥
पर ईसा कोहू कछु दोषू। कियो अकारनथो वहु रोषू॥
ईश्वर काहू बाप न होई। ना वह पुत्र जनत है कोई॥
जग व्यवहार ईश नहिं आवहिं। साले ससुर न पितु सुत भावहिं॥

दो०--जब पूछेउ अध्यक्ष ने, सत्य बतावत बात।
तौ काहे यहि भाँति सों, सूली पावत आत॥१०९॥

यदि पूरब की सकल कहानी। कही रही जो कोउ मनमानी॥
यदि ईसा सतवादी होता। यौ याविधि किमि जीवन खोता॥
बात असम्भव करि देखराता। क्रूश उतरि सब शिष्य बनाता॥
होत कर्म यदि कछु तन माहीं। प्राणतजत किमि दुःख लखाहीं॥
याते सिद्ध भई यह बाता। केतिक चतुर होय कोउ ताता॥
चतुराई करि जगत भुलावे। अन्त समय सबही खुलिजावे॥
सत्य एक सत्यहि रहि जाई। झूठ सकल विधि जात बिलाई॥

---

[1] "एली एली लामा सवक्तनी" अर्थ—हे मेरे ईश्वर तूने क्यों मुझे त्यागा है। [2] इं० म० प० २७ आ० ११ से १४ और २२ से ३१ और ३३, ३४, ३७ से ५० तक। स० ७७।

औरहु जानि परी यक बाता। बन बासिन महँ पुरुष सुहाता॥
ना वह ईश्वर सुत केहु भाँती। ईसा कछु न रह्यो करामाती॥
दो०--प्राण गये केहि भाँति सों, दो डाकुन के संग।
फल भोग्यो संसार में, कीन्ह्यो जौन कुसंग॥११०॥
❀ एक कहत सुनिये प्रभुताई। कर्तब ईसा परम जनाई॥
एक बवंडर तेहि क्षण आवा। ईश्वर दूत तबहिं चलि आवा॥
कबरद्वार से शिला हटाई। बैठि गयो तेहि क्षण हर्षाई॥
अरु यह कह्यो कि वह है नाहीं। तबहि जी उठ्यो हृदय सराहीं॥
शिष्य सँदेह गयो तेहि काला। ज्योंही ऐसो सुन्यो हवाला॥
कहहु सबन सों भय तजि देहीं। अरु गालील[1] सकल चलि देहीं॥
तहँपर मोहिं सबकोउ अवलोकहि। रूप हमार सकल गुन देखहि॥
ऐसहि सबन कीन्ह हर्षाई। तहँ पर गये शिष्य समुदाई॥
दो०--तब ईशू यहि भाँति सों, सबन कहेउ समुझाय।
तजि संदेह न लावहूँ, मुक्त भयो मैं भाय॥१११॥
अब कछु मोहिं दुर्लभ नहीं, करि सकिहौं सब काज।
प्रलयकाल तक सँग रहौं, बनिसबकेशिरताज❀[2]११२॥
† स्वामि कहत नहिं मानन योगू। है सब भाँतिन बात अयोगू॥
ईश्वर के कोउ दूत न होई। ना कहुँ आवत जात लखोई॥
बात असम्भव कोऊ न मानहिं। ना काहू के बुधि बिच आनहिं॥
तीन दिवस लौं सड़ि नहिं गयेऊ। कबर माहिं जो ईसा रहेऊ॥
पुनि निज मुखसों करत बड़ाई। यामहँ कछु न होत पँडिताई॥
❀ मार्क कहत का बढ़ई नाहीं। लिखिइंजील जतायो ताहीं❀[3]॥

---

१. एक पर्वतीय स्थान है। २. इं० म० प० २८ आ० २, ६, ९, १०, १६, १७, १८, २०। † स० ८८। ३ इं० मार्क प० ६ आ० ३। † स० ८९।

†स्वामि कहत भे ईसहु बढ़ई। ईसापितु यूसुफ़ था बढ़ई॥
पितु व्यवसाय कियो वहुकाला। बनि पैग़म्बर भये निहाला॥
बहुरि सोइ ईश्वर बनि गयेऊ। जन्म कुमारि मातु से भयेऊ॥

दो०--ताही ते ताके हृदय, बनेउ विरोधी भाव।
काट कूट अरु फूट को, हैं फैलाये कुभाव॥११३॥

❀तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। लूकरचित इंजील सुहाई॥
ता महँ लिख्यो सुनहु चितलाई। ईसा के कछु बचन लखाई॥
कह ईसा किमि उत्तम कहहू। ईश्वर श्रेष्ठ ताहि को गहहू॥
तेहि समान कोउ उत्तम नाहीं। नहिं ईश्वरसमकोउदर्शाहीं❀[1]॥
❀हेरोद निकट ईशू जब गयेऊ। तब सो अति आनन्दित भयेऊ॥
कह कर्तव्य देखावहु कोई। हम पूछहिं वतलावहु सोई❀[2]॥
†स्वामि कहत तनि हिये विचारी। कस ईसा है लेहु निहारी॥
लूक कहत कछु औरहि बानी। मत्ती में कछु और बखानी॥
तब केहि भाँति बाइबिल बाता। मानहिं सत्य कहत तुम ताता॥

दो--❀योहन्ना ने जो कह्यो, सोउ सुनहु धरि ध्यान।
आदि वचन ईश्वरवचन, वचन संग सुखदान॥११४॥
ताही सों उत्पति भयो, जेतो जगत लखात।
जो जीवन तासें रह्यो, स्वइ-प्रकाश तनु जात❀[3]॥११५॥

सो०--❀मन फेर्‌यो शैतान, पुत्र यहूदा के हिये।
भयो ताहि अभिमान, पकड़ावन कोमतोकिय❀[4]॥११॥

स० ८९ १. लूकरचित इंजील प० १८ आ० १९। २. लूक प० २३ आ० ८, ९। † स० ९०, ९१। ३. योहनरचित सुसमाचार प० १ आ० १ से ४ तक। ४. यो० प० १३ आ० २।

छं०—❀एक दिन ईसा कहत सबसे पुकारि पुकारि कै।
करो ईश पर विश्वास सारे एक मोहिं अपनाइकै॥
मेरे पिता गृह ठौर बहुतक कहत हौं समुझाइकै।
स्थान तुम्हरे हेत हौं निश्चय करूँगा जाइकै॥ ७॥

पुनि सब काहुन को गहि हाथा। लै चलिहौं सारे निज साथा॥
मोर मार्ग अरु जीवन साँचा। करि विश्वास ग्रन्थ बिच बाँचा॥
पुनि ईसा कह बिना हमारे। पहुँचत नहिं मम पितु के द्वारे॥
मोहिं जानत जो कोउ जग माहीं। जानिसकतपितुसोइसदाहीं❀[1]॥
❀अरुपुनिकहत जो करविश्वासा। चहतजो मम कर्तब की आसा॥
सत्य कहौ मोते अधिकाई। कर्तब करते देत देखाई ❀[2]॥
❀अरु अद्वैत सत्य है ईश्वर। हमबिचारकीन्हौंशक्ती भर ❀[3]॥
†या विधि इनकी अकथ कहानी। लिखी जो हैं अपने मनमानी॥
वचन बिना वक्ता किमि होई। ईश्वर बचन कहै नहिं कोई॥

दो०--कहहु वचन से कौन विधि, सृष्टि होत उत्पन्न।
नहिं अनादि जीवन कतहुँ, जो कहि होत प्रसन्न॥११६॥

यदि अनादि जीवन को जानहु। फूँकि श्वासआदम कसमानहु॥
यदि शैतान फिरावत मन को। निज अनुकूल चलावत जनको॥
कहहु ईश तेहिं कस उपजावा। किमिस्वभाव यहिभाँति बनावा॥
और फँसावत केहि विधि ईसा। निज पितु ठहरावत जगदीसा॥
अस जग कौन मूर्ख अज्ञाना। जो मानहिं कर्तव्य महाना॥
मृतक जिलावन आदि कहानी। मानि लेहिं जो हों अज्ञानी॥
याते यह समुझहु मन माहीं। ईश्वरकृत यह बाइबिल नाहीं॥
अरु ईश्वरसुत ईसा नाहीं। जस निजमुखसों सबहिंबताहीं॥

---

१. योहन० प० १४ आ० १ से ७ तक। २. यो०हन प० १४ आ० १२।
३. योहन० प० १७ आ० ३। † स० ६२ से ६६।

दो०--और यहुन्ना ने लिख्यो, परमेश्वर अद्वैत ।
तब इसाइ केहि भाँति सों, मानतहै सबद्वैत ॥११७॥
मानत तीन पादरी सारे । पिता पुत्र अरु रूह सहारे ॥
जहँ विरुद्ध सब भाँति लखाई । कस ईश्वरकृत कहहु सुनाई ॥
ताते त्यागि सकल जंजाला । गहहु वेद मत परम विशाला ॥
❀कहत एक ऋषिवर सुनि लीजै । अद्भुत बात और चित दीजै ॥
योहुन के कछु वाक्य सुनाऊँ । प्रभुता ईश तुम्हहिं देखराऊँ ॥
सुवर्ण मुकुट लगाये शीशा । देखे वहुतक तहाँ मनीशा ॥
दीपक सात सिंहासन लागे । जलत रहे देखे तेहि आगे ॥
काँच समुद्र भरा तेहि आगे । चारि पुरुष चारौ ढिग लागे ॥
दो०--दीपक सात देखात जो, ईश आत्मा सात ।
चारहुपुरुषन के रहे, दोउ ढिगनेत्र लखात❀[1] ॥११८॥
❀अरु सिंहासन जौन विराजत । तेहि हाथन पुस्तक यक राजत ॥
सात मोहर लागी तेहि माँही । को समरथ जो खोलहिं ताही ॥
कोउ न मिल्यो तेहि खोलनवारो । भूमिस्वर्ग सबठौर निहारो ॥❀[2]
❀पुनि सिंहासन के ढिग जाई । रचना देखि परी तहँ भाई ॥
यक मेमना[3] वधकरि तहँ डारो । सात नेत्र युत ताहि निहारो ॥
सात सींग ताके सिर देखे । अस जग में कबहूँ नहिं पेखे ॥
इनको सात आत्मा जानहु । पठयहु परमेश्वर अनुमानहु❀[4]॥
❀अरु पुस्तक लीन्हीं जब हाथा । और नवायो सबको माथा ॥
दो०--तबहि पुराने मेमना, देखि परे चौबीस ।
चारिपुरुष औरहू लखे, सबन नवायो सीस ॥११९॥

---

[1] योह्नन० प्रकाशित वाक्य प० ४ आ० ४ से ६ ।
[2] योहन० प्र० प० ५ आ० १ से ४ तक ।
[3] बकरी का बच्चा ।
[4] योहन० प्र० प० ५ आ० ६ ।

धूप पियाला हाथ में, पूजन को सामान ।
थी वीणा सबके करन, और आर्तीदान ❀[1] ॥१२०॥
❀तेहि पुस्तक की छाप जब, खोलि दईहै आन ।
चारि अश्व अरु पुरुषजन, अद्भुतरुपलखान ॥१२१॥
तिनमहँ यक बोल्यो अस बानी । गरज्यो मेघ मनहु अभिमानी ॥
श्वेत अश्व कर धनुष महाना । सीस मुकुट शोभित सुखदाना ॥
जय जयकार पुकारन लागा । सुनेहु न तेहिंजो रह्यो अभागा ॥
लालबरन दूसर के तीरा । अश्व विलोक्यो महा गँभीरा ॥
तेहि अधिकार दियो यहि भाँती । मिलन न पावहिं कोऊ सजाती ॥
तीसर के ढिग अश्व निहारा । श्यामबरन लागत अतिप्यारा ॥
अश्व चतुर्थ पीतरंग सोहत । देखि ताहि सबको मनमोहत ॥
तापर मृत्यु लखी हम चोखी । उपमानहिं सो परमअनोखी❀[2] ॥
†स्वामि कहत जो मोहिं सुनायो । अद्भुत लीला कहि समुझायो ॥
दो० स्वर्ग बतायो नगरसम, ईश्वर अग्नि समान ।
सिंहासन भूषण मुकुट, मानुष चारि सुजान ॥१२२॥
पीठ पछारु नेत्र बताये । महा असम्भव कार्य लखाये ॥
छाप लगी पुस्तक ठहराई । बिन ईसा कोउ खोलि न पाई ॥
सब बिधि वह नित आपन करनी । कोटिनविधिनिज मुखसोंबरनी ॥
यह ईसा दो आँखिन वाला । सींग रहे नहिं केहू काला ॥
सात नेत्र भे स्वर्ग के माहीं । सात सींग सिर पर देखराहीं ॥
होत विचार कछू हिय माहीं । तो मानत कबहूँ अस नाहीं ॥
धूप दीप पूजा हित देखी । मूरति पूजक कह सब पेखी ॥
करि न सकत खंडन केहु भाँती । बुतपरस्त जग में जो जाती ॥

---

[1] योहन० प्र० प० ४ आ० ८ । [2] योहन० प्र० प० ६ आ० १ से ८ तक । स० ६७ से १०१ ।

दो०—स्वप्न माहिं भरमत कोऊ, जगे कहत सब बात ।
वैसी ही तुम्हरी कथा, कहत नाहिं सरमात ॥१२३॥
पौराणिकमत से कम नाहीं । भरी कल्पना झूँठ लखाहीं ॥
शान्ति जहाँ पर तनिकौ नाहीं । तहाँ न्याय बुधिबल नशि जाहीं ॥
❀ और सुनहु यक बात अनोखी । योहन ने लिख दीन्हीं चोखी ॥
वायुवेग आकाश के तारे । गिरे भूमि पर सबन निहारे ॥
जिमि गूलर फल सब गिरिजाहीं । वायुवेग जब होत कदाहीं ॥
जात लपेटो पत्रसमाना । बिन नक्षत्र अकाश देखना❀[1] ॥
† अब देखी इनकी प्रभुताई । विद्यारहित मूर्खता छाई ॥
तारे सकल लोक दर्शाहीं । स्थित सूर्य सहारे लखाहीं ॥
दो०—[2]मदुरी सम आकाश को, समुझत जो तुम लोग ।
कहहु कहा बुधवर कोऊ, देइ तुम्हारो योग ॥१२४॥
❀पुनियक बोलिउठ्यो तेहिकाला । परमेश्वर गुणवन्त विशाला ॥
इसराइल कुल छाप लगाई । यकलख चालिस सहस सोहाई ॥
छाप यहूदा कुलहिं लखाई । बारह सहस केर समुदाई❀[3] ॥
† स्वामि कहत काहे असकीन्हा । किमि इसराइल वंशहिं चीन्हा ॥
दूसर कोउ कहा नहिं योगू । पावत जो ईश्वर सुखभोगू ॥
यह करतूत जगत दर्शावत । ईशं अज्ञता सबन लखावत ॥
❀ अरु ईश्वर सिंहासन्न आगे । सेवा करत अहर निशि जागे*[4] ॥
❀ धूपदानि महँ अग्नी राखी । तुरही फूँकत है दै साखी ॥
छं०—यक दूत तुरही फूँकि अग्नी रक्तयुत बरसावही ।
अरु यक तिहाई जारि डारी देश की जेती मही❀[5] ॥

---

[1] यो० प्र० प० ६ आ० १३, १४ । † स० १०२, १०३ ।
[2] चटाई । [3] यो० प्र० प० ७ आ० ४, ५ । † स० १०४ । [4] यो० प्र० प० ७ आ० १५ । [5] यो० प्र० प० ८ आ० ३, ४, ५, ७ ।

❀ जब पाँचवें ने फूँक मारी कुंड यक उपज्यो वहाँ।
ताते महा उपज्यो धुआँ बहु टिड्डियाँ प्रकटीं तहाँ ॥८॥

दो०—बीछिनगति तिनकहँ दई, कहा जगत में जाइ।
कष्ट देहु बहु भाँति सों, ईश छापबिलगाइ❀[1] ॥१२५॥

†सुनी प्रलय की जो है रीती। महा असम्भव होत न प्रीती॥
टिड्डी कूप धुआँ की लीला। तुरही फूँकत दूतन हीला॥
छाप लगी ते नाहिं नशावें। जादिन प्रलयकाल दरशावें॥
विद्याहीन बात यह सारी। अबुध नरनअसरीति प्रचारी॥
आर्य्यावर्त उग्यो है भानू[2]। अब नहिं चलिहैं झूठ प्रमानू॥
और चलहि नहिं तुम्हारी नीती। करै न कोउ कबहूँ परतीती॥
अश्वसवार स्वर्ग के माहीं। कहहु कौन युक्ती ठहराहीं॥
दूत कथा कछु कम है नाहीं। भाटन से अधिकी दर्शाहीं॥

दो०—स्वर्ग माहिं मन्दिर कहत, सब विधि पूजन होय।
मूरतिपूजकविविध विधि, हैं लखात सब कोय ॥१२६॥

कहत एक ऋषिसों समुझाई। हैं बहुतक आश्चर्य जनाई॥
यक नारी रवि को उर धारे। पायँन तरे चन्द्रमा डारे॥
सिर पर तारेनमुकुट बिराजत। द्वादश की गिन्ती है भावत॥
गर्भवती ह्वै रोदन ठाना। ताके पीड़ा प्रसव महाना॥
अरु दूसर आश्चर्य देखानो। लालबरन अजगर पहिचानो॥
सात शीश दश सींग सुहाहीं। ऊपर सात मुकुट दर्शाहीं॥
अजगर पूँछ गगन लौं धाई। नखत गिराये एक तिहाई ❀[3] ॥
†स्वामिकहततनि लेहु बिचारी। बुधिमानी हियमाहिं निहारी॥

---

[1] यो० प्र० प० ९ आ० १ से ५। † स० १०५ से ११२ तक।
[2] ऋषि दयानन्द के उपदेशरूपी सूरज का प्रकाश हो गया।
[3] यो० प्र० प० १२ आ० १, ४ तक। † स० ११३।

दो०-नारी रोवत स्वर्ग बिच, सुनत नाहिं कोउ पीर।
गर्भवती तहँ पर भई, व्याकुल लखी अधीर ॥१२७॥
यह सब मिथ्या लिखी कहानी। जो चाही अपने मनमानी ॥
केहि विधि सूर्यगलेबिच आयो। चन्द्र पाँइ नीचे कस भायो ॥
रह्यो कहाँ अजगर अस भारी। जो एती है पूँछ पसारी ॥
भूमि से नखत महान लखाहीं। नाना लोक गगन दर्शाहीं ॥
सो किमि गिरहिं पूँछ के फेरे। अजगर रह्यो कौन घर घेरे ॥
❀अरु अजगर सँग भई लड़ाई। तेह हराइ के लई बड़ाई ॥
नाम दियावल अरु शैताना। वह प्राचीन सर्प बलवाना ॥
भरमावत शैतान सदाहीं। स्वर्गहु में भूल्यो सो नाहीं ❀[1] ॥
†पुनि ताकहँ घेरयो बर जोरी। किमिनहन्योकेहुविधिसिरफोरी ॥
दो०-यदि भ्रामक[2] शैतान है, तब तो ताको दोष।
ईश भुलावा देत नित, भयवश करत न रोष ॥१२८॥
समता ईश न करि सक तेई। कवन बड़ाई ईश्वर लेई ॥
दै न सकत तेहि ईश्वर दण्डा। रह्यो महा शैतान उदंडा ॥
कहहु कौन विधि ऐसे ईशहि। मानत कोउ नाहिं प्रभु ईशुहि ॥
ईश तुम्हार न मानन योगू। याविधि है सब भाँति अयोगू ॥
❀बहुरि कहत ईसा यहि भाँती। टेरि सुनावत अपनी जाती ॥
सुनहु सकल आवत शैताना। बसतभूमिअरुसागरनाना❀[3] ॥
युद्ध हेत ता कहँ अधिकारा। मासबयालिस विविध प्रकारा ॥
ईशविरुद्ध लड़ाई ठानी। निन्दाकरहिसदामनमानी ❀[4] ॥
दो०- स्वामि कहत शैतान जब, बहकावन के हेत।
परमेश्वर पठवत भयो, भारतभूमी खेत ॥१२९॥

---

[1] यो० प्र० प० १२ आ० ७, ९ । † स० ११४, ११५ । [2] भुलानेवाला ।
[3] यो० प्र० प० १२ आ० १२। [4] यो० प्र० प० १२ आ० ५, ६ ।
† स० ११६, ११७ ।

किमि न होइ डाकुन सरदारा । यह न काम ईश्वर को प्यारा ॥
ईश्वर को सब जीव पियारे । सबका पालन है उर धारे ॥
कर्मनुकूल न्याय नित करई । सो न कतहुँ बन्धन में परई ॥
❀कहत बहुरि यक ओर निहारी । सियोना पर्वत है तहँ भारी ॥
तापर देख्यो मनुज समूहा[1] । छाप लगी ताके है मूहा ॥
नाम तासु अरु पितु को नामू । लिखा छाप पर ईश्वर कामू❀[2] ॥
†कहऋषिकेहि विधिगिनतीकीन्हीं । जोमन मानी हैं लिखि दीन्हीं ॥
जेहि स्थल ईसा कर वासू । रहत रह्यो सब बिधि निष्पापू ॥
ताहि ठौर ईसा हू राजत । रक्षा हित बहु सैन्य विराजत ॥

दो०--❀ और कहत सब भाँति सों, पावत जो विश्राम ।
निज पौरुष कर्तव्य सब, करत रहत जो काम ॥१३०॥

सो०--रहत सो आतम सँग, फल भोगत ताके सदृश❀[3] ।
† पुनि किमि कहत असंग, ईसाई संसार सब ॥१२॥

और कहत छूटत हैं पापा । क्षमा करावत ईसा तापा ॥
कहहु सो द्विमहँ को सत होई । भोगत पाप कि छूटत सोई ॥
या ईश्वर की झूँठी बानी । अथवा झूँठ इसाइ कहानी ॥
और कहत बहु अकथ कहानी[4] । परमेश्वर बुधि बलनहिं जानी ॥
अबसब कोउ सोचहु मनमाहीं । अस ईश्वर हो केहु बिधि नाँहीं ॥
ईसा क्रोध बहै जलधारा । ह्वैकर रक्त बहै संसारा ॥
स्वर्ग माहिं बिन साक्षि अकेला । न्याय न करि सक ईश अकेला ॥
न्याय समान भाव सों होई । तामहँ छोट न बड़ है कोई ॥

---

[1] एक लाख बयालीस सहस्त्र । [2] यो० प्र० प० १४ आ० १ । † स० ११८ । [3] यो० प्र० प० १४ आ० १३ । † स० ११९ से १२४ तक । [4] ❀ उसे ईश्वर के कोप के बड़े रस के कुंड में डाला और रस के कुंड का रौंदन नगर के बाहर किया गया और रस

दो०--ईश्वर की लीला कहत, अज्ञानिन समुझाय।
वैसे ही शैतान सों, सबको देत डराय ॥१३१॥

कोउ शैतान जगत में नाहीं। कहि कहि नाना कथा भ्रमाहीं ॥
जिमि भरमावत हैं अज्ञानी। [1]कौतुक रचत महा अभिमानी ॥
पेटार्थिन बहु ढोंग रचाये। मनमाने नित पंथ चलाये ॥
ताते फँसहु न इनके जाला। बुधि सों काम लेहु सब काला ॥
❁तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। प्रभुता ईश्वर जानि न जाई ॥
जेहि सन्मुख ते भूमि अकाशा। गये भाग कछु रही न आशा ॥
सन्मुख ईश मृतक हम देखे। बड़ अरु छोट सबन को पेखे ॥
जीवन पोथी खोलि विचारत। जौन कर्म तस फल उच्चारा❁[2] ॥

के कुंड में से घोड़े की लगाम तक लोहू एकसौ कोस तक बह निकला। यो० प्र० प० १४ आ० १९, २०। ❁ देखो स्वर्ग में साक्षी के मंदिर का तम्बू खोला गया। यो० प्र० प० १५ आ० ५। ❁ ईश्वर ने उसके कुकर्मों को स्मरण किया है। जो तुम्हें उसने दिया है, वैसा उसको भर देखो कर्मों के अनुसार उसे दूना दे दो। यो० प्र० प० १८ आ० ५, ६। ❁ क्योंकि मेमने का विवाह आ पहुँचा है। उसकी स्त्री ने अपने को तैयार किया है। यो० प्र० प० १९ आ० ७ ❁ और उसने अजगर को अर्थात् प्राचीन साँप को जो दियावल और शैतान है पकड़ के उसे सहस्र वर्षों तक और बाँध रक्खा और उसको अथाह कुंड में डाला और बन्द करके उसे छाप दी जिससे जबलों सहस्र वर्ष पूरे न हों, तब तक और किसी को न भरमावे। १. एक दिन एक पुरुष ने कहा कि हम देवता के दर्शन कर आये, चलो तुमको भी दर्शन करा दें। भोले पुरुष बातों में आगये और चल दिये। उसने एक अँधेरी से अँधेरी जगह में ले जाकर खड़ा किया और वहाँ एक आदमी के दो हाथ और लगाकर खड़ा कर रक्खा था, ❁ यो० प्र० प० २० आ० ११, १२।

✽उनमें से यक मम ढिग आवा । और नेह सों बचन सुनावा ॥
मैं मेमना को तुरत बोलैहौं । अरु ताकी नारी दिखरैहौं✽[1] ॥
दो०--†कहत स्वामि यह बालकन, के सम तुम्हरी बात ।
पृथिवी और अकाश कहुँ, भागि सकतहैं तात॥१३२॥
यदि भागैं तौ कहहु कहँ, सिंहासन ठहरात ।
जीवन पोथी मृतकदल, कौन भाँति दर्शात ॥१३३॥
और बतावहु स्वर्गहु माहीं । होत कचहरी का तेहि ठाहीं ॥
अरु लै कलम लिखत परमेश्वर । अथवा साथ रहत कोउ दूसर ॥
स्वर्ग माहिं ईसा की नारी । बतलावत जो अति सुकुमारी ॥
ऐसे स्वर्ग जाइ किमि भाई । जहँ घरसम कर्तव्य लखाई ॥
जब तहँ हू पै पहुँचै नारी । द्वौ मिलि रीति विवाह प्रचारी ॥
होहिं पुत्र पुत्री बहुतेरे । अवशि होहिं तहँ रोग घनेरे ॥
होहिं जन्म मृत्यु तहँ दोनो । ऐसे स्वर्ग जाइ नहिं कौनो ॥
✽तब यक कहत सुनहु ऋषिराई । नावो नगर करी चतुराई ॥
है शत सात कोस लम्बाई । अरु उतनिहि ताकी चौड़ाई ॥
दो०--अरु उँचाइ सबके सदृश, भीत नाप पुनि कीन्ह ।
यकशत हाथ चवालिस, दूत नाप करि दीन्ह ॥१३४॥
सूर्यकान्त सों जोड़दिय, निर्मल स्वर्णसमान ।
नगरबिलोकतसकलजन, आनँद होत महान ॥१३५॥
प्रथम नींव 'सूर्यकान्त' दिखाई । दूसर 'नीलमणी' दर्शाई ॥

✽ कहा—दर्शन करो और भेंट चढ़ाओ । जब एकांत और अँधेरी जगह में लेगये तो फिर क्या कहना । भेंट तो लेनी ही है, चाहे राजी से चाहे कूट पीट के) । १. ओ० प्र० प० २१ आ० ६ ।

† स० १२५, १२६ ।

अरु तीसर 'लालड़ी' विलोकहु । चौथी 'मर्कतमणि' अवलोकहु ॥
'गोमेदक' पंचम लखि परई । शुभ 'माणिक्य' छठी उर धरई ॥
सप्तमि 'पीत मणी' पहिचानहु । अरु 'पेरोज' आठवीं जानहु ॥
नवयें पर 'पुखराज' लखाई । अरु दशवें 'लहसुनिये' भाई ॥
'धूम्रकान्त' ग्यारहवीं सोहत । शुभ 'मर्टीष' देखि मनमोहत ॥
बारह फाटक बारह मोती । बन्यो नगर शोभा अति होती ॥
मग सब स्वच्छ काँच सम सोहैं । नरनारिन देखत मनमोहैं❀[1] ॥

दो०--❀वस्तु अपावन कोउ तहँ, जाइ सकत है नाहिं ।
नहिं पहुँचत है झूठनर, और कुकर्मी नाहिं❀[2] ॥१३६॥

❀ और शाप अब कछु नहिं होई । ईश्वरकृपा जानिये सोई ॥
ईसा ईश्वर के सँग रहई । अरु मुख देखि परमपद लहई ॥
तहँ बिन दीपक होत प्रकाशा । ईश केर राखहु विश्वासा❀[3] ॥
❀ ईश्वर सबसों कहत पुकारी । सुनहु सकल जेते नरनारी ॥
सबको फल है मेरे साथा । आइ भूमि पर दीन्हों हाथा ॥
निज कर्मन अनुसार सदाई । फल भोगत अरुलहै बड़ाई❀[4] ॥
† स्वामि कहत तनि लेहु बिचारी । यह लखात सब भाँति अनारी ॥

दो०--कहहु ऊँचाई कौन विधि, नापि लीन्ह सब भाँति ।
जो बतलावत नाप[5] है, सम्भव नाहिं देखाति ॥१३७॥

मूर्खजनन को है समुझावा । मणिमय जटित सुनगर बतावा ॥
अरु पापी तहँ सकत न जाई । तब इसाइ तहँ केहि विधि जाई ॥
पुनि सब भक्तन के लै पापा । किमि ईसा पहुँचत करि दापा ॥

---

[1] यो० प्र० प० २१ आ० १६ से २१ तक ।
[2] यो० प्र० प० २१ आ० २७ । [3] यो० प्र० प० २२ आ० ३ से ५ तक । [4] यो० प्र० प० २२ आ० १२ । † स० १२७ से १३० ।
[5] साढ़े सात सौ कोस नगर की ऊँचाई नापी गई ।

ईसा ईश्वर एक समाना। बैठि स्वर्ग पावत बहु माना॥
केहि विधि व्यापक तुम्हरो ईशा। मानि सकत कोउ नाहिं मनीशा॥
कर्मनुकूल जो पावत भोगू। पाप क्षमा मानत किमि लोगू॥
याते हैं इंजीलकहानी। लिखि लीन्ही सारी मनमानी॥
काहू विधि नहिं मानन योगू। है बाइबिल सब भाँति अयोगू॥

दो०--ताते मानहु वेदपथ, ज्ञाननेत्र को खोलि।
त्यागि देहु भ्रमजाल को, पियहु वेदरस घोलि।।१३८॥
जो आये संसार में, निज कर्मन अनुसार।
ज्ञानयत्न की नाव चढ़ि, हों भवसागर पार ॥१३९॥
प्रेमसहित समुझायऊ, ईसाई मत भाव।
भ्रम नश्योअरुहृदयकछु, उज्ज्वल भयोस्वभाव ॥१४०॥
दयानन्द ऋषि की कथा, महा गुनन की खानि।
"इष्ट" रुचिर भाषा करी, बुधजनकहतबखानि।।१४१॥
भूल चूक जो कछु रही, लीहैं सुजन सुधारि।
सतसागर की शुभ कथा, लेहु हिये बिच धारि।।१४२॥

सत्य-सागर त्रयोदश तरङ्ग स० प्र० १३ स० समाप्तम्

अथ चतुर्दश तरङ्ग (स० प्र० १४ स०)

यवन-मत-विषय-समीक्षा-वर्णन

दो०–गुरुवर मैं आनँद भयों, सुनि ऋषि कथा महान।
हृदय सुधारक गुनभरी, अति रोचक सुखदान॥ १॥
ईसाईमत की कथा, कही जौन विधि तात।
ताहि भाँति समुझाइये, कहि यवनन की बात॥ २॥
प्रेम सहित सुनिये कथा, कही जौन ऋषिराज।
सोई हम तुम सन कहब, सुदिन मुहूरत आज॥ ३॥
प्रथम स्वामि अनुभूमिका, कहत भये समुझाय।
मुसलमानमत के विषे, एक क़ुरान लखाय॥ ४॥
यदपि बहुत से ग्रन्थ हैं, अरु सिद्धान्त अनेक।
यक विश्वास क़ुरान पर, करत सकल धरि टेक॥ ५॥

है कुरान अर्बी के माहीं। बहुतक उर्दू अर्थ लखाहीं॥
ताको करि हिन्दी समुझावा। आयो सकल सोइ है भाव॥
सत्यासत्य विचारन हेता। कह्यो विचारहिं यवनन नेता॥
ग्रहन करहि गुन दूषण त्यागहिं। सत्य होइ जो ताकहँ मानहिं॥
ऐसेहु पर जो कोउ न मानहिं। हठ करि झूँठहि पंथ प्रमानहिं॥
तौ हम कछु न करब बरजोरी। समुझाउब ताकहँ कर जोरी॥
यह जग रीति सदा चलि आई। बुधवर ताहि लेत अपनाई॥
गुनी सकल गुन को गहि लेहीं। औगुन देखि तुरत तजि देहीं॥
हठ न त्यागि निज पक्ष बनावहिं। तिनकहँहमनिशदिनसमुझावहिं॥

दो०–ईर्षा द्वेष विवाद अरु, हठ विरोध के हेत।
रचे अनेकन पन्थ जग, नर नारिन दुख देत ॥ ६ ॥
सो०--ताहि मेटने हेत, समालोचना करि कही।
सत्य ग्रहन करि लेत, जहँ कहुँ पावत सुजन जन ॥१॥
याते "इष्ट" ग्रहन सब कीजै। अरु अनिष्ट त्यागन चित दीजै॥
यक दिन कथा कहत ऋषिराई। यवनपन्थ करतव्य सुनाई॥
तब यक यवन आइ तहँ गयेऊ। बैठि सो ऋषि सों बोलत भयेऊ॥
है इसलाम सबन ते नीको। कहत भाव मैं अपने जी को॥
पुस्तक एक कुरान हमारी। ईश्वर कृत अरु हमकहँ प्यारी॥
हम सब मुसलमान हैं जेते। तेहि अनुकूल चलत हैं तेते॥
जो मम मत को मानत नाहीं। हिन्दू[1] तेहि हम कहत सदाहीं॥
प्रथम बन्दना है यहि भाँती। है सब भाँतिन सों सुखमाती॥
दो०–❀सहित नाम अल्लाह के, करत अरम्भन काज।
दयावान जो है सदा, न्याय करत महराज❀[2] ॥ ७ ॥
†कह तब स्वामि सुनहु चितलाई। पढ़ि आयत[3] जो मोहिं सुनाई॥
जो यह कहत यवन हर्षाई। यह क़ुरान ईश्वर से आई॥
तौ यह बात प्रकट नहिं होई। देखहिं प्रथम वचन जो कोई॥
जानि परत दूसर कोउ अहई। निर्माता[4] क़ुरान जस कहई॥

---

[1] हिन्दू दर महाविरा फारसियाँ बमाने दुज्द रहज़न ग़ुलाम मी आयद। अर्थ—फारसी भाषा के व्यवहार में हिन्दू शब्द चोर लुटेहरा दास कहा जाता है। ग़यासुल्लुग़ात। [2] सूरा फ़ातिहा † समीक्षा १। [3] मंत्र और श्लोक की तरह संख्या चलती है। [4] बनानेवाला।

सुनहु ईश की होती रचना। कहत न याविधिके वह वचना ॥
करत अरम्भ ईश लै नामा। जब कोउ दूसर लिखत सकामा ॥
जन उपदेश हेत आरम्भा। या विधि ईशवचन प्रारम्भा ॥

दो०--यदि मनुजन शिक्षा करत, कहहु सदा यह बात।
तौ यहहू भावत नहीं, अरु न ठीक दर्शांत ॥८॥

पाप अरम्भ करहिं यदि कोऊ। तबहु नाम लै करिहै सोऊ ॥
तौ यह दोष ईश में लागहिं। ईश नाम में दूषण आवहिं ॥
जो यह कहहु क्षमा वह करहीं। अरु दयालुता उर बिच धरहीं ॥
तौ तेहि जग बिच मानव हेता। अज्ञा पशू हनन की देता ॥
देकर अधिक दुःख अरु पीरा। भखत मांस जेहैं मतिधीरा ॥
कहहु कहा वे प्रानी नाहीं। अथवा ईश रच्यो नहिं ताहीं ॥
अरुजब लिखनलगत कोउ पुस्तक। लै प्रभु नाम नवावै मस्तक ॥
यदि शुभ कर्म ईश लै नामा। करहिअरम्भ परम सुखधामा ॥

दो०--मुसलमान सब काल में, बिसमिल्ला रहमान।
पशूवधन हू के समय, कहत सहित अभिमान ॥९॥

कहहु खुदा इनको केहि भाँती। करहि दया सब प्रानिन जाती ॥
या विधि रही न पशु पर दाया। तब दयालुताकेहि विधि गाया ॥
यदि तुम कहहु अर्थ यह नाई। तौ यह कहा कहहु समुझाई ॥
❀तब पुनिकहत सुनहु ऋषिराई। पालन करत जगत मम साँई ॥
परमेश्वर हित स्तुति सारी। पालक सब विधि है सुखकारी ॥
पालन करहिं सकल संसारा। करत क्षमादयालु है प्यारा❀[1] ॥
†कहत स्वामि सुनिये चितलाई। पालक ईश तुम्हार जो भाई ॥
जो क्षमता करती सब ऊपर। तौ किमि दंड देत है दूसर ॥

---

[1] सूरतुल फ़ातिहा आ० १,२। † स० २।

दो०--दूसर मत में जो मनुज, अरु पशु आदिक जीव ।
मरवावत तिनको सदा, यवनन हाथ अतीव[१] ॥१०॥

अरु जो क्षमा करत है भाई । तौ पापिन का पाप नशाई ॥
यदि यह सत्य मानि हम लेहीं । पाप क्षमा ईश्वर करि देहीं ॥
तौ पुनि किमिकाफ़िरन[२]के हेता । आज्ञा मारन के हित देता ॥
याते ईश्वरकृत नहिं होई । पुस्तक जौन क़ुरान लखोई ॥
*बहुरि कहत सुनिये ऋषिराई । देखरावहु मोहिं मालिकभाई ॥
भक्ति करत ताकी निशिवासर । चहत सहाय करत बहु आदर ॥
अरु यह विनय करत दिन राती । देखरावहु सदमार्ग सुहाती ॥
सो पथ मोहिं दिखावहु साँई । जिनपर कीन्ह दया अधिक़ाई ॥

दो०--जापर क्रोध विशेष किव, पथ तिनको न देखाउ ।
अरु भूले जे मार्ग हैं, सोऊ नाहिं बताउ*[३] ॥११॥

†स्वामि कहत यह मोहिं बतावहु । ईश्वर को कर्तव्य लखावहु ॥
क्या ईश्वर नित न्याय न करई । अरु एकहि दिन वह सब करई ॥
यह ईश्वर बिच दोष लगावहु । जो यक दिन न्यायी ठहरावहु ॥
ईश्वर भक्ति सहायक लेना । अरु सतमार्ग माहिं चित देना ॥
यह सब ठीक बात दर्शाई । सत्य गहहु नित दोष दुराई ॥
पर यह बात समुझि नहिं आवै । यवनमार्ग ही सीध देखावै ॥
जहँ कहुं सत्य मार्ग दिखराई । यदि न गहहु तौ पक्ष लखाई ॥
अरु जब पूर्व जन्म नहिं मानत । तौ किमि ईश्वर क्रोध देखावत ॥

दो०--दया काहु पर करत है, करत काहु पर रोष ।
पक्षपात की बात यह, लागत ईश्वर दोष ॥१२॥

---

[१] निश्चय । [२] जो क़ुरान और पैगम्बर को न मानें, वे काफ़िर हैं ।
[२] सूरतुल फ़ातिहा आ० ३ से ७ तक । † स० ३, ४ ।

अरु जो पूर्व जन्म के कर्मा। रहत नहीं कोऊ हैं धर्मा॥
तब प्रभु न्याय करत केहि भाँती। पुण्य पाप कस होवे जाती॥
अरु कुरान यक भाषा माहीं। देत विशेष हेत दर्शाहीं॥
यहहू पक्षपात की बाता। है लखात तब ईश्वर ताता॥
परमेश्वर ने ज्ञान प्रचारा। वेद सूर्यवत जग उजियारा॥
वेद संस्कृत भाषा माहीं। जानहिं सकल एक श्रम माहीं॥
नहिं ईश्वर कृत अहै कुराना। अरब देश हित जौन बखाना॥
ताते लखहु सत्य पथ वेदा। धारन करहु हृदय तजि खेदा॥

दो०--❀बहुरि कहत संदेह नहिं, यहि पुस्तक के माहिं।
निश्चय मार्ग देखावई, जग नर पावन[1] काहिं॥१३॥

करि विश्वास जो स्तुति करहीं। जाइएकान्त नमाज[2] जो पढ़हीं॥
अरु नित खर्च करहिं मम दीन्हों। मम ऊपर भरोस जिन कीन्हों॥
अरु इमान लावहि मम पोथी। और जो पहिले उतरी पोथी॥
और क़यामत[3] पर विश्वासा। तिनकी पूरित हों सब आसा॥
जो निज प्रभु की शिक्षा मानहिं। बन्धन छुटैं ईश को जानहिं॥
हैं जो काफिर जग के माहीं। ते तुम कहँ जो नाहिं डराहीं॥
है बेकार डेरावन तिनकौ। बे ईमान न लावहिं तनिकौ॥
तिनके हिये मोहर करि दीन्हीं। सुनहिं नकान युक्त सोइ कीन्हीं॥
दिय आँखिन पर परदा डारी। जोनसकहिं कर्तव्य निहारी❀[4]॥

---

[1] परहेज़गार। [2] यह मुसलमानों की उपासना है। [3] इसको प्रलयकाल मानते हैं और यह कहते हैं कि जब तक क़यामत क़ा दिवस न आवेगा तब तक यह जीव (रूहें) इसी तरह से पड़ी रहेंगी। उस दिन इनका खुदा इन्साफ कर दोज़ख़ (नरक) और बहिश्त (बैकुंठ) इनके कर्मों के अनुसार देगा। [4] मं० १ सि० १ सूरा व=आ० २, ३, ६। † स० ५।

दो०--†स्वामि कहत का दम्भ नहिं, खुदा तुम्हारे माहिं।
जो निज पुस्तक की करत, अधिक बड़ाइ सराहिं ॥१४॥
जो सतमार्गी पावन लोगू। तेइ कुरानि पावहिं सुख भोगू॥
अरु कुरान[1] पापिन हित नाहीं। कहहु तौ है केहि लेखे माहीं॥
खर्च हेत तुमहीं को देवे। औरन की का सुधि नहिं लेवे॥
जब करना विश्वास बतावा। बाइबिल अरु इंजील सुहावा॥
तौं पुनि किमि भटकत दिनराती। बनत अहर निशिकिमिउत्पाती॥
हमरी जानि समान लखाहीं। एकहि विषय दोहुन दर्शाहीं॥
कछु कछु कहुं विपरीत लखाई। कहहु ईशकेहि भाँति बनाई॥
रहि गई प्रथमं कवनसी बाता। तेहि हित दूसर पठई ताता॥
किमि न एक ही ग्रन्थ बनावा। वेद समान एक ही भावा॥
दो०--ईसाई यवनन विषे, कहहु न पापी कोय।
ईश कृपा तेई लहत, मुसलमान जो होय ॥१५
कहहु कहा जो तुम्हरो धर्मा। मानत नाहिं करत शुभ कर्मा॥
उनहीं को काफ़िर तुम कहहू। पक्षपात बहु हिय बिच लहहू॥
अरु परमेश्वर मोहर लगाई। पापिन अन्तःकरन बनाई॥
तब है पापिन को का दोषू। दोष खुदा को करत जो रोषू॥
पुनि किमि दंड लहै जग पापी। कर्तब माहिं स्वतंत्र न पापी॥
कस ईश्वर कस तुम्हरी पोथी। है सब भाँतिन सों सो थोथी॥
❋तब यक कहतसुनहु ऋषिराई। ईश्वर की गति परम लखाई॥
रोग रहे कछु हिय में जिनके। और बढ़ावत अल्लह तिनके❋[2] ॥
❋तुम्हहिं बिछावन हेत बनाई। परम बिछावन भूमि सोहाई॥
ताकी छत आकाश बनावा। नीलबरन जो मन को भावा*[3] ॥

---

[1] वास्तव में यह शब्द कुरआँ है, पर भाषा के बोलने में कुरान कहते हैं। [2] मं० १ सि० १ सूनुल व० २ आ० ६। [3] मं० १ सि० १ सूरा व० २ आ० २२।

दो०--❀एक दिवस ईश्वर कहत, वस्तु हमारी माँहि।
जो पैगम्बर के ऊपर, उतरी तुम्हहिं लखाहि ॥१६॥

सो०--करत जो तुम संदेह, तौ लै आवहु कोउ अस।
होय न काहू गेह, जस सूरत हमने कही ॥२॥

अरुतिन साक्षिन लेहु पुकारी। तुमहिं सत्यजो कहहिं निहारी ॥
जो न करहु संदेह कदाई। डरत[1] अग्नि सों रहहु सदाई ॥
ईंधन तासु मनुष समुदाई। सुलगत रहतसदा सबठाईं❀[2] ॥
†स्वामि कहत कस ईश्वर माया। जो हिय आई तनिक न दाया ॥
रोगिन को दिय रोग बढ़ाई। अस ईश्वरता है दिखराई ॥
यह शैतानहु ते अधिकाई। रोगि करै हिय मुहर लगाई ॥
अरु आकाश न केहु विधि होई। छत समान बतरावत जोई ॥
यह सब बात अविद्या केरी। मानत योग न बुधजन हेरी ॥

दो०--अरुचतुराई यह कहत, बनि न सकत यहिभाँति।
तौ फ़ैजी[3] की लिखी जो, अवलोकिय कछु पाँति ॥१७॥

कहहु कौन दोजख की आगी। डरै तासु सों जो बड़भागी ॥
यहि अग्नी सों कोउ नहिं डरई। ईंधन कौन आइ जो परई ॥
लिख्यो कुरान माहिं जो भाई। हेत काफिरन शिला[4] बनाई ॥
तैसेहि बीच पुरानन माहीं। म्लेछन हेत नरक दिखराहीं ॥
कहहु कौन हम मानहिं बाता। इन महँ सत्य कौन है ताता ॥
निज निजकथन स्वर्ग सब जाहीं। अरु दूसर नरकी बतराहीं ॥

---

[1] डरते रहो; क्योंकि काफिरों के लिये पत्थर तैयार किये गये हैं।

[2] मं० १ सि० १ सू० व० २ आ० २३, २४। †स० ६ से ८।

[3] बादशाह अकबर के समय में मौलवी फैजी ने बिना नुक्ता का कुरान बनाया था। [4] पत्थर।

याते यह सब झूँठ कहानी। लिखी सबन ने है मनमानी॥
धर्मवान नर नारी जोई। पावत सदा सुःख हैं सोई॥
पाप करत ते सब दुख पावें। निज इच्छा मत कोउ अपनावें॥

दो०--❀एक कहत आनन्दहित, सुनहु ईश संदेश।
जो लावत ईमान हैं, पावत नाहिं कलेश॥१८॥

अरु शुभकर्म करत हैं जोई। पावत ते बहिश्त सब कोई॥
तहँ पर नहरैं बहति अनोखी। मिलत तहाँ मेवा है चोखी॥
तहँ सदैव नारी[1] अति पावनि। रहत रही जो परम सुहावनि❀[2]॥
†कहत अस्वा मबहिश्त[3] तुम्हारी। लखी अनोखी सबसे न्यारी॥
कौन बात उत्तम बतराई। जो जग में नहिं परत लखाई॥
जो कछु स्वर्ग तुम्हारे माहीं। सो सब हैं याँ पर दर्शाहीं॥
यह विशेषता स्वर्ग लखाई। नारि तहाँ पर रहत सदाई॥
जिमि यहँ पर सब आवहिं जाहीं। जन्मत मरत रहत यहि ठाहीं॥

दो --स्वर्ग माहिं यह ही नहीं, जन्म मरन की बात।
और सकल बातें तहाँ, देखराई तुम तात॥१९॥

तनि विचार देखहु मन माहीं। कवन भाँति यह स्वर्ग बताहीं॥
राति क़यामत लौं तहँ रहहीं। बिना पुरुष सो दुख को सहहीं॥
केहिविधि दिवस कटहिं तिनकेरे। खुदा कृपा या काको हेरैं॥
खुदा आस ते तहँ पर रहहीं। गोकुलिये[4] सम बहिस्त अहहीं॥
कहि गोलोक रमण ते करहीं। ये बहिश्त सब कोउ उच्चरहीं॥
तहँ नारिन आदर अधिकाई। खुदा प्रेम बहु परत लखाई॥
जेतो है नारिन सँग नेहा। ततो नहिं है नरन सनेहा॥

---

[1] बीवियाँ। [2] मं० १ सि० १ सू० व० २ आ० २४। † स० ६। [3] इनकी परिभाषा में स्वर्ग को कहते हैं। [4] गोकुलिये गोसाइयों के समान जिनकी कथा ११ तरंग में देखी होगी।

दो०--बिना खुदा की कृपा सों, तहाँ रहीं केहि भाँति ।
प्रेम बढ़े पर नारि जन, सबहीं सों फँसिजात ॥२०॥
नारिन सदा बास तहँ दीन्हों । अरु मनुजन कोवंचित कीन्हों ॥
❀एक कहत ऋषिवर सुन लीजै । पीछे समालोचना कीजै ॥
यक दिन परमेश्वर समुझाये । आदम को सब नाम सिखाये ॥
और फ़रिश्तन लीन्ह बोलाई । सन्मुख उनके कहा सुनाई ॥
हे आदम तुम नाम बतावहु । सकल फ़रिश्तन केर गिनावहु ॥
जब तेहि दीन्हें तुरत बताई । तब ईश्वर यह कहत सुनाई ॥
हम जानत पृथ्वी आकासा । छिपी वस्तु जो हो केहु पासा ॥
जानहुँ कर्म सकल जन केरे । जो छिपाइ राखे हैं नेरे ❀[1]॥
दो०--❀कह्यो फ़रिश्तन सों बहुरि, करहु दण्डवत आय ।
है आदम सबसे बड़ो, हमको एक देखाय ॥२१॥
कहत नवायो सबने माथा । सकल फ़रिश्तन ने यक साथा ॥
पर शैतान न कीन्ह प्रणामा । रह्योजोकाफिरयकतेहिठामा❀[2] ॥
❀आदम सों यह कह्यो पुकारी । नारि सहित यहँ रहहु सुखारी ॥
है बहिश्त यह आनँदखानी । घूमहु जहाँ चहहु मनमानी ॥
पर तेहि वृक्ष निकट जनि जाहू । ह्वै पापी दारुण दुख सहहू ॥
तब शैतान दीन्ह मति फेरी । लगी नाहिं तेहि तनिकौ देरी ॥
सुख बहिश्त नहिं भोगन पावा । नहिं मम अज्ञा जो अपनावा ॥
तब आज्ञा यह दीन सुनाई । है कोउ शत्रु तुम्हार लखाई ॥
दो०-ताते अब तुम भूमि पर, करहु ठिकाना जाइ ।
चलि दीन्हों आदम तबै, बसेउ भूमि पर आइ❀[3] ॥२२॥

---

१. मं० १ सि० १ सू० व० २ आ० ३०, ३१ । २. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ३२ । ३. मं० १ सि० १ सू० व० २ आ० ३३ से ३७ † स० १० से १२ ।

स्वामि कहत कस ईश तुम्हारा। हेत बड़ाई करत सहारा॥
धोखा दै निज चहत बड़ाई। कहहु ईश कर्तब यह भाई॥
जो तुम ईश्वर करत बड़ाई। सर्वज्ञता रहत नहिं भाई॥
तीनहुँ कालन की जो बाता। जानत है सर्वज्ञ विधाता॥
सो शैतान न ताके वचना। माने नाहिं कियो हठ अपना॥
कछु न चल्यो बस ताके ऊपर। माथ नवायो नहिं केहु दूसर॥
अब अज्ञता ईश की देखहु। दीन अशीष प्रकटही पेखहु॥
बहुरि शाप दै भूमि पठावा। नहिं जान्यो आगे को भावा॥

दो०—देखि परत असमर्थ है, दंड देन में ईश।
दै न सकत शैतान कहँ, दंड तुम्हारो ईश॥२३॥

अरु केहि अर्थ वृक्ष उपजावा। किमि आदमहिं जाइ डरवावा॥
अरु बहिश्त केहि ठौर सोहाई। भूमि आदमहिं दीन्ह पठाई॥
रहत रही हुइहैं तहँ माटी। जो आदमहिं बनायो डाटी॥
जब माटी से बन्यो शरीरा। होय मृत्यु की ताकहँ पीरा॥
जाको जन्म होय जग माहीं। अवशि मृत्यु ताकी सब ठाहीं॥
ताते हैं बहु झूँठ कहानी। रहैं बहिश्त बीबियाँ मानी॥
झूँठ पखण्ड बढ़ाइ बतावा। उलट पलट सबको समुझावा॥
ईश्वर पुस्तक नाहिं कुराना। लिखी कथा ताके बिच नाना॥

दो०--❀एक कहत ऋषिवर सुनहु, मम ईश्वर की बात।
समझायो सब भाँति सों, प्रेम सहित दिनरात॥२४॥
डरहु सदा वा दिवस सों, जब न भरोसा काय।
चलहिं सिफारिश तहाँ नहिं, पावत नाहिंसहाय॥२५॥

अरु नहिं बदला तहँ पर होई। दिवस बिचारिलेहु है सोई❀[1]॥

---

[1]. मं० १ सि० १ सू० व० २ आ० ४८।

❀अद्भुत कर्तब अरु यक पोथी। मूसहि दई जो मेरे ढिग थी॥
दुष्ट कपीश[1] होहु तुम जाई। डरवायो सब भाँति सोहाई॥
डरत रहत औरहु जेहि कारन। धर्मिन देवें सदा सिखावन❀[2]॥
†कह तब स्वामि भली यह बाता। वर्तमान कछु डर नहिं ताता॥
यह कछु ठीक बात नहिं होई। निन्दित कर्म डरहु सब कोई॥
पुनि वह असत तुम्हारि कहानी। पैगम्बर जो साक्षी मानी॥
तेहि आदेश स्वर्ग मिलि जाई। बात सत्य यह नाहिं लखाई॥

दो०–स्वर्गीजन[3] को है कहा, केवल ईश सहाय।
और नरकवासीन[4] की, सुनत न तनिकौ हाय॥२६॥

अरु जब मूसहि पुस्तक दीन्हीं। तौ क़ुरान का सब बिधि हीन्हीं॥
और निरर्थक होत क़ुराना। जा बल यवन बनाए नाना॥
तब आश्चर्य शक्ति[5] नित देता। गयो कहाँ सो अब नहिं देता॥
अबहुँ स्वार्थी निज हित लागी। लिय बनाइ अवुधन अनुरागी॥
बनत महा विद्वान समाना। कहत असम्भव बातैं नाना॥
तैसेहि तेहु अवसर के माहीं। रहत रहे स्वार्थी सब ठाहीं॥
मूसा को जो पुस्तक दीन्हीं। तामहँ भूल कौनसी कीन्हीं॥
जो कुरान को बहुरि बनाई। दीन्ह नवीन रसूल पठाई॥
जो भय जानि कही अस बानी। निन्दित बानर होवहिं प्रानी॥

दो०––तौ वह ईश्वर काहु विधि, हुइ न सकत केहुकाल।
ईशरचित क़ुरान को, कहै न देखि हेवाल॥२७॥

जामहँ लिखी असंगत बाता। सो ईश्वर कृत केहि विधि ताता॥
❀बहुरि कहत सुनिये ऋषिराई। ईश्वर में वहु है प्रभुताई॥

---

[1] हो जाओ ज़लील बन्दर। [2] मं० १ सि० १ सू० व० २ आ० ५३, ६५। † स० १३, १४। [3] बहिश्ती लोग। [4] दोज़ख में रहनेवाले। [5] मोज़िज़े।

या विधि मृतक जिलावत ईसा । निज चिन्हौरि दिखरावत ईसा ॥
यह सब करत तुम्हारे हेता । जासों समुझहु ईश सचेता ❀[1] ॥
†स्वामि कहत जो प्रथम जिलावत । तौ अबहूँ काहे न जिलावत ॥
प्रलयकाल लौं क़ब्रन माहीं । पड़े रहत दुख सहत सदाहीं ॥
कहहु तुम्हार ईश कहँ गयेऊ । का दौरा सिपुर्द सो भयेऊ ॥
ईश देखावत कवन निशानी । कही जौन अपने मनमानी ॥

दो०--सूर्य चन्द्र पृथिवीसकल, कहहु कहायह नाहिं ।
ईशचिन्हौरी यह सबै, हमरी जानि लखाहिं ॥२८॥

❀कहत बहिश्त सदा ते रहहीं । जो आज्ञा ईश्वर की लहहीं ❀[2] ॥
†स्वामि कहत यह सम्भव नाहीं । सदा रहत बैकुंठ लखाहीं ॥
ना कोउ पाप सदा उर धरहीं । पुण्य न कोऊ निशिदिन करहीं ॥
सृष्टि समय जो तुम बतरावत । आठ सहस्र वर्ष दर्शावत ॥
याके पूर्व तुम्हारो ईश्वर । कहहु कहा असमर्थ अनीश्वर ॥
और क़यामत दिन के पीछे । काज नहीं कछु बैठत छूँछे ॥
याते यह सब बालकताई । परमेश्वर हित जौन बताई ॥
नर जस कर्म करहिं जगमाहीं । कर्म अनुकूल देत फल ताहीं ॥
काम ईश्वरहि रहत सदाहीं । लिखी क़ुरान बात सो नाहीं ॥

दो०--❀बहुरि कहत ऋषिवर सुनहु, एक दिवस कीबात ।
ईश्वर अपने भक्त सों, कहत अनोखी बात ॥२९॥

छं०–जब हमने करवाई प्रतिज्ञा नहिं बहाना रक्त को ।
नहिं लड़हु कोई नित परस्पर क्रोध में आसक्त हो ॥
अरु नहिं निकारहु काहु को घर आपने में जो बसे ।
अब 'इष्ट' अपने को निहारहु बिपद में कोउ ना फँसे ॥ १ ॥

---

१. मं० १ सि० १ सू० व० २ आ० ७३ । † स० १५ ।
२. मं० १ सि० १ स० २ आ० ८१ व० ८२ । † सू० १६ ।

यह मानकर निज मुख कह्यो साक्षी तुम्हीं को जानते।
पर निकारहु घरन ते जो मत तुम्हारा मानते॥
सब तोड़ि दीन्हीं हैं प्रतिज्ञा आपने जन मारिके।
तिनके न कबहूँ पाप हलुके किये जावें जानिके❀[1] ॥ २॥
❀जे देत अपनी जिन्दगी अरु मोक्ष लेवहि पाप को।
तिनको सहायक होहुँ नाहिं नहिं क्षमहु तिनके पापको ❀[2] ॥
❀अरु दई पुस्तक बहुरि मूसहि और लाये रसूल को।
दै दैविशक्ति समर्थयुत ह्वै प्रकट ईसा लाल को❀[3] ॥ ३॥
†स्वामि कहत यह मोहिं बतावहु। कवन भाँति ईश्वर ठहरावहु॥
यह अल्पज्ञन काम लखाई। करत प्रतिज्ञा जो नर धाई॥
औरन सों करवावत रहई। सो सर्वज्ञ कतहुँ नहिं अहई॥
कहत सदा निज पक्षकी बाता। लड़हु न कोइ परस्पर ताता॥
ईर्षा द्वेष ईश में नाहीं। कहत रहत जो अधिक सराहीं॥
पाप क्षमहु ते कवन बतावहु। अरु पापिन के नाम गिनावहु॥
पाप छोड़ावन की जो रीती। है अन्याय और अनरीती॥
जो दयालु ईश्वर को कहहू। करत कवन पर सोऊ कहहू॥
दो०--केवल यवनन पर करत, अथवा सारी जाति।
जो यवनन पर करत है, दयाहीन दर्शाति॥३०॥
अरु जो न्याय करत दिनराती। कर्म अनुकूल लहत सब जाती॥
तौ कुरान को कहा प्रयोजन। और मुहमद् आदिक जे जन॥
अरु जब मूसहि पुस्तक दीन्हीं। पुनि कुरान काहे रचिलीन्हीं॥
और मोजिज़े जो दिखरावहिं। झूँठ असम्भव सकल लखावहिं॥
सृष्टि कर्म ते कर्म निषिद्धा। कतहुँ न होहिं करै का श्रद्धा॥

---

[1] सं० १ सि० १ सू० २ आ० ८३ व० ८४। [2] मं० १ सि० १ सू० २ आ० ८६। [3] मं० १ सि० १ सू० व० २ आ० ८६।
† स० १७ से १९।

❀तब यक कहत सुनहु ऋषिराई। काफ़िर की गति जौन लखाई॥
विजय काफ़िरन पर नित चहहीं। अरु धिक्कारत ईश्वर रहहीं❀[1]॥
❀जे ईमानदार जग माहीं। देत ईश आनन्द सराहीं॥
शत्रु फ़रिश्तन[2] को जो होई। ईश्वर बनत तासु को द्रोही❀[3]॥

दो०--†स्वामिकहतकाफ़िरकहहु, निज मत के अनुसार।
और करहु नितद्वेष बहु, शत्रू तिनहिं निहार॥३१॥
ताही विधि तेऊ तुम्हहिं, कहत रहत दिनरात।
ताते है संगत नहीं, यह दोहुन की बात॥३२॥

अरु विचारि देखहु मनमाहीं। झूँठ पाप सब भाँति लखाहीं॥
झूँठ तुम्हार सकल विधि पन्था। और असत है तुम्हरो ग्रन्था॥
नरन केर शत्रू जो होई। होत ईश को शत्रु सोई॥
पर यह बात ईश में नाहीं। होइ त ईश्वरता नशि जाई॥
अरु जो कहहु पाप छुटि जैहै। माँगे क्षमा सुःख सो पैहै॥
कहहु कहा यह कर्तब नीको। आइ न सकत भाव जो जीको॥
❀बहुरि कहत जो करत भलाई। सहित तुम्हारे जो समुदाई॥
तिनकर पाप क्षमा सब हुइहै। जो माँगन हित मम ढिग ऐहै❀[4]॥

सो०--❀निज कुटुम्ब के हेत, माँग्यो मूसा वारि जब।
ईश्वर आज्ञा देत, पाहन दण्ड प्रहारिये॥ ३॥
दो०--बहन लगैंगे वेगसों, तेहि क्षण द्वादश स्रोत।
मूसा को पानी मिल्यो, प्रभुता ईश उदोत❀[5]॥३३॥

---

१. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ८९। २. जबराईल और मीकाईल। ३. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ९७ व० ९८। † स० २०, २१। ४. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ५८। ५. मं० १ सि० १ सू० २ आ० ६०।

और ईश की बहु करतूती[1] । समुझावत हिय करि मजबूती ॥
†स्वामि कहत सब बात तुम्हारी । महा असम्भव[2] जात निहारी ॥
दया करत सब काहुन ऊपर । मानत एक प्रधान गुणाकर ॥
जब अस ईश्वर गड़बड़ करई । तब शुभ कर्म कौन हिय धरई ॥
अरु को त्यागहि अनुचित कर्मा । बढ़हि अधर्म होय नहिं धर्मा ॥
जब यह बात एक रहि जाई । जासों ईश प्रसन्न सदाई ॥
ताके कर्म जौन कछु होई । पावत सुःख अवशि है सोई ॥
का सर्वत्र ईश है नाहीं । जो समुझावत रहत सदाहीं ॥
जब यह कहत करहु मुखजा दिशि । परमेश्वर अवलोकहुता दिशि ॥

दो०--तब किमि क़िबला[3] कोकहत, पश्चिम दिशि की ओर ;
अरु पश्चिम मुख करि पढ़त, जो नेमाज जन जोर ॥ ३४॥

यदिवह कहहिं हुक्म मोहिं दीन्हों । तौ केहि विधि कर्ता को चीन्हों ॥
हुइ न सकत दुइ एक सँग साधन । दुइ वस्तु न रहहिं यक भाजन ॥
*पुनि यक बोलि उठ्यो तेहिकाला । तुम जानत नहिं ईसहेवाला ॥
भूमि गगन सब कछु उपजावत । जबहि ईश के मन में आवत ॥

---

[1] * अल्लाह ख़ास करता है जिसको चाहता है साथ दया अपना के। मं० १ सि० १ सू० २ आ० ६७। * ऐसा न हो कि काफिर लोग ईर्ष्या करके तुमको ईमान से फेर देवें, क्योंकि उनमें से ईमानवालों के बहुत से दोस्त हैं। मं० १ सि० १ सू० २ आ० १०१। ❀ और तुम जिधर मुँह करो, उधर ही मुँह अल्लाह का है। मं० १ सि० १ सू० २। आ० १०७। † स० २३ से २६।

[2] एक पत्थर की शिला में दंडा मारने से १२ झरना निकलना।

[3] खुदा का घर। ३. क़िबले की ओर मुख करके नमाज़ पढ़ो और यह भी लिखा है चाहे जिधर मुख करो; क्योंकि खुदा का मुख सब ओर है। जब खुदा का मुख है तो एक ही ओर हो सकता है। दो बातें एक साथ नहीं हो सकतीं, इसलिये असंगत है।

केवल यक 'कुन' शब्द उचारत। कर्तब सो न कछू हिय धारत॥
अद्भुत सृष्टि तुरत बनि जाई। ईश्वर की यह ईश्वरताई*१॥
‡कह तब स्वामि सुनहु मम बाता। पुनि विचार कीजै कछु ताता॥
आज्ञा ईश्वर दीन्ह सुनाई। सृष्टि बनन हित कहकुन भाई॥
काहि सुनायो केहि सुनि लीन्हों। करन हेत काने चित दीन्हों॥
करु बनि गयो कहा बतरावहु। कारन कवन ताहि दर्शावहु॥
सृष्टि पूर्व जब कछु न बतावहु। केवल ईश्वर को ठहरावहु॥

दो०--जब कोइ दूसर वस्तु नहिं, बनी सृष्टि केहि भाँति।
बिन कारन कोऊ नहीं, बनत न कार्य लखाति॥३५॥

बिना कार्य यह जगत महाना। बन्यो कवन विधि सुन्दर बाना॥
यह तुम्हारि है बालकताई। नाहिन कोऊ उक्ति लखाई॥
तब पुनि कहत सुनहु ऋषिराई। प्रभु इच्छा सों सब बनि जाई॥
कहत स्वामि निज इच्छा देखहु। कछुक बनाइ सकत हौ पेखहु॥
सकत बनाइ न माँछी टाँगा। निज इच्छा में करि अनुरागा॥
जो तुम कहत ईश इच्छा सों। सृष्टि बनत ईश्वर कर्तब सों॥
बहुरि कहत ईश्वर सब करई। सर्वशक्तिमन शक्ती धरई॥
स्वामि कहत तनि अर्थ बतावहु। सर्वशक्तिमन को समुझावहु॥

दो०--जो चाहे सो करि सकत, कहत भयो समुझाय।
पूछेहु दूसर ईश का, निज समदेत बनाय॥३६॥

कहत भयो अस कबहुँ न होई। बोले स्वामि लखहु प्रभु सोई॥
गुन अरु कर्म स्वभाव विरुद्धा। करि न सकत ईश्वर है शुद्धा॥
जब कोइ वस्तु बनै जग माहीं। प्रथम पदारथ तीन लखाहीं॥
एक बनावन वारो होई। जिमि जग कुम्भकार है सोई॥
दूजे घटनिर्मान के हेता। मृतिका कुम्भकार है लेता॥

---

१. मं० १ सि० १ सू० २ आ० १०१। † स० २७।

तीजे साधन जानहु सोई। जासों घड़ा बनत है वोई॥
जिमि घट पूरब तीन पदारथ। रहे तहाँ पर हैं वे स्वारथ॥
तिमि जगपूर्व प्रकृति यक कारन। रहत सदा निज गुनको धारन॥
ताते सत्य बात यह नाहीं। जो कुरान बिच परत लखाहीं॥

दो०--❀एक कहत पावन परम, सुखदायी सनमान।
नरन हेत निर्मित कियो, काबा यक स्थान॥३७॥

तुम नेमाज़ के हेत सुहाई। गहहु इष्ट स्थान सदाई॥
इबराहीम केर आधीना। ईश नेमाज़ हेत तेहि चीन्हा❀[1]॥
† स्वामि कहत का प्रथम न होई। शुचि स्थान तहाँ पर कोई॥
प्रथम रह्यो कोउ पावन थाना। तौ पुनि काह वनायो आना॥
जानि परत परमेश्वर भूल्यो। तुम्हरेहि समजग भूलन भूल्यो॥
❀ कहत बहुरि सुनिये ऋषिराई। ईश्वर को जो है सुखदाई॥
लखहु मूर्खजन हैं जग माहीं। मानत जौन दीन[2] को नाहीं॥
जो मानत ते मोहिं पियारे। अन्तसमय होवहिं सुखभारे❀[3]॥

दो०--❀निश्चय करि हमदेखहीं, फिरतगगनकेबीच।
मुख तुम्हार हम फेरहीं, क़िबलाकेदिशिखीच॥३८॥
निजमुखफेरहु सकलजन, तुममस्जिद[4] की ओर।
जहाँ होहु तहहीं पढ़हु, जोनेमाज़जनजोर❀[5]॥३९॥

† स्वामि कहत कस सम्भव बाता। मानत जो न दान को ताता॥
ते सब मूर्ख होहिं केहि भाँती। कहा अधर्मी हैं सब जाती॥
जो न विचारेहु धर्म अधर्मा। तौ अन्याय सहित सबकर्मा॥

---

[1] मं० १ सि० १ सू० २ आ० १२५। † स० २८।
[2] मुसलमानी धर्म। [3] मं० १ सि० १ सू० २ आ० १३०।
[4] मस्जिदुलहराम। [5] मं० १ सि० १ सू० २ आ० १४५।
† स० २९, ३०।

यह ईश्वर की कस प्रभुताई। जो न बिचारत न्याय कदाई॥
तुम मूरति पूजक सब भाँती। कहिबुत[1] शिकनभुलावत जाती॥
एक कहत हम क़िबला काहीं। मानत ईश्वर हैं केहुँ नाहीं॥
अरु तेहि ओर जो मुख हम करहीं। सो कुरान आज्ञा उर धरहीं॥
बिना वेद आज्ञा वे करहीं। मूरतिपूजा में चित धरहीं॥

दो०--स्वामि कहत कुछ भेदनहिं, दोनहुँ एक समान।
तुम कुरान वे ब्यास की, आज्ञा कहत बखान॥४०॥

यदि तुम वैदिक धर्म बिचारहु। कर्म तासुके निज उर धारहु॥
तब मूरति पूजा छुटि जाई। नतरु मूर्तिपूजक अधिकाई॥
✽पुनिकह जो ईश्वर पथ लागी। मारे जात प्रेमअनुरागी॥
तिन कहँ मृतक कबहुँ नहिं जानहु। जीवितहैसबभाँतिबखानहु✽[2]॥
✽अरु ईश्वर दुख देत महाना। जानहु यह अतिही बलवाना॥
चलहु न तुम शैतान पिछारी। वह तुम्हार शत्रु बलकारी॥
अवशि कुपन्थ माहिं लै जावै। निर्लज्जतासकलसिखलावै✽[3]॥
†स्वामि कहत है कहा प्रयोजन। मरैं ईशमारग में जो जन॥
स्वारथहित यह बात बिचारी। करहिं लूट बनि अत्याचारी॥

दो०--यह सिखलायो सबन कहँ, कोऊ नहिं कदराइ।
जाते सब मिलि के लड़हिं, कोउ नाहिं बदराइ॥४१॥

यदि दुख देत खुदा सब काहू। परखत पाप पुन्य जन ताहू॥
तौ पुनि कहा रसूल प्रयोजन। अरुकुरान कोआनहिं किमिजन॥
अरु शैतान शत्रु बतलावत। परमेश्वर से सबन डरावत॥
कहहु बनायो किमि शैताना। रचत प्रपंच रहत जो नाना॥
यदि यह कहहु परीक्षा हेता। हो अल्पज्ञ ईश तब नेता॥

---

[1] मूर्तियों को तोड़ना। [2] मं० १ सि० २ सू० २ आ० १५४। [3] मं० १ सि० १ सू० २ आ० १६७ से १६९। † स० ३१, ३२।

यदि शैतानहिं खुदा भुलावत । कहहु खुदा तव कौन कहावत ॥
सदा अविद्या और कुसंगा । उत्तम कर्म होत हैं भंगा ॥
ताते है तुम्हारि जो बाता । महा असंग: दुखमय ताता ॥

दो०--❀बहुरिकहत ईश्वरवचन, सुनहुसकल समुदाय ।
लोहू मांस हराम[1] जो, विधी लखहु चितलाय ॥४२॥

जो मुरदार रक्त जग माहीं । और सुअर को मांसवताहीं ॥
अरु ईश्वर बिन दूसर नामा । गयो पुकारो बध के ठामा ॥
सो हराम सब भाँति बतावा । जानहु यह कुरान को भावा❀[2] ॥
†आवत हँसी बात यह सुनिके । मुर्दा कहत कौन को गुन के ॥
होहिं मृतक सब एक समाना । मरहिं कालवश मारहिं आना ॥
सुअर मांस यक त्याज्य बतावा । मनुषमांस का खाद्य सुहावा ॥
खुदा नाम लै जाकहँ मारहु । तेहि पावन केहि भाँति उचारहु ॥
जग उपकारी जन्तु दुधारे । तिनहिं अकारन जो संहारे ॥
कहहु कहा अस ईश्वर होई । जो उपकार लखै ना कोई ॥

दो०--ताते यह बातैं कतहुँ, ईश्वर की नहिं होंय ।
अरु नहिं पुस्तक ईश की, लिखीं जासु में होंय ॥४३॥

❀अरु रोजा[3] में जौन हलाला । सुनहु तासु को परम हवाला ॥
निज नारी प्रसंग सब करहू । दिवसत्यागि निशि भोजनकरहू ॥
जानेहु ईश करहु तुम चोरी । नारि भोग करिहौ बरजोरी ॥

---

[1] अग्राह्य (ग्रहण न किया जाय) निषिद्ध । [2] मं० १ सि० २ सू० २ आ० १७४ । † स० ३३ । [3] चान्द्रायणव्रत के समान है। चान्द्रायणव्रत में चन्द्रमा की कला के अनुसार मध्याह्न में ग्रासवृद्धि की विधि से भोजन होता है, पर रोज़ा में रात को खूब खाओ, दिन को भूखे-प्यासे रहो । चान्द्रायणव्रत में स्त्री-भोग त्याज्य, पर यह स्त्री-भोग भी बताते हैं ।

तातै आज्ञा दीन्ह सुनाई। करहु ताहिसबकोउचितलाई*[१] ॥
†बात अनोखी सृष्टि विरुद्धा। जाहि करत सब करिकेश्रद्धा ॥
दिवस त्यागि निशि भोजनकरहीं। व्रत महँ नारि भोग उर धरहीं ॥
और बतावत नारिन खेती। गई खोय इनकी बुधि जेती ॥
जो चन्द्रायण व्रत की रीती। तेहि विपरीत करत सब नीती ॥
*बहुरि कहत हम मानत सोई। जो परमेश्वर आज्ञा होई ॥
छं०—तुम ईशमारग में लड़हु उनसे जो तुमसे लड़त हैं।
जेहि ठौर पावहु मारि डारहु आइ जेते भिरत हैं ॥
जौ लगि लड़ौ पुरुषार्थ करिकै कुफ़्[२] तनिकौ ना रहैं।
यह करहु जेते देशवासी सब मुसल्माँ बनि रहैं ॥ ४ ॥
क़तल[३] से बुरा कुफ़् है जानि लीजै।
रहे न ज़रा कुफ़् सो काम कीजै ॥
लड़ो इस तरह कुफ़् का नाश होवै।
बनें सब मुसल्माँ यही काम होवै ।५॥
तुम्हारे ऊपर ज़्यादती जिस तरह से।
करी क़ौम ने तुम करो उस तरह से*[४] ॥
†कहा स्वामि ने जो क़ुराँ में ये बातैं।
न होतीं तो करते मुसल्माँ न घातैं ॥६॥
हमें हिन्दू कहते बने ख़ुद मुसल्माँ।
यह कैसा धरम और कैसे मुसलमाँ ॥
जो इस्लाम के दीन को नाहिं माने।
उसे कहके काफ़िर क़तल करना ठाने ॥७॥

दो०--लड़त लड़त नंगे भये, रह्यो नहीं कछु पास।
करत चाकरी पेटहित, बने विदेसिन दास ॥ ४४ ॥

---

१. मं० १ सि २ सू० २ आ० १८७। † स० ३४। २. मूर्ति-पूजा आदि। ३. मार डालना। ४. मं० १ सि० २ सू० २ आ० १६१ व० १६२। † स० ३५।

सो०--❀कहत एक समुझाय, ख़ुदा न राखत मित्र केहु ।
द्वेष करत समुदाय, बनत मित्र ते कबहुँ नहिं ॥४॥
दो०--प्रविशहु तुम इस्लाम में, जो लाये ईमान ।
भोजन देत ख़ुदा सबन, और करत धनवान❀[1]॥४५॥

†स्वामि कहत झगड़ा प्रिय नाहीं । तौ किमि आज्ञा देत सदाहीं ॥
मुसलमान झगड़ा उर धरहीं । तिनहि मित्रलखि आदर करहीं ॥
यह सब पक्षपात की बाता । नहिं इसलाम धर्म सुखदाता ॥
अरु बिन कर्म किये फल देई । पाप पुन्य कछु लखत न तेई ॥
अस ईश्वर तब सुख केहि भाँती । होहि न किमि क़ुरान जनघाती ॥
याते करत न बहु विश्वासा । त्यागत बहुत क़ुरानकी आसा ॥
कहुँ कहुँ कहत बात अतिनीकी । लिखी क़ुरान भावती जीकी ॥
रजस्वला को कहत अपावनि । मासिकधर्म लहै सुख धामिनि ॥

दो०--सब बिचारि ऋतुकाल में, करहु नारि को भोग ।
ईशआज्ञा यह कहत, जो मानहिं सब लोग ॥४६॥

जौ लगि शुद्ध न होवे नारी । तौ लगि त्यागहिं धर्म बिचारी ॥
शुद्ध होहिं करिके स्नाना । कह्यो जौन विधि ईश विधाना ॥
और कहत जो तुम्हरी नारी । खेती समुझहु तिनहिं विचारी ॥
जौन भाँति तुम चाहहु जावहु । जानिआपनी सब अपनावहु*[2] ॥
†स्वामि कहत यामहँ कछु ठीका । और बात सब भाँति अठीका ॥
जो नारिन खेती बतराई । विषय वासना अधिक बढ़ाई ॥
यह सब झूँठ प्रपंच रचाया । निज स्वारथ हित अर्थ बनाया ॥
बहुरि कहत ऋषिवरसुनिलीजै । बात हमारि तनिक चित दीजै ॥

---

[1] मं० १ सि० २ सू० २ आ० २०५ । २०६ । १२२ । †स० ३६, ३७ ।

[2] मं० १ सि० २ सू० २ आ० २२८ से २२३ । † स० ३२ ।

सो०--कवन पुरुष जग माहिं, कर्ज देइ जो ईश को।
पावहिद्विगुणसराहि, "इष्ट" जानिके देत प्रभु❀[१] ॥५॥
दो०--†कहतस्वामियहबातकस, कारजखुदा किमि लेत।
जेहिनिर्मित जगकोकियो, सब प्रानिन सुख देत ॥४७॥
तासु कोषमहँ का नहिं रहेऊ। का व्यापार करत सो भयऊ॥
द्विगुण देइ केहि कारण ईशा। है देवालियन कर्म नहिं ईशा॥
यह बिन समझ केरि है बाता। नहिं व्यापारी ईश्वर ताता॥
जो व्यय करहि अधिक जगमाहीं। पुनि धनहित भरमैं सबठाहीं॥
अस ईश्वर की नहिं है करनी। बाल खेल सम जो तुम बरनी॥
❀कहेउ ईमान न लायहु कोई। भये तहाँ पर काफ़िर सोई॥
ईश चहत जो लड़त न कोई। जो कछु चहतकरतहैसोई ❀[१]॥
†स्वामि कहत कहुँ होत लड़ाई। करवावत का है सो साँई॥
दो०--जब स्वतंत्र सब भाँति सों, का करि सकत अधर्म।
यदि करिसकत तो ईश नहिं, अरुजानतनहिंमर्म ॥४८॥
यह सब मनुज केर नहिं कर्मा। शान्ति भंगकरिलहहि अधर्मा॥
❀और बात यक कहत अनोखी। ईश्वर की प्रभुता जो चोखी॥
गगन भूमि जग जो सामाना। और पदारथ जो हैं नाना॥
सो सब कछु ईश्वर हित लागी। सकलबनायोनिजअनुरागी❀[२]॥
†स्वामि कहत यकदेशी सुनावहु। बैठो कुर्सी उपर बतावहु॥
यक देशी ईश्वर नहिं होई। है व्यापक जग ईश्वर सोई॥
❀बहुरि कहत काफ़िरन सुनाई। गगन भूमि पर जो देखराई॥
वह प्रभुता सब ईश्वर केरी। लिय कुरसीमा सब जग घेरी॥
ईश पूर्व ते सूरज लायो। ताहि यहाँ पर है दर्शायो॥

---

[१] मं० १ सि० २ सू० २ आ० २४५। † स० ३६। [२] मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २५४। † स० ४०।

दो०--यदि तुम पदवी चहत हो, तौ पश्चिम की ओर।
सूर्य देखावहु सबन कहँ, होत जबै है भोर ॥४६॥

यह सुनि काफ़िर भे हैराना। ईश्वर वचन सत्य करि माना ॥
निश्चय जानि लीन्ह मन माहीं। पापिन ईश नमार्ग देखाहीं❁[1] ॥
†स्वामि कहत कस विद्याहीना। जो भूगोल गती नहिं चीन्हा ॥
सूरज केहु दिशि जात न भाई। घूमत परिधी रहत सदाई ॥
सो खगोलविद्या नहिं जानत। जो यहि भाँति सबन दर्शावत ॥
मार्ग न पापिन को देखरावहिं। पुण्यात्मन कहहु कस भावहिं ॥
धर्मात्मा धरमपथ चलहीं। बुधि अनुकूल करम शुभकरहीं ॥
जो कुपन्थ में जात सदाहीं। तिनहिं पन्थ देखरावत नाहीं ॥

दो०--जो भूले संसार में, तिनहिं देखावहि पन्थ।
और सुनावहु प्रेम सों, भक्तिसहित सदग्रंथ ॥५०॥

छं०—❁कहा जानवर चार को लो निहारी।
हिये बीच पहिचान रक्खो सम्हारी ॥
पुनः करके टुकड़ा पहाड़ों के ऊपर।
धरौ एक ही एक लै जाय ता पर ॥ ८ ॥
पुनः तुम जहाँ पर खड़े हो पुकारो।
चले आवेंगे दौड़ते ही निहारो ❁[2]॥
† कहा स्वामि ने वाह कैसी ख़ोदाई।
देखाता तमाशा मदारी कि नाँई ॥ ६ ॥
इसे कौन इन्साँ कहैगा ख़ुदा है।
ख़ुदाई के कर्मों से बिलकुल जुदा है ॥
महा मूर्ख होंगे फँसैंगे वही आ।
न होवे भलाई बुराई सबी जा ॥ १० ॥

---

१. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २५४, २५८। † स० ४१, ४२।
२. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २६०। † स० ४३।

सो०-❀बहुरि कहत समुझाय, जेहि चाहे तेहि देत है।
नीति महा सुखदाय, "इष्ट" आपनो जानिकै❀[१] ॥६॥

दो०-❀क्षमा करहि जाको चहहि, दंड चहहि जेहि देइ।
परमेश्वर बलवान है, वस्तु सकल चित देइ❀[२] ॥५१॥

†स्वामि कहत वह ईश्वर नाहीं। जो मनचाही करत सदाहीं॥
नीति देत यक कहँ जो होई। अवशि अनीति दूसरन सोई॥
यह सब पक्षपात की बातैं। स्वार्थिन समुझि निकारी घातैं॥
दड विधान विचित्र बतावा। लेश न न्याय हृदय बिचआवा॥
निज इच्छा जहँ दंडबिधाना। हुइ न सकत ईश्वर केहु आना॥
पाप पुण्य जब ईश अधीना। होय मनुज किमि पापन लीना॥
और अनोखी बात सुनावहु। जो बहिश्त के गुन दर्शावहु॥
सब सुख हैं बहिश्त के माहीं। कहत स्वर्ग हम सब तेहिकाहीं॥

दो-❀नहरैं बहति अनूप जहँ, सो बहिश्त अति नीक।
और बीवियाँ तहाँ पर, [३]सुखदाई तन ठीक ॥५२॥

सहित पुजारिन ईश निरन्तर। देखत रहत सदा निशिवासर॥
❀निश्चय यह जानहु सब कोई। दीन इस्लाम ख़ुदा ते होई❀[४]॥
❀करि पुरुषारथ जौन कमाया। देत ईश सब करिके दाया॥
जेहि चाहहि तेहि देत सदाई। छीन लेत जेहि चाहत भाई॥
चहत जासु तेहि देत बड़ाई। दे अपमान चहै जेहि साँई॥
सब कुछ है ईश्वर आधीना। है वह मालिक जगत प्रबीना॥

---

१. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २६८। २. मं० १ सि० ३ सू० २ आ० २८३। व० २८४। † स० ४४, ४५। ३. अल्लाह की प्रसन्नता से अल्लह उनको देखनेवाला है, साथ बंदों के। ४. मं० १ सि० ३ सू० ३ आ० १३।

रात्रि दिवस बैठत यक ठाईं। मृतक जिलाइ देत सो साईं ॥
अन्न देत बहु चाहत जाहीं। अरु उपदेश करत सब ठाहीं ॥

दो०—यवन काफ़िरन को कतहुँ, नाहिं बनावें मित्र।
केवल यक इस्लाम को, हिय में राखत चित्र ॥५३॥
क्षमा करहि यदि चहहि वह, ईश हमारो जौन।
करुणामय निश्चय लखहु, पापछमतहै तौन[1]* ॥५४॥
†कहत ऋषी यह स्वर्ग कस, वेश्यावन देखराय।
जासु ग्रन्थ में है लिखा, ईश्वरकृत है नाँय ॥५५॥

जे बहिश्त बिच नारि[2] लखाईं। तहँ जन्मी या कहँ ते आईं ॥
जो प्रथमहिं तिन लीन्ह बोलाई। बिना प्रलय केहि कारन भाई ॥
यदि जन्मीं ते स्वर्ग के माहीं। केहि विधिप्रलयकाललौं रहहीं ॥
अरु तहँ पुरुष नारि द्वौ अहहीं। तौ पुनि यवन जाइ का लहहीं ॥
सदा बहिश्त नारि उपजाई। काहे न दीन्हें पुरुष बनाई ॥
याते न्यायरहित तव ईश्वर। बुद्धिहीन तुम्हरो परमेश्वर ॥
कहहु ईश का तुम्हरोहि होई। तनिक न औरन को है सोई ॥
तुम्हरो धर्म[3] रह्यो जब नाहीं। तब ईश्वर का नहिं तेहिठाहीं ॥

---

[1] मं० १ सि० ३ सू० ३ आ० १८–२४ से २५ व २६ व २७। † स० ४६ से ४८। [2] जब बीवियाँ पहले से वहाँ रहती हैं, तो कहो उनका निर्वाह कैसे ? यदि वहाँ पुरुष भी हैं, तो यहाँ से जानेवालों को बीवियाँ कहाँ से मिलेंगी, और जैसे बीवियाँ सदा रहनेवाली बनाई वैसे पुरुष क्यों नहीं बनाये ? क्या खुदा पक्षपाती है जो सि दीन इस्लाम का ही है। [3] इस्लाम के पूर्व १३०० वर्ष के पहले क्या ईश्वरीय मत नहीं था ? इस लिये क़ुरानशरीफ़ ईश्वर का बनाया नहीं है, न क़ुरानी ख़ुदा ख़ुदा है।

दो०--मृतक न जीवित ह्वै सकत, महा असम्भव बात ।
तौ क़ुरान को कौनविधि, मानें सारी जात ॥५६॥
पक्ष करत अति ईश तुम्हारा । एक समान न करत सहारा ॥
तैसेहि समुझावत सब काहीं । जो रसूल तुम्हरे मनचाहीं ॥
जो मम पक्ष करहु सब लोगू । तौ ईश्वर देवै सुख भोगू ॥
यह सब पक्षपात की बातैं । कही स्वार्थिन करिके घातैं ॥
बढ़ें स्वार्थ बुधि जात हेराई । और हृदय की पावनताई ॥
तैसेहि भये रसूल तुम्हारे । मुसलमान को रहत निहारे ॥
रचि क़ुरान सारे बहकाये । संग लिये जो निज मन भाये ॥
❀एक कहत सुनिये ऋषिराई । बात फ़िरिश्तन एक सुनाई ॥
सो०--मरियम सों यकबार, कहन फ़रिश्ता इमि लगे ।
तुम पावन सुकुमार, बड़ो कियो प्रभु ने तुम्हैं ॥७॥
दो०--तुमहिं चीन्हि पदवी दई, सब नारिन सिरताज❀[1] ।
†स्वामि कहत अबहूँ कोऊ, करत बात है आज ॥५७॥
छं०--तौ कहहु केहि बिधि बात पहिले करत थे बतराइये ।
जो कहहु पहिले पुरुष पावन अब न हैं दिखराइये ॥
ते रहे विद्याहीन सारे मुसलमानी जब भई ।
अब न चल सकती तुम्हारी झूठ युक्ती निर्मई ॥ ११ ॥
छं०--❀कही बात[2] है आइकै यक अनोखी ।
ऋषी ने समीक्षा[3] करी उसकी चोखी ॥
❀कहा अब ख़ुदा की मदद क्या यह कम है ।
तुम्हारी मदद का फ़रिश्तों का दम है ॥ १२ ॥

---

१. मं० १ सि० ३ सू०३ आ० ४० । † स० ४६ ।

२. ❀उसको कहता है कि हो, बस हो जाता है । काफ़िरों ने धोखा दिया, ईश्वर ने धोखा दिया । ईश्वर बहुत मक्कर करनेवाला है । मं० १❀

सहस तीन साथी बनाये तुम्हारे।
लड़ो काफ़िरों से उन्हीं के सहारे*[१]॥
*है अल्लाह सहायक तुम्हारा सदा से।
मरो राह अल्लाह में या क़ज़ा से॥ १३॥

ख़ुदा की दया तुम पै हर ओर से है।
वही कारसाज़ "इष्ट" सरज़ोर से है॥
करो चाहे जो कुछ ख़ुदा को न भूलो।
न धन और दौलत कमाई में फूलो*[२]॥ १४॥

†स्वामि कहत वह बनत सहायक। जो इस्लाम पन्थ को नायक॥
तीनि सहस्र फ़रिश्तन लै सँग। लड़त ख़ुदा तुम्हरे शत्रुनसँग॥
तब पुनि अब वह कहँ पर सोयो। यवनन अपनो सर्वसु खोयो॥
छुट्यो राज्य प्रभुता दइ खोई। निज पौरुष सों जीती जोई॥
मारै मरै ईशपथ जोई। तापर ईश्वर राजी होई॥
याते प्रभु सब विधि अन्यायी। एक पक्ष करि बनहिं न न्यायी॥
ईश्वर काम सम्हारहि सारे। कहहु तो काहे सब हैं हारे॥

दो०-*बहुरि कहत शक्ती तुमहिं, ईश न ऐसी देत।
पाछिल बात न जानहू, बुधि सारी हरि लेत॥५८॥

---

*सि० २ सू० ३ आ० ३९ और ४९। ३. जबमुसलमान ख़ुदा के सिवा दूसरी चीज़ नहीं मानते, तो ख़ुदा ने किससे कहा और उसके कहने से क्या हो गया, इसका उत्तर नहीं दे सकेंगे; क्योंकि बिना उपादान कारण के कार्य नहीं हो सकता। बिना कारण के कार्य कहना मानों बिना मा-बाप के अपना शरीर हो गया, जो धोखा खाता है, छल-कपट करता है, वह ईश्वर नहीं हो सकता॥ स० ५०॥ १. मं० १ सि० ४ सू० ३ आ० १२३।

२. मं० १ सि० ४ सू० २ आ० १४६, १५९, १५६। सू० ५१ व ५२

पक्षपात करि ईश निहारे। कहि न सकत तेहि ईश्वर सारे॥
पर करि प्रेम जाहि पहिचाने। ताहि सकल विधि अपने जाने॥
बस लावहु ईमान सदाई। ख़ुदा रसूल दुऔ यक जाई❀[1]॥
†कह तब स्वामि ख़ुदा बिन कोई। नहिं लावत ईमान सँजोई॥
अरु साझी मानत हैं नाहीं। ख़ुदा एक कोउ दूसर नाहीं॥
पुनि रसूल ईश्वर सँग जोड़त। कहो पूर्व की बातैं छोड़त॥
अरु यह कहहु मदद के हेता। राखत इष्ट रसूल निकेता॥
अस विधि सों असमर्थ लखाई। हुइ न सकत ईश्वर केहु ठाँई॥
❀बहुरि कहत करिये संतोषा। निजजन यासहँ करहु न रोषा॥

दो०--लड़त लड़ाई तुम रहहु, बिलम्ब न लावहु नेक।
डरहु सदा अल्लाह सों, राखहु हिये विवेक❀[2]॥५६॥

छं०—†कहा स्वामि दोनों लड़ाई लड़ाते।
रसूल और ख़ुदा नित्त झगड़ा कराते॥
लड़ाई की आज्ञा जो देता सभी को।
करै भंग शान्ती डरै ना ज़मीं को॥ १५॥

क्या सिर्फ़ नाम ही से डरना ख़ुदा को।
न पाओगे छुट्टी बुरों से जुदा हो॥
❀कहा एक ने बात मानों हमारी।
जो अल्लह की हदें कहौं में पुकारी॥ १६॥

रसूल और अल्लाह की बात मानो।
मिलेगा बहिश्त जाके आनन्द ठानो॥
वहाँ बहतीं नहरें शहद की प्रमानो।
न मानेगा जोई लगै ना ठिकानो॥ १७॥

---

[1] मं० १ सि० ४ सू० ३ आ० १७३। † स० ५३।
[2] मं० १ सि० ४ सू० ३ आ० २००। † स० ४५।

किया जायगा हद[1] से बाहर यही नर।
इमाँ लायगा जो नहीं इस क़ुराँ पर❀[2] ॥
†कहा स्वामि ने जब ख़ुदा ने किया है।
शरीक कर मुहम्मद को हक़ जो दिया है ॥ १८ ॥
बहिश्त और दुनिया ये दोनों जहाँ में।
फँसाया ख़ुदा को रसूले जहाँ में ॥
वह लाशिर्क होवे कहो किस तरह से।
जो साथी मुहम्मद रहे सब तरह से ॥ १९ ॥
किसी एक में भी न स्वाधीन है वह।
जो नबियों को दे हक़ पराधीन है वह ॥
जहाँ ऐसी बातें लिखी सो विचारो।
वह ईश्वरवचन कैसे होवे निहारो ॥ २० ॥

दो०--होत न केहु विधि ईश अस, ना तेहि पोथी होत।
ना क़ुरान से काहु की, उन्नति जगत उदोत ॥६०॥

❀बहुरि कहत यक ईश्वर न्यायी। सो न होइ तनिकौ अन्यायी ॥
करत भलाई जो जग माहीं। पावत तासुदुगुणतेहिठाहीं❀[3] ॥
†स्वामि कहत जो नहिं अन्यायी। हमतेहिजानहिंकेहिविधिन्यायी ॥
जब अन्याय न उर बिच धरई। तौफल द्विगुणकौन विधिकरई ॥
कर्म देखि फल देत न काई। वह है ईश महा अन्याई ॥
❀बहुरि कहत सुनिये ऋषिराई। ईश्वर की सुनिये प्रभुताई ॥
फेरि दई है बहुतन की मति। केहिविधि सुधरि सकत तिनकीगति ॥
केहुविधि सुधरि सकत सो नाहीं। किय गुमराह[4] ईश है जाहीं❀[5] ॥

---

[1] अर्थात् सदा रहनेवाली आग में जलाया जायगा और उसके लिये ख़राब करनेवाला दुःख है। [2] मं० १ सि० ४ स० ४ आ० १३, १४। † स० ५५। [1] मं० ३ सि० ५ सू० ४ आ० ३०। † स० ५६। [4] राह भुलाना। [5] मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० ८० ८७।

दो०-†स्वामि कहत यह ईशहू, है शैतान समान ।
बहकावै सब भाँति सों, राह भुलावत जान ॥६१॥
भेद कहा दोहून बिच, जब हैं कर्म समान ।
खुदा बड़ो शैतान है, वह छोटा शैतान ॥६२॥
❀बहुरि कहत निज हाथन रोकहु । जहँ पावहु तहँ मारहु फेंकहु ॥
मुसलमान नहिं मारन योगू । जो अनजान हनत कोउ लोगू ॥
मुसलमान को त्यागहु भाई । मारहु और जिते समुदाई ॥
जानि यवन को जो तुम मारहु । तो दोज़ख़ की ओर सिधारहु ॥
क्रोध करहि अल्लह तेहि ऊपर । अरुभरिलानतडारहिंतेहिपर❀[1] ॥
❀ जो हम शिक्षा कहत सुनाई । प्रकट होत जो सनमुख आई ॥
जेहि रसूल सों कियो विरोधा । सन्मुख आयो बनिके योधा ॥
तेहि दोज़ख़ में सब विधि डारहुँ । कहत ईश यह सत उचारहुँ❀[2] ॥
सो०--†कहत स्वामि समुझाय, पक्षपात की बात यह ।
यवन बचहिं समुदाय, और सबन मारियसदा ॥८॥
छं०-यह अनोखी रीति देखहु स्वर्ग[3] वे पग धारि हैं ।
जे त्यागि केवल यवनदल सब काफ़िरन को मारि हैं ॥
यहि पन्थ में सब देशबासी कहहु केहि बिधि आइ हैं ।
यातें मिलत नहिं सुःख काहुहि बुधन तेहि अपनाइ हैं ॥२१॥
अरु पक्षपातभरी जो बातैं सबन ना समुझावते ।
फँसतो न कोऊ जाल बिच जो युक्ति असनहिं मानते ॥
ताते सकल मिलि खोजकरि[4] इस्लाम को त्यागन करो ।
अरु प्रेमकरि वैदिक धरमनिज हृदय में धारन करो ॥२२॥

---

† स० ५७ । १. मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० ६१ से ६३ । २. मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० ११३ । † स० ५८, ५९ । ३. बहिश्त ।

४. ❀ जो अल्लाह फ़रिश्तों, किताबों, रसूल और क़यामत के साथ

❀अल्लाह जमा करेगा, दोज़ख में काफ़िरों को।
जोई करै बुराई, ले जायगा सभी को॥
अल्ला को धोखा देते, काफ़िर जो हैं जहाँ में।
उस ही तरह पै देता, धोखा खुदा उन्हीं को॥
देता हुकुम खुदा है, सुन लो इमानवालो।
तुम दोस्त मत बनाओ, कबहूँ न काफ़िरों को❀[1] ॥
❀बस याद रक्खो लोगो, सच साथ लेके आया।
आया रसूल बनके, देगा बहिश्त सबको॥
ईमान लाओ उस पर, अल्लाह जो अकेला।
वह ही रहम करेगा, भाबे सभी के दिल को❀[2] ॥२३॥

दो०--†तब स्वामी यहिभाँति सों, कहत सबन समुझाय।
जैसे को तैसा मिलै, तैसेहि माहिं समाय॥ ६३ ॥

जासु ईश धोखा नित करई। तेहि चेला किमि सत उर धरई॥
दुष्टहु यवन होय जो कोई। तासों प्रेम करे हित होई॥
कहहु कौन अस धर्महि माने। जहँ अस होवें पुरुष सयाने॥
जाके गुन अरु कर्म स्वभावा। होहिं श्रेष्ठ पथ पावन भावा॥
नहिं अस धर्म मानिबे लायक। है सब भाँति विरोध विधायक॥

---

* कुफ्र करे निश्चय वह गुमराह है। निश्चय जो लोग ईमान लाये, फिर काफ़िर हुए फिर ईमान लाये पुनः फिर गये और कुफ्र में अधिक बढ़े अल्लाह उनको कभी क्षमा न करेगा, न मार्ग दिखरावेगा। मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० १३५, १३६। (समीक्षा) क्या अब भी खुदा लाशरीक रह सकता है। क्या लाशरीक कहते जाना, और उनके साथ बहुत से शरीक भी मानते जाना क्या तीन बार क्षमा के बाद क्षमा नहीं करता बार बार कुफ्र करने से बढ़ते ही हैं॥ स० ६०॥

१. मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० १३८, १३९, १४०। २. मं० १ सि० ६ सू० ४ आ० १६९ से १७०। † स० ६१, ६२।

भेजि रसूल कहत निज बाता । हुइसक केहि विधि ईश्वरताता ॥
ना ईश्वरकृत अहै कुराना । उदाहरण दीखत हैं नाना ॥

दो०--❀और हराम बतावहीं, भखहु न तिनको मांस ।
और कहत हैं दोष जो, छुटहिं ईश की आस[१] ❀ ॥६४॥

❀ अरु धन माँगि बुराई टारे । दैकर लोभ बहिश्त सहारे[२] ❀ ॥
❀ और कहत जासों हित करई । तेहि अपराधन उर बिचधरई ॥
जेहि चाहे सुख देत महाना । चहत जासु दुख देवै नाना[३] ❀ ॥
† निज हित लागि हमारी जानी । कही मुहम्मद ने मन मानी ॥
कहहु कहा ईश्वर अस होई । जो मन भावे करिहै सोई ॥
भेद कहा पुनि कहहु बुझाई । है शैतान खुदा समताई ॥
❀ मानहु तुम अल्लाह की बानी । कहै रसूल जौन सुखदानी[४] ❀ ॥
❀ जो करि चुके आज लौं कर्मा । करत क्षमा अल्लाह अधर्मा ॥
क्षमा करहिं नहिं आगिल कर्मा । बदला लेइ ईश बे भर्मा[५] ❀ ॥

दो०--†स्वामि कहत जो पाप को, क्षमा करत है ईश ।
तौ जग में बहु होवहीं, पापी और अनीश ॥६५॥

---

१. ❀ तुम पर हराम किया गया है मुर्दार लोहू, सुअर का मांस, जिस पर अल्लाह के बिना कुछ और पढ़ा जावे गला घोटे, लाठी मारे, ऊपर से पड़े, सींग मारे, दर्द का खाया हुआ । मं० २ सि० ६ सू० ५ आ० ३ । (समीक्षा) क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं ? अन्य बहुत से पशु तथा तिर्यग्जीव कीड़ी आदि मुसलमानों को हलाल होंगे ? इसलिये यह कल्पना मनुष्यों की है ईश्वर की नहीं, न कुछ प्रमाण है ॥ स० ६३ ॥ २. म० २ सि० ६ सू० ५ आ० ११ । ३. मं० २ सि० ६ सू० ५ आ० १८१६ । † स० ६४ से ६५ ।

४. मं० २ सि० ७ सू० ५ आ० ६१ । ५. मं० २ सि० ७ सू० ५ आ० ६५ । † स० ६६, ६७ ।

दो०--पाप छोड़ावन की विधी, लिखी जौन में होय।
सो ईश्वर कृत है नहीं, जानि लेहु सब कोय ॥६६॥

बहुत अकारण[1] लिखि दीं बातें। स्वारथ हेत निकारी घातें॥
❀ अरु शैतान ख़ुदा की बातैं। करी जौन विधि दोहुन घातैं॥
कहत ख़ुदा हमने उपजावा। बहुरि तुम्हारो रूप बनावा॥
बहुरि फरिश्तन कहा पुकारी। सिजदा करहु आदमहि भारी॥
तेहि क्षण सबन नवायो माथा। यक शैतान उठ्यो नहिं हाथा॥
तब रिसियाइ खुदा इमि कहई। किमि न नयो कारण का अहई॥
कहत तबै शैतान बुझाई। हम आदम ते श्रेष्ठ जनाई॥
हमहिं आग से नाथ बनावा। आदम माटी गूँधि रचवा॥

दो०--कहत खुदा अभिमान तेहि, उतर ठीक यह नाहिं।
अब तू बन्धन में पड़हि, यामें संशय नाहिं॥ ६७॥
दिवस क़यामत तक क्षमा, माँगि लई शैतान।
और कहत कबहूँ नहीं, चलहुँ कुपथ को जान ॥६८॥

तब रिसियाइ बहुरि कह ईशा। तुमहिं निकारहुँ करहुँ अनीशा॥

---

[1] ❀ और उस मनुष्य से अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर झूँठ बाँध लेता है और कहता है कि मेरी ओर वही की गई परन्तु वही उसकी ओर नहीं की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूँगा कि जैसे अल्लाह उतारता है। मं० २ सि० ७ सू० ६ आ० ६४। (समीक्षा) इस आयत से सिद्ध होता है कि जब हज़रत मुहम्मद साहब कहते थे कि मेरे पास ख़ुदा की ओर से आयतें आती हैं तब किसी दूसरे ने भी इसी प्रकार लीला रची होगी कि मेरे पास आयतें आती हैं, मुझे भी पैग़म्बर मानो। इसके हटाने और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये हज़रत ने यह उपाय किया होगा स० ॥ ६८ ॥

[2] माथा नवाना (नमस्कार)।

अरु जो पक्ष तुम्हारो करहीं। तिनहिंसहितहमदोजख़[1]भरहीं*[2]॥
†स्वामि कहत इनकी जो करनी। है शैतान खुदा बिचबरनी॥
दूतहु ने जो कही न मानी। लेहु ईशबल को अनुमानी॥
जो शैतान सबन बहकावत। तौ ईश्वर तेहिको भरमावत॥
अस ईश्वर यवनन को होई। बुध समाज मानहि नहिं कोई॥
याते अबुध फँसत तेहि माहीं। बुधवर निकट न कबहूँ जाहीं॥
जिन को ईश्वर मनुजसमाना। बातैं करैं लखात अयाना॥

दो०--❀कहत एक समुझाइकै, देत कुरान प्रमान।
अल्लाह मालिक है सदा, तुम्हरो निश्चय जान॥६९॥
भूमि गगन छै दिवस में, उपजायो है ईश।
बैठि अर्श बोलत भयो, कहहु सबै जगदीश॥७०॥

छंद–सब दीनता से अपने, मालिक को तुम पुकारो ❀[3]।
❀कोऊ नहीं ज़मी पर, झगड़े का ढंग बिचारो॥
इस शान में फिरो मत, कुछ भी भला न होगा ❀।
*यक बार आसा डाला, अजगर बना निहारो *॥
❀बस हमने उस पै भेजा, तूफ़ान मेंह का है।
टिड्डी व मेंढक सारे, लोहू बहा निहारो॥
बस हमने लेके बदला, दरिया में है डुबोया।
इसराईल को किया है, दरिया के पार यारो ❀[4]॥
❀देखैगा तुझको यह ही, जिसने किया उजाला।
है ओट में पहाड़ी, मिलने को तुम सिधारो॥

---

१. मुसलमानों की परिभाषा में नरक कहाता है। २. मं० २ सि० ८ सू० ७ आ० १० से १७ तक। † स० ६६। ३. मं० २ सि० ८ सू० ७ आ० ५३, ५४, ७३। ४. मं० २ सि० ६ सू० ७ आ० १०७, १३०, १३३।

टुकड़ा किया उजाला, परमाणु की शकल में।
बे होश हो गया है, मूसा जो प्राणप्यारो ❀ ॥
❀निज दीनता औ डर से, आवाज धीमी करके।
मन में तको उसी को, सुब शाम नामुचारो ❀[1] ॥२४॥

छंद-†कहा स्वामि ने बात झूठी तुम्हारी।
छ दिन में बना लोक परकाशकारी ॥
वहाँ जाइ के अर्श पर फिर के सोया।
सो है कैसे व्यापक दयालू अमाया ॥ २५ ॥

कहीं पर कहा है कि झगड़ा मचाओ।
बताया कहीं पर लड़ाई बचाओ ॥
यह दोनों परस्पर विरोधी हैं बातें।
इसी से न चलती तुम्हारी है घातैं ॥ २६ ॥

गिरै आसा अजगर बने यह कहानी।
रसूल और अल्लाह दुओ ने यह मानी ॥
सुनो और सोचो कहाँ बुद्धिमानी।
न पैग़म्बरी है न है मुसल्मानी ॥ २७ ॥

जो पाखण्डियों की तरह है डराता।
वह कैसा खुदा है जो सबको न भाता ॥
देखाई जो देता वह व्यापक न होई।
चमत्कार अब क्यों देखाता न सोई ॥ २८ ॥

कहीं धीमी आवाज से कह पुकारो।
कहीं बाँग देकर खुदा को उचारो ॥
परस्पर विरोधी जहाँ पर हो बातैं।
नहीं सो खुदा की है पुस्तक न बातैं ॥ २९ ॥

---

[1] मं० २ सि० ६ सू० ७ आ० २०४। † स० ७० से ७५ तक।

सो०--❀कहहु लुटेरन जाइ, लूट करें सब माल को।
हेत खुदा के लाइ, निकट सु धरहिं रसूल के❀[१] ॥९॥
दो०--❀और काफ़िरन कीसदा, जड़ काटहु निज हाथ।
बनहिं सहायक हम सदा, सहस फरिश्तन साथ ॥७१॥
अवशि काफिरन के हिय माहीं। भरहुँ सदा भय संशय नाहीं॥
तिनके गले ।हिं तुम मारहु। अरुसबसन्धिनदेखिप्रहारहु[२]❀॥
❀अल्लह सदा संग यवनन के। जो लावत इमान है नीके॥
तौ तहँ चोरी करहु न कोई। खुदा रसूल वस्तु जहँ होई॥
नाहिं चुरावहु अपनि अमानत। जो सब भाँतिन अपनी जानत॥
अल्लह करत रहत बहु मक्कर। अरु खुशहोतकरत जोमक्कर❀[३]॥
†स्वामि कहत यह डाकुनकर्मा। नहिं कोउ पन्थ नहै कोउ धर्मा॥
दयाहीन दोऊ देखराहीं। खुदा और पैग़म्बर आहीं॥
सो०--आज्ञा मारन देत, जो हिन्दुन सब भाँति सों।
मुसलमान सुख हेत, बनत सहायक सकलविधि ॥१०॥
यह सब पक्षपात की ताता। का ईश्वर यवनन सुखदाता॥
तौ तेहि ईश न कहि सक कोई। केवल पक्षपात जहँ होई॥
यह बड़ि अनुचित बात लखाई। जो दिय संग रसूल मिलाई॥
और खुदा को कौन खज़ाना। जो न करहिं चोरी अनजाना॥
हाँ रसूल अरु अपनी थाती। त्यागि करहु चोरी सबजाती॥
अस उपदेश अबुध नर देहीं। करि कुकर्म जग अपयश लेहीं॥
जहँ पर ईश करत है मक्कर। जाइ फँसत जन तिनके चक्कर॥
अस ईश्वर जहँ माननवारे। तिनकी बुधि जग कौन सुधारे॥

---

[१] मं० २ सि० ९ सू० ८ आ० १। [२] मं० २ सि० ९ सू० ८ आ० ७, ९, १२। [३] मं० २ सि० ९ सू० ८ आ० १९, २४, २७, ३०।

† स० ७६ से ७८।

दो०--ताते यह पुस्तक नहीं, परमेश्वर कृत होय।
स्वार्थी कपटी छलीहै, निर्मित कीन्ह्यो जोय ॥७२॥

छं०—✻तब एक बोल्यो सुनहु ऋषि हम दीन[1] वचन सुनावहीं।
तुम लड़हु सारे वेग सों समुहे जो काफ़िर आवहीं॥
बल काफ़िरन में रहहि जौलों लड़हु सब सन्नद्ध हो।
जौलगि मुसलमाँ होहिं नहिं बिनती करहिं करबद्ध हो॥ ३०॥
तौ लगि लड़हु अरु लूट मारहु सब ख़ुदा के वास्ते।
करि भाग पंचम राखिये हज़रत रसूल के वास्ते✻[2]॥
✻अरु जब फ़रिश्ते काफ़िरन को बस करत हैं देखिये।
मुख पीठ पर मारैं कहैं यह कर्मफल है लेखिये॥ ३१॥

दो०--हमने उनके पापसों, मारि अधिक दुखदीन।
फ़राआन के वंश को, ढूँढ़ि डुबायो बीन✻[3] ॥७३॥

†कहत स्वामि केहि भाँति को, ईश तुम्हारो होय।
जो लड़वावत निशिदिवस, झगड़ालू है सोय ॥७४॥

छं०—यह मज़हब अनोखा लुटेरी का दल है।
न इन्साफ़ कोई न बुद्धी का बल है॥
ख़ुदा औ मुहम्मद लुटेरों के साथी।
लिया भाग पंचम बने हैं प्रमाथी॥ ३२॥
ग़रज़ ऐसे मज़हब न आते जो याँ पर।
तो ख़ूँरेज़ी हरगिज़ न होती यहाँ पर॥
जहाँ ऐसी पुस्तक ख़ुदाई बताकर।
लड़ावें लुटावें ख़ुदादाद बनकर॥ ३३॥

---

[1] पन्थ (मज़हब)। [2] मं० २ सि० ९ सू० ८ आ० ३८, ४०।
[3] मं० २ सि० ९ सू० ८ आ० ४९, ५३, ६३। † स० ७९, ८०

भई दशा जो कुछ लखी सब मिश्र अरु इँगलैंड की।
तब फ़रिश्ता कित गये उनकी न तनिको मदद की॥
यदि सेवकन के शत्रुसँग बदला ख़ुदा ले सर्वदा।
तो कहहु है सोयो कहाँ अब किमि न करता है ख़ुदा॥ ३४॥

दो०--❀बहुरि कहत समुझाइकै, नबी ख़ुदा की बात।
भेजि दियो इस्लामहित, जो रसूल सुखदात॥७०॥

कहत ख़ुदा यहि बिधि समुझाई। बोलि नबी अस वचन सुनाई॥
देहु जाइ लालच यहि भाँती। लड़हिं लड़ाई जीवन घाती॥
बीस पुरुष यदि यकमत होहीं। दुइशत सम्मुख लड़िहैं सोहीं॥
वस्तु लूट की सबकोउ खावहु। डरहु ख़ुदा सौं तनि भयमानहु॥
वह अपराध क्षमा सब करिहैं। दोष तुम्हारे उर ना धरिहैं❀[1]॥
†स्वामिकहत यह कवनिहुबाता। न्यायधर्म युत जोहो ताता।
शांति भंग करि करहिं लड़ाई। लूट वस्तु पावन बतलाई॥
पुनितेहि दयावान किमि कहहीं। तामहँ क्षमा कौन विधि लहहीं॥

दो०-याको ईश्वर कहहिं कस, महा असम्भव बात।
भले आदिमिहु ना करत, जग में अस उत्पात॥७६॥

छं०—❀कहा फिर सदा बीच उसके रहेंगे।
है नज़दीक अल्लाह उसी से कहेंगे॥
है उससे बड़ा पुण्य यह जान लीजै।
ऐ ईमानवालो यही मान लीजै॥ ३५॥
न पकड़ो पिसर[2] औ बिरादर[3] को अपने।
करी दोस्ती जो कभी होय सपने॥
तसल्ली ख़ुदाने उतारी नबी पर।
औ लश्कर उतारे कुफ़्फ़ारों के ऊपर॥ ३६॥

---

[1] मं० २ सि० १६ सू० ८ आ० ६३, ६४, ६८। † स० ८१।
[2] पिता। [3] भाई।

लड़ाई करो ख़ूब ज़ोरों से उनसे।
जो ईमान लाते नहीं ठीक दिल से॥
न घबड़ाना हरगिज़ ख़ुदा पीछे उनके।
चला आता है मय फरिश्तों के दलके※[1] ॥ ३७॥
†कहा स्वामि ने यह हैं झूठी कहानी।
ख़ुदा रहता यक जा पै बातैं बखानी॥
तौ व्यापक कहौ कैसे होवे तुम्हारा।
ख़ुदा बैठा लेता नबी का सहारा॥ ३८॥
जो तब काफ़िरों पर छे लश्कर उतारे।
तो अब क्यों न अपना ख़लीफ़ा निहारे॥
लड़ाई कराके बनाये मुसलमाँ।
धरस जानकर कोई लाया न ईमाँ॥ ३९॥

दो०-बिना लड़ाई के कतहुँ, लाइ न सक इमान।
अस ईश्वर को मम हृदय, नहिं तनिकौ सन्मान॥७७॥

※तब यक कहत बहुरि रिसियाई। नहिं इस्लाम बड़ाई पाई॥
हम सब देखत तुम्हरे हेता। पहुंचावहुँ जहँ ईश निकेता॥
निज हाथन सों सबन पठावहुँ। औरसबनकेपापछोड़ावहुँ ※[2] ॥
†कहत स्वामि यह हमरे हेता। पुलिस बनाई ईश सचेता॥
यह अधिकार तुम्हारेहि माहीं। पायो मुसलमान समुदाई॥
और जिते सब होहिं सुकर्मी। तिनहिं न मानहु तनिकौ धर्मी॥
महा कुकर्मी तुम्हरे साथी। होत ईश प्रिय महा प्रमाथी॥
अस अंधेर जहाँ पर होई। निकट न बुधवर जावहिं कोई॥

सो०--मोहिं आश्चर्य लखात, किमि मानत बुधवर यवन।
सब अयुक्त दर्शात, महा असम्भव लिखा जहँ॥१०॥

---

१. मं० २ सि० १० सू० ९ आ० २१, २२, २५, २६, २८।
†स० ८२। २. मं० २ सि० १० सू० ९ आ० ५२। † स० ८३।

दो०--¹लोभ बहिश्त देखावई, अरु बहु बाँधत जाल ।
वह अपने गृह भरत है, सदा लूट को माल ॥७८॥

❀ बहुरि यवन यक कहत सुनाई । जानेहु नाहिं ईश प्रभुताई ॥
धन जीवन ईश्वर हित लागी । अरु रसूल आज्ञा हिय पागी ॥
तिनके हित जग होहि भलाई । औरन हिय दिय मुहर लगाई ॥
ते नहिं जानत ईश प्रभावा । कह्योजो हम ईश्वरकोभावा❀²॥
†कहत स्वामि देखहु चतुराई । मतलब सिंधु बने सब ठाँई ॥
जो रसूल की आज्ञा मानहि । लाइ इमान तिनहिं अपनावहि ॥
मानत तिनहि नीक सब भाँती । और बुरी हैं जेती जाती ॥
यह सब पक्षपात की बाता । कहत अबुध नरतस तुमताता ॥

दो०--अरु तिनको अपराध कहँ, हिय न धरत तब बात ।
मुहर लगाई हिये पर, परमेश्वर सुखदात ॥७९॥

---

१. ❀ प्रतिज्ञा की है अल्लाह ने ईमानवालों से बहिश्तें चलती हैं नीचे उनके से नहरें सदैव रहनेवाली बीच उसके और घर पवित्र बीच बहिश्तों अदन के और प्रसन्नता अल्लाह की और बड़ी है और यह कि वह है मुराद पाना बड़ा । बस ठट्ठा करते हैं उनसे ठट्ठा किया अल्लाह ने उनसे । मं० २ सि० १० सू० ९ आ० ७२ से ८० । (समीक्षा) यह खुदा के नाम से स्त्री पुरुषों को अपने मतलब के लिये लोभ देना है । क्योंकि जो ऐसा प्रलोभ न देते तो कोई मुहम्मद साहब के जाल में न फँसता । ऐसेही अन्य मतवाले भी किया करते हैं । मनुष्य लोग तो आपस में ठट्ठा किया करते ही हैं परन्तु खुदा का ठट्ठा करना उचित न था । वह कुरान क्या है बड़ा खेल है ॥ स० ८४ ॥

२. मं० २ सि० १० सू० ९ आ० ८९,९२ । † स० ८५ ।

छंद—*लो खैरात में माल उनके जो पाओ।
हर एक शुद्ध बाहर व भीतर बनाओ॥
लीं इस्लाम की मोल जाने खुदा ने।
अता की बहिश्तै बिलेवज में उसने॥ ४०॥
बस अल्लाह की राह पर तुम लड़ो सब।
मरो और मारो न देरी करो अब *[1]॥
† कहा स्वामि ने यह है कैसी खुदाई।
नबी ने अजब चाल जो है चलाई॥ ४१॥
गरीबों को मरवाना दिल में है ठाना।
खुदा कैसा न्यायी कुराँ ने बखाना॥
मुसलमान को स्वर्ग का लोभ देता।
सदा काफिरों से है उनको लड़ाता॥ ४२॥
* कहा एक ने हुक्म अल्लाह का मानो।
जो लाये इमां दों लड़ाई को ठानो॥
सदा काफ़िरों से लड़ो खूब कसकर।
खुदा टालता है बलाओं को हँसकर॥ ४३॥
हर यक साल एक बार तोबा कराता।
मगर वह न समझें न उनको सुहाता *[2]॥
† कहा स्वामि ने जो सिखाई हैं बातैं।
वह विश्वासघाती तुम्हारी हैं घातैं॥ ४४॥
इसी से मुसलमाँ कभी यह न माने।
सदा साथ रहते जो कर्तव्य ठाने॥
समझ लो हमारी बुराई को छोड़ो।
मिलो आइ के दुखद कर्तव्य तोड़ो॥ ४५॥

---

[1] मं० २ सि० ११ सू० ६ आ० १०३, १११, ११२। † स० ८६। [2] मं० २ सि० ११ सू० ६ आ० १२३, १२७। स० ८७।

दो०--❀बहुरि कहत अल्लाह ने, छदिन परिश्रम कीन्ह ।
भूमि गगन उपजाइ के,कर्मकरनचितदीन्ह❀[1] ॥८०॥
†स्वामि कहत बुधि तुम्हरीजानी । लिखी सकल अपने मनमानी ॥
नहिं पदार्थ विद्या हैं जानत । जो यह कहत गगन उपजावत ॥
गगन सदा यहि भाँति लखाई । शून्य प्रगट यह रूप जनाई ॥
अरु बइ वाक्य झूँठ हुइ जाई । आज्ञा करे सकल बनि जाई ॥
बहुरि छदिन केहि भाँति बतावा । जब आज्ञा पाछिल दर्शावा ॥
अरु जब व्यापक ईश बतावहु । तब पुनि किमि बैठो बतलावहु ॥
अरु जब युक्ति काम हित करई । किमि सर्वज्ञ ताहि उर धरई ॥
ईश तुम्हारो मनुज समाना । करत कर्म हित जो विधिनाना ॥
दो०--याते यहपुस्तक नहीं, परमेश्वर कृत होय ।
अबुध अज्ञजन नेलिखी, जो कुरान है सोय ॥८१॥
❀एक कहत शिक्षा अवलोकहु । और दया को भाव विलोकहु ॥
सो सब यवनन हेत बताई । परमेश्वर की नीति सोहाई[2]❀ ॥
तुम्हरे महँ को नीक देखाई । लेत परीक्षा ईश्वर आई ॥
श्रेष्ठ होइ जो कर्मन माहीं । मृत्यु पिछारी ताहि उठाहीं ❀[3]॥
† कहत स्वामि का ईश तुम्हारा । और कोउ नहिं ताकहँ प्यारा ॥
बह है पक्षपात की बाता । शिक्षा दया यवन हित ताता ॥
यवन इमानदार यदि होहीं । तौ शिक्षाविधि तिनहिन जोहीं ॥
औरन को उपदेश न करई । व्यर्थ ईश विद्या चित धरई ॥
दो०--कर्म परीक्षा करत जब, नहिं सर्वज्ञ लखात ।
और उठावत मृत्यु से, तो अलपज्ञ सोहात ॥८२॥

---

[1] मं० ३ सि० ११ सू० १० आ० ३ । † स० ८८ ।
[2] मं० ३ सि० ११ सू० १ आ० ५५ । [3] मं० ३ सि० ११ सू० ११ आ० ७ । †स०८९, ९० ।

दो०--टूटि जात प्रकृती नियम, मरे न जीवत कोय।
बनत कलंकी ईशं है, नियमतोड़ि दुःख होय ॥८३॥
❀कहतएक ऋषिसों तबै, सुनहु खुदाकी बात।
भूमि गगन सों कहत भे, परमेश्वर सुखदात ॥८४॥

छं०—कहा भूमि सो किंतु पानी निगल जा।
करो बस कहा आसमाँ सों यह हो जा॥
जो आवाज़ सुनत गया सूख पानी।
यह उँटनी है अल्लाह की जो निशानी॥ ४६ ।
सुनो क़ौमवालो इसे छोड़ दीजै।
फिरै भूमि पर ख़्याल कोई न कीजै॥
यह खाती फिरै सब जगह खेत सारे।
रहै घूसती बस खुदा के सहारे ❀[1] ॥ ४७॥
† कहा स्वामि ने यह लड़कपन की बातें।
जो सुनता गगन और भूमी बताते॥
रहे पास उँटनी खुदा के बताहीं।
तो क्या और सारे पशू ना लखाहीं॥ ४८॥
कहो खेत उँटनी से है जो खिलाता।
खुदा को सवारी में यह ही है भाता॥
यह बातें न अल्लाह की हो सकेंगी।
गया है ज़माना न अब बन सकेंगी॥ ४९॥

दो०--❀बहुरिकहत जौलगिरहत, यह पृथिवी आकाश।
रहत सदा ते बहिश्तमें, भाग्यवानसुखआस❀[2] ॥८५॥

---

[1] मं० ३ सि० ११ सू० ११ आ० ४२,६३।

† स० ९१। [2] मं० ३ सि० १२ सू० ११ आ०१०८,१०९ ६३।

दो०--❀निजपितुसोंयूसुफ़कहत, अरे बाप सुनिलेहु ।
हौंदेख्योयकस्वप्न को, ताहितनिकचितदेहु❀[१] ॥८६॥

†स्वामि कहत है लिखी कहानी । जो बहिश्त दोज़ख़ मनमानी ॥
सब कोइ दिवस प्रलय के माहीं । जात स्वर्ग अरु नर्क सराहीं ॥
पुनि आकाश भूमि केहि लागी । रहै यहाँ पर बिन अनुरागी ॥
अरु वह सदा कौन बिधि रहहीं । लहै सुःख वा दुख को लहहीं ॥
औ जामहँ पितु मातु कहानी । सो कस होवे ईश्वर बानी ॥
जा महँ मनुजन के इतिहासा । लिखे बहुत विधि स्वप्नबिलासा ॥
❀कहत बहोरि ईश वह होई । जेहि बिन खम्भन गगन रचोई ॥
बहुरि ईश को देखहु धाई । बैठ्यौ गगन उपर दर्शाई ॥

दो०--आज्ञा पालक है महा, सूर्य चन्द्र उपजाय ।
भूमि छिपाई जासु ने, सो ईश्वर सुखदाय ॥८७॥

आसमान से बारि उतारा । नाले बहे मिल्यो नहिं पारा ॥
अरु जेहि चाहे भोजन देई । चाहे जासु छीनि सब लेई❀[२] ॥
❀यह निश्चय जानहु सब लोगू । ईश देत है सब कहँ भोगू ॥
जेहि चाहत तेहि मार्ग दिखावत । चहत जासु तेहि मार्ग भुलावत ॥
जेहि चाहे तेहि आपनि ओरा । करत ध्यान ताको बरजोरा❀[३] ॥
❀याहि भाँति हम कुराँउतारा । अर्बी माहिं लिख्यो है सारा ॥
अरु यह पत्त केर किमि होई । ईश्वर इच्छा आई सोई ॥
पहुँचावत सँदेस तुव पासा । हमही सबकी करिहै आसा❀[४] ॥

---

१. मं० ३ सि० १२, १३ सू० १२ आयत ४ से १०१ । † स० ६२, ६३ । २. मं० ३ सि० १३ सू० १३ आ० २, ३, १७, २६ । २. मं० ३ सि० १३ सू०१३ आ० २७ । ४. मं० ३ सि० १३ सू० १३ आ० ३७, ४० ।

दो०--†स्वामिकहततुम्हरोखुदा, नहिं जानत कछु मात्र।
जो पदार्थ विद्या लखहु, ताको कौन स्वभाव ॥८८॥

छं०—जो कुछ जानता तो न लिखता कहानी।
कथा पानी आकाश की जो बखानी॥
ख़ुदा और शैतान में फ़र्क़ क्या है।
जो गुमराह दोनों करैं कस्र क्या है॥ ५०॥
जो शैतान है दोज़ख़ी इस तरह से।
तो बेशक ख़ुदा दोज़ख़ी सब तरह से॥
उतारा किधर से क़ुराँ को ख़ुदा ने।
जो अर्बी ज़बाँ में पठाया ख़ुदा ने॥ ५१॥
जो सच है कि रहता ख़ुदा आसमाँ पर।
तो हो सकता व्यापक ख़ुदा किस तरह पर॥
रहे एक जा एकदेशी कहावे।
सो किस भाँति पैग़ाम सबको पठावे॥ ५२॥
क़ुराँ का ख़ुदा एक इन्साँ की सूरत।
उसी की तरह काम उसकी ही सीरत[1]॥
समझ लो क़ुराँ को लिखा जिसने ऐसा।
नहीं है वह ज्ञानी है अल्पज्ञ जैसा॥ ५३॥

❀कहत एक ऋषिवर सुन लीजै। प्रभुता मम ईश्वर चित दीजै॥
सूर्य चाँद को जो उपजावा। फिरहिसकलदिशिहुकुमसुनावा॥
मनुज करत निशिबासर पापा। करि अन्याय लहत संतापा❀[2]॥
† स्वामि कहत का भूमि न घूमत। भरमत सूर्य चन्द्र यह सूझत॥
तौ दिन रात पता नहिं पावहु। वर्ष अनेक दिवस परमानहु॥
जब निश्चय मानुष है पापी। तब नहिं कोउ यहाँ निष्पापी॥

स० ६४ से ६६ [1]. स्वभाव। [2]. मं० ३ सि० १३ सू० १४ आ० ३३, ३४। स०६७।

तब क़ुरान को किमि उपदेशा। करत अहरनिशि लहहु कलेशा॥
पाप करन स्वभाव बनिजाई। सो न कतहुँ धर्मी देखराई॥
दो०--ताते यह पुस्तक नहीं, परमेश्वरकृत होय।
कहत बहुरि समुझाइकै, हिय धारहु तुम सोय॥८९॥
छं:-❀बस ठीक करके रूह[1] फूँकू बीच उसके अस कहा।
अरु करहु तुम साष्टांग[2] स्तुति जानिकै प्रभुता महा॥
मुझको भुलाया आपने शैतान ने है यह कहा।
मैं भुलाऊँगा सबों को जो मिलें मुझको जहाँ❀[3] ॥५४॥
†स्वामि कहत जब राह भुलावै। है शैतानतुल्य दिखरावै॥
जो बिच आदम जीवन फूँका। रूप बन्यो वह कहा प्रभू का॥
जब वह ईशसमान न भयऊ। निज समाज स्तुति किमि ठयेऊ॥
अरु शैतान भुलावत जबई। दण्ड न दै सक ईश्वर कबई॥
तब यह दोष ईश बिच आवे। वह शैतानसमान लखावे॥
❀बहुरि कहा यह निश्चय जानहु। ईश्वर के यह बचन प्रमानहु॥
हम भेजे बहुतक पैग़म्बर। निश्चय सब उम्मत के अन्दर॥
जब हम चहहिं कहत हो जावे। तबहितुरतसबकुछ बनिजावे❀[4] ॥
दो०--†कहत स्वामि सब जाति पर, भेजेउ जबहिं रसूल।
तब काफ़िर किमि बनत हैं, अन्य जाति मुखमूल॥९०॥
आर्यवर्त बिच काहि पठावा। जो फैलायो अपनो भावा॥
यह सब पक्षपात की बातैं। करिके अधिक निकारी घातैं॥
जड़ पदार्थ पृथिवी किमि सुनई। जो कुन सुने वस्तु सब बनई॥
महा असम्भव बातैं सारी। अज्ञानिन सम जो लिखिडारीं॥

---

[1] रूह को अपनी भाषा में मुसलमान जीव कहते हैं। [2] ज़मीन में गिरकर सिजदा करना। [3] मं० ३ सि० १४ सू० १५ आ० ३९ से ४६ तक। † स० ९८। [4] मं० २ सि० १४ सू० १६ आ० ३५, ४०। † स० ९९।

❀कहत बहोरि बेटियाँ पावनि। नियत करीअल्लहसुखधामनि ॥
पुनि सौगन्द ख़ुदा की खाई। पैग़म्बर भेजे सुखदाई❀[1] ॥
❀जनसमूह जो तुमहिं लखाई। दी अल्लह ने मुहर लगाई ॥
कान आँख औ हिय के ऊपर। बेसुध भये लगाये मोहर ॥

दो०–सम्पूरन तिनको मिलहिं, निज कर्मन अनुसार।
उनसों कछुअन्याय नहिं, होयन करहुबिचार❀[2] ॥६१॥

❀और काफ़िरन हेत बनावा। दोज़ख़ यक स्थान सुहावा ॥
अरु प्रत्येक मनुज गल माँई। कर्मपत्र[3] लिखि दीन्ह लगाई ॥
प्रलय काल[4] पर पुस्तक एका। देखलावहिंगे जो धरिटेका❀[5] ॥
†स्वामि कहत कसईश तुम्हारा। करहि कहा पुत्रिन परिवारा ॥
चाहिय मनुजन हित जग पुत्री। ईश्वर हेत करी किमि पुत्री ॥
सौगँध खात सदाही झूंठी। है तब ईश्वर रीति अनूठी ॥
जब ईश्वर दिय मोहर लगाई। तब अपराध विना ते भाई ॥
निज इच्छा सो कीन्ह न पापा। तब किमि सहहिं ईश परितापा ॥

दो०–दोज़ख़ है तिनके लिये, मानत जो न क़ुरान।
दिय बनाइ काफ़िरन हित, घिरे रहहिं अनजान ॥९२॥

यह सब पक्षपात की बातैं। करत रहे हौ जो तुम घातैं ॥
ते क़ुरान मानहिं केहि भाँती। ईश्वर मुहर लगाइ सुहाती ॥
कर्मपत्र जब सब गल बाँध्यो। तौ इंसाफ़ नेम कस साध्यो ॥
नहिं काहू गल परत लखाई। कर्मपत्र जो बाध्यो साँई ॥
यदि यह कहहु देन फल कारन। करत भये यहि भाँति उचारन ॥
तौ किमि नरन नेत्र हिय माँई। किमि दीन्हीं है मुहर लगाई ॥

---

[1] सं० ३ सि० १४ सू० १६ आ० ५७, ६३।
[2] मं० ३ सि० १४ सू० १६ आ० १०८, १११।
[3] आमालनामा।
[4] रोज़क़यामत।
[5] मं० ४ सि० १५ सू० १७ आ० ८, १२, १६।
† स० १०० से १०२

पाप क्षमा जो होय सुनावा । कहहु कवन यह खेल मचावा ॥
दिवस क़यामत में चित दीजै । निकसहिं जो किताब सुनिलीजै ॥
कहहु कहा अब तेहि ढिगनाहीं । धरी कवन सन्दूकन माहीं ॥

दो०–पूर्वजन्म जब है नहीं, यह सोचहु चित लाय ।
तापुनि कर्म की रेखको, लिखी कहहु समुझाय ॥९३॥

बिना कर्म जो है लिखि दीन्हा । तौ अन्यायसकल बिधिचीन्हा ॥
सोइ खुदा पढ़ि सबन सुनावे । अथवा और कोउ समुझावे ॥
दीर्घकाल लगि जीवन मारी । यह अन्याय करत है भारी ॥
अरु अन्याय जहाँ पर होई । कहि न सकत तेहि ईश्वर सोई ॥
❀बहुरि कसत ईश्वर की आज्ञा । सुनि न करत है कोउ अवज्ञा ॥
कहत ईश उँटनी है दीन्ही । हर्ष सहित समूद[1] ने लीन्ही ॥
और कहा प्रमान यक एही । बहकावहु तुम पावहु जेही ॥
जासु दिवस हम आज्ञा करहीं । सैनिक[2] सहित सकल उरधरहीं ॥

दो०–मम समीप तो तुरत ही, आवहिं सुनिके बैन ।
दक्षिण हाथन में धरहुँ, कर्मपत्र सुखदैन [3]❀ ॥९४॥

छं०—†कह स्वामि हैं आश्चर्यदायक जो निशानी ईश की ।
तिन महँ बताई एक उँटनी उस खुदा के परख की ॥
अरु जब भुलावा देन हित शैतान को समुझावई ।
तौ कहहु केहिविधि दोषयह शैतान के बिच आवई ॥ ५५ ॥

एकहि दिवस न्याय सब केरा । किमिन करत वह है सब बेरा ॥
यह सब बिधि अन्याय[3] लखाई । जो तुम कहत ईश प्रभुताई ॥

---

[1] एक पुरुष का नाम है । [2] पेशवा (सेनापति) ।

[3] म० ४ सि० १५ सू० १७ आ० ५८, ७०, । † स० १०३ ।

❀ एक राजा यह आज्ञा निकले कि पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे किये जावेंगे तब फैसला किया जावे, यह कितने अन्याय की बात है ।

ईश्वर की अस नीति न भाई । न्याय करत प्रतिपल सब ठाँई ॥
ताते हुइ न सकत अस ईश्वर । दोष अज्ञता लागै तापर ॥
और जासु पुस्तक के माहीं । बात असंगत अस दर्शाहीं ॥
सो ईश्वर कृत नहिं केहु भाँती । नहिं मानत हैं बुधवर पाँती ॥
साक्षिहेत पैगम्बर राखत । अति अज्ञता ईश महँ लावत ॥
❀बहुरि कहत सुनिये ऋषिराई । है बहिश्त की जो प्रभुताई ॥

दो०-- सदा रहन हित बाटिका, शुभ सुन्दर सुखदैन ।
तेहि नीचे नहरैं बहति, जात भरे दोउ ऐन ॥६५॥

सोने के गहना अति पावन । पहिराये जैहैं तहँ कंकन ॥
हरित वस्त्र पहिरन के हेता । मिलहि तहाँ तकिया सुखहेता ॥
सुन्दर तखत मिलहि तहँ सबको । सुख सौंबैठि लहहु आनंद को ॥
याते श्रेष्ठ पुण्य जग माहीं । मिलहिबहिश्तजहाँदुखनाहीं❀[1] ॥
†स्वामि कहत कस स्वर्ग बतावा । कह्यो क़ुरान केर जो भावा ॥
वस्तु बहिश्त बीच जो आहीं । कहहु कहाँ ते याँ पर नाहीं ॥
केवल यक अन्याय विशेषा । स्वर्ग तुम्हार माहिं जो शेषा ॥
जो सब काल सुःख में रहई । सुःखहि को वह दुखसम लहई ॥

सो०- प्रलयकाल के बाद, मुक्त जीव जन्मत सबै ।
पुनर्जन्म अविवाद, सिद्ध होत सब भाँति सों ॥११॥
❀बहुरि कहत यहि भाँति, ईश्वर की प्रभुता लखहु ।
मारयो तिनहि सजाति, करत रहे अन्याय जे ॥१२॥

और प्रतिज्ञा मारन हेता । करिलीन्हीं है सबन सचेता❀[2] ॥

---

[1] मं० ४ सि० १५ सू० १८ आ० ३० । † स० १०४ । [2] मं० ४ सि० १५ सू० १८ आ० ५६ ।

†स्वामि कहा पापी सब कोऊ। रहत ग्राम बिच हैं जन जोऊ॥
पीछे करत प्रतिज्ञा जोई। सो सर्वज्ञ कतहु नहिं होई॥
कारन जब देखत अन्यावा। तबहि प्रतिज्ञा करि ठहरावा॥
याते दयाहीन देखराई। ईश तुम्हार बिचारहु भाई॥
❀बहुरि कहत ऋषिवरसुनिलीजै। तनि ईश्वर आज्ञा चित दीजै॥
जो कछु पुत्र रहे तेहि ठाँई। धर्मात्मा मातु पितु भाई॥
भय वश यह सोचत सो भयऊ। कुफ्र माहिं पकड़न हियठयऊ॥

सो०-गयो तहाँ नगिचाय, सूरज डूबत जहाँ पर।
डूबत देख्यो भाय, कीचड़ के चश्मान[1] में॥१३॥

बोलि कह्यो यकसों[2] यहि भाँती। यह[3] द्वौलड़तरहत दिनराती❀[4]॥
❀अरु निजपुस्तक माहिंनिहारहु। मरियमजीवन तनिक विचारहु॥
जब मरियम पूरब दिशि जाई। निज मंदिर बिच बैठत आई॥
लागि गयो पर्दा तेहि ठाँई। तब हमने निज रूह पठाई॥
सो यक पुष्ट मनुज बनि गयेऊ। तेहिक्षणमरियम याविधिकहेऊ॥
मैं तो शरण तुम्हारी आई। दयावान पावत तुम भाई॥
कहन लगा मोहिं ईश पठावा। देहुँ तुम्हहि यक पुत्र सोहावा॥
केहि विधि ममसुत होइसोहावन। जब न छुयो हमने मानुष तन॥
हम नकरहिं कोउ अनुचितकामा। करहिं सो पावहिं दुःखललामा॥

दो०--तेहि संग गर्भित भई सो, मरियम अति सुकुमार।
संग गई ताके भवन, जहँ जँगल विस्तार❀[5]॥९६॥

†स्वामि कहत कस ईश तुम्हारा। जो भयभीत होत निशिवारा॥

---

† स० १०५। [1]. सोते, जहाँ से पानी निकलता है। [2]. एज़ुल क़रनैन एक व्यक्ति का नाम है। [3]. याजूज़—माजूज़। [4]. मं० ४ सि० १६ सू० १८ आ० ८०, ८५, ९२। [5]. मं० ४ सि० १६ सू० १९ आ० १५ से १९ तक और २१। † स० १०६, १०७।

का भूगोल खगोल न जानत। जो सूरज कीचड़[१] बिच मानत॥
अस विद्या विरुद्ध जहँ बातैं। और देखातीं बहुतैं घातैं॥
सो न ईशकृत पुस्तक होई। कहि कुरान समुझायो जोई॥
तुम्हरे जाल अबुध नर फँसहीं। बुधवर सदा देखिके हँसहीं॥
और फ़रिस्तन को बतलावत। रूह खुदा की कहि गोहरावत॥
रूह शरीर संग है भाई। अथवा तनते पृथक लखाई॥
यह अन्याय लखो नहिं जाई। बालकुमारी जाइँ सताई॥

दो०--तेहि इच्छा के विरुद्ध तब, ईश्वर इच्छा जान।
गर्भाधान कियो तहाँ, ईश रूह[२] बलवान ॥६७॥

और बहुत अश्लील कहानी। लिख्यो नाहिं लज्जा को मानी॥
❀और सुनहु ईश्वर की बानी। कही जौन करिबे को ठानी॥
नहिं देखेउ तनि नयन उघारी। पठवा है शैतान सम्हारी॥
बहकावहिं काफ़िरन बनाई। ईश्वर आज्ञा दी समुझाई❀[३]॥
†पठवत ईश जबै शैतानहिं। दोष कहा काफ़िरन बखानहिं॥
हुइ न सकत तिनको कछु दंडा। अरु शैतान न पावहिं दंडा॥
कारन ईश्वर आज्ञा करई। तब शैतान कर्म उर धरई॥
ईश न्यायकारी सब काला। नरक तासु फल कौन हवाला॥
त्यागे न्याय होत अन्याई। कहत ताहि पापी सब भाई॥

दो०--❀एक कहत निश्चय सुनहु, परमेश्वर की बात।
क्षमाकरत उन जनन पर, कहतजो तोबा[४] तात ॥६८॥

लाइ इमान करहि शुभ कर्मा। मारग सो पाव तबे भर्मा❀[४]॥

---

[१]. जो सूरज को प्रातःकाल एक झील से निकलना और शाम को कीचड़ के चश्मे में डूबेगा बताते हैं। [२]. फ़रिस्ता। [३]. मं० ४ सि० १६ सू० १९ आ० ८३। † स० १०८। [३]. तोबा इनका क्षमावाची वचन है।

और बहुत शक्ती[१] तेहि पासा । जासों करत रहत सब आसा ॥
❋ईश करत स्तुति बहु भाँती । सूर्य चाँद अरु तरुवर जाती ॥
कंगन मिलहिं बहिश्त के माहीं । पहिरहु मोती तहँ हर्षाहीं ॥
वस्त्र रेशमी पहिनन हेता । रहहु तहाँ बनिके सब नेता ॥
अरु गृह स्वच्छ हमारो राखहु । करहिपरिक्रमा जेहि जनभाषहु ॥
भेंट धरहिं घूमहिं चहुँ ओरा । बन्यो जो घर प्राचीन गँभीरा ॥
रटहिं सदा ता प्रभु को नामा । अल्लहकहत सकलसुखधामा❋[२]॥
दो०--†स्वामि कहत जो नरन के, क्षमा करत हैं पाप ।
याते पाप सदा बढ़त, रहत न भय संताप ॥६९॥
अरु तुमने जो स्वर्ग बतावा । कँगन तहँ सबको पहिनावा ॥
राजभवन सम स्वर्ग तुम्हारा । अधिक न कोऊ काज निहारा ॥
जब आपन गृह ईश बतावै । अरु परिकरमा सबन करवावै ॥
तब वह एकहि स्थल रहई । भेंट सहित सब आनँद लहई ॥
सो न होहि किमि मूरति पूजन । करत रहत तुम जाको खंडन ॥

---

[१] ❋ और किये हमने बीच पृथ्वी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावें। मं० ४ सि० १७ सू० २१ आ० ३१ । ❋ और शिक्षा दी हमने उस औरत को और इच्छा की उसने अपने गुह्य अंगों की बस फूंक दिया हमने बीच उसके रूह अपनी को। मं० ४ सि० १७ सू० २१ आ० ९१ । (समीक्षा) यदि क़ुरान का बनानेवाला पृथ्वी का घूमनादि जानता तो यह कभी न लिखता। पहाड़ों के धरनेसे पृथ्वी नहीं हिलती फिर भूकम्प क्यों होता है ? ऐसी अश्लील बातें खुदा की क्या किसी सभ्य मनुष्य की भी नहीं हो सकतीं सभ्य मनुष्य के सामने यह बातें नहीं कह सकते और लिखना अच्छा नहीं तो परमेश्वर के सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है। ऐसी बातों से क़ुरान दूषित होता है। यदि अच्छी होतीं तो प्रशंसा होती, जैसे वेद ॥११०,१११॥ [२] मं० ४ सि० १७ सू० २२ आ० १६, २३, २५, २८, ३३ । † स० १०९ से ११२ तक ।

याते तुम सब एक समाना। हिन्दू जैन सहित मत नाना ॥
या विधि सो न ईशकृत पोथी। भरी असम्भव बातें थोथी ॥
❀एक कहत जब वह दिन आवे। जाहि क़यामत कहि गोहरावे ॥

दो०--सबहि उठाये जायँगे, दिवस क़यामत बीच❀[1]।
❀साक्षी सब कोउ देइगा, भरीसभा के बीच॥१००॥

छं०—हैं हाथ पाँव अरु अंग जेते देहिं साक्षी आइकै।
जेहि भाँति सों जो पाप कीन्हों ताहि भाँति बताइकै ॥
है नूर[2] सुन्दर ईश को कंडील सम आकाश में।
चमकै देखावे रोशनी वह नूर की परकाश में ॥५६॥
अरु चहत जाको तेहिदिखावे मार्गशुभ हियधारिके ❀[3]।
❀ उत्पन्न कीन्हों है पशुन को सब खुदा ने वारि से ॥
है तासु में यक जन्तु ऐसा जो चलत है पेट से।
तेहि कहत हैं स्तेन[4] सब कोइ डरत हैं सब भेंट से ॥५७॥

आज्ञा तुम रसूल की मानहु। तौ फिरिदयाहोयअसजानहु❀[5]॥
†स्वामि कहत यह मोहिं बतावहु। दिवस क़यामत जो दर्शावहु ॥
कहहु मृतक केहि स्थल माहीं। रहत क़बर बिच या केहु ठाहीं ॥
पुन्यात्महु महा दुख भोगत। तनु सड़ि जात नाहिं तहँ सोवत ॥
हाथ पैर इन्द्रिय समुदाई। लखहु तिनहिं जड़रूप सदाई ॥
कहहु कवन विधि देहिं गवाहीं। विरुद्ध सृष्टिक्रम झूठ लखाहीं ॥
उपमा नूर देत जो भाई। का विद्युत या आग लखाई ॥
ईश माहिं उपमा यह नाहीं। घटि न सकत जानहु केहु ठाहीं ॥

दो०—यह उपमा साकार में, घटत रहत सब काल।
निराकार में लगत नहिं, उपमा केहू काल ॥१०१॥

---

[1] मं० ४ सि० १८ सू० २३ आ० १६। [2] प्रकाश। [3] मं० ४ सि० १८ सू० २४ आ० २४, ३५। [4] साँप। [5] मं० ४ सि० १८ सू० २४ आ० ४४,५१,५३,५५। † स० ११३ से ११५।

पंचतत्वमय सकल शरीरा । एक तत्व से बनत न कीरा ॥
तब वह कौन क्रिया बतरावहु । एक बारि सों बदन बनावहु ॥
विद्या रहित सकल यह बातैं । समुझाईं करिके वहु घातैं ॥
कह रसूल की आज्ञा मानहु । शिर्क खुदा सँग आप लगावहु ॥
पुनि तेहि लाशरीक किमि कहहू । बचन कुरान बीच जो लहहू ॥
❀बहुरि कहन यक ऋषिसों लागा । जो निज धर्म माहिं अति पागा ॥
जासु दिवस कटि है आकाशा । मेघ सहित जो रहै विकाशा ॥
ता दिन उतरि फरिस्ता आवैं । ईश्वर की आज्ञा जब पावैं ॥

दो०--और काफिरन का कहा, मत मानहु सब कोय ।
झगड़ा अधिक बढ़ावहू, सदा काफिरन सोय ॥१०२॥

छंद-उनकी बुराई को बदलता है भलाई से सदा ।
अरु करहि तोबा जो कोऊ शुभ काज में है रत सदा ॥
वह अवशि आवत है खुदा की ओर निश्चय जानिये ।
यहि भाँति हमरोधर्म सवविधि "इष्ट" है सुखदानिये❀[1] ॥५८॥

†कह तब स्वामि बात सच नाहीं । फटत गगन केहु नाहिं लखाहीं ॥
मूर्तिमान जो वस्तु लखाई । कटत फटत वह है दर्शाई ॥
यह तुम्हरी कुरान जो पुस्तक । शान्तिभँग की है उत्पादक ॥
नित प्रति झगड़ा रारि बढ़ावे । पक्षपात सब विधि सिखलावे ॥
ताते धार्मिक अरु विद्वाना । धर्मग्रन्थ नहिं याको माना ॥
देखी न्याय अनोखी रीती । पाप पुन्य बदलन की नीती ॥
कहहु कहा अनाजसम यहहू । बदलत रहत सदा पलक्षणहू ॥
छुटहि पाप तोबा उच्चारे । काहेक कोउ अपराध निहारे ॥

दो०--❀कहत वही[2] हमने करी, है मूसा की ओर ।
और लैचलहु तहाँ मोहिं, जहँ सेवक हैं मोर ॥१०३॥

---

१. मं० ४ सि० १६ सू० २५ आ० २५, ५२, ७०, ७१ ।
† स० ११६ । २. पुस्तक ।

है जग मार्ग देखावनवारो। ईश एक बलवान उचारो॥
क्षमा करहिं अपराध हमारे। दिवस क़यामत के दिन सारे❀[1]॥
†स्वामि कहत किमि वही पठाई। जो तुरतै मूसा ढिग आई॥
प्रथम भये दाऊद अरु ईसा। और मुहम्मद साहब श्रीसा॥
भेजी वही न थी सो पूरन। बहुरि पठाई जो सम्पूरन॥
अब यह कहहु कवन है साँची। सबंन आपनी पोथी बाँची॥
होहिं सत्य तीनहु यदि भाई। तो क़ुरान मिथ्या दर्शाई॥
पारस्परिक विरोध विलोकहु। याते ईश्वर कृत नहिं एकहु॥
और लिखीं बहु तक मनमानी[2]। महाअसम्भव अकथकहानी॥
छं०-❀कह आयु पूरी कीन्ह मूसा दुष्ट ह्वै क्षण में हन्यो।
पुनि कहत हे प्रभु क्षमा कीजै न्याय नहिं हमसे बन्यो॥

---

१. मं० ५ सि० १२ सू० २६ आ० ५२, ५३। † स० ११७।

२. ❀ नहीं तू आदमी मानिन्द हमारी बस ले आ कुछ निशानी जो है तू सच्चों में से। कहा यह ऊँटनी है वास्ते उसके पानी पीना है एक बार मं० ५ सि० १९ सू० २६ आ० १५२, १५३। (समीक्षा ११८) भला इस बात को कोई मान सकता है कि पत्थर से ऊँटनी निकले। वे लोग जंगली थे, जिन्होंने यह मान लिया कि ऊँटनी की निशानी देना। केवल जंगली व्यवहार है, ईश्वर-कृत नहीं। यदि यह किताब ईश्वर-कृत होती तो ऐसी असम्भव बातें उसमें न होतीं॥ ११८॥ ❀ ऐ मूसा, बात यह है कि मैं अल्लाह हूँ ग़ालिब। और डाल दे आसा अपना बस जब कि देखा उसको हिलता था मानों कि वह साँप है। ऐ मूसा, मत डर निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पैग़म्बर। अल्लाह नहीं कोई माबूद—परन्तु वह मालिक अर्श बड़े का यह कि मत सरकशी करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर। मं० ५ सि० १९ सू० २७ आ० ९, १० २६, ३१। ❀और देखेगा तू पहाड़ों को अनुमान करता है, तू उनका जमे हुए और वे चले जाते हैं। चलते हुए मानिन्द बादलों के कारीगरी अल्लाह की जिसने दृढ़ किया हर वस्तु को निश्चय वह ❀

सुनतेहि क्षमा करि दीन्ह ईश्वर जो दयालू है महा।
सोई जगत उपजाय दियतेहि बुद्धिवर मालिक कहा❀[1] ॥५६॥
† कह स्वामि है धनि ईश तुम्हरो दोष की क्षमता करै।
हत्या करै जन मारि कोऊ तासु को दूषण हरै॥
यह कहहु का अन्यायकारी ईश तुम्हरो है नहीं।
जो चहत है सोई करै का हुइ सकत मालिक वही ॥६०॥

दो०--कहहु कहा संसार में, बुधिवर औ बुधिहीन।
तेहि इच्छा से होत सब, जगत सुखी अरुदीन॥१०४॥

❀ आज्ञा दई सदा हित करनी। मातु पिता सेवा चित धरनी॥
जो दोउ झगड़ा तुम सन ठाने। कोउ बात कबहूँ ना माने॥
मेरि ओर हुइ कहहिं जो बाता। मानि लेहु हित सों सो ताता॥
पठयो नूह क़ौम की ओरा। रहे तहाँ सुनि लीजै ब्योरा॥
नव सहस्र नव सहस पचासा। रहहितहाँ करिजीवन आसा❀[2]॥
❀ प्रथम बार जग को उपजावे। अल्ला दोसरिहु बार बनावे॥
आवहि दिवस क़यामत जबहीं। हों निराश पापीजन तबहीं॥
बहुरि इमान जौन जन लाये। अरु शुभ काम हिये में भाये॥

❀ख़बरदार है उस वस्तु के करते हो। मं० ५ सि०२०सू० २७ आ० ८८। (समीक्षा ११६, १२०) अब देखिये अपने आप बड़ा अल्लाह ज़बरदस्त बनता है मगर शैतान बाग़ी को न पकड़ सका न दंड दे सका और पहाड़ों को चलनेवाला बताता है। अपने मुँह अपनी प्रशंसा करता है यह श्रेष्ठ पुरुष का भी काम नहीं तो ख़ुदा क्योंकर हो सकता है तब भी जंगली मनुष्यों में ख़ुदा बन बैठा और यह पुस्तक (क़ुरान शरीफ़) ख़ुदा और हज़रत मुहम्मद की तारीफ़ों से भरी है।

१. मं० ५ सि० २० सू० २८ आ० १४, १५, ६७। † स० १२१।
२. मं० ५ सि० २० सू० २६ आ० ७, १३।

तिनको हो शृंगार नवीना। बिच उद्यान[1] तिनहिं सुखदीना॥
भाव सकल जो जानत नाँई। कारन अल्लाह मुहर लगाई❀[2] ॥
छं०—†कह स्वामि जो पितु मातु आज्ञा मानियो तुमने कह्यो।
सो ठीक है अरु सब अनर्गल सुनत हिय दुखमय भयो॥
यक सहस लगि आयू बताई अब न कोऊ लखि परै।
हैं झूँठ तुम्हरी बात सब बुधवर न कोऊ हिय धरै॥ ६१॥
दो०--कहहु कहा द्वै बार ही, जगत बनावत ईश।
फिर चुप हो बैठो रहत, का हुइ जात अनीश॥१०५॥
हों निराश सब कोउ जह, प्रलयकाल के बीच।
जे पापी सब भाँति सों, कुटिल कर्मगति नीच॥१०६॥
पापी कौन तुम्हारी जानी। कहत रहत हौ जो मनमानी॥
तुम्हरी जानि यवन सब साँचे। पुन्यात्मा धर्मव्रत राँचे॥
यह है पक्षपात की बाता। पन्थ तुम्हारो सबहि न भाता॥
जब शृंगार बहिश्त में होई। कहहु यहाँ का है नहिं सोई॥
अरु जब दीन्हीं मुहर लगाई। तब केहि विधि बहिश्तवह जाई॥
❀एक कहत आयत यह देखहु। पुस्तक हिकमत लिखीबिलोहु॥
बिन खम्भा अकाश उपजायो। भूमी उपर पहाड़ गिरायो॥
और निहारत प्रभु की रीती। प्रविशत दिनबिचनिशियहनीती॥
दो०—और निशा में दिवसको, करत प्रवेश दयाल।
अद्भुत शक्ति विलोकिये, है प्रभु की विकराल॥१०७॥
अल्लह की नियमत भरी, चलत नदी बिचनाव।
ताकि देखावै सबनको, निजचिन्हौरिअतिचाव*[3] १०८॥

---

१. उद्यान का ही अपभ्रंश अदन बन गया। संस्कृत में उद्यान बाग़ को कहते हैं। २. मं० ५ सि० २१ सू० ३० आ०१०, ११, १४, ५०। †स० १२२, १२३। ३. मं० ५सि० २१ सू० ३१ आ० १, ६, २८, ३०।

†स्वामि कहत वैद्यक की पोथी । है सोऊ सब बिधिसों थोथी ॥
विद्याविरुद्ध[1] लिखी बहु बातैं । इनहु चलाईं अपनी घातैं ॥
याते तुम समुझहु मन माहीं । है क़ुरान ईश्वर कृत नाहीं ॥
❀कहत बहुरि ईश्वर की बानी । सब प्रकार सों जो गुनखानी ॥
लाभ तिनहिं नहिं तनिकौ होई । भाजहि मृत्यु से जो नर कोई ॥
और नबी की नारिन टेरी । कहत जो कोऊ आवहु नेरी ॥
सो प्रत्यक्ष लाज तजि देई । दुगुण किये जायँगे तेई ॥

दो०--पाप देइ तिनकोअवशि, ईश्वरसहज स्वभाव❀[2] ।
†कहतस्वामियहलखिपरत, नबीकेर जो भाव ॥१०६॥

है अपने मन खूब बिचारी । लड़हि युद्ध महँ प्राणनिकारी ॥
नारिन को जब लागहि पापा । नबी बचहिं किमि लगैनपापा ॥
कौन कहाँ को न्याय बतावहु । जो कछु सत्य होय समुझावहु ॥
❀और कहत जगकी जे नारी । घर अपने में रहहु सम्हारी ॥
आज्ञा पालहु प्रीति दृढ़ाई । अल्लह औ रसूल सुखदाई ॥
भोग[3] चुक्यो जब ज़ेद सुनारी । भयो नबी सँग व्याह सुधारी[4] ॥

---

† स० १२४, १२५। [1] आकाश बिना खम्भा के कैसे बना पृथिवी पर पहाड़ों का गिराना दिन में रात का प्रवेश रात में दिन का प्रवेश नियामत की भरी नावें दौड़ाना महाअसंभव विद्याविरुद्ध बातें लिखी हैं। क्या ख़ुदा है जो आसमान पर चढ़ता है उतरता है इससे तुम्हारा ख़ुदा एकदेशी है जो एकदेशी है वह ख़ुदा नहीं हो सकता और दोज़ख़ भरने को डराया करता है दुख देकर तमाशा देखाना चाहता है इत्यादि बातें भरी पड़ी हैं। [2] मं० ५ सि० २१सू०३३ आ० १६,३०। † स०१२६। [3] जब अदा कर ली ज़ेद ने हाजत। यह ज़ेद हज़रत का मुतबन्ना बेटा था। [4] ख़ुदा ने नबी के संग ब्याह कर दिया, ताकि ईमानवालों को तंगी न हो।

अल्लह ने यह रीति चलाई। लावहिं जे इमान सुखदाई॥
ऐसे नबिह न हो स्त्री दुख। व्याहिदीन्हजेहिपावहिं वहुसुख॥
छं०–नबी के उपर नाहिं तंगी किसी की।
जो हैं वस्तु जग में सबी हैं उसी की॥
मुहम्मद नहीं बाप मुर्दे का होता।
समय आपने को वृथा जौन खोता॥ ६२॥
नबी को हलाल स्त्रियाँ वह सबी हैं।
बिना मेहर के प्रेम करती जबी हैं॥
खुशी से जिसे चाहे तू छोड़ देवे।
जिसे चाहे अपनी तरफ खींच लेवे॥ ६३॥
सुनो और लोगों इमाँ लानेवालो।
नबी के घरों में न जाना सँभालो॥[1]॥
†कहा स्वामि अन्याय की हैं ये बातें।
फँसाने को दुनिया निकारी हैं घातें॥ ६४॥
रहें नारियाँ क़ैद में जिस तरह से।
तो इन्सा रहे क्यों नहीं उस तरह से॥
भला नारियों पै ग़ज़ब यह है ढाया।
न मिलती हवा शुद्ध तुमने सताया॥ ६५॥
सो०--कै तो है जग पाप, ब्याह करै सुतनारिसँग।
होत नाहिं संताप, नबी और अल्लाह को॥१४॥
दो०--जहाँ खुले व्यभिचारकी, ईश्वर आज्ञा देत।
जेहिचाहे तेहिसँग रमैं, जेहिचाहे तजि देत॥११०॥
कहहुकवन विधि ईश्वर होई। किमि ईश्वरकृत पुस्तक सोई॥

---

[1] मं० ५ सि० २२ सू० ३३ आ० ३३, ३८, ४०, ५०, ५१, ५२।

† स० १२७।

❀ और कहत पुनि तनि चितदेहू । प्रभु के और वाक्य सुनि लेहू ॥
दुःख न कबहुँ रसूलहि देहू । नबी नारि सँग करहु न नेहू ॥
अल्लह निकट पाप यह भारी । करहु नतुमममवचनविचारी[1] ❀ ॥
†स्वामि कहत कसबात विचारी । तर्कै न कोउ रसूल पिछारी ॥
जो कछु लिखा विलोकहु तेही । पक्षपातयुत देखहु जेही ॥
मुसलमान से कछु ना कहहीं । और सबन को मारन चहहीं ॥
विन शिक्षा सब पशूसमाना । मतलब सिन्धु वनायो वाना ॥
दो०--अरु अल्लह वह पुरुष है, भेजत पवन महान ।
मेघ उठावत रहत वह, बरसत जाइ जहान ॥१११॥
और जिलावत मृतक सदाई । लेत निकारि क़बर से भाई ॥
और बहिश्त माहिं जो रहहीं । ते कबहूँ नहिं रोगकोलहहीं[2] ❀ ॥
†नहिं पदार्थ विद्या यह जानत । वायु पठायो ईश्वर मानत ॥
मृतक कबहुँ नहिं जियत जियाये । चाहे मरे क़बर से लाये ॥
नारि पुरुष जहँ रहत घनेरे । अवशि रोग होवें तिन केरे ॥
अस बातैं जेहि पुस्तक माहीं । सो ईश्वर कृत कबहूँ नाहीं ॥
❀ईश्वर क़सम क़ुरा की खाई । कहत नबी को बात सुनाई[3] ❀
❀कहत बहुरियक ऋषिसोंबचना । श्रेष्ठ बताइ धर्म को अपना ॥
छं०--भरि शुद्ध पात्र फिराइ ऊपर लाइके है धरत जो ।
आनन्ददायक श्वेत मदिरा मद्यपिन के अर्थ जो ॥

---

१. मं० ५ सि० २२ सु० ३३ आ० ५३, ५७,५८, ६७ । † स० १२८ ।
२. मं० ५ सि० २२ सू० ३५ आ० ६, ३५ । † स० १२६ ।

३. ❀ निश्चय तू भेजे हुओं में से है उस पर मार्ग सीधे के उतारा है ग़ालिब दयावान् ने । मं० ५ सि० २३ सू० ३६ आ० २ से ५ । (समीक्षा) यदि क़ुरान ख़ुदा का बनाया होता तो क़सम क्यों खाता । यदि नबी खुदा का भेजा होता तो अपने लैपालक बेटे की स्त्री पर क्यों मोहित हो जाता । यह केवल कथनमात्र है कि क़ुरान के ❀

अरु बैठती हैं निकट सुन्दर आँखवाली नारियाँ।
है आँख नीची रहत तिनकी स्वर्ग में जो नारियाँ॥ ६६ ॥

दो--०तबहि लूत पैग़म्बर, हमने पठयो ताहि।
अवशि ताहि मुक्ती दई, बुढ़िया एक पछाहि[1]॥११२॥

अरु हमने सबको है मार्‌यो। तापीछे सबजगत निहार्‌यो[2]❀॥
†स्वामि कहत तुम जाहि बतावत। मद्य हराम सकल समुझावत॥
पुनि बहिश्त में ताहि देखावहु। अरु नारिन बिच जाहिबिठावहु॥
भला नारि जहँ रहत सदाई। तहँ कस स्थिर होय न भाई॥
जासु दोष बिच यहँ नर फँसई। सोइ बहिश्तमाहिं तेहि डसई॥
मद्य हेत कह लूतहि भेज्यो। आइ शराब माहिं सो रीझ्यो॥
लिख्यो बाइबिल में जेहि भाँती। पुत्रिन संग रम्यो दिनराती॥

❀माननेवाले सीधे राह पर हैं सीधा मार्ग वही जिसमें सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपातरहित न्यायाचरण करना। इसलिये अपने मुँह अपनी बड़ाई अच्छी नहीं॥ स० १२०॥ ❀ और फूँका जावेगा बीच सूर के बस नागहाँ वह क़ब्रों में से मालिक अपने की दौड़ेंगे। और गवाही देंगे पाँव उनके साथ उस वस्तु के कमाते थे सिवाय इसके नहीं कि आज्ञा उसको जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तु का यह कि कहता वास्ते उसके कि हो जा बस हो जाता है। मं० ५ सि० २३ सू० ३६ आ० ५१, ६५, ८२। (समीक्षा) अब सुनिये ऊटपटाँग बातें पग कभी गवाही दे सकते हैं। खुदा के सिवा उस समय कौन था जिसको आज्ञा दी, किसने सुना? और कौन बन गया? यदि न थी तो यह बात झूठी या खुदा ने सब कुछ बना दिया यह झूठी ॥ स० १३१ ॥

[1] छोड़कर। [2] मं० ६ सि० २३ सू० ३७ आ० ४५, ४६, ४८, ४९ ५८, १३३ से १३६ तक। † स० १३२।

अरु दुइ दुइ सुत हैं उपजाये। निज पुत्रिन सों लूत सुहाये॥
दो०--अस पैग़म्बर हुइ सकत, केवल तुम्हरेहि धर्म।
करत रहत निन्दित महा, अनुचित सारे कर्म ॥११३॥
औरन को जो सतावई, मारत है दिन रात।
किमिहुइसकवहईश जग, मानि लेहु मम बात ॥११४॥
❀ एक कहत बहिश्त को हाला। सुनहु लिखा जो देत हवाला॥
द्वार खुले जावहिं जो कोई। भोजन हित मेवा तहँ होई॥
पियन हेत पानी बहुतेरा। सुन्दर नारि तहाँ सब बेरा॥
सबन फ़रिश्तन माथ नवाया। यक शैतान न शीश झुकाया॥
हौं तेहि दोनों करन[1] बनावा। किमि अभिमान भयोतेहि भावा॥
पूछा तेहि सन कहिये भाई। किमि नहिं बैठ्यो शीश नवाई॥
कह शैतान श्रेष्ठ हम अहहीं। और अनन्द सहित नित रहहीं॥
आग से हमहिं बनायो डाटी। अरु आदमहिं गूँधिकेमाटी❀[2] ॥
† कहत स्वामि कस स्वर्ग बतावा। तहँ सब भाँति सुःख दर्शावा॥
दो०--अरब देश दुखमय रह्यो, सुख को तहाँ अभाव।
भरतखंड को स्वर्ग सम, समुझायो अति चाव ॥११५॥
सो०--स्त्रिन को दै लोभ, सकल फँसाये जाल में।
रहा न तनिकौ लोभ, आइ लड़े संग्राम सब ॥१५॥
बात ख़ुदा की सबहुन मानी। यक शैतान कीन्ह मनमानी॥
करि न सक्यो ताको कछुहानी। जो शैतान कीन्ह शैतानी॥
दोउ हाथन आदमहिं बनावा। आयो मानुष को है भावा॥
जब शरीर नहिं कस है हाथा। लै माटी गूँधत निज हाथा॥

---

[1] हाथों से। [2] मं० ६ सि० २३ सू० ३८ आ० ५० से ५२, ७३ से ८२। † स० १३३।

सर्वशक्तिमन ईश न होई। प्रभुता कही ईश की जोई॥
डरत न है शैतान कदाई। सत्य कहत जो रहत सदाई॥
ताते वह ईश्वर नहिं होई। आज्ञा मानि सकै ना कोई॥
❀बहुरि कहत प्रभु की जो रीती। ईश चलावत अपनी नीती॥

दो०--क्षमा करत अल्लह सदा, निश्चय सारे पाप।
ह्वै दयालु रक्षा करहि, रहै न कोउ संताप॥११६॥

मूठी बिच पृथिवी सब राखत। आवहि जौलौं दिवस क़यामत॥
दाहिन कर बिच गगन लपेटे। सदा रहत जो दिशन समेटे॥
भूमि प्रकाशवान हुइ जाई। निज मालिक की लखिमनुसाई॥
आगे कर्मपत्र को राखी। बोलि पैग़म्बर अरु जो साखी[1]॥
होय न्याय इन सबके आगे। ईश्वरकृपा कर्म जेहि जागे❀[2]॥
❀जो जानहिं ताके हितलागी। उतरी है क़ुरान गुनपागी॥
पाप क्षमहि तोबा सुनि लेई। ईश्वर दयावान चित देई❀[3]॥

सो०--†कहत स्वामि समुझाय, पाप क्षमा जो करत प्रभु।
होय पाप अधिकाय, दयाहीन हो ईश तत्र॥१६॥

दो०--एक दुष्ट पर यदि दया, करै क्षमा जो कोय।
तो अपराध बढ़ै तहाँ, अपराधी बहु होंय॥११७॥

ईश्वर अग्निसमान लखाई। होत प्रकाशमान का भाई॥
कर्मपत्र कहँ हैं यक ठौरे। कौन लिखत तिनके सब ब्यौरे॥
यदि पैग़म्बर साक्षिभरोसे। न्याय करत यह नृप हैं जैसे॥
यदि पैग़म्बर साक्षिसहारे। न्याय करत जो बिना विचारे॥
तो असमर्थ महा तव ईशा। होय समर्थ न सो जगदीशा॥
कर्म अनुकूल न्याय जो करई। तो उत्पत्ति कर्म चित धरई॥

---

[1] गवाह। [2] मं० ६ सि० २४ सू० ३९ आ० ५३, ६७, ६९।
[3] मं० ६ सि० २४ सू० ४० आ० २, ३। † स० १३४, १३५।

जो पुस्तक की करत बड़ाई। यह जग में ईश्वर से आई॥
दो० -जा महँ किंचित सत्य है, असत महा अधिकाय।
सोऊ ताके संग मिलि, बिगड़त है सब ठाँय ॥११८॥
याते ईश्वरकृत नहीं, यह पुस्तक देखराय।
जे मानत ते पापमय, अरु क़ुरान दुखदाय ॥११९॥
*कहत बहुरि दो दिन के माँई। गगन साज लिय तुरत बनाई॥
जाको काम ताहि पर डारा। देइ गवाही तनु परिवारा॥
कान आँख आदिक सब कोई। चर्म सहित इन्द्री हैं जोई॥
तबहि त्वचा सनवह जन बोलेहु। साक्षिदेहुकिमिपुनिदुख भोगेहु॥
उतर दीन मोहिं ईश बोलावा। आपनि शक्ति सबन गोहरावा॥
तासु बंचन हम मानहिं नीके। मुर्दा ह्वै हम आये जीके॥
सोई जियावनवारो साईं। जो पालक जन है सब ठाईं॥
मुर्दन को जो जीवन देई। तेहि सबकोई ध्यान धरेई ❀[1]॥
दो०--❀आसमान अरु भूमि की, कुञ्जी ताके पास।
भोजन हित खोलत रहत, करतजोकोऊआस ॥१२०॥
छं०—जेहि चहै देवै सुःख अरु जेहि चहै दुख देवै घना।
अरु जाहि चाहे देत बेटी चाहे बेटा सुखमना॥
करे चाहे जेहि नारी सपूतिनि चाहे दे बाँझिन बना।
नहिं शक्ति काहू पुरुष में करि बात ले बानावना ॥६७॥
सो०-परदे के बिच ईश, पठवत है संदेश को।
हाथ फ़रिश्तन ईश, भेजत है इलहाम को❀[2] ॥१७॥
†स्वामि कहत यह ईश तुम्हारा। सर्वशक्तिमन जाहि पुकारा॥

---

[1] मं० ६ सि० २४ सू० ४१ आ० १२, २०, २१, ३९। [2] मं० ६ सि० २५ सू० ४२ आ० १२, ४९, ५०, ५१। † स० १३६, १३७।

जब दो दिवसनमाहिं बनाया। सात गगन जेहि ने निर्माया॥
सर्वशक्तिमन यक क्षणमाहीं। उत्पति जगत करत सबठाहीं॥
कान आँख जड़ रूप बनाये। पुनि इनसों केहि विधि बतराये॥
इनसों साक्षि प्रयोजन पाता। तो जड़ कबहूँ नाहिं बनाता॥
बोलत त्वचा कौन विधि भाई। पूछत जासों बात बनाई॥
बात असम्भव कहत सुनाई। मुर्दा जियत कबहुँ नहिं भाई॥
कुंजी बहुत ख़ुदा ढिग हुइहैं। खोलहिं ताले सकल रिसैहैं॥

दो०-भर्माया सब जगत को, कहिके एकहि बात।
सब कुछ ईश्वर करत है, जो चाहे हिय तात॥१२१॥

नारि पुरुष दोउ लालच माहीं। जाय फँसेउ दुख सहत सदाहीं॥
यह सब बात लड़कपन केरी। कही जौन तुमने बहुतेरी॥
नारिन को जो ख़ुदा सुत देई। अन्य पशू किमि उपजत तेई॥
नारि पुरुष के बिन सँग कीन्हे। कहहु पुत्रकेहु बिधि कहुँ चीन्हे॥
जब परदा[1] बिच ईश्वर रहई। तबसो निराकार किमि अहई॥
*पुनि यक कहत सुनहुऋषिराई। है रसूल की जो प्रभुताई॥
आयो जब ईसा यहि ठामा। प्रकटप्रमान साथ लै कामा*[2]॥
*कहत ईश पकरहु तेहि धाई। और घसीटहु खूब बनाई॥
नरक मध्य तेहि मारि गिरावहु। जहँ अनाथ निर्बल कोउपावहु॥

---

१. परदे के बाबत तफ़सीरहुसेनी में लिखा है कि हज़रत मुहम्मद साहब दो परदों में थे और ख़ुदा की आवाज़ सुनी। एक परदा ज़रीका, दूसरा सफ़ेद मोतियों का। दोनों परदों के बीच ७० वर्ष के चलने का मार्ग था। (बुद्धिमान् लोग विचार करैं कि ख़ुदा है या परदे में बात करनेवाली स्त्री है। इन लोगों ने ईश्वर की ही दुर्दशा कर डाली। कहाँ वेद प्रतिपादित ईश्वर, कहाँ क़ुरान का बताया हुआ परदे की ओट बात करनेवाला! यह किसी प्रकार विद्वानों की बातें नहीं हो सकतीं।)

२. मं० ६ सि० २५ सू० ४३ आ० ६३।

दो०--नयन चपल गोरा बदन, सुन्दर युवती नारि।
ब्याहि देहिं तिन सबन को, रहहिं जो बचन सम्हारि❀[1] ॥१२२

छं०—❀अब मिलहु तुम उनसों जो काफ़िर भये हैं जग आइकै।
मारहु यहाँ तक चूर होवहिं त्यागिये अपनाइकै॥
अरु कठिन कारावास दीजै नाश करिके शक्ति को।
है ग्रामते हमने निकारयो चल दिये आशक्त हो॥६८॥
कोऊ सहायक नहिं बन्यो जब मार की हमने महा।
अब बड़ाई स्वर्ग की सुनिये करत हैं जो तहाँ॥
तहँ रहत पावन करि प्रतिज्ञा बहति नहरें शुद्ध जो।
अरु दूध की नहरें अधिकतर नहिं बदलता स्वाद जो॥६९॥
हैं मद्य की नहरें भरी आनंद देतीं सबन को।
अरु शहद पावन भरी नहरें मिलहिं निशि दिन सुजन को॥
मिलहिं मेवा फल सोहावन नहर के बिच बिच लगे।
है "इष्ट" की यह यक बड़ाई मिलहिं होवहिं सबसगे❀[2]७०॥

†कहत स्वामि ईसा जब आयो। तब दूसर किमि बहुरि पठायो॥
जो ईसा उपदेश सुनावा। भयो विरोध क़ुराँ को भावा॥
अरु इंजील तासु विपरीता। कौन भाँति से होय सुभीता॥
मारि घसीट बेगि लै जावें। दोज़ख़ में लै ताहि गिरावें॥
कहहु कहा यह न्याय की बाता। ख़ुदा घसीटत मारत ताता॥
जब इनके ईश्वर यहि भाँती। किमि न होहिं चेला उत्पाती॥
मानुष सम सो ब्याह करावे। यवन पुरोहित सम दरशावे॥
याही ते है गदर मचायो। ख़ुदा क़ुरान नबिहि समुझायो॥

दो०--सबको दुख देवै सदा, निज स्वारथ के हेत।
दयाहीन सब कोइ कहत, ख़ुदा रसूल समेत॥१२३॥

---

[1] मं० ६ सि० २५ सू० ४४ आ० ४७, ५४। [2] मं० ६ सि० २६ सू० ४७ आ० ४,१३,१५। † स० १३८ से १४०।

जेहि बहिश्त की करत बड़ाई। दैकर लोभ नरन भरमाई॥
कहहु नवीन कौनसी बाता। कही बहिश्त माहिं जो ताता॥
दूध शहद मदिरा बहुतेरी। मिलहिं यहाँ पर "इष्ट" घनेरी॥
जो तुम दूध नहर बतरावहु। अरु यहही सब कहँ समुझावहु॥
सो हुइ सकत केहू बिधि नाहीं। बिगड़त दूध एक निशि माहीं॥
याते करि विचार मन लाई। सोचहु समुझहु चित्त दृढ़ाई॥
नहिं क़ुरानमत मानन योगू। जाहु न ता ढिग कोई लोगू॥
*कहत एक सुनिये ऋषिराई। है इतिहास यवन सुखदाई॥

दो०--अवनि हिलाई जायगी, अरु पहाड़ बहु भाँति।
भुनगे सम सब होयगी, टुकरा टुकरा जाति॥१२४॥

दाहिन ओर सों दाहिन रहहीं। बाम भाग बाईं दिशि अहहीं॥
स्वर्णपलँग तहँ सोहहिं नीके। बिने तार सों उपर ज़मी के॥
अरु तकिया दोह्नौ दिशि धारी। सोवन हेत महा सुखकारी॥
मद्यपात्र कर गगन[1]-मशाला। जल हित लीन्हें पात्र विशाला॥
घूमत फिरहिं सदा यह बालक। एक आयु के हैं उर घालक॥
मेवा मिलहिं तहाँ सब बेरा। और मांस पशु पक्षिन केरा॥
सुघर नयन की नारि सयानी। मिलहिं तहाँ सबको मनमानी॥
हमने नारि कुमारि बनाईं। तहाँ सोहागिनि नारि सदाईं॥

दो०--भरहु पेट आदर सहित, बाल कुमारिन साथ।
शपथ खाइ यह सब कहत, हैंतुम्हरेसब हाथ*[2]॥१२५॥

†कहत स्वामि देखहु यह लीला। निर्माता क़ुरान को हीला॥
हिलत रहत भूमी दिन राती। तुम्हहिं भूमियह अचल देखाती॥

---

[1] आफ़ताब। [2] मं० ७ सि० २७ सू० ५६ आ० ४ से ६ तथा १५ से २४ और ३५ से ३७, ५३, ५७। † स० १४१।

पक्षी उड़त रहत सब भाँती । केहि बिधि उड़त पहाड़न पाँती ॥
स्वर्णतार सों बिनो बतावत । पलँग सुवर्ण जहाँ बतरावत ॥
तहँ अवश्य हुइहैं यह लोगू । बढ़ई और सोनार सँयोगू ॥
तकिया धरि सोवत सब कोऊ । अथवा कर्म करत तहँ सोऊ ॥
यदि न करत तौ रोगी होई । शीघ्र मरहिं निज जीवन खोई ॥
यदि तहँ कर्म करत सब कोई । जस यहँ करत रहत थे सोई ॥

दो०--कवन अधिकता है तहाँ, कहत बहिश्त पुकारि ।
यहि स्थल जेहि भाँतिसों, निजकर्तब अनुहारि ॥१२६॥

यदि तहँ बालक रहहिं सदाहीं । तो पितु मातु अवशि दर्शाहीं ॥
अरु सब सासु ससुर परिवारा । बसेउ ग्रामवत भीड़ अपारा ॥
तहँ पर मेवा मांस मिठाई । मिलहि तो कहा बजार लगाई ॥
मद्य मांस अरु नारी बालक । मिलहिं जहाँ पर सबके लायक ॥
तेसब सदा कुमारि सोहागिन । तहाँ रहत का बनिके योगिन ॥
केतिक के विवाह हुइ जाहीं । केतिक पौत्र सहित दर्शाहीं ॥
अरु जे रहहिं सदा तहँ काँरी । भोगहिं अपनी आयु बिचारी ॥
खात शपथ जो कोउ जग माईं । मनुज होय या ईश्वर साईं ॥

सो०--सुनत हिया अकुलाय, संगति रहित अनेक विधि ।
कहत बहुरि समुझाय, स्वर्ग नर्क की अस कथा ॥१८॥

छं०-❀अल्लाह रखता मित्र है जे लड़हिं उसके मार्ग में ।
जो मित्र बनना चहहु लोगो चलहु अल्लह मार्ग में❀[1] ॥
❀कहता ख़ुदा है अय नबी जो वस्तु हमने हलाल[2] की ।
किमि कहहु तुम संसार में यह वस्तु हमने हराम[3] की ॥७१॥

---

[1] मं० ७ सि० २८ सू० ६१ आ० ४ । [2] ग्रहण किया जावे । [3] जो त्याग दिया जावे, यह हलाल हराम का मसला मुहम्मद साहब और ख़ुदा में चला करता था ।

यदि चहहु तुम हर्षित रहें नारी हमारी ही सदा।
अल्लह दयालू क्षमा करता अपने प्यारे की सदा✽[1] ॥
†कहस्वामि सुनिये ध्यान देकर कर सकें बरनन कहा।
अल्लह लड़ा को लड़ाता लड़ सके कोऊ जहाँ ॥७२॥

दो०-कहहु ख़ुदा केहि भाँति सो, करत रारि दिन राति।
मित्र बनावत यवनदल, अन्य शत्रु सब भाँति ॥१२७॥

✽बहुरि कहतयक बात सुनाई। ख़ुदा रसूल जौन बतराई ॥
सुनहु नबी झगड़ा हिन्दुन सों। करहु सदा सखती उनहीं सों ॥
अरु जो गुप्त शत्रु जग होहीं। लड़हु क्रोधकरितिनकोजोहीं✽[2] ॥
✽औ जब आसमान फटि जैहै। तेहि दिन वह आलस वसहुइहै ॥
पुनि ऊपर जो अहैं किनारे। रहहिं फ़रिश्ता तहाँ बिचारे ॥
निज मालिकका तखत उठावहिं। आठ पुरुष सबमिलिसधवावहिं ॥
तादिन तुम सबतहँपर आवहु। छिपहि न कोई बात छिपावहु ॥

दो०-कर्म पत्र जो ढिग रहत, ताहि देख़ावहु आय।
दोनहु हाथन जो गह्यो, परमेश्वरसे पाय✽[3] ॥१२८॥

†स्वामिकहत यह उर में धारहु। निज ईश्वर की वात बिचारहु ॥
मुसलमान सब अरु पैग़म्बर। करत लड़ाई को आडम्बर ॥
ख़ुदा सलाह देत दिन राती। होहु सदा हिन्दुन के घाती ॥
केहिविधि फटत अकाश बतावहु। का है वस्त्र समान सुनावहु ॥
ऊपर लोकन को आकाशा। कहत जो हौ तुम परम हुलासा ॥
तौ यह बात ठीक नहिं होई। विद्या विरुद्ध कहत सब कोई ॥
जब तेहि आठ कहार उठावें। तखत उपर बैठो बतरावैं ॥
निश्चय मूर्तिमान है साई। सर्व शक्तिमन केहि विधि होई ॥

---

[1] मं० ७ सि० २९ सू० ३६ आ० १, ५। † स० १४२, १४३।
[2] मं० ७ सि० २९ सू० ३६ आ० ९। [3] मं० ७ सि० २९ सू० ६९ आ० १६ से १९, २५। † स० १४४, १४५।

दो०--दक्षिण कर धर्मात्मन, पापिन बायें हाथ।
कर्मपत्र देवे सदा, रहै जीव के साथ ॥१२९॥

सर्वज्ञता न ता महँ रहई। जो वह ईश तुम्हारो अहई॥
❀बहुरि कहतजबकबरसेनिकसहिं। सहस पचास वर्ष को भुगतहिं॥
दौडति आवहिंगे तेहि ठाहीं। न्याय करन हित जहाँ बुलाहीं।
❀ नाना विधि सों है उपजावा। नहिं देखेउ केहि भाँति बनावा॥
ऊपर तले अकाश बनाये। गनती में जो सात सुहाये॥
चन्द्र बीच कीन्हा परकाशा। अरुदीपकसमसूर्य प्रकाशा❀[1]॥
❀मसजिद ख़ुदा अर्थ बनवाई। बनहु उपासक तुम तहँ जाई॥
ईश्वर संग काहु को नाहीं। करहुपुकार न तुमकेहु ठाहीं❀[2]॥
❀सूर्य चाँद दोनों यक ठौरा। किये जायँगे जानहु ब्यौरा❀[3]॥
† सहस पचास जो दिन ठहराई। प्रलय अवधि अनुचित बतराई॥
छं०- कह स्वामि जो उत्पन्न कीन्हों जीव को संसार में।
सो अमर नाहीं हुइ सकत किमि रहत स्वर्ग विहार में॥
उत्पन्न होय सो नाश होवे नियम प्रकृती जानिये।
ताते सकल जंजाल त्यागहु धर्म वैदिक मानिये।७३॥

दो०--और बात आकाश की, कहीं जौन तुम तात।
वह केहुभाँति नहुइसकत, महाअसम्भवबात ॥१३०॥

है बिभु निराकार सब ठाँई। जो आकाश केरि प्रभुताई॥
युक्ति तुम्हारि असंगत भाई। जो आकाश हेत बतराई॥
अरु कलमा[4] बिच पढ़त सुनाई। अल्लहसंग रसूल मिलाई॥
कहत क़ुरान न टेरहु कोई। ईश्वरसंघ न दूसर होई॥
पर तुम चलत क़ुरानविरुद्धा। कलमा पढ़त करत अति श्रद्धा॥

---

१. मं० ७ सि० २९ सू० ७ आ० ४ सू० ७१ आ० १५ सू० ७२ आ० १८। २. ३ मं० ७ सि० २९ सू० ७५ आ० ९। † स० १४६ से १४९। ४. लाइलाहः इल्लल्लाहो मुहम्मदुर्रसूलल्लाह।

और ख़ुदा घर मस्जिद जानहु। तबकिमि बुतपरस्त नहिंमानहु॥
जिमि जैनी पौराणिक भाई। करत ताहि विधि तुमहूँ आई॥
सूर्य चन्द्र केहि विधि यकठौरा। हुइसक मोहिं बतावहु ब्यौरा॥

सो०--बेसमझी की बात, कहत रहत निशि दिवस सब।
हुइ न सकत सो तात, वह ईश्वर केहु भाँति सों॥१९॥

❁कहत बहुरि बहिश्त के माहीं। सदा रहत बालक तेहि ठाहीं॥
करि अनुमान उन्हें जो देखहु। बिखरे मोतिन के सम पेखहु॥
पहिनाए जैहहिं तहँ कँगन। सुन्दर खाँदी केर सुहावन॥
मिलहिं तहाँ मदिरा अति पावन। प्याला सुन्दर भरा सुहावन[1] ❁।
❁ बदला मिलहि कर्म अनुकूला। कछु न होइ याते प्रतिकूला॥
रूहैं और फ़रिश्ता दोऊ। बाँधि कतारखड़े हों सोऊ[2] ❁॥
† कहत स्वामिकेहि कारन बालक। हैं मोती सम सब सुखदायक॥
पुरुष नारि सों तृप्त न होई। जो लड़िका राखत तहँ सोई॥

दो०--है आश्चर्य कछू नहीं, नरमैथुन की रीति।
प्रचलित इनहीं सों भई, रही न मनु की नीति।१३१॥

जहँ जेवर अरु चलहि शराबा। कस है यह बहिश्त को भावा॥
कर्म अनुसार मिलत फल जोई। रहत बहिश्त सदा किमि सोई॥
हूर फरिश्ता औ तहँ बालक। रहहिंसदाहों केहि विधि लायक॥
पियहिं शराब होहिं मतवाले। मस्त होहिं उर छेदहिं भाले॥
प्रलयकाल लगि सब कोउ भाई। बैठो रहत आलसिन नाँई॥
❁ कहा खुदा सेना को जोरी। किय शैतान संग बरजोरी॥
औरहु बहुत असम्भव[3] बातैं। लिखी क़ुरान बीच हैं घातैं॥

---

[1]. सं० ७ सि० २९ सू० ७६ आ० १९ २१ ३८। [2]. मं० ७ सि० ३० सू० ७८ आ० २६ ३४ ३८। † स० १५० व १५१ [3].* जब कि सूर्य लपेटा जावे। और जब कि तारे गँदले हो जावें। और जबकि पहाड़ चलाये जावें। और आसमान की खाल उतारी जावे।

दो०--अरु जब मालिक आवही, पंक्ति फरिस्तान बाँधि ।
ता दिन देखा जायगा, दोज़ख़ बुधिकोसाधि[1] ❀१३२॥
❀पैग़म्बर ने अस कहा, रक्षा करहु सम्हारि ।
उँटनी जो है खुदा की, राखहु ताहि निहारि[2] १३३॥

❀तारे झड़े औ आसमा फट जाय तब ।
कबरैं जिलाई चीरे दरिया जाय जब ॥
क़स्म खाकर यह कहा अल्लाह ने ।
है कुराँ महफूज समझो लोह से ॥
मक्र करता है खुदा यक मक्र ही के वास्ते ।
यह महा बेसमझी बातें दी नबीके वास्ते[3] ॥ †
†तारे झड़ना मक्रकरना आसमाँ फटना कहा ।
कबरैं उठानाकसमखानायहखुदाकैसेहुआ ७५॥

अरु तेहि पानी देहु पिलाई । मानि करी बहुतै चतुराई ॥
काटेहु पाँव ताहि झुटकाई । अरुदी "रब" ने मारिगिराई[4]* ॥
*ताको अवशि घसीटैंगे हम । सहित साथवालों के यकदम ॥
तिनके माथे हैं अपराधी । तिनहिं बोलावहिंदोज़ख़ बाँधी ॥
*हमने अवशि कुरान उतारा । बीच निशा जबथा अँधियारा ॥
पवित्र आत्मा तेहिनिशि माहीं । सहित फ़रिश्तन आवहिं जाहीं ॥
करहिं सदा सब काम सम्हारी । निज जनकोकर्तव्य निहारी[5]* ॥
† कहत स्वामि सुनिये ममवाता । हमरे हिय बिच जौन सोहाता ॥

१–मं० ७ सि० ३० सू० ८२, ८५, ८६ आ० १ से ४, २१, २२। २.मं० ७ सि० ३० सू० ८१ आ० १, २, ३, ११ । ३. मं० ७ सि० ३० सू० ६१ आ १३, १४ । (समीक्षा १५१ १५२) ४. मं० ७ सि० ३० सू० ६६ आ० १५, १६, १८ । ५. मं० ७ सि० ३० सू० ६७ आ० १, २, ४ । † स० १५३ से १५६ ।

दो॰--का ईश्वर सेनापती, सेना लै जो जाय।
लरै लड़ाई नेक विधि, अपनो यूथ बनाय ॥१३४॥
का सवार उँटनी पर हुइकै। घूमत खुदा ताहि पर चढ़िकै ॥
जानि परा उँटनी जेहि देशा। रही जहाँ पर फिरत विशेषा ॥
सोइ अरबवासिन में कोई। किय कुरान निर्मित है सोई ॥
अरु जब प्रलयकाल नहिंआवा। उँटना कोकिमि आइ सनावा ॥
खुदा कहा चपरासिन कामा। करत रहत सो सबके धामा ॥
निज हाथन सों नरन घसीटत। अपने करसों मारत पीटत ॥
कहहु कवन विधि ईश्वर होई। करत मनुज सम कारजसोई ॥
एकहि बार कुरान उतारा। अथवा आयो बारहि बारा ॥
दो॰--सत्य होय केहि भाँति सों, कौन तुम्हारी बात।
निशि अँधियारी जब रही, कापुनिपूछततात ॥१३५॥
हम जो कह्योताहि अवलोकहु। ऊपर नीचे कछु नहिं पेखहु ॥
यह प्रबन्धकर्ता दर्शावत। हुकुम ख़ुदा से जोकरि पावत ॥
शपथ खात निशिदिन बहुभाँती अश्वादिक जो पशु की जाती ॥
सज्जन पुरुषहु कबहु न करहीं। शपथ खान को उरबिच धरहीं ॥
विषय क़ुरान कह्यो समुझाई। बुधवर सुनहिं विचार दृढ़ाई ॥
लखि विद्वान विचारहिं भावा। कहत क़ुरान ईश से आवा ॥
नहिं ईश्वर कृत हमरी जानी। लिय लिखाइ केहुबुधवरआनी ॥
किंचित दोष प्रकट हम कीन्हा। भरी दोष पुस्तक सब चीन्हा ॥
दो॰--ताते मम भाषन सुने, पड़हिं न धोखे माहिं।
जन्म व्यर्थ ही खोवई, विद्या बुद्धि नशाहिं ॥१३६॥
जो कछु या महँ सत्य कहानी। वह वेदादि शास्त्र से आनी ॥
सत्य जो बात ताहि हम मानत। ताहीविधि सबकहँ समुझावत ॥
मानहु सत्य जहाँ कहुँ होई। असत त्यागि दीजै सब कोई ॥
यामें विषय अविद्या केरा। भरा पड़ा भ्रमजाल घनेरा ॥

पशुवत देवे आत्म बनाई। शान्तिभंग करना सिखलाई॥
बाढ़ै द्वेष दुःख हो उन्नत। और कर्म शुभ की हो अवनत॥
बारहिंबार बात यक आई। पुनरुक्ती की तहँ अधिकाई॥
ईश्वर कृपा करहि सब ऊपर। मिलहिं परस्पर रहहि न दूसर॥
दो०--एक दूसरे की सदा, उन्नति में चित देय।
पक्षपात को त्यागिके, हम सबको ही धेय॥१३७॥
दो०--या विधि यदि विद्वान सब, सुनहिं हमारी बात।
चलहिं सकल मेरे सदृश, सुख पावहिं सब तात॥१३८॥
छुटहि परस्पर केर विरोधा। होय सबन को जब अस बोधा॥
सत्य एक पथ सब गहि लेहीं। त्यागि असत पथको चितदेहीं॥
कछुक समीक्षा करि देखराई। बुधवर सोचहिं चित्त दृढ़ाई॥
समुझहिं ग्रंथकार को सारा। जो क़ुरान लिख दीन सहारा॥
यदि भ्रम होय केहू थल माहीं। लिखा अन्यथा परै लखाहीं॥
तौ तेहि शुद्ध सकल करि लेहू। सत्य विचार सहित चित देहू॥
और सुनहु यक बात अनोखी। बहुतक यवन कहतअतिचोखी॥
वेद अथर्व विलोकहु जाई। पावहु हमरो धर्म सदाई॥
दो०--अल्लोपनिषद[1] तहाँ पर, पढ़हु विचारहु जाय।
तबकेहि विधि तुम कहत हो, हमसबको बिलगाइ॥१३९॥

---

[1]. अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणादिव्यानि धत्ते। इलल्ले वरुणो राजा पुनर्द्दुः। हया मित्रो इल्लां इल्लल्ले इलां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः॥१॥ होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्रमहासुरीन्द्राः अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम्॥२॥ अल्लो रसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम्॥३॥ आदल्ला बूकमेककम्। अल्ला बूकनिखातकम्॥ ४ ॥ अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा। अल्ला सूर्य्यचन्द्रसर्वनक्षत्रा॥५॥ अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परमन्तरिक्षाः॥६॥ अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम्॥७॥

जब प्रत्यक्ष मोहम्मद साहब । लिखे रसूल वेद में नायक ॥
तब मम धर्म वेद से आयो । ताही ते यह सबको भायो ॥
उतर देहु तिनको यहि भाँती । तुम सब भाँति महा उत्पाती ॥
यदि न वेद तुम देखा होई । देखहु मम समीप है सोई ॥
आदि से अन्त सबै अवलोकहु । केहु स्थल यह लिखा न पेखहु ॥
कहुँ न नाम पैग़म्बर केरा । अथर्वसंहिता को सब हेरा ॥
गोपथब्रह्मण शाखा जानहु । अथर्ववेद की है पहिंचानहु ॥
तिन काहू बिच नाहिं निशानी । कही सकल अपने मनमानी ॥

दो०--शाह अकब्बर के समय, लिखी यहै अनुमान ।
है कछु अर्बी[1] संस्कृत[2], लेखक को तेहि मान ॥१४०॥

या विधि की औरहु बहुतेरी । मतवादिन ने लिखी घनेरी[3] ॥
तब यक कहत ऋषी सों आई । कहत कवन विधि से तुम भाई ॥

इल्लां कबर इल्लांकबर इल्लां इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥ ८ ॥ ओम अल्ला इल्लला अनादिस्वरूपाय अथर्गणश्यामाहुं ह्री जनान् पशून् सिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट् ॥ ९ ॥ असुरसंहारिणी ह्रीं हुं अल्लो रसूल महमदरकबरस्य अल्लो अल्लाम इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥ १० ॥ इति ॥

[1] अस्माल्लां और इल्ले अरबी । [2] मित्रावरुणादिव्यानि धत्ते संस्कृत यह १० अंक में देखो । इसी प्रकार पूरी उपनिषद् में जान लो । अकबर शाह के समय में किसी ने, जो संस्कृत और अरबी जानता होगा, उसने लिखा है । अर्थ के विचार से कृत्रिम व्याकरण रीति के विरुद्ध पाया जाता है । [3] खोरोपोपनिषद्, नृसिंहतापिनी, रामतापिनी, गोपालतापिनी इत्यादि बहुत सी हैं ।

अब लौं कह्यो न काहू भाई। कही जौन विधि तुमने आई।।
ताते केहि बिधि तुम्हरी बाता। मानहिं हम कहिये किमताता।।
कह ऋषि सकल बताह अपावन। केवल धर्म हमारे पावन।।
धर्म हमारोहि मुक्तीदायक। अरुसब भाँतिनसुःख विधायक।।
तौ केहि की हम मानहिं बाता। जब सबको निज धर्म सुहाता।।
हम मानहिं शुभ गुन जेहि माहीं। सत्य अहिंसा दया सुहाहीं।।

दो०--याही विधि के और गुन, होहिं धर्म जेहि माहिं।
हम मानहिं ताको अवशि, धारहिं हिये सराहिं।।१४१।।

अरु जामहँ हैं वाद विवादा। ईर्षा द्वेष असद मर्य्यादा।।
हैं वे पन्थ त्यागिबे लायक। सदा सुजन को हैं दुखदायक।।
चलन सत्य पथ जो तुम चहहू। वैदिक धर्म आइ सब गहहू।।
यहही देत सबन को अवसर। करहि विचार बुद्धि सों सबनर।।
तर्कबुद्धि सों कारज कीजै। सब मिलि पक्षपात तजि दीजै।।
सत्य विचार हेत यह शिक्षा। करि देखराई सबन समीक्षा।।
अब तुमहू तनि लेहु बिचारी। सत्य भाव को हिय बिचधारी।।
है जग सत्य वेद मत एका। सकल चलहु करि हृदय विवेका।।

सो०--नाथ सुनायो मोहिं, यवनपन्थ की कछु कथा।
अब जान्यों यह होहिं, अवशिलड़ाकाअबुधसब।।२०।।

दो०--सकल सुनाई ऋषि कथा, भयो नाथ संतोष।
भ्रम न रह्यो कछु हृदय मम, गयो मान मद रोष।।१४२।।

सत्य-सागर चतुर्दश तरङ्ग स० प्र० १४ स० समाप्तम्

ओ३म्

अथ स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

दो०-हे गुरु परम पुनीत तुम, शिक्षा दई महान।
ऋषिवर की आनँदभरी, कथा सुनी सुखदान ॥ १ ॥
मानव को कर्तव्य वहु, अरु धर्मन को सार।
नाथ सुनायहु मोहिं सब, दयानन्द अनुसार ॥ २ ॥

सकल कथा हम सुनी सुहाई। सतसागर बिच जौन लखाई ॥
तरँग चतुर्दश सुनि अनुमाना। कह्यो ऋषीश्वर जौन विधाना ॥
सहित प्रमान कही सब बाता। करी समीक्षा सुन्दर ताता ॥
अपनो मत कहुँ नहिं दर्शायो। या गुरुवर मोहिं नाहिं सुनायो ॥
अब पुनि कृपा करहु मम ऊपर। ऋषि मन्तव्य सुनावहु सादर ॥
जाते मोर जाइ सन्देहा। होय अधिक ऋषिवर में नेहा ॥
अब भ्रमजाल पड़हिं हम नाहीं। गुरु की कृपा सराहत जाहीं ॥

दो०--कह्यो गुरू हे शिष्य सुनु, है तुम्हार बड़ भाग।
पूछत परम सनेह सों, करत महा अनुराग ॥ ३ ॥

सो०--शिष्यन के हित लागि, कह्यो ऋषी मन्तव्य निज।
पक्षपात को त्यागि, नहिं मानत सोऊ कह्यो ॥ १ ॥

सोइ सुनहु हम तुमहिं सुनावहिं। चलहिं तासु पथते सुखपावहिं ॥
सर्व तंत्र सिद्धान्त सुहावन। कहत ऋषी हम मानत पावन ॥
अरु आगेहू मानहिं भाई। सत्य सनातन धर्म सुहाई ॥
जासु विरोध न करि सक कोई। मानन योग सबन कहँ सोई ॥
विद्यारहित अन्य मतवाले। भरमावहिं जो हिय के काले ॥
तिनकी बात कबहुँ नहिं मानहु। जो अन्यथा अनर्गल जानहु ॥

मानहिं आप्त पुरुष जग माहीं । मानहु तेहि तुम सकल सराहीं ॥
आप्त पुरुष जो मानत नाहीं । तुमहु ताहि त्यागहु सब ठाहीं ॥
दो०--वेद आदि सदशास्त्र जो, ब्रह्मा को लै आदि ।
अरु जैमिनि पर्य्यंत लौं, कहे वाक्य अविवादि ॥४॥
तिनको हम मानत सदा, और सुनहु मम बात ।
सबके सन्मुख जो कछू, करत प्रकाशित तात ॥५॥
निज मन्तव्य ताहि को मानहु । मानन योग एक सम जानहु ॥
सब कोउ जानहि एक समाना । तीनहु काल होय नहिं आना ॥
मम इच्छा तनिकहु यह नाहीं । चलहि कोउ मत अन्य कदाहीं ॥
मानहुँ सत्य सत्य मनवाहुँ । मार्ग असत्य सदा छोड़ावावहुँ ॥
यदि कहुं पक्षपात उर धरते । तौ केहुँ मत के गुरु बनि फिरते ॥
फैले देश विदेशन माहीं । अधरमयुत बहुपन्थ लखाहीं ॥
तिन महँ मैं न परयों केहुकाला । और फँस्यों नहिं काहू जाला ॥
धर्मयुक्त जो बात लखाई । मानहु ताहि सदा हर्षाई ॥
दो०--इच्छा इनके त्याग की, करहु न कबहूँ भूल ।
जो कोऊ त्यागन करत, वह नर नशत समूल ॥६॥
ता कहँ मानुष कोउ न कहई । त्यागि धरम अधरम रत रहई ॥
जो जग मननशील नर होई । निज सम जानहि दूसर सोई ॥
दुख सुख हानि लाभ सब केरा । अपने सम समुझहिं सब बेरा ॥
हो अन्यायी जो बलवाना । डरहि न तिनसे काहू आना ॥
धर्मात्मा निबल जहँ होईं । तासों डरत रहत बुध सोईं ॥
धर्मवान निर्बल जग माहीं । जो अनाथ गुणरहित लखाहीं ॥
सम्पूरन शक्ती सों तिनकी । प्रेम करहु उन्नति हो उनकी ॥
महाबली सनाथ गुणवाना । चक्रवर्ति हो नृपति महाना ॥
दो०--पर अधर्म को करत नित, अन्यायी अति क्रूर ।
ताकी अवनति नाशहित, यत्न करहि भरपूर ॥ ७ ॥

तेहि सँग प्रिय आचरण न कबहूँ । करहि शक्तिशाली हो जबहूँ ॥
बल अन्यायिन नष्ट करीजै । यथा समर्थ करन चित दीजै ॥
अरु जो चलत न्यायपथ भाई । तिनकी उन्नति करहु सदाई ॥
चाहे केतिक दुःख उठावहिं । चाहे प्राण दंडहू पावहिं ॥
तऊ न होवैं धर्मविरुद्धा । नित नव करहिं सुमारग श्रद्धा ॥
भर्तृहरि आदिक ग्रन्थन माँई । लिख्यो जौन विधि नीतिदृढ़ाई ॥
चलहु सदा इनके अनुकूला । होहु न कतहुँ धर्मप्रतिकूला ॥
अब मैं जाको जेहि विधि मानहुँ । सोइ सुनावहुँ जो कछु जानहुँ ॥
वह संक्षेप रीति सों भाई । कहिहौं तात तुमहिं समुझाई ॥

सो०—जेहि प्रकरण की बात, ताही में बहु विधि कही ।
जानि लेहु तहँ तात, करि विचार हिय बिच धरहु ॥२॥

१—ईश्वर

ईश्वर जासु ब्रह्म है नामा । परमात्मादिक जो सुखधामा ॥
सत चित आनँद लक्षण भावा । पावन गुण अरुकर्म स्वभावा ॥
निराकार सर्वज्ञ लखाई । सर्वव्यापक परम सुहाई ॥
ईश अजन्म अनन्त दयालू । सर्वशक्तिमन अहै कृपालू ॥
न्यायकारि अरु है जगकर्ता । धर्ता जगत केर पुनि हर्ता ॥
जीवन को फल देत सदाई । कर्मनुकूल विचार दृढ़ाई ॥
सत्य न्याय सों सबन निहारै । अस बहु लक्षण ईश विचारै ॥
या विधि हम मानत परमेश्वर । मानहुसकलयाहि विधि ईश्वर ॥

दो०—नियम दूसरे में लखहु, जो हम बरनन कीन्ह ।
अरु सत्यार्थप्रकाश के, है प्रथमहिं लिखि दीन्ह ॥८॥

२—चारों वेद

भ्रान्तिरहित हम चारो वेदा[१] । मानत स्वतः प्रमाण अखेदा ॥

---

[१] विद्याधर्मसंयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मंत्रभाग ऋग्वेद १० मंडल १०२८ सूक्त २०४४ वर्ग १५०२८ मंत्र हैं, यजुर्वेद ४० अध्याय

स्वतः प्रमाण वेद हम जानत। अन्य प्रमाण न यामहँ मानत ॥
जिमि सूरज जग स्वतः प्रकाशा। तैसेहि वेद केर परकाशा ॥
चारहु वेदन के छः अङ्गा[२]। चारि ब्राह्मण[३] षष्ठ उपाङ्ग[४] ॥
अरु उपवेद[५] चारि लखि लीजै। पुनि शाखा[६] ताकी चितदीजै ॥

३–धर्म और अधर्म

पत्तपात जहँ तनिक न होई। न्यायसहित आचार लखोई ॥
ईश्वर आज्ञा अरु सदभाषन। वेदविहित जहँ कर्म उपासन ॥
वेदप्रणीत धर्म हम मानहिं। तेहि विपरीत अधर्म बखानहिं ॥

दो०–धर्म ताहि को मानहीं, है अधर्म विपरीत।
पत्तपात अन्याययुत, मिथ्या भाषन रीत ॥६॥

भंग करहिं ईश्वर की आज्ञा। करहिं कर्म नित वेद अवज्ञा ॥
सो अधर्म लत्तण हम मानत। जो करि सूत्तम तुमहिं सुनावत ॥

४–जीवात्मा

इच्छा दोष प्रयत्न विराजै। सुखदुख ज्ञान जहाँ पर राजै ॥
है अल्पज्ञ नित्य बलसीवा। ताही को हम मानत जीवा ॥

५–ईश्वर और जीव

जीव ईश वैधर्म विभिन्ना। अरुसाधर्म से लखहु अभिन्ना ॥

१६७५ मंत्र, सामवेद पूर्वार्ध ८७ उत्तराध २६ प्रपाठक सं० १६४०४, अथर्ववेद २० कांड ६४ प्रपाठक १११ अनुवाक ७३१ वर्ग ५७४७ मंत्र।

[२] शित्ता, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त और कल्प।

[३] ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण, सामवेद का साम ब्राह्मण, और अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण।

[४] न्याय, सांख्य, वैशेषिक, मीमांसा, योग, वेदान्त दरशन।

[५] ऋग् का आयुर्वेद, यजु का धनुर्वेद, साम का गंधर्ववेद, अथर्व का अर्थवेद, यह उपवेद हैं।

[६] ११२७ शाखाएँ हैं।

व्यापक ईश व्याप्य है जीवा। ईश उपास्य उपासक जीवा ॥
पिता-पुत्र जिमि जग सम्बन्धा। तैसेहि ईश-जीव को धन्धा ॥

६-७-अनादि पदार्थ

दो०-ईश्वर आत्मा अरु प्रकृति, हैं अनादि यह तीन।
एही नित्य कहावहीं, अहैं न कबहुँ नवीन ॥१०॥

है जग प्रकृति केर यह भावा। नित्य अहै गुणकर्म सुभावा ॥
हम प्रभाव सों लखहिं अनादी। है संयोग वियोग अनादी ॥

८-सृष्टि, ९-सृष्टि का प्रयोजन

पृथक द्रव्य को होवे ज्ञाना। मेल होय तहँ युक्ती नाना ॥
नाना रूप बनहिं तेहि ठाहीं। सृष्टिरूप सोइ परत लखाहीं ॥
सृष्टि निमित्त लखहु सोइ भावा। फल होवे गुन कर्मस्वभावा ॥
जिमि कोउ पूछत केहु ढिग जाई। केहि कारन यह नेत्र लखाई ॥
उतर दीन्ह देखन के ताँई। ईश्वर सबके दीन्ह बनाई ॥
याही विधि ईश्वर प्रभुताई। सृष्टि करन फल परत लखाई ॥
अरु सब जीवन को जो कर्मा। भोगवावत लखिके निजधर्मा ॥
भोगत जीव कर्मफल भाई। यह है ईश्वर की प्रभुताई ॥

१०-सृष्टि का कर्ता

दो०-जानहु कर्ता सृष्टि को, परमेश्वर सब भाँति।
पूर्व कहे गुन जासु के, अहै परम सुखदाति ॥११॥

जब हम रचना जगत विलोकहिं। जड़ अरु चेतन द्वौअवलोकहिं ॥
सत चित आनंद ईश्वर जानहु। प्रकृति जीव अरु ईश प्रमानहु ॥

११-बन्ध

घोर अविद्या में सो परिके। भोगत पापकर्म तहँ रहिके ॥
बन्ध निमित्त अविद्या जानहु। दुख अज्ञान तासु फल मानहु ॥
ईश्वर त्यागि भजत जो औरन। सोइ अज्ञानि पड़त नित भँवरन ॥
बिन इच्छा जो भोगन के बिच। परत बन्ध जानहु हिरदयखिंच ॥

१२–मुक्ति

बंधरहित छूटहिं सब दुखते। पावहिं ईश्वर स्तुति करि ते॥
निज इच्छा बिचरत तेहि ठाईं। सृष्टि ईश की है जहँ ताईं॥
नियत समय लगि भोगै आनँद। पुनि आवत वह जग में सानँद॥

१३–मुक्ति का साधन

दो०-योगाभ्यास करहिं सदा, ब्रह्मचर्य सुविचार।
सतविद्या पुरुषार्थयुत, बुधजन संग विचार॥१२॥
विद्याप्राप्ती करहिं नित, करहिं धर्मनुष्ठान।
बनहिं उपासक ईश के, बोलहिं सत्य निदान॥१३॥

१४-१५–अर्थ, काम

धर्मसहित जो मिलहिं सदाहीं। कहत ताहि सब अर्थसराहीं॥
अधरमसहित प्राप्त जो होई। ताहि अधर्म कहत सब कोई॥
धर्म अर्थ दोहुन संयोगा। करिके प्राप्त करहिं उपभोगा॥

१६–वर्णाश्रम

बरणाश्रम हम मानहिं सोई। गुन अरु कर्म योग्यता होई॥

१७–राजा

राजा ता कहँ कहत बुझाई। प्रजहि पुत्रवत मानहिं भाई॥
अरु शुभहों गुन कर्म स्वभावा। राखहि न्याय धर्म हिय भावा॥
करहिं न पक्षपात निशिवासर। पितु बनि करहिंप्रजा को आदर॥
उन्नति प्रजा चहहि दिन राती। रहहिं प्रसन्न सदा सब जाती॥
दो०–गुन अरु कर्म स्वभाव सब, हों पवित्र अति ठीक।
पक्षपात से रहित है, करहि न्याय जो ठीक॥१४॥

१८–प्रजा

अरु नित धर्म सहित जो रहई। राज भक्ति निशिवासर लहई॥
जिमि सुत करत पिता संग नेहा। तैसेहि भूपति प्रजा सनेहा॥

१९–न्यायकारी

सदा विचार करहिं हिय माहीं। सत्य ग्रहन करिके सब ठाहीं॥
जो अन्याय कर्म जग माहीं। तिनको सब विधि दूर भगाहीं॥
जग में न्याय कारि जो होई। तिनकी वृद्धि करहु सब कोई॥
निज आतम सम दूसर जाने। होय सुःख यह हिय विच ठाने॥
न्याय कारि वह नर है पावन। अरु अन्यायी महा अपावन॥

२०–देवता

जो विद्वान जगत के माहीं। तिनहिं देवता कहत सराहीं॥
विद्या रहित जो नर जगमाहीं। तिन कहँ बुधवर असुर बताहीं॥
अरु पापिन को राक्षस मानहु। अनाचारि पैशाच प्रमानहु॥

२१-२२–देवपूजा और शिक्षा

दो०–मात पिता आचार्य्यजग, अरु विद्वान जो होय।
न्यायी राजा अतिथिजन, धर्मात्मा जो कोय॥१५॥

स्त्री व्रत पति, पतिव्रत नारी। पूजा तिनकी करहु सम्हारी॥
पूजा ही सत्कार कहावे। आदर करिजो कोउ अपनावे॥
या विधि करै देवतन पूजा। पूजन मार्ग ताहि है दूजा॥
जो विपरीत भावना करई। वह अदेव पूजा चित धरई॥
इन मूर्तिन कहँ पूज्य प्रमानहु: अन्य अपूज्य सकलविधि जानहु॥
जो जड़मूर्ती परत लखाहीं। धातु पखान आदि बहु ठाहीं॥
तिनहिं अपूज्य सदा हम मानहिं। और कछू नहिं हिय विचआनहिं॥
जासों विद्या बढ़ै सदाहीं। अरु सभ्यता केरि अधिकाई॥
धर्म बढ़ै इन्द्रीजित होहीं। दोष अविद्या छूटत ज्योंहीं॥
तेहि शिक्षा हम मानत रहहीं। बुधि विद्या अरु बल को लहहीं॥

२३–पुराण

दो०–ब्रह्मा आदिक ऋषिन जो, ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे जु।
ताही को हम मानहिं, कल्प पुराण कहे जु॥१६॥

अरु तेहि नाराशंसी कहहीं। गाथा अरु इतिहास बताहीं॥
हम पुराण भागवत न मानहिं। पन्थन हेत लिखी हम जानहिं॥

२४–तीर्थ

जो दुखसागर पार उतारे। सतभाषन सत्संग सम्हारे॥
विद्यावृद्धि योग के अंगा। अरु पुरुषारथ करत अभंगा॥
विद्या दान आदि शुभ कर्मा। समझहुँ तिनको तीरथ धर्मा॥
इनसे इतर जो तीर्थ जलादी। तिनहिं न मानत हम तीर्थादी॥

२५–पुरुषार्थ प्रारब्ध

यक पुरुषारथ जगत लखाई। भाग्य से बड़ो सदा दर्शाई॥
ताही ते संचित जो कर्मा। बनत जाइ प्रारब्ध के धर्मा॥
दो०–जो पुरुषार्थ सुधारई, बनत सकल तेहि काज।
जग पुरुषारथ विमुख जो, बिगड़त सोइ समाज १७॥
याते है पुरुषार्थ बड़ाई। भाग्य से अधिक विचारहुभाई॥

२६–मनुष्य

सब सों यथायोग्य दिन राती। बातैं निज आतम की भाँती॥
सुख दुख हानिलाभ सब माहीं। समतासों व्यवहार सदाहीं॥
तेहै मनुष श्रेष्ठ जगमाहीं। और न अबुध लखहु सब ठाहीं॥

२७–संस्कार

संस्कार ताको जग कहई। जासों मन उत्तमता लहई॥
देह आत्मा पावन होई। सोलह संस्कार लखु जोई॥
मृतक पछारु कछु नहिं होई। जीव हेत कर्तव्य न कोई॥

२८–यज्ञ

विद्वानन जहँ हो सत्कारा। यथायोग्य हो शिल्प बिचारा॥
दो०–शुभगुनविद्याआदि को, दान होय जेहि ठाम।
अग्निहोत्र आदिक क्रिया, होत जौन से ग्राम ॥१८॥

नाना विधि सो यज्ञ रचावे। शुद्ध सुखद सामग्रि बनावे ॥
करहि हवन सो वेदि रचाई। ताहि यज्ञ ऋषि कहत बुझाई ॥
जहाँ शुद्ध वायु अति होई। जल की वृष्टि तहाँ वहु होई ॥
उपजहिं औषधि पावनताई। दे जीवन को सुख पहुँचाई ॥
ताहि यज्ञ हम उत्तम मानैं। आगे आर्य्य दस्यु बखानैं ॥

२९—आर्य्य दस्यु

जो जन श्रेष्ठ जगत में आहीं। ते सब आर्य्य पुरुष कहाहीं ॥
जो जग दुष्ट कर्म नित करहीं। दस्युतिनहिं सुबुध उचरहीं ॥
शिल्प कला स्वाध्याय प्रवीना। पंचयज्ञ आदिक यज चीन्हा ॥

३०—आर्य्यवर्त

आर्य्यवर्त पड़ो है नामा। बसे आइ जहँ आर्य्य ललामा ॥

दो०—आदि सृष्टि से आर्य्यजन, कीन्हो आइ निवास।
रहे सकल आनन्द सों, दीन्हो सबन सुपास ॥ १९॥

हिमगिरि उत्तर दिशा सुहावन। दक्षिण विंध्याचल अति पावन ॥
पश्चिम दिशा अटक नद सोहै। पूरब ब्रह्मपुत्र मन मोहै ॥
आर्य्यवर्त यहि भाँति सोहाई। बसे आइ ते आर्य्य कहाई ॥

३१—आचार्य्य

अंग उपांग सहित जो वेदा। पढ़त रहत नित हैं तजि खेदा ॥
सद्आचार ग्रहन जो करहीं। मिथ्याचार त्याग उर धरहीं ॥
ते आचारी सुबुध कहावें। बनि अध्यापक सबन पठावें ॥

३२—शिष्य

शिष्य कहत ताको जगमाहीं। सतशिक्षा को गहैं सदाहीं ॥
विद्या ग्रहन करहिं निशि बासर। धर्मात्मा बनहिं अति आगर ॥

दो०—इच्छा विद्याभ्यास की, शिष्य करैं दिन रात।
नेह होय आचार्य्य सों, गुरुसेवा सतरात ॥२०॥

३३–गुरु

मात पिता विद्या को दाता । सत्य ग्रहन की रीति बताता ॥
और असत को जो छोड़वावे । सोई गुरु जग बिच कहलावे ॥

३४–पुरोहित ३५–उपाध्याय

जो यजमान केर हित करई । सदउपदेश सदा उर धरई ॥
वह प्रोहित जग बीच कहावे । तेहि विपरीत न प्रोहित भावे ॥
वेदन अंग पढ़ावत जोई । एक विषय में वक्ता होई ॥
ताहि उपाध्याय जग कहई । शिष्य पढ़ाइ सुःख को लहई ॥

३६–शिष्टाचार ३७–प्रमाण

ब्रह्मचर्य्ययुत विद्या पढ़ई । धर्माचरण माहिं रत रहई ॥
पुनि वह सत्यासत्य बिचारै । यह जगशिष्टाचार निहारै ॥

दो–प्रत्यक्षादि प्रमाण जे, आठ कहे मुनिवृन्द ।
तेऊ हम मानत सदा, करत सकल जगद्वन्द ॥२१॥

३८–आप्त ३९–परीक्षा

जो यथार्थ वक्ता जग माहीं । धर्मात्मा सुःख को चहहीं ॥
यत्न करहिं सबके सुख लागी । सो है जग में आप्त विरागी ॥
पाँच प्रकार परीक्षा गाई । आप्त नरन जेहि भाँति बताई ॥
प्रथम ईश गुन कर्म स्वभावा । विद्या वेद केर जहँ भावा ॥
दूसर आठ प्रमाण लखावा । तीसर सृष्टीक्रम बतरावा ॥
चौथा है आप्तन व्यवहारा । पंचम अपनो आत्मबिचारा ॥
इनसों ग्रहन करहु यह नीती । सत्यासत्य बिचारन रीती ॥
त्यागहु असत सत्य गहिलीजै । परखकेरि बिधियहचित दीजै ॥

४०–परोपकार

दो०–दुराचार दुख छुटत जेहि, बाढ़े श्रेष्ठ बिचार ।
करै कर्म सुख मिलहि नित, सो है परउपकार ॥२२॥

४१–स्वतंत्र

जीव सदा परतंत्र लखाई। निज कर्तव्य स्वतंत्र सदाई॥
कर्मभोग बिच सो परतंत्रा। ईश्वर निजकृत माहिं स्वतंत्रा॥

४२–स्वर्ग ४३–नरक ४४–जन्म

सुख अरु भोग विशेष तहाँ पर। बिना कष्ट है मिलत जहाँ पर।
स्वर्ग नाम ताको बुध कहहीं। जहाँ मिलहि तुम जानहु तहहीं॥
नर्क है दुख विशेष अरु भोगा। जहाँ मिलत इनको है योगा॥
जन्म शरीर करत जब धारन। प्रकट होत तनु जगको कारन॥
होत शरीर जीव संयोगा। जन्म कहत हैं तेहि सबलोगा॥

४५–मृत्यु ४६–विवाह ४७–नियोग

अरु वियोग को मृत्यु बतावहिं। जबहिंशरीरसकलनशि जावहिं॥
जीव शरीर विलगता होई। मृत्यु कहत ताकहँ सब कोई॥

दो०--नियम सहित परसिद्धि करि, अरु इच्छा के साथ।
वह विवाह है जगविदित, गहै नारि को हाथ॥२३॥

दो०--है नियोग याही सदृश, जिमि विवाह सुखसाज।
आपत्काल अरु पुत्र-हित, करत नियोग समाज॥२४॥

४८–स्तुति ४९–प्रार्थना ५०–उपासना

गुन कीर्तन निशिवासर करई। करहिं श्रवण सोई हिय धरई॥
प्रीति आदि स्तुति फल होई। अरु प्रार्थना सुनिये जोई॥
जासु काज सामर्थ न भाई। ताहित याँचहु ईश सुहाई॥
ईशकृपा जो पावहिं कोऊ। तजि अभिमान धरै उर सोऊ॥
जासु ईश गुन कर्म स्वभाऊ। हैं अति पावन ताके भाऊ॥
तैसेहि तुम निज कर्म बनावहु। सर्व व्यापक तेहि ठहरावहु॥
अपने को तुम व्याप्य प्रमानहु। निज समीप ईश्वर तुम जानहु॥
जो यह निश्चय परत लखाई। तेहि साक्षात करहु तुम भाई॥
योग उपासन परम सुरीती। करहु सदा अभ्यास सप्रीती॥

दो०--फल उपासना धरहु चित, बुद्धि ज्ञानयुत होय ।
ताते हम सब नेह करि, बनहिं उपासक कोय ॥२५॥

५१-सगुण निर्गुण स्तुति प्रार्थनोपासना

छं०-गुन जौन होवहिं ईश में तेहि जानिके स्तुति करैं ।
ह्वै युक्त नित गुन माहिं निशिदिन ईश को उर में धरैं ॥
जो होय गुन नहिं ईश में तेहि पृथक करि बिनती करैं ।
करि सगुन निर्गुन स्तुती पुनि 'इष्ट' प्रार्थना करैं ॥ १ ॥

शुभ गुनन गहिबे को करैं इच्छा जो परम सुहावनी ।
अरु दोष छूटहिं जौनविधि बिनती करहिं सुखदायिनी ॥
तब ईश को गुन सहित मानहु दोषरहित बखानहू ।
अर्पन करहु निज आत्मा आज्ञा प्रभू की मानहू ॥ २ ॥

निर्गुन सगुन उपासन एहीं । करहिं मनुज शुभगुन चित देहीं ॥
यह संक्षेप रीति सों बरना । जो सिद्धान्त मनुज आचरना ॥
यदि विशेष देखन तुम चहहू । तौ मम लिखित भूमिका लहहू ॥
औरहु ग्रन्थन लिखा विलोकहु । मानन योग ताहि अवलोकहु ॥
सत्य सदा हम नीक बखानहिं । अरु ताही को उर बिच आनहिं ॥
बोलत असत अयोग्य महाना । तेहि मानहिं हम दुष्ट प्रमाना ॥
बोलहु सत्य सदा सब लोगू । झूँठ वचन सब भाँति अयोगू ॥
मानहिं हम सिद्धान्त सदाई । नहिं मानहिं ग्रन्थन प्रभुताई ॥

दो०--मत मतान्तर जगत में, दिय विरोध फैलाय ।
सबन फँसाये जाल बिच, करि युक्ती अधिकाय ॥२६॥
शत्रु बने हैं अधिकतर, कीन्ह न तनिक विचार ।
ज्ञान बुद्धि खोई सबै, कीन्हों असत प्रचार ॥२७॥

काटि सकल बातन यह चीन्हा । सत्य प्रचार करन चित दीन्हा ॥
नियम एकता केर बनावा । दोष छुटैं सो यतन सिखावा ॥
प्रीति परस्पर हो अधिकाई । ऐसी ही हम रीति सिखाई ॥
पहुँचे लाभ सुःख अधिकाई । करत रह्यों यह सदा उपाई ॥
सर्वशक्तिमन है जगदीश्वर । कृपा होय ताकी मम ऊपर ॥
अरु जो आप्त पुरुष जग माहीं । बनहिं सहायक जगहित चाहीं ॥
यह सिद्धान्त जगत के माहीं । फैलहिं भूमंडल सब ठाहीं ॥
जासों पावें सहज सुभाई । धर्म अर्थ की जो निपुणाई ॥
सिद्ध होय कामना हमारी । पाय मोक्ष सब बनहिं सुखारी ॥

दो०--याते उन्नत होय जग, हो आनँद सब ठाम ।
मुख्य प्रयोजन है यही, सुनहु हृदय को थाम ॥२८॥
सूक्ष्म रूप मन्तव्य यह, तुमहिं सुनायों तात ।
जीवन केर सुधार हो, हिय धारहु ऋषि बात ॥२९॥

१११७ दो० १३४ सो० १३६ छंद ७७३४ चौपाई

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः । शन्नो भवत्वर्य्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः । शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥
नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि ऋतंवदिष्यामि सत्यवदिष्यामि ॥
तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् अवतु वक्तारम् ।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

स्वमन्तव्या मन्तव्य समाप्तम्

आर्यसमाज के दस नियम

नाथ स्वामि मन्तव्य सुनायहु । सुनतहि सकलहृदयको भायहु ॥
अब तनि मोहिं बतावहु साईं । आर्यजन केहि मारग जाईं ॥
आर्यसमाज केरि जो रचना । नेम बतावहु ऋषि के वचना ॥
बिनानियम कछु बनत न काजू । जोरहु चाहे अधिक समाजू ॥
ताते नाथ मोहिं समुझावहु । अरु समाज के नियम बतावहु ॥

सो०--दिय दस नियम बताय, आर्यसमाजहि थापिकै ।
चलहि जो इन सम भाय, जानि आपनो धर्म यह ॥१॥

दो०--इनहीं में सब कछु कह्यो, है जीवन को सार ।
सुख पावहिं संसार में, चलहिं नियम अनुसार ॥१॥

सब सतविद्या जो जग माहीं । अरु विद्या सों जानहु जाहीं ॥
आदि मूल तिन सबका ईश्वर । पूजनीय वह है परमेश्वर ॥
प्रथम नियम समाज सुखदाई । दूसर नियम सुनहु चितलाई[1] ॥
ईश्वर सत चित आनँद रूपा । निराकार सब भाँति अनूपा ॥
सर्वशक्तिमन न्याय करैया । और दयालु सकल सुखदैया ॥
अहै अजन्म अनन्त अनादी । निर्विकार अनुपम सुखमादी ॥
सर्वाधार और सर्वेश्वर । सर्वव्यापक जगत उजागर ॥
सर्वान्तर्यामी वह ईशा । अजर अमर पावन जगदीशा ॥
अभय नित्य अरु सृष्टीकर्ता । बनहु उपासक जो दुखहर्ता[2] ॥

दो०--विद्या सत्य जो जगत में, ताकी पुस्तक वेद ।
ताहि पढ़ावहु अरु पढ़हु, सुनहु सकल बिन खेद ॥२॥

परम धर्म लखि सबन सुनावहु । तीसर नियम याहि अपनावहु[3] ॥
उद्यत सदा रहहु सब कोई । ग्रहन करहु सत असतहि खोई ॥
नियम चतुर्थ सत्य को पालन । सबके अर्थ एक सुखदाय[4] ॥

धर्म अनुसार करहु सब कामू। सत अरु असत विचारिललामू॥
यह है पंचम नियम अनूपा। लखहु सकलजनजोसुखरूपा[५]॥
जग उपकार करन यक धर्मा। मुख्य समाज केर है कर्मा॥
शारीरिक उन्नत नित करई। अरु आतम उन्नतिहिय धरई॥
उन्नति सामाजिक भी करहीं। षष्ठम नियम आर्य उरधरहीं[६]॥

दो०--सबसे प्रीती पूर्वक, और धर्म अनुसार।
यथायोग्य पुनि बर्तई, सप्तम नियम निहार[७]। ३॥

नाश अविद्या करहु सदाई। विद्या वृद्धि महा सुखदाई॥
आर्य सदा यहि पालन करहीं। नियम आठवाँ यह उर धरहीं[८]॥
निज उन्नति संतुष्ट न रहई। किन्तु उन्नत सबकी चहई॥
ताही को निज उन्नति मानहिं। नियमनवमयाकहँपहिचानहिं[९]॥
सामाजिक सब हित कर नियमा। परतंत्रता सहित धरु हिय मा॥
निज हितकारी कर्म स्वतंत्रा। पालहु नियम विना परतंत्रा॥
दसवाँ नियम लखहु चितलाई। जेहिसमाजकी होय भलाई१०॥
यह दश नियम महा सुखदाई। पालहु इनहिं सकल मिलिभाई॥

सो०--चलहिं नियम अनुकूल, पावहिं सब विधिसुःखसो।
होहि जो कोउ प्रतिकूल, दुःखसहै भ्रम जालपड़ि॥२॥

दो०--नाथ सुनायहु मोहिं सब, ऋषी केर मन्तव्य।
और बताए है नियम जो सबकहँ कर्तव्य॥ ४॥

जो समाजरचना बतराई। और संगठनरीति सुनाई॥
पावन हृदय भयो है मोरा। सनो रह्यो मल पापन घोरा॥
शिष्य सुनहु कछु नहिं प्रभुताई। कथा जौन हम तुमहिं सुनाई॥
वह है कृपा ऋषीवर केरी। अन्तःकरन शुद्ध करि हेरी॥
यह ही नियम जो तुम्हहिं बताये। ऋषिवर दयानन्द समुझाये॥
धर्म अर्थ कामादिक जो फल। मिलहिंसबनकहँहोयन निष्फल॥
याते हम सब प्रेम दृढ़ाई। बनहिं सभासद नेह बढ़ाई॥

दो०--परम रम्य उपदेश यह, पढ़ै सुनै चितलाय ।
मुक्तिमार्ग सो पावई, अधरमपथ नशिजाय ॥५॥
पढ़ैजो नितप्रति नेहसों, छुटै सकल भ्रमजाल ।
बुधि बल विद्या बढ़तसब, लहैं सुःख सब काल ॥६॥
ईश नाम ते मोक्षलगि, अरु आचार की रीति ।
यह पूर्वार्ध कथा लिखी, समुल्लास दस नीति ॥७॥
अरु उत्तरार्ध की कथा, समुल्लास जो चार ।
याविधितरंग चतुर्दश, इष्ट लिख्यो लखि सार ॥८॥
"इष्ट"सुभाषा काव्य में, लिख्यो मूलको भाव ।
रामायण तुलसी सदृश, बरण्यो सहज सुभाव ॥९॥
बुधजन भूल सुधारहीं, जानि देश को नेह ।
सतसागर की शुभ कथा, होहिं सबन के गेह ॥१०॥

छं०—यह कथा पावनि सुःखदायनि नित्त पढ़ि जो उर धरैं ।
सो धर्म अर्थ अरु काम मोक्षहि प्राप्त सब विधि सों करैं ॥
वह पड़त नहिं भ्रमजाल बिच तेहि ठगि सकत कोऊ नहीं ।
सो "इष्ट" ईश्वर भक्त ह्वै आनंदमय विचरै मही ॥१॥
हम कवि न हैं केहु भाँति के अभिमान नहिं कतहूँ करैं ।
अबहूँ जो शिक्षा देइ कोऊ ताहि हम उर बिच धरैं ॥
है धृष्टता जो करी हमने ग्रन्थ यह निर्मित कियो ।
है "इष्ट" फल आशीर्वाद नवीन कवि जो कछु दियो ॥२॥

(इति श्री सत्यार्थ प्रकाश का पद्यानुवदासत्यसागर सम्पूर्णम्)

निवेदक— पं० गदाधरप्रसाद वैद्य, इष्ठ
वर्तमान स्वामी इष्टानन्द सरस्वती

सत्य-सागर पर महानुभावों की सम्मतियाँ

श्रीमान पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ एम० एल० ए०

श्री स्वामी इष्टानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश का रामायण की भाँति कथात्मक पद्यानुवाद करके सत्य-सागर के नाम से छपवाया है। यह सर्व साधारण के लिये उपयोगी सागर है, जिससे मनोरंजन का मनोरंजन सिद्धान्त प्रचार का सिद्धांत प्रचार उभय विधि लाभ है। सब को अपनाना चाहिए।

श्रीमान पं० चाँदकरन शारदा, अजमेर

श्री स्वामी इष्टानन्द भूतपूर्व गदाधर प्रसाद ने सत्यार्थ प्रकाश का पद्यानुवाद करके आर्य जगत का भारी उपकार किया है। मैं इस पुस्तक के लिखने पर स्वामी जी को हार्दिक बधाई देता हूँ और आर्य जनता से अपील करता हूँ कि वे रामायण के समान इस पुस्तक को भी अवश्य अपने घर में रक्खें।

श्रीमान पं० सूर्यदेव जी एम० ए० परीक्षा मंत्री विद्या परिषद् अजमेर

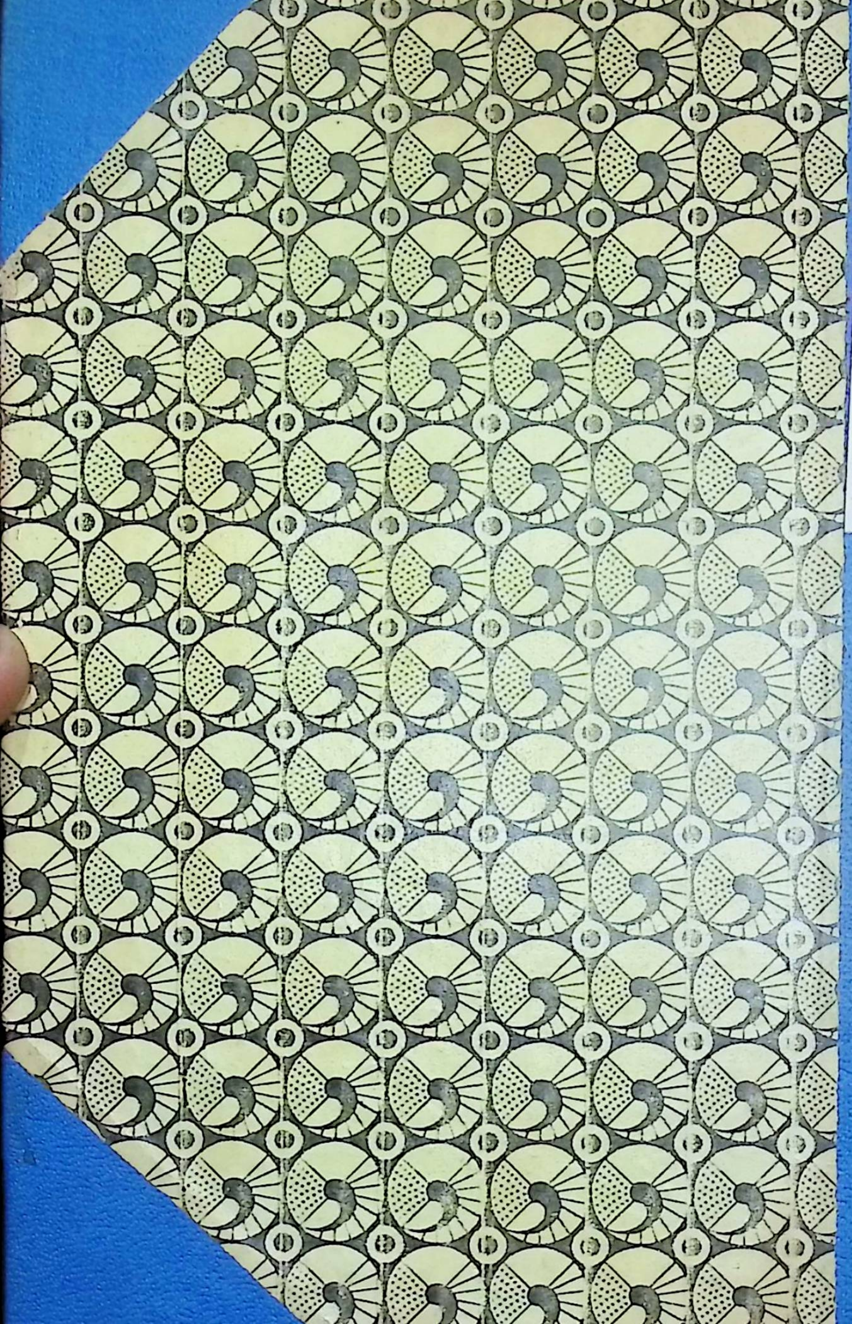इस ग्रन्थ में सत्यार्थ प्रकाश का पद्यानुवाद दिया गया है, तुलसी कृत रामायण के ढंग पर दोहा चौपाइयों में सम्पूर्ण सत्यार्थ प्रकाश का पद्यानुवाद किया गया है। यद्यपि सत्यार्थ प्रकाश जैसे संस्कृत प्रमाणों से परिपूर्ण सैद्धान्तिक ग्रन्थ का काव्यानुवाद कोई सरल कार्य नहीं है फिर भी लेखक का परिश्रम अति सराहनीय है। इससे साधारण जनता को भी सत्य सिद्धान्तों का ज्ञान होने का एक सरल साधन मिल जायगा। लेखक आर्य जनता के बधाई के पात्र हैं संस्कार संगीत, गृह दीपक, गृह सुधार आदि भी परम उपयोगी सब के घर रखने और उनसे लाभ उठाने योग्य पुस्तकें हैं।